KALYAN

Year 84 No. 7 - 12 2010

ॐ श्रीपरमात्मने नमः
कल्याण
मूल्य ६ रुपये
Central Library
Gurukul Kangri University
Hardwar-249404 (U.A.)
131849
धनुष
वर्ष
८४
गीताप्रेस, गोरखपुर
संख्या
७-
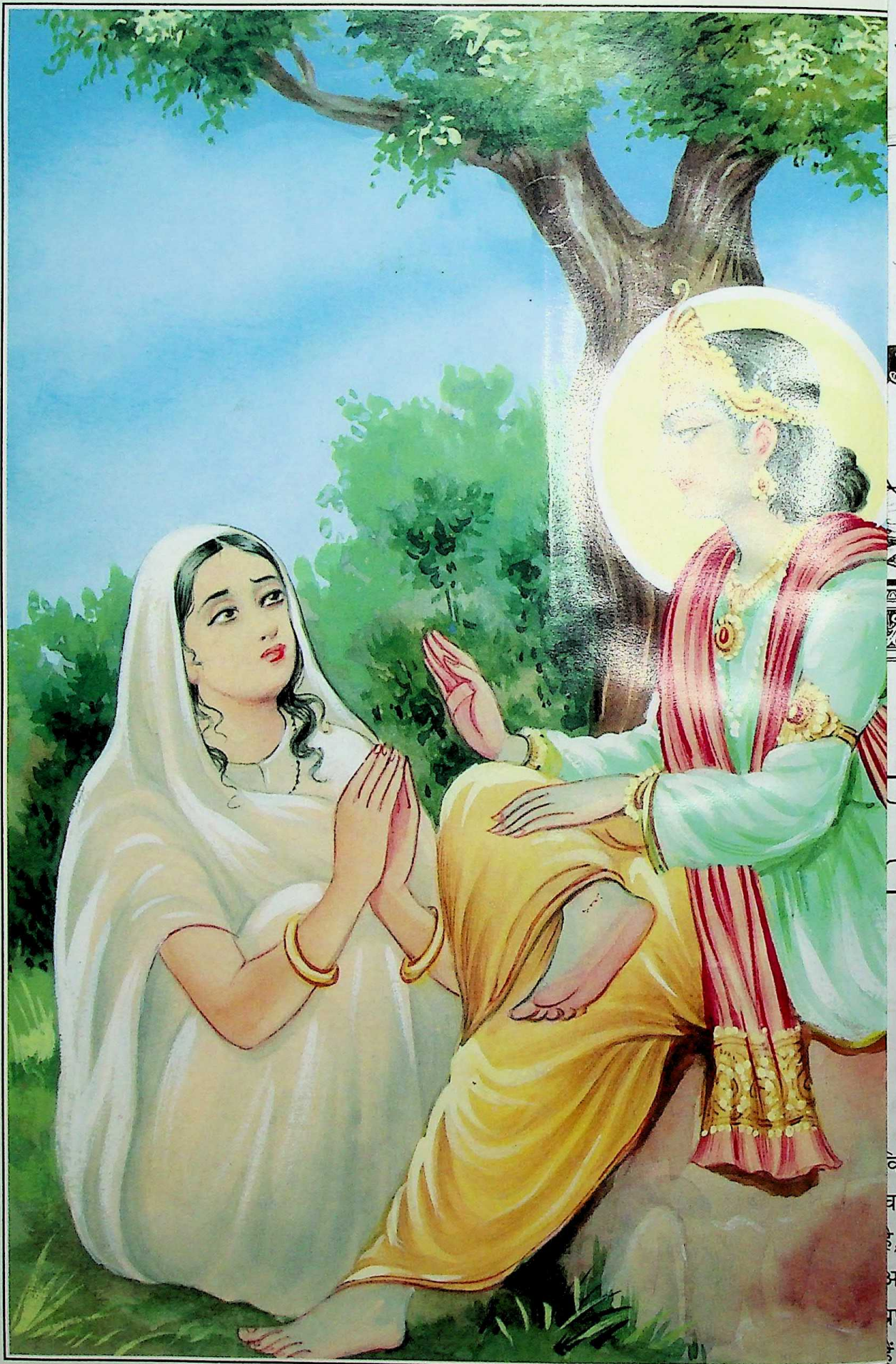
कुन्तीकी भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

आचारवन्तो मनुजा लभन्ते आयुश्च वित्तं च सुतांश्च सौख्यम्।
धर्मं तथा शाश्वतमीशलोकमत्रापि विद्वज्जनपूज्यतां च॥

गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, जुलाई २०१० ई०

पूर्ण संख्या १००४

कुन्तीकी प्रार्थना

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो। भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥
जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान्। नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम्॥
नमोऽकिञ्चनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये। आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः॥

(श्रीमद्भा० १।८।२५—२७)

'जगद्गुरो श्रीकृष्ण! हमलोगोंके जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें; क्योंकि विपत्तियोंमें ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन होनेपर फिर पुनर्जन्म-चक्र मिट जाता है। ऊँचे कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्तिके कारण जिसका मद बढ़ रहा है, वह मनुष्य तो आपका नाम भी नहीं ले सकता; क्योंकि आप तो अकिंचन लोगोंको दर्शन देते हैं। आप अकिंचनोंके (जिनके पास कुछ भी अपना नहीं है, उन निर्धनोंके) परम धन हैं। आप मायाके प्रपंचसे सर्वथा निवृत्त हैं, नित्य आत्माराम और परम शान्तस्वरूप हैं। आप ही कैवल्यमोक्षके अधिपति हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,२५,०००)

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, जुलाई २०१० ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
अजिल्द १५० रु०
सजिल्द १७० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$40 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते।

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ७५० रु०
सजिल्द ८५० रु०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org**	e-mail : **Kalyan@gitapress.org**	✆ **(0551) 2334721**

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,२५,०००)

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, अगस्त २०१० ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
अजिल्द १५० रु०
सजिल्द १७० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$40 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते।

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ७५० रु०
सजिल्द ८५० रु०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

आचारवन्तो मनुजा लभन्ते आयुश्च वित्तं च सुतांश्च सौख्यम्।
धर्मं तथा शाश्वतमीशलोकमत्रापि विद्वज्जनपूज्यतां च॥

वर्ष ८४

गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, अगस्त २०१० ई०

संख्या ८

पूर्ण संख्या १००५

'कबहिं देखाइहौ हरि चरन'

कबहिं देखाइहौ हरि चरन।
समन सकल कलेस कलि-मल, सकल मंगल-करन॥
सरद-भव सुंदर तरुनतर अरुन-बारिज-बरन।
लच्छि-लालित-ललित करतल छबि अनूपम धरन॥
गंग-जनक अनंग-अरि-प्रिय कपट-बटु बलि-छरन।
बिप्रतिय नृग बधिकके दुख-दोस दारुन दरन॥
सिद्ध-सुर-मुनि-बृंद-बंदित सुखद सब कहँ सरन।
सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारन-तरन॥
कृपासिंधु सुजान रघुबर प्रनत-आरति-हरन।
दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन॥

[विनय-पत्रिका]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,२५,०००)

कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, सितम्बर २०१० ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
अजिल्द १५० रु०
सजिल्द १७० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$40 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते।

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ७५० रु०
सजिल्द ८५० रु०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क —व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

आचारवन्तो मनुजा लभन्ते आयुश्च वित्तं च सुतांश्च सौख्यम्।
धर्मं तथा शाश्वतमीशलोकमत्रापि विद्वज्जनपूज्यतां च॥

गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, सितम्बर २०१० ई०

पूर्ण संख्या १००६

श्रीराधा-माधवकी वन्दना

दोउ चकोर, दोउ चंद्रमा, दोउ अलि, पंकज दोउ।
दोउ चातक, दोउ मेघ प्रिय, दोउ मछरी, जल दोउ॥
आस्त्रय-आलंबन दोउ, बिषयालंबन दोउ।
प्रेमी-प्रेमास्पद दोउ, तत्सुख-सुखिया दोउ॥
लीला-आस्वादन-निरत, महाभाव-रसराज।
बितरत रस दोउ दुहुन कौं, रचि बिचित्र सुठि साज॥
सहित बिरोधी धर्म-गुन जुगपत नित्य अनंत।
बचनातीत अचिन्त्य अति, सुषमामय श्रीमंत॥
श्रीराधा-माधव-चरन बंदौं बारंबार।
एक तत्त्व दो तनु धरें, नित-रस-पाराबार॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,२५,०००)

कल्याण, सौर कार्तिक, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, अक्टूबर २०१० ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

सन् २०११ के लिये शुल्क
अजिल्द १७० रु०
सजिल्द १९० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

चालू वर्षका शुल्क
भारतमें
अजिल्द १५० रु०
सजिल्द १७० रु०
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

पञ्चवर्षीय शुल्क (भारतमें) अजिल्द रु० ८५०, सजिल्द रु० ९५०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

आचारवन्तो मनुजा लभन्ते आयुश्च वित्तं च सुतांश्च सौख्यम्।
धर्मं तथा शाश्वतमीशलोकमत्रापि विद्वज्जनपूज्यतां च॥

गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, अक्टूबर २०१० ई०

पूर्ण संख्या १००७

भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा॥
सुत बिलोकि हरषीं महतारी। बार बार आरती उतारी॥
बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥
सिंघासन पर त्रिभुअन साईं। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं॥

नभ दुंदुभीं बाजहिं बिपुल गंधर्ब किंनर गावहीं। नाचहिं अपछरा बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं॥
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते। गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते॥
श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई। नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई॥
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे। अंभोज नयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे॥

[श्रीरामचरितमानस]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,२५,०००)

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, नवम्बर २०१० ई०

विषय-सूची

~~○~~

चित्र-सूची

~~○~~

सन् २०११ के लिये शुल्क
अजिल्द १७० रु०
सजिल्द १९० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

चालू वर्षका शुल्क भारतमें
अजिल्द १५० रु०
सजिल्द १७० रु०
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

पञ्चवर्षीय शुल्क (भारतमें) अजिल्द रु० ८५०, सजिल्द रु० ९५०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

आचारवन्तो मनुजा लभन्ते आयुश्च वित्तं च सुतांश्च सौख्यम्।
धर्मं तथा शाश्वतमीशलोकमत्रापि विद्वज्जनपूज्यतां च॥

गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, नवम्बर २०१० ई०

संख्या ११

पूर्ण संख्या १००८

भगवान् सूर्यकी स्तुति

दीन-दयालु दिवाकर देवा। कर मुनि, मनुज, सुरासुर सेवा॥ १॥
हिम-तम-करि-केहरि करमाली। दहन दोष-दुख-दुरित-रुजाली॥ २॥
कोक-कोकनद-लोक-प्रकासी। तेज-प्रताप-रूप-रस-रासी॥ ३॥
सारथि-पंगु, दिब्य रथ-गामी। हरि-संकर-बिधि-मूरति स्वामी॥ ४॥
बेद-पुरान प्रगट जस जागै। तुलसी राम-भगति बर माँगै॥ ५॥

हे दीनदयालु भगवान् सूर्य! मुनि, मनुष्य, देवता और राक्षस सभी आपकी सेवा करते हैं॥ १॥ आप पाले और अन्धकाररूपी हाथियोंको मारनेवाले वनराज सिंह हैं; किरणोंकी माला पहने रहते हैं; दोष, दुःख, दुराचार और रोगोंको भस्म कर डालते हैं॥ २॥ रातके बिछुड़े हुए चकवा-चकवियोंको मिलाकर प्रसन्न करनेवाले, कमलको खिलानेवाले तथा समस्त लोकोंको प्रकाशित करनेवाले हैं। तेज, प्रताप, रूप और रसकी आप खानि हैं॥ ३॥ आप दिव्य रथपर चलते हैं, आपका सारथी (अरुण) पंगु है। हे स्वामी! आप विष्णु, शिव और ब्रह्माके ही रूप हैं॥ ४॥ वेद-पुराणोंमें आपकी कीर्ति जगमगा रही है। तुलसीदास आपसे श्रीराम-भक्तिका वर माँगता है॥ ५॥ [विनय-पत्रिका]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,२५,०००)

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, दिसम्बर २०१० ई०

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

सन् २०११ के लिये शुल्क
अजिल्द १७० रु०
सजिल्द १९० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पञ्चवर्षीय शुल्क (भारतमें) अजिल्द रु० ८५०, सजिल्द रु० ९५०

चालू वर्षका शुल्क
भारतमें
अजिल्द १५० रु०
सजिल्द १७० रु०
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण
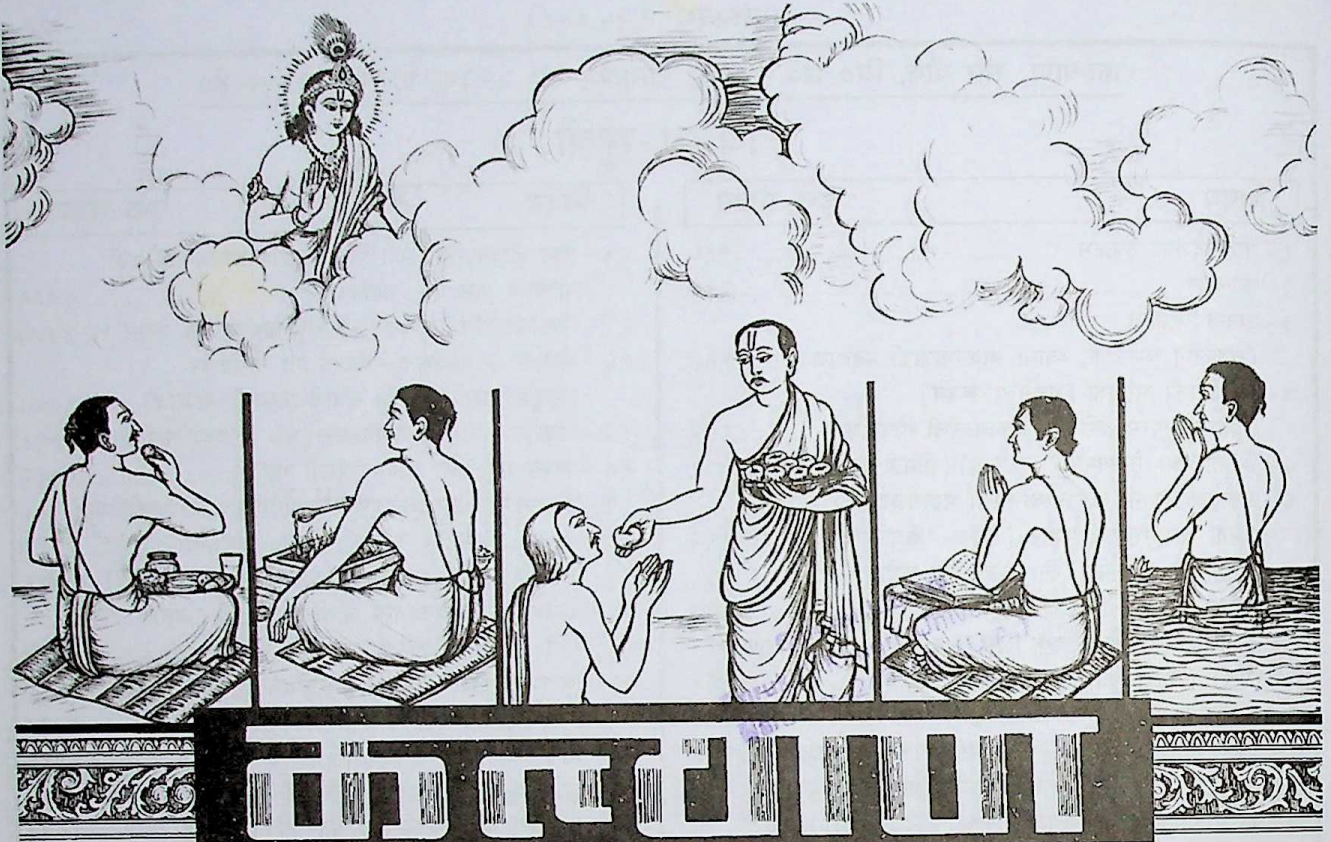
आचारवन्तो मनुजा लभन्ते आयुश्च वित्तं च सुतांश्च सौख्यम्।
धर्मं तथा शाश्वतमीशलोकमत्रापि विद्वज्जनपूज्यतां च॥

गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, दिसम्बर २०१० ई०

पूर्ण संख्या १००९

गीतोपदेशका उपक्रम

सञ्जय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्। विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः॥

संजय बोले—उस प्रकार करुणासे व्याप्त और आँसुओंसे पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रोंवाले शोकयुक्त उस अर्जुनके प्रति भगवान् मधुसूदनने यह वचन कहा।

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्। अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥
क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते। क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन! तुझे इस असमयमें यह मोह किस हेतुसे प्राप्त हुआ? क्योंकि न तो यह श्रेष्ठ पुरुषोंद्वारा आचरित है, न स्वर्गको देनेवाला है और न कीर्तिको करनेवाला ही है। इसलिये हे अर्जुन! नपुंसकताको मत प्राप्त हो, तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती। हे परंतप! हृदयकी तुच्छ दुर्बलताको त्यागकर युद्धके लिये खड़ा हो जा।

कल्याण

याद रखो—जबतक संसारके भोग-पदार्थोंमें सुखकी भ्रान्ति है और इस कारण जबतक संसारके प्राणी-पदार्थोंमें ममता और आसक्ति है, तबतक न तो सच्ची भक्ति प्राप्त होगी, न ज्ञान ही मिलेगा और न योगसाधना ही सिद्ध होगी। निष्काम कर्मका साधन भी बिना विषय-वैराग्यके नहीं हो सकता।

आसक्ति मनमें होती है और उसका त्याग भी मनसे ही होता है। इसलिये न 'वैरागी' या 'वीतरागी' नाम रखनेसे विषयासक्तिका त्याग होता है, न बाहरी त्यागसे। नाम रखना और वस्तुतः वैराग्यकी इच्छा न करना तो दम्भ है। परंतु जबतक मनमें विषयोंकी ओर आकर्षण है, विषयोंमें सुखकी कल्पना है, विषयसुखकी वासना है, तबतक 'वैराग्य' नहीं हो सकता है।

याद रखो—जबतक विषय-सुखकी भ्रान्ति तथा उसकी वासना रहेगी, तबतक बाहरसे त्याग करनेपर भी विषयके सामने आनेपर अथवा विषयकी स्मृति होनेपर उसे प्राप्त करनेकी इच्छा उत्पन्न हो जायगी, जो बाह्य विषय-त्यागी पुरुषको भी विषयसेवनमें लगा देगी और उसका पतन हो जायगा।

विषयमें सुख है ही नहीं, दुःख-ही-दुःख है। संसारमें खान-पान और कपड़ा-लत्ता तथा घर-मकान तो जीवन-निर्वाहके लिये हैं और यह मानव-जीवन है भोगोंमें वैराग्य प्राप्त करके भगवत्प्राप्ति या स्वरूप-साक्षात्कारकी साधनाके लिये, जीवन-निर्वाहके लिये इन वस्तुओंका ग्रहण है, इनके लिये जीवन कदापि नहीं है। अतएव जो स्वाद-शौकीनीके लिये भोजन-वस्त्रादिका सेवन करता है, वह विषयासक्त मनुष्य सर्वथा विरागहीन है और उसे संसारमें बँधे ही रहना पड़ेगा।

याद रखो—जैसे ये विषय शरीरनिर्वाहके लिये हैं, वैसे ही यह शरीर भी जीवात्माके रहनेभरके लिये है। यह तुम्हारा स्वरूप नहीं है। इस शरीरमें होनेवाली बाल्यावस्था, यौवन और वृद्धावस्थाको जाननेवाला आत्मा सदा एक-सा रहता है। तुम कहते हो—'मैं पहले बालक था, ऐसा खेलता था, जवानीमें मेरे शरीरमें बड़ी शक्ति थी, अब बुढ़ापेमें शक्तिहीन हो गया। ऐसा कहनेवाले तुम आत्मा इस शरीरसे पृथक् हो, यह सिद्ध है। यह समझकर इस शरीरसे आसक्ति-ममताका त्याग करो और जबतक शरीर है, तबतक समबुद्धिसे प्राप्त भोगोंका भोग करते हुए इसे भगवत्साधनामें सहायक बनाये रखो।'

जब भगवान्‌में तुम्हारा अनुराग हो जायगा या आत्मस्वरूपमें तुम्हारी स्थिति हो जायगी, तब तो तुम भोगोंको विषकी भाँति स्वयमेव ही त्याग दोगे। परंतु पहलेसे ही उनमें बार-बार दोष-दुःख देखकर और उन्हें बन्धनका परम कारण मानकर उनकी आसक्तिका त्याग करो।

याद रखो—असली त्याग तो मनकी भोगासक्तिके त्यागमें ही है और वही सच्चा वैराग्य है। परंतु जहाँतक बने, विषय-सेवन कम-से-कम करो, विषयोंमें रमणीयता तथा सुखका बोध छोड़कर उनका केवल आवश्यकता होनेपर ही सेवन करो। भोगोंका संग्रह-परिग्रह भी भोगोंकी आसक्तिको बढ़ानेवाला है। भोगासक्त तथा भोगसम्पन्न मनुष्योंकी ओर मत देखो, देखो विषयविरागी-त्यागी महात्माओंकी ओर। मनन करो उन विषयविरागी महात्माओंके चरित्रों और उपदेशोंका, जिससे भोगरूपी मीठे विषके प्रति तुम्हारे मनमें अनास्था, अनासक्ति पैदा होकर उनमें यथार्थ वैराग्य हो जाय।

याद रखो—भोगी पुरुष सदा ही भय और विषादके जालमें फँसा रहेगा—प्राप्त भोगके नाशका भय और नाश हो जाने या न मिलनेपर महान् विषाद और शोक। परंतु जिसकी भोगोंमें आसक्ति नहीं है, वह सदा निर्भय और शोकरहित एवं परमानन्दमें रहेगा। वैराग्यवान् पुरुषको कोई भी परिस्थिति दुःखी नहीं बना सकती। संग्रहमें झंझट है, झमेला है, विषाद और दुःख है। त्यागमें शान्ति है, अतः त्यागमूलक वैराग्य सुखमूलक है। **'शिव'**

प्रारब्ध और पुरुषार्थका रहस्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

कितने ही मनुष्य प्रारब्धको, भाग्यको प्रधान बताते हैं और कितने ही पुरुषार्थको। किंतु वास्तवमें अपने-अपने स्थानमें ये दोनों ही प्रधान हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारोंको पुरुषार्थ कहते हैं। इनमें धर्म, अर्थ, काम तो 'पुरुषार्थ' हैं और मोक्ष 'परम पुरुषार्थ' है। इन चारोंमेंसे धर्म और मोक्ष के साधनमें पुरुषार्थ ही प्रधान है। इन दोनोंको जो मनुष्य प्रारब्धपर छोड़ देता है, वह इनके लाभसे वंचित रह जाता है; क्योंकि धर्म और मोक्षका साधन प्रयत्नसाध्य है। अपने-आप सिद्ध होनेवाला नहीं है, किंतु अर्थ और कामकी सिद्धिमें प्रारब्ध प्रधान है, प्रयत्न तो उसमें निमित्तमात्र है।

प्रायः सभी मनुष्य अर्थके लिये महान् प्रयत्न करते हैं और उसके लिये पाप करनेमें भी नहीं हिचकते। फिर भी वे मनचाहा धन नहीं प्राप्त कर सकते; क्योंकि प्रारब्धके बिना उसकी प्राप्ति नहीं होती। इसी प्रकार जिनको पुत्र नहीं है, वे पुत्रके लिये बहुत प्रयत्न करते हैं; किंतु सभीको पुत्र-लाभ नहीं होता; क्योंकि उसमें भी भाग्य प्रधान है। पर मुक्ति और धर्मके पालनमें पुरुषार्थ ही प्रधान है।

अब यह प्रश्न होता है कि पूर्वकृत कर्म अर्थात् प्रारब्ध और संचित भी इनमें सहायक हैं या नहीं? इसका उत्तर यह है कि इनसे सहायता तो प्राप्त होती है, किंतु इनकी प्रधानता नहीं है। पूर्वमें निष्कामभावसे किये हुए कर्म और उपासनाके फलस्वरूप मनुष्यको संत-महात्माओंका संग प्राप्त होता है, किंतु उनके मिलनेपर उनके बताये साधनको सुनकर उनके अनुसार मनुष्य प्रयत्न करता है तो उसका कल्याण हो जाता है—केवल सुननेमात्रसे नहीं। गीता (१३। २५)-में भगवान्‌के वचन हैं—

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

'इनसे दूसरे जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं, वे तो इस प्रकार ध्यानयोग, ज्ञानयोग और कर्मयोगको न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणके अनुसार साधन करनेवाले पुरुष भी मृत्युरूप संसार-सागरको निःसन्देह तर जाते हैं।'

अतः पूर्वकृत कर्म अर्थात् संचित और प्रारब्धके संस्कार अच्छे होते हैं तो वे साधकके मोक्ष-साधनमें शामिल हो जाते हैं अर्थात् जिस साधकका आठ आना साधन किया हुआ होता है, उसे आठ आना ही साधन और करना पड़ता है, किंतु संचित और प्रारब्धमें भी संचितकी प्रधानता है; क्योंकि प्रारब्ध तो अपना फल देकर शान्त हो जाता है, पर निष्कामभावसे किये हुए संचित कर्म और उपासनारूप साधनका विनाश नहीं होता। वे क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होकर प्रधानतः मुक्ति ही देते हैं। श्रीभगवान्‌ने गीता (२। ४०)-में कहा है—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।

'इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और उल्टा फलरूप दोष भी नहीं है।'

प्रायः सभी मनुष्य अर्थ और भोग (काम)-की कामना करते हैं, किंतु तीव्र कामना करनेपर भी उनकी सिद्धि नहीं होती। किंतु धर्मके पालन और ईश्वरकी प्राप्तिके लिये की हुई तीव्र इच्छासे ही कार्यकी सिद्धि हो जाती है। जो मनुष्य धर्मपालनकी तीव्र इच्छा करके विशेष प्रयत्न करता है, उस प्रयत्नसे धर्मका पालन हो जाता है। अतः कर्तव्यपालनरूप धर्ममें प्रयत्न ही प्रधान है। इसी प्रकार ईश्वर-प्राप्तिकी तीव्र इच्छा करनेसे उस उत्कट इच्छाके बलसे प्रेमपूर्वक किया हुआ प्रयत्न शीघ्र ही परमात्माकी प्राप्तिरूप परम पुरुषार्थको सिद्ध कर देता है।

संसारमें किसी भी प्राणी, पदार्थ, घटना और मृत्युकी प्राप्ति इच्छापर निर्भर नहीं है। कोई मरनेकी इच्छा करे तो इच्छा करनेसे मर नहीं सकता और जीनेकी इच्छा करे तो जी नहीं सकता। इसी तरह अर्थ और कामभोगरूप पदार्थ, प्राणी एवं अनुकूल घटनाएँ इच्छा करनेसे प्राप्त नहीं होतीं, चाहे मनुष्य उनके लिये कितनी ही उत्कट इच्छा क्यों न करें; क्योंकि ये इच्छापर निर्भर नहीं हैं। किंतु परमात्माकी प्राप्तिरूप मुक्तिके लिये की हुई तीव्र इच्छा अवश्य सफल हो जाती है। तीव्र इच्छा होनेसे उसका साधन श्रद्धा, प्रेम और आदरपूर्वक एवं तीव्र हो जाता है, जिससे कार्यकी सिद्धि हो जाती है। दूसरी

बात यह भी है कि जड पदार्थ तो जड होनेके कारण उनकी इच्छा करनेवालेको नहीं चाहते, पर जो भगवान्‌को चाहता है, उसे भगवान् चाहते हैं। (गीता ४। ११)

अब यह विचार करना है कि भाग्य क्या है और प्रयत्न क्या है? सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय आदि सब पूर्वमें किये हुए कर्मोंके जो फल हैं, इन्हींको भाग्य या प्रारब्ध कहते हैं। इस प्रारब्धका भोग तीन प्रकारसे होता है—अनिच्छा, परेच्छा और स्वेच्छासे। दैवेच्छासे कोई रोग हो जाना, मृत्यु हो जाना, किसी खरीदे हुए पदार्थका मूल्य घट जाना, पदार्थका क्षय या विनाश हो जाना—यह सब पूर्वकृत पापकर्मका फल है। इसके विपरीत दैवेच्छासे धन आदिकी प्राप्ति होना पुण्यकर्मका फल है। यह सभी अनिच्छा-प्रारब्ध-भोग हैं।

किसी डाकू या चोरने हमारा धन लूट लिया या चुरा लिया अथवा धनके लिये हमको मार डाला, किसीने द्वेषबुद्धिसे मार डाला, किसी पशु-पक्षीने हमें चोट पहुँचा दी, साँपने डँस लिया तो यह हमारे पूर्वकृत पापोंका दुःखरूप फलभोग परेच्छासे हुआ। इसी प्रकार किसी दूसरेकी इच्छासे हमें धन, जमीन, स्त्री, पुत्र आदिकी प्राप्ति हो गयी अथवा किसीने हमें दत्तक पुत्र बनाकर सर्वस्व दे दिया तो यह हमारे पूर्वकृत पुण्यकर्मोंका सुखरूप फलभोग परेच्छासे हुआ।

हमें वर्तमानमें अपनी इच्छासे किये हुए विषयोंके उपभोगसे सुख मिला या व्यापार करनेसे लाभ हो गया तो यह पूर्वकृत पुण्यकर्मका फलभोग स्वेच्छापूर्वक हुआ। इसके विपरीत जो स्वेच्छासे किये हुए प्रयत्नके फलस्वरूप हमें दुःख, धन-हानि, पराजय आदि प्राप्त होते हैं, यह हमारे पूर्वमें किये हुए पापकर्मका स्वेच्छापूर्वक फलभोग है। इन सभी फलभोगोंको प्रारब्ध (भाग्य) कहते हैं।

विचारपूर्वक किये जानेवाले क्रियमाण कर्मका नाम 'प्रयत्न' है। उसके तीन भेद हैं—शुभकर्म, अशुभकर्म और शुभाशुभमिश्रित कर्म। शुभकर्मका फल सुख, अशुभका फल दुःख और शुभाशुभमिश्रितका फल सुख-दुःख दोनोंसे मिला हुआ होता है—

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्॥

(गीता १८। १२)

'कर्मफलका त्याग न करनेवाले मनुष्योंके कर्मका तो अच्छा-बुरा और मिला हुआ—इस प्रकार तीन तरहका फल मरनेके पश्चात् अवश्य मिलता है, किंतु कर्मफलका त्याग कर देनेवाले मनुष्योंको कर्मोंका फल किसी कालमें भी प्राप्त नहीं होता।'

किसी कर्मको मनुष्य सकामभावसे करता है तो उसका इस लोकमें स्त्री, पुत्र, धन आदि पदार्थोंकी प्राप्ति और परलोकमें स्वर्गादिकी प्राप्तिरूप फल होता है तथा निष्कामभावसे किये हुए थोड़े-से भी कर्तव्यपालनका फल परमात्माकी प्राप्तिरूप मुक्ति है—

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।

(गीता २। ४०)

'इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे रक्षा कर लेता है।'

मनुष्य कर्म करनेमें अधिकांश स्वतन्त्र है, पर फल-भोगमें सर्वथा परतन्त्र है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(गीता २। ४७)

'तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो।' अतएव मनुष्यको उचित है कि निष्कामभावसे अपने कर्तव्यकर्मका पालन करे। जो किये हुए कर्मोंका फल न चाहकर कर्तव्यकर्म करता है, उसका अन्तःकरण शुद्ध होकर उसे परमात्माकी प्राप्तिरूप मुक्ति मिल जाती है।

परम दयालु परम प्रेमी ईश्वरकी भक्ति—शरणागतिमें भी प्रारब्ध प्रधान नहीं है, पुरुषार्थ ही प्रधान है। ईश्वरकी प्राप्ति होती है—श्रद्धा-प्रेमपूर्वक ईश्वरके शरण होनेसे। श्रद्धा-प्रेमपूर्वक ईश्वरके शरण होनेसे मनुष्य ईश्वरके तत्त्व-रहस्यको जान जाता है। ईश्वर परम दयालु है और उसकी सभीपर अपार दया है—इस रहस्यको न जाननेके कारण ही मनुष्य ईश्वरकी प्राप्तिसे वंचित रहता है। ईश्वरकी परम कृपा होते हुए भी श्रद्धा-विश्वासकी कमीके कारण जो अपने ऊपर ईश्वरकी दया पूर्णतया नहीं समझता है, वह ईश्वरकी दयाके रहस्यको नहीं जानता और उसकी

दयासे होनेवाले परम लाभसे वंचित रहता है।

यदि कहें कि ईश्वरकी प्राप्ति ईश्वरकी दयासे होती है या अपने प्रयत्नसे तो इसका उत्तर यह है कि मनुष्य अपने ऊपर ईश्वरकी अतिशय दया मान लेता है तो उसका साधन उच्चकोटिका होने लगता है। उच्चकोटिका साधन होनेसे अन्तःकरण शुद्ध होकर वह ईश्वरकी परम दया और प्रेमके तत्त्वको जान जाता है, तब उसे ईश्वरकी प्राप्ति हो जाती है। हेतुरहित परम दया और परम प्रेमका नाम ही सुहृदता है। जिसमें इस प्रकारकी सुहृदता हो, वही सुहृद् है। उन ईश्वरको सुहृद् जाननेसे ईश्वरकी प्राप्तिरूप परम शान्ति मिल जाती है।

श्रीभगवान्‌का कथन है—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।

(गीता ५। २९)

'मेरा भक्त मुझको सम्पूर्ण प्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी—ऐसा तत्त्वसे जानकर मेरी प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त होता है।'

किंतु कोई मनुष्य ईश्वरकी प्राप्तिको भाग्यपर छोड़ देता है तो वह ईश्वरकी प्राप्तिसे वंचित रहता है, क्योंकि आजतक किसीको ईश्वरकी प्राप्ति भाग्यके भरोसे अपने-आप नहीं हुई है। ईश्वरकी प्राप्तिरूप मुक्ति यदि सबकी अपने-आप होती तो आजतक सबकी मुक्ति हो जाती। यदि कहें कि ईश्वरकी प्राप्ति तो ईश्वरकी कृपासे होती है, सो ठीक है, किंतु जो अपने ऊपर ईश्वरकी कृपा मानता है, उसको ही उनकी कृपाका पूर्ण लाभ मिलता है। मनुष्य अपने ऊपर सदा विद्यमान ईश्वर-कृपाको माने बिना उस कृपाके लाभसे वंचित रहता है। जैसे किसी गृहस्थके घरमें पारसमणि मौजूद है, किंतु उस गृहस्थने उसे पत्थर समझ रखा है तो वह उस पारससे होनेवाले लाभसे वंचित रहता है। यदि वह पारस जानकर उससे लोहेका स्पर्श करा देता है तो वह उसके लाभको प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार ईश्वरकी परम दया प्राणिमात्रपर है, किंतु पूर्णतया न माननेसे लोग उस परम लाभसे वंचित रहते हैं।

इसी प्रकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका यथार्थ ज्ञान भी प्रारब्धसे स्वतः नहीं होता। यदि प्रारब्धसे स्वतः ही ज्ञान होता तो सभीको हो जाता। जो मनुष्य प्रारब्धपर यों निर्भर रहता है कि प्रारब्धसे अपने-आप ज्ञान हो जायगा, वह ज्ञानकी प्राप्तिसे वंचित ही रहता है; क्योंकि प्रारब्धसे स्वतः ही ज्ञान न तो आजतक किसीको भी हुआ है और न हो ही सकता है। परमात्माके यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति तो होती है—अन्तःकरणकी शुद्धिसे। अन्तःकरणकी शुद्धि होती है—निष्काम कर्मके आचरण करनेसे और निष्काम कर्मकी सिद्धि प्रयत्नसे होती है। भगवान्‌ने गीता (४। ३८)-में कहा है—

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥

'इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञानको कितने ही कालसे कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने-आप ही आत्मामें पा लेता है।'

ज्ञानकी प्राप्तिका दूसरा उपाय है—प्रेमपूर्वक भक्तिका साधन। भगवान्‌ने (गीता १०। ९—११ में) बतलाया है कि 'निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभाव और तत्त्वको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं। उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप बुद्धियोग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं। अर्जुन! उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये उनके अन्तःकरणमें स्थित हुआ मैं स्वयं ही उनके अज्ञानजनित अन्धकारको प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपकके द्वारा नष्ट कर देता हूँ।'

ईश्वरकी यह भक्ति प्रयत्नसाध्य है, यह ऊपर बतलाया ही जा चुका है। जो मनुष्य अपने ऊपर ईश्वरकी दया मानकर उनके शरण हो, श्रद्धाप्रेमपूर्वक ईश्वरकी अनन्य भक्ति करता है, वह ईश्वरकी कृपासे ईश्वरकी प्राप्तिरूप परम पदको प्राप्त हो जाता है।

ज्ञानकी प्राप्तिका तीसरा उपाय है—तत्त्वदर्शी ज्ञानी महात्मा पुरुषोंका संग और उनकी सेवा करना। ऐसा करनेसे परम पदरूप मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। श्रीभगवान् अर्जुनसे कहते हैं—'उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत्-प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक

प्रश्न करनेसे वे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे, जिसको जानकर तू फिर इस प्रकार मोहको प्राप्त नहीं होगा तथा हे अर्जुन! जिस ज्ञानके द्वारा तू सम्पूर्ण भूतोंको नि:शेषभावसे पहले अपनेमें और पीछे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें देखेगा।' (गीता ४। ३४-३५)

ज्ञानकी प्राप्तिके जो साधन हैं, उनको भी भगवान्‌ने गीतामें (अध्याय १३ श्लोक ७ से ११ तक) 'ज्ञान' के ही नामसे कहा है। उन ज्ञानके साधनोंसे भी ज्ञानकी प्राप्ति होकर मनुष्यका कल्याण हो जाता है। वे सभी साधन प्रयत्नसाध्य हैं, भाग्यसे सिद्ध होनेवाले नहीं।

इसी प्रकार भगवान्‌ने गीतामें (अध्याय १८ श्लोक ५० से ५५ तक) जो ज्ञानकी परानिष्ठाकी प्राप्तिके लिये साधन बतलाये हैं, वे भी प्रयत्नसाध्य हैं। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि ज्ञानकी प्राप्तिमें भी प्रारब्धकी प्रधानता नहीं है, बल्कि प्रयत्नकी ही प्रधानता है।

सदाचाररूप धर्मकी सिद्धि भी प्रयत्नसे ही होती है, प्रारब्धसे नहीं। राजर्षि मनुने धर्मके चार लक्षण बतलाये हैं—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्॥

(मनुस्मृति २। १२)

'वेद, स्मृति, सदाचार और अपनी रुचिके अनुसार परिणाममें हितकर—यह चार प्रकारका धर्मका साक्षात् लक्षण है।' सामान्य धर्मका स्वरूप वर्णन करते हुए मनुजीने कहा है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(मनुस्मृति ६। ९२)

'धैर्य रखना, क्षमा करना, मनको वशमें रखना, चोरी न करना, बाहर-भीतरकी पवित्रता रखना, इन्द्रियोंको वशमें रखना, सात्त्विक बुद्धि, सद्विद्याका अभ्यास, सत्य वचन बोलना और क्रोध न करना—ये धर्मके दस लक्षण हैं।' इसी प्रकार वर्णों और आश्रमोंके विशेष धर्म भी मनुजीने मनुस्मृतिके तीसरेसे छठे अध्यायतक विस्तारपूर्वक बतलाये हैं। ये सभी प्रयत्नसाध्य हैं। बिना प्रयत्नके अपने-आप भाग्यसे इनमेंसे किसी भी क्रियाकी सिद्धि नहीं हो सकती। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि अर्थ और कामकी प्राप्तिमें तो प्रारब्धकी प्रधानता है, पर धर्म और मोक्षकी प्राप्तिमें प्रयत्नकी प्रधानता है। अतः भाग्यवाद छोड़कर भगवत्प्राप्ति-हेतु प्रयत्न करना ही पुरुषार्थ है। इसीसे परमपुरुषार्थ मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है।

गंगास्तुति

(श्रीमदनमोहनजी माहेश्वरी 'मोहन')

हे मातु गंगे! सरित पावनि, गौरि, सुर-सरि, मालिनी।
तुम जन्हुकन्या, भीष्ममाता, विवर-थल-नभ-गामिनी॥
हे सुर-तरंगिनि! शैलनन्दिनि, सर्वकालसुभाषिनी।
भागीरथी, नगपतिपदी, अघपुंज-कल्मषहारिनी॥
हे देवसरि! शुचि जाह्नवी, शिव-जटा-जूट-बिहारिनी।
सुरवाहिनी, अविरल प्रवाहित, लोक हित वरदायिनी॥
हे पतितपावनि! मोक्षदायिनि, देवि, पापविनाशिनी।
माँ! सगरपुत्रों की तुम्हीं हो, अवतरित उद्धारिनी॥
हे मातु! तुम देवी दया की, सकल-मंगलकारिनी।
मैं पातकी 'मोहन' शरण, तुम, पाप-पुंज-विदारिनी॥

मानवताके मूलस्त्रोत

(श्रीरेवानन्दजी गौड, एम्०ए०, आचार्य, साहित्यरत्न)

जब धरा सो जाती है, तब मानवता पुकारकर उसे जगाती है। जब किसी देश अथवा जातिमें विनाशाग्नि धधक उठती है, तब कोई सच्चा मानव मानवताके गीतोंकी अमृतवर्षासे उसे बुझा देता है। यथार्थ मानवकी ध्वनि ईश्वरकी प्रतिध्वनि है। धरा जब विपत्तियोंमें फँस 'त्राहि-त्राहि-त्राहि' पुकारती है, सत्य जब असत्यसे पराजित होता है, मानवता जब अत्याचारोंसे दबायी जाती है, नागरिक जब अपने कर्तव्यको भूल बैठता है, काम, क्रोध, मद, लोभ तथा द्वेष जब पराकाष्ठापर पहुँच जाते हैं, परस्पर प्रेम तथा शान्तिका अभाव जब व्यापक हो जाता है, असहाय जब सहायताके लिये चिल्लाता है, तब भगवद्-वचनामृत श्रीमद्भगवद्गीताके इस सिद्धान्तके अनुसार किसी महामानवका आविर्भाव होता है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(४।७-८)

इसी सिद्धान्तका अनुमोदन महर्षि मार्कण्डेयके शब्दोंमें यह है—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति॥
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्।

दुर्गतिनाशिनी भगवती माँ दुर्गा ऋषि-मुनियोंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उन्हें आश्वासन दे रही हैं—इस प्रकार जब-जब दानवोंद्वारा बाधाएँ उत्पन्न होंगी, तब-तब मैं अवतरित होकर शत्रुवर्गका विनाश करूँगी। इन्हीं भावनाओंसे ओत-प्रोत होकर तुलसीकी लेखनीसे बलात् यह भावधारा बह उठी—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

(रा०च०मा० १।१२१।६—८)

कहनेका सर्वसम्मत अभिप्राय यह है कि महामानव (अवतार) प्रत्येक युगमें अवतरित होते आये हैं। उनका जीवन लोक-कल्याणकी भावनासे परिपूर्ण रहता है। उनकी व्यापक दृष्टि **'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः'**—श्रीगीताजीकी इस अमर वाणीसे अनुप्राणित रहती है। महामानवसे यहाँ तात्पर्य अतिमानवसे नहीं, अपितु पूर्ण मानवसे है। महामानवका कल्याणप्रद चरित्र बड़ा ही रहस्यमय होता है। उनका पावन जीवन लोकहितकी लीलासे ओत-प्रोत रहता है। कोई भी पूर्णमानव संसारमें मानवके सर्वोच्च उदात्त सद्गुणोंकी अभिव्यक्तिके साथ-साथ सकल मानवतासम्बन्धी सर्वोच्च आदर्शपूर्ण सर्वांगसुन्दर व्यक्तिके रूपमें प्रकट होता है। वह नरके रूपमें साक्षात् नारायण है। उसमें नरत्व और नारायणत्वका पूर्णतया समन्वय होता है। 'नरत्व नारायणकी सीढ़ी है' इसका तात्पर्य भी यही प्रतीत होता है कि नारायण-प्राप्तिका साधन ही मानवता है। शुद्ध मानवताका आश्रय लेकर मानव मानव ही नहीं, अपितु देव अथवा देवोंका भी देवाधिदेव बन सकता है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं।

महामानवका लक्ष्य सार्वभौम अर्थात् सर्वव्यापी होता है। उसका प्रकाश समस्त देशों तथा कालोंके स्त्री-पुरुषोंके अनुरूप ही नहीं, अपितु प्रत्येक सभ्यता एवं संस्कृतिके पोषक समस्त जन-समूहको अनन्तकालतक बल प्रदान करता है। उसका उदार दृष्टिकोण मानवमात्रके लिये ही नहीं, अपितु प्राणिमात्रके त्रिविध दुःख-शान्त्यर्थ और धर्मार्थ-काम-मोक्ष-प्राप्त्यर्थ होता है। महामानव संसारके सम्मुख मुक्ति या निर्वाणको—कैवल्यभावनाको लेकर प्रस्तुत नहीं होता। वह तो सोचता है, जगत् पापमय है, सभी प्राणी अपने पाप-कर्मोंसे पच्यमान हैं, उनका समस्त लौकिक क्रियाकलाप दुःखमय है, उनकी आध्यात्मिक चेतनाको आन्तरिक अहंभावनाकी साधनाने नष्ट कर दिया है। जन्म, जरा-मरण तथा आधि-व्याधि-समापन्न संसारकी घोर यातना देखकर वह सिहर उठता है, विह्वल हो जाता

है। परदु:खकातर, सहज-सुख-राशि वह महामानव संसारमें आध्यात्मिकताको प्रोत्साहन देता है। वह प्रत्येक मानवको किसी निर्विशेष, निष्क्रिय, सन्निष्ठ—सर्वव्यापी निर्गुण ब्रह्ममें लीन कर देना ही नहीं चाहता, अपितु प्रत्येक मानवको पूर्णज्ञान, पूर्णकर्म, पूर्णयोग तथा सर्वविध सौख्य, दिव्य प्रेम और आनन्दमय विज्ञानसे पूर्ण देखना चाहता है, मानवताकी विशद व्याख्या मानवके जीवनमें परिपूर्ण होनेका स्वप्न सत्य हुआ देखना चाहता है, प्रत्येक व्यष्टि-मानवको समष्टि-मानवमें परिवर्तित करता है, वह मानवके जीवनमें सार्वभौमता, सनातनता, परदु:खकातरता और माधुर्य-सौन्दर्यपूर्ण प्रेमका दर्शन करता है। यथाशक्ति समाजके सम्मुख मानवताका मूल-स्रोत प्रवाहित करता है। भगवान् श्रीकृष्णने अपने मुखारविन्दसे वचनामृत-प्रवाह प्रवाहित करते हुए श्रीमद्भगवद्गीतामें मानवताका मूल-स्रोत आप्लावित किया है। उन्होंने जब अपने सखा अर्जुनको मानवताका अमर सन्देश देना प्रारम्भ किया, तब अर्जुन जिज्ञासाके भाव अपने हृदयमें लिये शिष्य बनकर भगवान्से बोले—'**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्**॥ अर्थात् हे भगवन्! मैं आपके शरण हूँ, आपका शिष्य हूँ। मुझे कर्तव्यका अवलोकन कराइये। भगवान्के सम्मुख अपनी आन्तरिक भावनाको और अधिक स्पष्ट करते हुए अर्जुनने कहा—'**यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे**।' आप कृपया प्रेय:की अपेक्षा श्रेय:का स्वरूप समझाइये। श्रेय:कोटिमें निज-परका भेद समाप्त हो जाता है। परंतु विवेचना तो यही करनी है कि श्रेय:कोटिमें पहुँचा ही कैसे जाय। भगवान् श्रीकृष्ण अपने जिज्ञासु शिष्यको इसके साधनका उपदेश करते हैं—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(गीता २।४७)

'अर्जुन! तेरा कर्ममें अधिकार है, फल-प्राप्तिमें नहीं। तू कर्मकी फल-वासनासे वासित न हो और अकर्ममें भी तू आसक्त न हो। इस प्रकार भगवान्ने श्रेय:का साधन 'फलासंगशून्य कर्म' के सिद्धान्तको प्रतिपादित किया। जब किसी भी व्यक्तिके जीवनमें 'फलासंगशून्य कर्म' का सिद्धान्त पनपने लगता है, तभी वह श्रेय:को प्राप्त होता है। श्रेय:की विशद व्याख्या करते हुए भगवान् कहते हैं—

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात् कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥

(गीता १२।१२)

'अभ्याससे ज्ञान श्रेष्ठ है। ज्ञानसे ध्यान विशेष है। ध्यानसे कर्म-फल-त्याग श्रेष्ठ है और कर्म-फल-त्याग ही श्रेय:की—शाश्वत शान्तिकी प्राप्तिका परम साधन है।'

इस श्लोकमें अभ्यासका तात्पर्य साधनसे है और साधन भी कर्मद्वारा ही सम्पन्न होता है। अत: कर्म और अभ्यासमें व्यावहारिक भिन्नता होनेपर भी तात्त्विक अभेद है। अत: 'ज्ञानमय कर्म' ही श्रेय: है। ज्ञानमय कर्म श्रेय: कोटिमें तभी आ सकता है, जब उसमें ध्यानका पुट हो। इससे भी बढ़कर श्रेय:-प्राप्ति 'कर्मफलत्याग'में है। कारण कर्मफलत्यागी योगी ज्ञानपूर्वक ध्यानस्थ कर्म करता है। उसे सुख-दु:खका विचार नहीं होता। सिद्धि-असिद्धि, हानि-लाभ, जय-पराजयमें वह एक-समान रहता है। यही स्थिति सर्वोपरि है और यही श्रेय: है। अत: निष्काम कर्मसिद्धि ही मानवताका मूल-स्रोत है। ऐसी मानवतासे मानवका चरम विकास होता है। यहाँ मानवतासम्बन्धी कुछ प्रमुख गुणोंपर क्रमश: विचार प्रस्तुत हैं—

सत्य

अस् धातुसे 'सत्य' शब्द निष्पन्न होता है। उसका अर्थ है 'होना'। सत्तामय ही सत्य है। '**सत्यं वद**'—यह उपनिषद्-वाक्य सत्यकी व्यापकताका द्योतक है। मानवताकी रीढ़ सत्य है। मानव-जीवनमें बाह्य और आन्तरिक सत्य अपेक्षित है। केवल वाणीमात्रका सत्य जीवनमें पर्याप्त नहीं, अपितु आन्तरिक भावनाकी सत्यता भी आवश्यक है। जलसे बाह्य शारीरिक शुद्धि होती है तो सत्यसे आन्तरिक शुद्धि सम्भव है। '**वचस्येकं मनस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्**'—ऐसा व्यवहार सामाजिक और अन्ताराष्ट्रिय क्षेत्रमें होना चाहिये। 'कथनीकी पुष्टि करनीसे करना' ही मानवता है। यथासमय अपने अपराधको स्वीकार करना

सदाचार-विडम्बनासे अधिक अच्छा है। अपराधकी स्वीकृतिसे प्रायश्चित्त होता है और विनयका संचार होता है। शास्त्रमें कहा गया है—**सत्यपूतं वदेत् वाक्यम्।**

आत्मौपम्य दृष्टि

'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः।' नीतिकारका कथन मानवताकी सच्ची कसौटी है। जो प्रत्येक दशामें प्रत्येक मानवसे ही नहीं, प्राणिमात्रसे आत्मवत् व्यवहार करता है, वही सच्चा मानव है। यदि हम किसीके मालिक हैं तो हमें अपने नौकरसे वही व्यवहार करना चाहिये, जो हम स्वयं अपने मालिकसे चाहते हैं। यदि हम अध्यापक हैं तो हमें विद्यार्थियोंको वे सब सुविधाएँ देनी चाहिये, जिन्हें हम विद्यार्थी-अवस्थामें चाहते थे। यदि कोई याचक द्वारपर है तो उसकी आत्मामें प्रवेश करके विचार करना चाहिये कि यदि मैं किसीके द्वारपर याचकके रूपमें होता तो निराशामें कितनी आन्तरिक पीड़ा होती। इस प्रकार मानव-जीवनमें आत्मौपम्य व्यवहार मानवताके अन्तर्गत है। आत्मौपम्य दृष्टिसे न्याय और सहानुभूतिको बल मिलता है। भगवान्ने गीतामें कहा है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥
(५।१८)

विद्वान् समद्रष्टा होते हैं। वे विद्या-विनय-सम्पन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें एक ही आत्माका अस्तित्व देखते हैं। ऐसी भावनाओंसे समाज और राष्ट्रमें सुख-शान्तिका संचार होता है।

शिष्टता

शिष्टाचारका पालन मानवताका पूरक है। **'सत्यं ब्रूयात्'** का पाठ उतना आवश्यक नहीं, जितना **'प्रियं ब्रूयात्'** का है। अन्धेको अन्धा न कहकर सूरदास कहना शिष्टता है। शिष्टतासे विनय और नम्रताका भाव जाग्रत् होता है। जब जन-जनमें विनयका भाव उत्पन्न होगा, तब समाजसे संघर्ष, परस्पर वैमनस्य एवं ईर्ष्याके भाव स्वयं ही समाप्त हो जायँगे। नम्रता सदैव प्रशंसनीय है; परंतु जब उसमें छल-कपट अथवा दम्भका समावेश होता है, तब वह मनुष्यको समूल नष्ट कर देती है। मानवको सदा **'आचारः परमो धर्मः'** को अपना जीवन-लक्ष्य बनाये रखना चाहिये।

अहिंसा

मानवतावादी कभी हिंसक नहीं होता। वह मनसा-वाचा-कर्मणा अहिंसाका पोषक होता है। अहिंसाकी भावनामें दूसरोंके अधिकारोंकी रक्षा ही नहीं होती, अपितु उनके जीवनकी स्वीकृति होती है। दूसरोंके प्राण लेना ही हिंसा नहीं, अपितु दूसरोंके अधिकारोंका अपहरण, अधिकृतका अपमान, पतित अथवा जातिबहिष्कृतके साथ अधिकार-भावनाका प्रदर्शन भी हिंसा ही है। 'जीओ और जीने दो' अर्थात् सह-अस्तित्वका सिद्धान्त भी अहिंसापर ही आधारित है। सबलसे भय और निर्बलपर बल-प्रदर्शन भी हिंसा है। दूसरेके स्वाभिमानकी रक्षा अहिंसाका व्यावहारिक रूप है। एक जीवकी रक्षाके लिये अनन्त जीवोंकी हत्या मानवतावादके सिद्धान्तके प्रतिकूल है। अहिंसाका महत्त्व स्वीकार करते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं—**'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः।'** (सूत्र २।३५) अहिंसक परम योगीके सान्निध्यमें वैरी भी अपना वैर त्याग देते हैं। भारतीय ऋषि-मुनियोंके आश्रम इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

इस प्रकार जब मानव मानवताके गुणोंको अपना लेता है, तब वह आत्मा-अनात्माके भेदको भूल जाता है। वह अहंभावसे ऊपर उठकर **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का पाठ पढ़ता है। मानवतावादी मानवके सम्मुख समस्त विश्वप्रेम, सौन्दर्य, आनन्द और कल्याणकी आत्माभिव्यक्तिके लिये एक व्यापक-क्षेत्रके रूपमें उपस्थित होता है। उसके पारिवारिक और सामाजिक क्षेत्रके समस्त कर्म लोक-कल्याणकी भावनासे परिपूर्ण होते हैं। मानवतावादीकी दृष्टिमें अभेद जीवका स्वरूप होता है। वह नानात्वमें एकत्वके दर्शन करता है। तब वह आनन्द-विभोर हो उठता है और एक स्वरसे प्रार्थना करता है—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

शरणागति

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क सं० ६ पृ-सं० ७०८से आगे]

जिस प्रेममें, जिस भक्तिमें, जिस ज्ञानमें और जिस कर्ममें भगवान् नहीं हैं और जिसमें कामका मिश्रण है, वह कभी मधुर नहीं होगा। मधुरताकी यह परिभाषा याद रखें। जिस माधुर्यमें, जिस भगवत्प्रेममें कामका विष बिलकुल नहीं है; वह मधुर है और जहाँ कामका विष मिश्रित है वहाँ उसका नाम हम कितना ही मधुर रखें, उसका नाम हम कितना भी प्रेम रखें, परंतु वह प्रेम नहीं काम है। यह काम और प्रेमका महान् अन्तर है। कोई चाहते हैं कि हम प्रेम करें और मुझसे वे प्रेम करें और हम उनसे कुछ सुख चाहते हैं तो नाम चाहे प्रेम हो परंतु वह काम हो गया और हम उनको सुख देना चाहते हैं—'हमारे मनमें कामना है कि वह सुखी रहें और हम उनसे कुछ नहीं चाहते हैं'—यह भले ही इसका नाम काम हो परंतु यह प्रेम है।

'प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्।'

(गौतमीय तन्त्र)

अर्थात् गोपियोंके प्रेमका नाम काम है। काम क्यों है? गोपीकी एक ही कामना है कि श्रीकृष्ण सुखी हों। बस, इसी कामसे गोपियोंका हृदय काममय है। उनका जीवन काममय है, कामशून्य नहीं है। परंतु, वह काम क्या है? वह काम एक ही है—श्रीकृष्णभगवान् हमारे प्रेमास्पद नित्य सुखी रहें। चाहे हम किसी भी अवस्थामें रहें। यह जो प्रेमास्पदके सुखका काम है, यही गोपी-जीवनका काम है। इस कामसे गोपी-जीवन काममय है। यह काममयता ही वास्तविक माधुर्य है और यही उच्च-से-उच्च उज्ज्वल प्रेम है; क्योंकि इसमें अपने सुखकी चाह नहीं है। यह आत्मसुख नहीं है।

आप जगत्में देख लीजिये—भाइयोंमें, पड़ोसियोंमें, गाँवमें—जहाँ अपने सुखकी चाह न करके उनके सुखकी कामना करेंगे तो प्रेम बढ़ जायगा, सुख बढ़ जायगा, आपसमें एक-दूसरेके प्रति प्यार आ जायगा और जहाँ हम यह चाहेंगे कि हम उनसे लेते ही रहें, हम छीनते ही रहें, हमें मिलता रहे और इनको न मिले, वह चाहे अमृत ही हो तब क्या होगा? द्वेष होगा, संघर्ष होगा तथा लड़ाई होगी। भरत और राम नहीं लड़े, लेकिन कौरव और पाण्डव लड़े। श्रीराम-भरतके पवित्र इतिहासको पढ़कर आज भी हम सब पवित्र होते हैं कि कितना त्याग है। वह आदर्श कहाँ रहता? श्रीरामने कहा—'पिताजी भरतको राज्य दे गये हैं, भरत ही राज्य करेंगे। इससे बढ़कर मेरे लिये सुख क्या होगा?' और भरत कहते हैं—'मैं इतना बड़ा पापी हूँ कि कहीं मुझे राज्य देनेका नाम ले लोगे तो पृथ्वी रसातलमें चली जायगी। मैं नराधम हूँ। राज्यका अनधिकारी हूँ।'

प्रेममें सुख-कामना है, परंतु यह सुख-कामना अपने लिये नहीं है। यह जो असली प्रेम है, उसे इस भाषामें कहें तो कहेंगे कि यह काममय है, परंतु वह काम क्या है? अपना सुख नहीं। वह काम है—प्रेमास्पदका सुख। जिस प्रकार देशभक्त देशहित-कामी होता है, गुरुभक्त गुरु-हित-कामी होता है और पितृभक्त पितृ-सुख-कामी होता है। इसमें कोई दोषकी बात नहीं है। कुछ लोग कहेंगे कि यह 'कामना' छोड़ दो। छोड़ देंगे। परंतु, जहाँ वेद कहते हैं—**'मातृदेवो भव'**, **'पितृदेवो भव'** और **'आचार्यदेवो भव'** वहाँ यह कामना मनमें रहेगी ही कि हमारा प्रत्येक कार्य हमारे पिताको सुख पहुँचाये, हमारी प्रत्येक क्रिया हमारी माताका हित करनेवाली हो, हमारा प्रत्येक मानस-संकल्प हमारे गुरुको सुख पहुँचानेवाला हो। फिर, यह कामना क्या 'कामना' है? यह कामना क्या काम है? यही काम तो असली प्रेम है। यही कामना असली भक्ति है और यही कामना सच्चा समर्पण है। इसका नाम चाहे काम

हो परंतु यह प्रेम है। इस प्रेमकी प्राप्तिका सरल साधन है—शरणागति।

शरणागतिके साधनमें शरण्यके अतिरिक्त किसी भी अन्यमें शरण्यताका भाव न होना, भगवान्‌की शरण्यतामें पूरा विश्वास और शरण्यसे किसी भी प्रकारकी कोई भी चाह न रखना—इन बातों का साधक विशेष ध्यान रखते हुए उसकी इच्छा या आज्ञानुसार जीवन बनाये तो आगे चलकर ये भाव उसमें स्वाभाविक हो जायँगे। और, ये भाव जितना-जितना बढ़े, साधक उतना ही भगवान्‌की शरणमें अग्रसर हो रहा है, ऐसा समझना चाहिये। [समाप्त]

मनुष्यका लक्षण

(श्रीबनवारीलालजी चतुर्वेदी)

भूतलपर सृष्टिमें मनुष्यसहित अनेक जीव हैं। उन जीवोंमें मनुष्य सर्वश्रेष्ठ माना गया है—'**वरेण्यं सर्वजीवानाम्....।**' इसका कारण है कि मनुष्येतर प्राणियोंकी चर्या तो पूर्णतः प्रकृतिके ही अधीन है, वे स्वयंमें कोई शुभ अथवा अशुभ कार्य नहीं कर सकते, इसके विपरीत मनुष्य अपनी चर्या अपने ज्ञान एवं बुद्धिके आधारपर मनुष्योंका ही नहीं, देवताओंका भी आदर्श बन सकता है। मनुष्य अपना आचरण स्वयं निर्धारित कर सकता है, इसीलिये मनुष्यकी पहचान उसके आकारके आधारपर न होकर उसके कर्मके आधारपर होती है, जबकि अन्य जीवोंकी पहचान उनके आकारके ही आधारपर होती है; क्योंकि जो जिस जातिका जीव है, उस जातिके सारे ही जीवोंकी चर्या—स्वभाव एक-जैसा ही होगा, पर सभी मनुष्यों (एक परिवारमें भी)-का भिन्न-भिन्न कर्म होगा। यही कारण है कि कर्मके आधारपर ही मनुष्यको इस लोकमें मानव, दानव अथवा पशु-संज्ञा मिलती है और इन्हीं (मानवीय-दैवीय-दानवीय या पाशविक) कर्म (जो जीवनमें किये हैं)-के आधारपर ही मनुष्य-शरीर छोड़नेके (मृत्युके) पश्चात् स्वर्ग (दैवीय), नरक (दानवीय), पशु-पक्षी (पाशविक) शरीर अथवा मनुष्य-शरीर प्राप्त होता है। स्वयं भगवान्‌का भी कथन है—'**कर्मणा जायते जन्तु कर्मणैव विलीयते।**' इसीलिये मनुष्योंके लिये उपदेशमें कहा है—'**मनुर्भव**' अर्थात् मात्र शरीरसे ही नहीं आचरणसे भी मनुष्य बनो। भगवान्‌का पृथ्वीपर अवतार-धारण भी मनुष्योंको मानवता सिखलानेके लिये होता है—'**मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्।**'

अब प्रश्न उठता है कि यह मानवता-पशुता आदि क्या है? इनकी क्या कसौटी है? तो इसका उत्तर है—

आहारनिद्राभयमैथुनं च
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

अर्थात् मनुष्यकी और पशुकी सामान्य जीवनचर्यामें कोई अन्तर नहीं है मात्र धर्मको छोड़कर। यानी धर्मसे हीन मनुष्य पशुके समान है। अब दूसरा प्रश्न उठता है कि धर्म क्या है? इसका उत्तर है—'**यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।**' अर्थात् जिससे इस लोकमें उन्नति एवं परलोकमें मोक्ष प्राप्त हो, वह धर्म है।

द्यूत, हिंसा, मद्यपान, व्यभिचार आदि दानवताके सामान्य लक्षण हैं और इसकी अन्तिम गति नरक है—'**अधो गच्छन्ति तामसाः**' इन लोगोंको स्वर्ग अथवा स्वर्ग-सुख कदापि हो ही नहीं सकता।

देव, पशु, दानव आदिके जो लक्षण हैं, वे लक्षण जब मनुष्यमें आते हैं तो मनुष्य स्वाभाविक रूपसे उनके समान बनने लगता है। दैवीय गुणोंसे युक्त मनुष्यके सामान्य लक्षण हैं—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

अर्थात् विपत्तिके समय धैर्य, उन्नतिमें क्षमाशीलता, सभामें वाक्चातुर्य, युद्धमें वीरता (परिस्थितिका सामना करना), यशके कार्योंमें रुचि तथा शास्त्रोंके पठन-पाठनका व्यसन आदि गुण श्रेष्ठ पुरुषोंमें प्राकृतिक रूपसे होते हैं। इसके

अतिरिक्त दैवीय मनुष्योंमें जो विशेषता आती है, वह गुण बन जाती है तथा वही विशेषता आसुरी जनोंका अवगुण हो जाती है। जैसे श्रेष्ठ पुरुषोंमें विद्या ज्ञानके रूपमें, धनका प्रयोग दानके हेतुमें तथा शक्तिका प्रयोग निर्बलोंके संरक्षणमें होता है, किंतु यही विशेषता दानवीय लक्षणोंसे युक्त व्यक्तिमें आये तो विद्या वाद-विवादके लिये, धन अभिमान (दूसरोंको नीचा दिखानेकी चेष्टा)-के लिये तथा शक्ति दूसरोंको कष्ट पहुँचानेके लिये हो जाती है—

विद्या विवादाय धनं मदाय
शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतद्
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

अब यदि मनुष्यकी जीवन-शैलीके विषयमें स्वभाव-संस्कार-आचरण आदिके आधारपर विचार करें तो लगता है मानो मनुष्यने दैवीय-मानवीय गुणोंको पूर्णतः त्यागनेका विचार निश्चय ही कर लिया है, क्योंकि 'सत्य' जो मात्र धर्मका ही आधार (**तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः कृते कृताः**) नहीं, अपितु जगत्-व्यवहार भी सत्यपर ही आधारित होता है। परम दुष्ट व्यक्ति भी अपने लिये अपने व्यक्तियोंसे सत्य व्यवहारकी ही अपेक्षा रखता है। इसी कारण श्रुतिवाक्य '**सत्यमेव जयते**' को भारतीय संविधानमें अपने आदर्श वाक्यके तौरपर स्वीकार किया गया है, किंतु वर्तमान मनुष्य-विचारधारामें सत्यनिष्ठा आचरणमें ही नहीं, मानसिक आदर्शके तौरपर भी समाप्त हो चुकी है। घोटाले, घूसखोरी, मिलावट, जमाखोरी आदि तो इसके प्रमाण हैं ही, जीवनके दूसरे क्षेत्रोंमें भी सत्यका व्यवहार समाप्तप्राय ही है। हिंसा पूर्ण एवं पशुतापूर्ण भोजन, दैनिक जीवनमें अन्धी विलासिता, संवेदनहीनता, पशुवत् व्यवहार, असभ्य रहन-सहन आदि बातें इस बातका प्रमाण हैं कि मनुष्य मानवीयताके व्यावहारिक मार्गसे हटकर दानवीय-पाशविक मार्गका अनुसरणकर पशु या दानव बननेके मार्गपर बढ़ रहा है। ऐसेमें आजकी जो पीढ़ी गर्भसे ही अहर्निश (टी०वी० आदिपर) व्यभिचारके दृश्य देखकर तथा व्यभिचारियोंको अपना आदर्श मानकर पैदा हो रही है, उस आगे आनेवाली पीढ़ीसे क्या आशा की जाय!

जहाँ मनुमहाराज मनुष्योंको आज्ञा देते हैं—'**स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः**' अर्थात् हम अपने-अपने चरित्रसे पृथ्वीके समस्त मनुष्योंको शिक्षा दें। ऐसेमें हम पृथ्वीके समस्त मनुष्योंकी बात तो छोड़िये, अपने ही बच्चोंको कौन-सी शिक्षा दे रहे हैं; क्योंकि हमारा वास्तविक धन तो यही है, जिसे हम संस्कारके रूपमें भावी पीढ़ीको सौंप रहे हैं। किसीने भी अपने बालकोंको उत्तराधिकारमें कितनी सम्पत्ति दी उसे कौन जानता है, हाँ संस्कार कैसे दिये, उन्हें परिवार ही नहीं, समाज और राष्ट्र भी देखते हैं और उन्हीं संस्कारोंकी अपेक्षा भी करते हैं। [**प्रेषक—श्रीउमाशंकर पोद्दार**]

शरणागति-याचना

(श्री बी०एल० त्रिपाठीजी)

मन मतंग मानत नहिं मोरी।
लाख बाट समझाऊँ या को, यो घोरी को घोरी॥
इत-उत भ्रमत रहत, निशि-बासर करत है जोरा जोरी।
यो निलज्ज, निर्दयी-कठोर, मति भरमावत मोरी॥
माया ठगिनि साधे याके, मोहे ललचावत बरजोरी।
काह करूँ बरजत नहीं मानत, खींचत मोहे कुमारग ओरी॥
मो को विलग करन चाहत सतपथ सौं।
यो अति सबल कुटिल पातकी घोरी॥
मैं निबल तन-मन भ्रमित मति, शरणागत प्रभु तोरी।
करुणा करि प्रभु मोहे उबारो, अरज सुनो प्रभु मोरी॥
मन मतंग मानत नहिं मोरी॥

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

मुख्य पाँच देवता ईश्वरकोटिके हैं—विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य और देवी। इनको माननेवाले भी पाँच सम्प्रदाय हैं—वैष्णव, शैव, गाणपत्य, सौर और शाक्त। मुख्य देवताका मन्दिर मध्यमें होगा तो शेष चारों दिशाओंमें चार देवताओंके मन्दिर होंगे; जैसे—

गणेशजी बालरूप हैं। इसलिये वे मोदकप्रिय हैं। वे बुद्धिके अधिष्ठाता हैं। विद्यार्थी विद्यारम्भके समय गणेशजी और सरस्वतीका स्मरण करते हैं।

× × × ×

मूल्यवान् वस्तु सुगम होती है। संसारकी कोई भी चीज सबके लिये नहीं है, सब जगह नहीं है, सब समयमें नहीं है। परंतु परमात्मा सब देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदिमें हैं और सबके लिये हैं। जो किसीके लिये हो और किसीके लिये न हो, वह परमात्मा नहीं हो सकता। उसको प्राप्त करनेके अधिकार अलग-अलग हैं—**'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः'** (गीता १८। ४५)। वर्ण, आश्रम, श्रद्धा, विश्वास, योग्यताको लेकर सबका कर्तव्य अलग-अलग होता है। दो व्यक्तियोंमें भी समान रुचि नहीं होती—**'रुचीनां वैचित्र्यात्।'** भगवान्की ओरसे सबको सुख पहुँचानेका अधिकार दिया हुआ है, पर मारनेका अधिकार किसीको नहीं दिया है।

छोटा प्यारका पात्र होता है, तिरस्कारका नहीं। जैसे घड़ीका प्रत्येक पुर्जा अपनी-अपनी जगह ही ठीक रहता है, ऐसे ही प्रत्येक वर्ण, जातिका मनुष्य अपनी जगह ही श्रेष्ठ है।

अपने स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके दूसरोंकी सेवा करो—यह खास मन्त्र है। भगवान् भी मनुष्यकी सेवाके भूखे हैं!

× × × ×

मनुष्ययोनि साधनयोनि है, भोगयोनि नहीं। साधन तब होगा, जब अहंतामें यह बात बैठ जायगी कि मैं साधक हूँ, भोगी नहीं हूँ। जैसा कर्ता होता है, वैसा ही कर्म होता है। कर्ता मुख्य है। कर्म निष्काम या सकाम नहीं होते, प्रत्युत कर्ता निष्काम या सकाम होता है।

सुख-दुःख साधन-सामग्री है, भोग-सामग्री नहीं। सुख-सामग्री है दूसरोंकी सेवा करनेके लिये और दुःख-सामग्री है सुखकी इच्छाका त्याग करनेके लिये।

भोजन, वस्त्र और मकान निर्वाहमात्रके होने चाहिये।

× × × ×

सांसारिक कामकी तरह भगवत्प्राप्ति धीरे-धीरे समय पाकर होती है—यह धारणा ठीक नहीं है। भगवत्प्राप्तिमें देश, काल, वस्तु आदिका व्यवधान नहीं है। केवल उत्कट अभिलाषाकी कमी है। भगवान् सब देश, काल, वस्तु आदिमें पूरे-के-पूरे मौजूद हैं। ध्रुवजीको जिस दिन भगवान् मिले, वे ही पहले दिनमें भी मिल सकते हैं। दिनमें क्या फर्क है? भगवान्में क्या फर्क है? प्रह्लादने कहा कि भगवान् खम्भेमें हैं तो भक्तकी वाणी सच्ची करनेके लिये भगवान् वहींसे प्रकट हो गये। ***'जँहि जिव उर नह्यो धरै। तँहि ढिग परगट होय॥'*** जीव जहाँ निश्चय करता है, वहीं भगवान् प्रकट हो जाते हैं।

शरीर बना रहे—यह इच्छा भगवत्प्राप्तिकी इच्छामें बाधक है।

जो दीखता है, वह आप नहीं हो। आप देखनेवाले हो।

× × × ×

जैसे जालेका उपादान और निमित्त कारण मकड़ी ही है, ऐसे ही सृष्टि बननेवाले भी परमात्मा हैं और बनानेवाले भी परमात्मा हैं। तत्त्वसे एक परमात्मा ही हैं।

जो सुगमतासे परमात्मप्राप्ति चाहता है, उसे परमात्मा कठिनतासे मिलते हैं। कारण कि सुगमताके बहाने वह शरीरका आराम चाहता है। परंतु जो कठिनताके लिये तैयार रहता है, उसे परमात्मा सुगमतासे मिल जाते हैं।

मनमें लागी चटपटी कब निरखूँ घनस्याम।
'नारायन' भूल्यौ सभी खान पान विश्राम॥

संसारका सुख लेना चाहते हैं—यही परमात्मप्राप्तिमें बाधा है। 'आराम' की जगह 'आ राम' कर दो।

× × × ×

साधक हर समय भगवान्‌की कृपाकी तरफ देखता रहे—**'तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः।'** (श्रीमद्भा० १०।१४।८) प्रत्येक भाई-बहन अपनेपर भगवान्‌की विशेष कृपा मानें। भगवान्‌की कृपा, कृपा करनेसे कभी तृप्त नहीं होती—***'जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती।'*** (मानस, बाल० २८।२) अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितिपर विशेष ध्यान न दे। परिस्थिति तो संसारका स्वरूप है। उनमें राजी-नाराज होना ही फँसावट है।

जैसे दर्जी कपड़े सिलकर पहना दे तो हम दर्जीके नहीं हो जाते, ऐसे ही माता-पिताने हमें शरीर पहना दिया। हम तो वास्तवमें भगवान्‌के ही हैं। शरीरसे माता-पिताकी सेवा करो।

× × × ×

परमात्मा निरपेक्ष तत्त्व है। सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार आदि सब सापेक्ष है। तत्त्व सापेक्ष नहीं है। वह 'है'—रूपसे है। वास्तवमें वह 'है' और 'नहीं' दोनोंसे विलक्षण है।

जो दीखता है, वह चेतनकी एक चमक है। असत् है ही नहीं, केवल सत्-ही-सत् है—**'वासुदेवः सर्वम्।'**

× × × ×

भगवान् कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गीता ९।२९)

'मैं सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान हूँ। उन प्राणियोंमें न तो कोई मेरा द्वेषी है और न कोई प्रिय है। परंतु जो प्रेमपूर्वक मेरा भजन करते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें हूँ।'

भगवान् सबमें समान हैं, पर भक्त उनमें पक्षपात पैदा कर देते हैं। कोई भगवान्‌से विरुद्ध-से-विरुद्ध चले तो भी भगवान्‌का उनसे द्वेष नहीं है। जैसे, माँका बच्चेसे द्वेष नहीं होता। उसकी मारमें भी कृपा होती है।

नशा डाकूकी तरह है, जो पकड़नेपर छोड़ता नहीं। साधुको भिक्षा न दें तो वह चला जाता है, पर डाकू नहीं जाता! नशा मनुष्यको परवश कर देता है। सन्त और भगवान् कभी परवश नहीं करते।

× × × ×

नित्यकर्म और साधनमें भेद होता है। नित्यकर्म (पूजा-पाठ) तो हर एक मनुष्यको करना चाहिये। अपने कल्याणके उद्देश्यवाला साधक होता है। साधन करनेवाले बहुत कम होते हैं। साधन तभी बढ़िया होता है, जब मनुष्य भीतरसे 'मैं साधक हूँ'—ऐसा मान लेता है। साधन करना सब मनुष्योंका खास काम है।

यदि साधु बनना हो तो फिर परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही साधु बने। साधु बननेपर फिर मकान, धन आदिकी जरूरत नहीं है। संन्यास तो वैराग्यसे ही होता है। परमात्मप्राप्तिमें भोग और संग्रहकी इच्छाका त्याग पहली चीज है। संन्यासीके लिये तो स्वरूपसे भोग और संग्रहका त्याग है। सच्चे साधुकी चिन्ता गृहस्थोंको स्वतः रहती है।

निषिद्ध रीतिसे भोग और संग्रह करनेवालेको वैराग्य कभी नहीं होगा।

ध्यान और ध्यान-साधना

(डॉ० श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी 'आनन्द' एम० ए०, एम० एड०, व्याकरणाचार्य, पी-एच० डी०, डी० लिट०)

'ध्यान' का स्वरूप

(१) महर्षि पतंजलिकी दृष्टि—महर्षि पतंजलि कहते हैं कि धारणावाले विषयमें ज्ञान (प्रत्यय)-की एकतानता (अविच्छिन्न प्रवाह) ही ध्यान है।

(२) योगभाष्यकार महर्षि व्यासकी दृष्टि—भगवान् व्यास कहते हैं कि 'उस धारणावाले विषयमें, ध्येयरूप आलम्बनवाले ध्येयपर ही केन्द्रित तथा अन्य ज्ञानोंसे अस्पृष्ट ज्ञानकी अविच्छिन्न तथा अभिन्न धारा ही ध्यान है'—

'तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता-सदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्॥' (३। २)

(३) तत्त्ववैशारदीकारकी दृष्टि—तत्त्ववैशारदीकार-का कथन है कि (१) जो धारणा साध्य हो, (२) जहाँ प्रत्ययकी एकतानता अर्थात् सदृशप्रवाह हो, (३) जहाँ प्रत्ययान्तर न हो, वही ध्यान है—

'धारणासाध्यं ध्यानं लक्षयति तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। एकतानतैकाग्रता॥'

(४) योगवार्तिककारकी दृष्टि—योगवार्तिककार कहते हैं—बारह प्राणायामकालपर्यन्त धारित चित्तका उस कालतक अविच्छिन्न चिन्तन ही ध्यान है—

'तस्यैव द्वादशप्राणायामकालेन धारितचित्तस्य तत्कालावच्छिन्नं चिन्तनं ध्यानं प्रोक्तम्॥'

(५) योगवृत्तिकार (राजमार्तण्डकार)-की दृष्टि— राजमार्तण्डकार कहते हैं—**'तत्र तस्मिन् देशे यत्र चित्तं धृतं तत्र प्रत्ययस्य ज्ञानस्य यैकतानता विसदृश-परिणामपरिहारद्वारेण यदेव धारणायामालम्बनीकृतं तदालम्बनतयैव निरन्तरमुत्पत्तिः सा ध्यानमुच्यते॥'**

(६) भावागणेशवृत्तिकारकी दृष्टि—भावागणेश कहते हैं कि 'उस देशमें अर्थात् चतुर्भुज आदि ध्येय आकारमें वृत्तियोंका प्रवाह ही 'ध्यान' है—**'तत्र देशे चतुर्भुजादिध्येयाकारकवृत्तिप्रवाहो ध्यानमित्यर्थः॥''** (योगप्रदीपिका)

(७) नागोजी भट्टकी दृष्टि—नागोजी भट्ट 'योगवृत्ति' में कहते हैं कि बारह धारणाओंका काल ही 'ध्यान' है—**'द्वादशधारणाकालं च ध्यानम्'** या **'चतुर्भुजादिध्येयाकारवृत्तिप्रवाहो वृत्त्यन्तराव्यवहितो ध्यान-मित्यर्थः॥' 'बुद्धिवृत्तौ वा तद्विवेकतश्चैतन्यचिन्तनम्।'**

(८) योगसुधाकारकी दृष्टि—योगसुधाकार कहते हैं कि—**तत्र यथोक्तदेशे प्रत्ययस्यैकतानता एकविषय-प्रवाहः। स च विच्छिद्य विच्छिद्य जायमानो ध्यानं भवति॥**

'ध्यान' एवं 'समाधि' में भेद

जब ध्यानमें केवल ध्येयमात्रकी ही प्रतीति होती है और चित्तका निजस्वरूप शून्य-सा हो जाता है, तब वही ध्यान ही **'समाधि'** कहलाने लगता है—**'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः॥'** (३। ३)

'ध्यान' और 'धारणा' में भेद

जहाँ चित्त लगाया जाय, उसी ध्येयमें प्रत्ययकी एकतानता (वृत्तिका एक तार चलना) तो 'ध्यान' है और शरीरके भीतर या बाहर कहीं भी किसी एक देशमें चित्तको ठहराना 'धारणा' है—**'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'** (३। १)। अष्टांगयोगमें 'ध्यान' योगका सातवाँ अंग है और यह योग 'अन्तरङ्ग साधन' है, जब कि यमसे प्रत्याहार-पर्यन्त योगके सभी साधन 'बहिरंग साधन' हैं।

'ध्यान' का यथार्थ स्वरूप

ध्यानकी तात्त्विक एवं यथार्थ परिभाषा एवं उसका तात्त्विक स्वरूप भगवान् शिवने **'विज्ञानभैरव'** में उन्मिषित करते हुए कहा है कि किसी ध्येयके मुख, हाथ, पैर आदिका चिन्तन **'ध्यान'** नहीं है। 'ध्यान' तो वह निश्चला बुद्धि है जो कि निराकारा एवं निराश्रिता हो—

ध्यानं हि निश्चला बुद्धिर्निराकारा निराश्रया।
न तु ध्यानं शरीराक्षिमुखहस्तादिकल्पना॥*

'ध्यानं निर्विषयं मनः' भी ध्यानकी अच्छी परिभाषा है। शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध (५ ज्ञानेन्द्रियोंके व्यापारों)-से मुक्त हो जाना—अप्रभावित रहना ही **'ध्यान'** है। ध्येय में 'ध्याता' का लय हो जाना ही **'ध्यान'** है।

* विज्ञानभैरव (१४३)

उपनिषदोंकी दृष्टि—'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में कहा गया है कि ऋषियोंने अपने गुणोंसे निगूढ़ परमात्माकी अचिन्त्य शक्तिको 'ध्यानयोग' में अनुगत होकर देखा—

'ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्॥'

(१।३)

भगवान् शिव **'नेत्रतन्त्र'** के अष्टम 'अधिकार' में कहते हैं कि—

स्वपरस्थेषु भूतेषु जगत्यस्मिन्समानधीः।
शिवोऽहमद्वितीयोऽहं समाधिः स परः स्मृतः॥

किंतु 'ध्यान' का स्वरूप इत्याकारक है—

धीगुणान् समतिक्रम्य निर्ध्येयं चाव्ययं विभुम्।
ध्यात्वा ध्येयं स्वसंवेद्यं ध्यानं तच्च विदुर्बुधाः॥

अर्थात् बुद्धिके सत्त्व आदि गुणोंको अतिक्रान्त करके (अर्थात् उनका समावेशद्वारा प्रशमन करके) नियत आकृति आदि रूपोंसे अतीत ('निर्ध्येय'), व्यापक एवं नित्य तथा स्वप्रकाश ('स्वसंवेद्य') ध्येय (ध्यानयोग्य इष्ट पदार्थ) अर्थात् परमेश्वरका विमर्शन करना ही **'ध्यान'** है।*

सफल ध्यानके लक्षण—श्वेताश्वतरोपनिषद्में ध्यानमें सफलताके लक्षणोंका भी उल्लेख किया गया है, जो इस प्रकार हैं—

ध्यान-साधनामें प्राथमिक साफल्यके लक्षण

(१) नीहार (कुहरा), (२) धूम्र, (३) सूर्य, (४) वायु, (५) अग्नि, (६) जुगनू, (७) बिजली, (८) स्फटिक और चन्द्रमा इत्यादिके सदृश बहुत-से दृश्य दिखायी पड़ते हैं।

ध्यानमें साफल्यके अन्य लक्षण

(१)लघुत्व, (२) आरोग्य, (३) अलोलुपत्व (लोभका अभाव), (४) वर्णप्रसाद (शारीरिक वर्णकी उज्ज्वलता), (५) स्वरसौष्ठव (वाणीमें माधुर्य) और (६) शरीरमें सुगन्ध, मूत्रपुरीषमें स्वल्पता।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश—इन पाँचों महाभूतोंका सम्यक् प्रकारसे उत्थान होनेपर, पाँच प्रकारके योग-सम्बन्धी गुणोंकी सिद्धि हो जानेपर **'योगाग्निमय शरीर'** को प्राप्त कर लेनेवाले साधकोंको न तो रोग होता है और न तो जरा होती है और न तो मृत्यु ही होती है—

'न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।'

ध्यानयोगमें सफलता दिलानेवाले कारक तत्त्व

(१) उत्साह, (२) साहस, (३) धैर्य, (४) तत्त्वज्ञान, (५) निश्चय और (६) जनसङ्गपरित्याग (ह०योगप्रदीपिका १।१६)।

योगमें असाफल्यके कारण

(१) अत्याहार, (२) प्रयास, (३) प्रजल्प, (४) नियमग्रह, (५) जनसंग, (६) लौल्य, (७) दुःख, (८) दौर्मनस्य, (९) अंगमेजयत्व, (१०) श्वास, (११) प्रश्वास, (१२) व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व। (ह० योगप्रदीपिका १।१५)

बौद्ध धर्मके अनुसार ध्यानके भेद

बौद्ध ध्यानके निम्न भेद मानते हैं—

(१) प्रथम ध्यान—वितर्क, विचार, प्रीति, सुख एवं एकाग्रतामेंसे पाँचों चित्तवृत्तियोंका प्राधान्य रहता है। **(२) द्वितीय ध्यान**—वितर्क एवं विचारका सर्वथा त्याग, प्रीति, सुख, एकाग्रताका प्राधान्य रहता है। **(३) तृतीय ध्यान**—वितर्क, विचार, प्रीतिका भी परित्याग, केवल सुख एवं एकाग्रता रहती है। **(४) चतुर्थ ध्यान**—सुखका भी परित्याग, केवल एकाग्रताका ही प्राधान्य रहता है।

प्रमुख ध्यानाभ्यास—योगी गोरक्षनाथ कहते हैं कि ओंकारका ध्यानात्मक जप अत्यन्त श्रेष्ठ है; क्योंकि इसकी मात्राओंमें—(१) भूः भुवः स्वः, (२) भूत, भविष्य, वर्तमान, (३) ऋक्, यजुः, साम, (४) स्वर्ग, पाताल, मृत्युलोक, (५) अग्नित्रय, (६) सत्त्व, रज, तम, (७) त्रिदेव, (८) क्रिया, इच्छा, ज्ञान आदि सभी विद्यमान हैं। वही है परम ज्योतिस्वरूप ओंकार—

भूर्भुवः स्वरिमे लोकाश्चन्द्रसूर्याग्निदेवताः।
प्रतिष्ठिता यत्र सदा तत्परं ज्योतिरोमिति॥

साधनाकी विधि—पद्मासन लगायें। शरीर, कण्ठ एवं सिरको समसूत्र रखें। नासाके अग्रभागपर ध्यान एकाग्र रखें और ओंकारका जप करें।

ध्यानके प्रकार—घेरण्डऋषिने ध्यानके तीन प्रकार बताये हैं, जो इस प्रकार हैं—(१) ज्योतिर्ध्यान, (२)

* आचार्य क्षेमराज (नेत्रोद्योत)

सूक्ष्मध्यान और (३) स्थूलध्यान। इन तीन ध्यानोंमेंसे एक ध्यान तो अवश्य करें।

(१) ज्योतिर्ध्यान—[क] मूलाधार (मलद्वार) एवं लिंगमूलके मध्य ('मूलाधार चक्र' के त्रिकोणात्मक अग्निचक्रमें) भुजंगाकारा कुण्डलिनी है। वहीं दीपककी ज्योतिके आकारवाला जीवात्मा स्थित है। उसके भीतर ज्योतिर्मय परमेश्वरका ध्यान करें। यह ज्योतिर्ध्यान है।

[ख] दोनों भौंहोंके मध्य और मनके ऊपर जो ओंकारात्मक तेजावली (ज्योतिसमूह) है, उसका ध्यान करें। यह भी ज्योतिर्ध्यान है।

(२) सूक्ष्मध्यान—यह ज्योतिर्ध्यानसे एक लाख गुना श्रेष्ठ है।

आत्माके साथ मिलकर नेत्ररन्ध्रसे निकलकर कुण्डलिनी राजमार्ग नामक स्थलमें घूमती है, किंतु इतनी सूक्ष्म एवं चंचल है कि इसे देखना सम्भव नहीं है। साधकको 'शाम्भवी मुद्रा' (दोनों आँखोंको ऊपर चढ़ाकर दोनों भौहोंके मध्य स्थानको लगातार देखने)-के साथ कुण्डलिनी शक्तिका ध्यान करना चाहिये। यही सूक्ष्मध्यान है।

(३) स्थूलध्यान—सहस्रदलपद्मकी कर्णिकामें द्वादशदल पद्म है। इसकी कर्णिकामें अ-क-थ—तीन (अक्षरात्मक) रेखाएँ हैं। मध्यमें ह-ल-क्षके त्रिकोणमें ॐ है। एक नादबिन्दुमय 'पीठ' है। उस पीठपर दो हंस खड़े हैं। वहीं पादुका भी है। यह ध्यान स्थूलध्यान है। इसके अनेक भेद हैं।

प्रेरक प्रसंग—

सच्चा सद्भाव

पुत्रकी उम्र पैंतीस-पचास छूने लगी। पिता पुत्रको व्यापारमें स्वतन्त्रता नहीं देता था, तिजोरीकी चाबी भी नहीं। पुत्रके मनमें यह बात खटकती रहती थी। वह सोचता था कि यदि मेरा पिता पन्द्रह-बीस वर्षतक और रहेगा तो मुझे स्वतन्त्र व्यापार करनेका कोई अवसर नहीं मिलेगा। स्वतन्त्रता सबको चाहिये। मनमें चिढ़ थी, कुढ़न थी। एक दिन वह फूट पड़ी। पिता-पुत्रमें काफी बकझक हुई। सम्पदाका बँटवारा हुआ। पिता अलग रहने लगा। पुत्र अपने बहू-बच्चोंके साथ अलग रहने लगा।

पिता अकेले थे। उनकी पत्नीका देहान्त हो चुका था। किसी दूसरेको सेवाके लिये नहीं रखा; क्योंकि उनके स्वभावमें किसीके प्रति विश्वास नहीं था, यहाँतक कि पुत्रके प्रति भी नहीं था। वे स्वयं ही अपने हाथसे रूखा-सूखा भोजन बनाकर कर लेते, कभी चना-चबैना खा लेते, कभी भूखे सो जाते। जब उनकी पुत्रवधूको यह बात मालूम पड़ी तो उसे बहुत दुःख हुआ। आत्मग्लानि भी हुई। उसे बाल्यकालसे ही धर्मका संस्कार था—बड़ोंके प्रति आदर एवं सेवाका भाव था। उसने अपने पतिको मनानेका प्रयास किया, परंतु वे न माने। पिताके प्रति पुत्रके मनमें कोई सद्भाव नहीं था। अब बहूने एक विचार अपने मनमें दृढ़ कर लिया और कार्यान्वित किया। वह पहले रोटी बनाकर पति-पुत्रको खिलाकर दूकान और स्कूल भेज देती। स्वयं श्वसुरके गृह चली जाती। वहाँ भोजन बनाकर श्वसुरको खिला देती और सायंकालके लिये पराठे बनाकर रख देती।

कुछ दिनोंतक ऐसा ही चलता रहा। जब पतिको मालूम पड़ा तो उन्होंने रोका—'ऐसा क्यों करती हो? बीमार पड़ जाओगी। आखिर शरीर ही तो है, कितना परिश्रम सहेगा!' बहू बोली—'मेरे ईश्वरके समान आदरणीय श्वसुरजी भूखे रहें', तकलीफ पायें और हमलोग आरामसे खायें-पीयें, मौज करें, यह मुझसे नहीं हो सकता, मेरा धर्म है बड़ोंकी सेवा करना—इसके बिना मुझे सन्तोष नहीं है, बड़ी ग्लानि है। मैं उन्हें खिलाये बिना खा नहीं सकती। भोजनके समय उनकी याद आनेपर मुझे आँसू आने लगते हैं। उन्होंने ही तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया है, तब तुम मुझे पतिके रूपमें मिले हो। तुम्हारे मनमें कृतज्ञताका भाव नहीं है तो क्या हुआ; मैं उनके प्रति कैसे कृतघ्न हो सकती हूँ?

पत्नीके सद्भावने पतिकी निष्ठुरतापर विजय प्राप्त कर ली। उसने जाकर अपने पिताके चरण छुये, क्षमा माँगी, घर ले आये—पति-पत्नी दोनों पिताकी सेवा करने लगे। पिताने व्यापारका सारा भार पुत्रपर छोड़ दिया। वे अब पुत्रके किसी कार्यमें हस्तक्षेप नहीं करते थे।

परिवारके किसी भी व्यक्तिमें यदि सच्चा सद्भाव हो तो वह सबके मनको जोड़ सकता है। मनका मेल ही सच्चा पारिवारिक सुख है। **[स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती]**

संत-उद्बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

मेरे आत्मस्वरूप साधक महानुभाव! संसारसे सुखकी आशाके रहते त्याग नहीं होता, ममताके रहते विकार नहीं मिटते और कामनाओंके रहते शान्ति नहीं मिलती। चाहरहित हुए बिना योगकी सिद्धि नहीं मिलती, असंगताके बिना बोध नहीं हो सकता और आत्मीयताके बिना प्रेमकी प्राप्ति नहीं हो सकती। यह सब बातें ध्रुवसत्य हैं। या कहो कि प्रभुका ऐसा कुछ विधान ही है। इसलिये संसारसे सुखकी आशा मत करो। प्राप्तकी ममता और अप्राप्तकी कामना मत करो। निष्काम-भावसे सभी कर्म करो।

सब प्रकारकी स्वीकृतियोंसे असंग रहो और भगवान्‌को अपना मानो। फिर तुम जो कुछ भी साधन करोगे, उसमें सफलता अवश्य मिलेगी। परंतु जो साधन करो वह रुचिकर हो, सन्देहरहित हो और सामर्थ्यके बाहर न हो। कारण, रुचिकर होनेसे मन और सन्देह-रहित होनेसे बुद्धि साधनमें लग जाती है। और सामर्थ्यके भीतर होनेसे उकताहट तथा थकावट नहीं होती। इनके अतिरिक्त सफलता न मिलनेमें और कोई कारण नहीं है।

जानकारी, मान्यता और जो हम करते हैं, उसमें सफलता मिलना ही साधनकी सिद्धि है और सिद्धि कुछ नहीं। परंतु आज क्या होता है कि हम संसारकी वास्तविकताको जानते हुए भी उसकी आशाका त्याग नहीं कर पाते। हम भगवान्‌को मानते हैं, उनसे प्रेम करना चाहते हैं, परंतु नहीं कर पाते। हम ब्रह्म हैं अथवा आत्मा हैं, ऐसा मानते हैं, परंतु बोध नहीं होता। हम निर्दोष होना चाहते हैं, परंतु नहीं हो पाते।

हम भगवान्‌का चिन्तन-ध्यान करते हैं, परंतु चित्तमें शान्ति नहीं मिलती। हम धर्मको जानते और मानते हैं, परंतु आचरणमें नहीं ला पाते। हमने योगकी क्रिया करते हुए जीवनका बड़ा भाग बिता दिया, परंतु प्रवृत्तियोंका निरोध नहीं कर पाये। यह तो है आजके साधकोंकी दशा। अब बताओ, क्या ऐसी जानकारी, क्रिया और मान्यतासे हमारा काम चल सकेगा? कहना होगा, नहीं चलेगा।

जानकारी, मान्यता और क्रियाओंका जबतक जीवनपर प्रभाव नहीं होगा, तबतक तो उन्हें वास्तविक भी नहीं कह सकते। फिर उनसे हमें लक्ष्यकी प्राप्ति हो ही कैसे सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती। तो बताओ, त्याग और प्यार करना भी किसीसे सीखना पड़ता है क्या? जिसको असार और दुःखरूप जान लेंगे, उसका त्याग और जिसे अपना तथा सुखरूप मान लेंगे, उससे प्यार तो स्वतः होना चाहिये।

हम संसारको असत्य और दुःखद जानकर भी उसका त्याग और भगवान्‌को अपना तथा सुखधाम मानकर भी उनसे प्रेम नहीं कर पाते। इसका एकमात्र कारण यही है कि हम संसारसे सुखकी आशा करते रहते हैं एवं उस सर्व-समर्थ प्रभुको सरल हृदयसे अपना नहीं मानते।

याद रहे, और कुछ भी अपना है और परमात्मा भी अपना है—ये दोनों बातें एक साथ नहीं होतीं। जबतक हम और कुछ भी अपना मानते हैं, तबतक तो मुखसे कहते हुए भी हमने सच्चे हृदयसे भगवान्‌को अपना नहीं माना। यही इसकी पहचान है।

अतएव यदि इसी जन्ममें सफलता चाहते हो तो उपर्युक्त बातें जीवनमें उतारो, सफलता अवश्य मिलेगी। यह बात परम सत्य है। ॐ आनन्द!

व्यक्तित्वविकासकी पाश्चात्य एवं भारतीय अवधारणाएँ

(श्रीगोकुलचन्दजी गोयल)

स्वामी विवेकानन्द पानीके जहाजद्वारा विदेशयात्रापर जा रहे थे, उन्होंने गेरुए वस्त्र पहन रखे थे। धोती, चादर, सिरपर पीली पगड़ी तथा हाथमें लाठी थी। उसी जहाजमें कुछ विदेशी भी यात्रा कर रहे थे। उन्होंने स्वामी विवेकानन्दको कोई अनपढ़, गँवार भारतीय समझकर उनकी खिल्ली उड़ायी तथा अपमानभरी दृष्टिसे उनकी ओर देखकर अंग्रेजी भाषामें कुछ व्यंग्यात्मक टिप्पणी की। उन विदेशियोंका ख्याल था कि विवेकानन्द अनपढ़ होंगे और अंग्रेजी तो बिलकुल नहीं जानते होंगे, किंतु स्वामीजी उन विदेशियोंकी सभी बातें चुपचाप सुन तथा समझ रहे थे। स्वामीजीने उनकी बातें धैर्यपूर्वक सुनकर पलटकर कहा—प्रिय सज्जनो! आप अपने आपको सभ्य व्यक्तित्ववाला समझ रहे हैं तथा मुझे असभ्य-गँवार, किंतु आपलोगोंके व्यक्तित्वनिर्माणमें कुल बारह आने खर्च होते हैं, जबकि भारतीय व्यक्तित्वके निर्माणमें जीवन खपाना पड़ता है। आपके व्यक्तित्वनिर्माणमें चार आने बाल कटवानेमें, चार आने कपड़ोंपर लोहा करानेमें तथा चार आने जूतोंपर पॉलिश करानेमें खर्च होते हैं। खाना-पीना, मौज उड़ाना तथा भौतिक साधनोंमें लिप्त रहना एवं उनका अन्धाधुन्ध उपयोग करना ही आपके व्यक्तित्वनिर्माण एवं उसके विकासकी अवधारणा है। विविध प्रकारके सांसारिक साधनों एवं सुखोंका उपयोग करना ही आपकी जीवनशैलीका लक्ष्य है। त्याग, तपस्या, आचरणकी शुद्धता, आहार-विहारकी शुद्धता एवं आध्यात्मिकताका पाश्चात्य जीवनशैलीमें विशेष महत्त्व नहीं है, जबकि भारतीय अवधारणा ठीक इसके विपरीत है। जीनेके लिये खाना एवं ईश्वरप्रदत्त अमूल्य मानवजीवनका श्रेष्ठ एवं परोपकारी कार्योंमें उपयोग करना व्यक्तित्वविकासकी भारतीय अवधारणा है। यह सुनकर वे विदेशी लज्जित-से हो गये।

भारतीय अवधारणामें अपार वैभव एवं ऐश्वर्यसम्पन्न राजाओंसे अधिक कौपीनधारी साधु-संन्यासियोंका आदर तथा सम्मान किया जाता रहा है। गृहस्थ जीवन बितानेवालोंके लिये भौतिक साधनोंके निर्बाध उपभोगके स्थानपर जीवनयापनहेतु आवश्यक साधनोंके उपभोगका ही विधान किया गया है। राजा जनक सर्वसाधन एवं शक्तिसम्पन्न होते हुए भी अपने त्यागपूर्ण जीवनके कारण 'विदेह' कहलाये। भारतीय इतिहास-परम्परामें ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनमें वैभवसम्पन्न शासक कौपीनधारी बटुक एवं संन्यासियोंके समक्ष नतमस्तक होते थे तथा अपना सिंहासन छोड़कर उनका न केवल स्वागत करते थे, बल्कि उनका मनोरथ पूर्ण करनेमें भी अपना अहोभाग्य समझते थे।

व्यक्तित्वविकासकी पाश्चात्य अवधारणामें शिक्षाको भी भौतिक साधनोंकी उपलब्धिका आधार माना गया है तथा उच्चतम भौतिक साधनसम्पन्न जीवनयापनको व्यक्तित्व-विकासका लक्ष्य; जबकि व्यक्तित्व-विकासकी भारतीय अवधारणामें शिक्षाको जीवनके श्रेष्ठतम आध्यात्मिक एवं नैतिक लक्ष्यों तथा सात्त्विक आहार-विहार एवं आचरणका मार्ग माना गया है। भारतीय अवधारणामें भौतिक साधनोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ संस्कारों एवं त्यागपूर्ण, परोपकारी जीवनशैलीपर जोर दिया गया है। दया, क्षमा, करुणा, अस्तेय, अपरिग्रह, परोपकार आदिके साथ-साथ सांसारिक एवं भौतिक साधनोंका जीवनके लिये आवश्यक न्यूनतम उपयोग व्यक्तित्वविकासकी भारतीय अवधारणाका मूल है। धर्म भारतीय जीवनका मूल है। पुरुषार्थचतुष्टयमें भी त्यागका विशेष महत्त्व है, इस पुरुषार्थचतुष्टयको भारतीय जीवनका लक्ष्य तो माना गया है, किंतु प्राप्तिमें भी शुद्ध आचरण, संयम तथा त्यागका महत्त्व माना गया है। धर्माचरणद्वारा ही इनकी प्राप्ति तथा अन्ततः मोक्षकी प्राप्तिका लक्ष्य रखा गया है।

व्यक्तित्वविकासकी इन्हीं अवधारणाओंके कारण भारत विश्वगुरु रहा है। आज भी भारतके साधु-संन्यासियों, विद्वानोंका विदेशों (पाश्चात्य देशों)-में इसी आधारपर सम्मान होता है तथा भारतीय संस्कृति तथा संस्कारोंके प्रति पाश्चात्य देशोंमें सम्मान बढ़ रहा है। व्यक्तित्वविकासकी पाश्चात्य अवधारणा एवं जीवनशैली सांसारिक तथा क्षणिक सुख दे सकती है, किंतु जीवनमें स्थायी शान्ति तथा सन्तोष नहीं। वह तो भारतकी त्यागमय अवधारणासे ही सम्भव है।

भारतीय संस्कृतिमें अतिथि-सत्कारकी गुरुता

(डॉ० श्रीरामकृष्णजी सराफ)

भारतीय संस्कृतिमें अतिथि-सत्कारकी गौरवपूर्ण परम्परा सुदीर्घ कालसे विद्यमान है। भारतीय वाङ्मय इसका साक्षी है। हमारे स्मृतिग्रन्थ इस गौरवमयी परम्पराका उदारभावसे वर्णन करते हैं। स्मृति-वाङ्मयमें अतिथि-सत्कारपर गम्भीरतासे विचार किया गया है। मनुस्मृतिके तृतीय अध्यायमें कहा गया है कि अपने गृहपर आये हुए अतिथिका सत्कार गृहीको अपना कर्तव्य समझकर करना चाहिये। स्मृतिकारने कहा कि गृहस्थ अपने यहाँ आये अतिथिको गृहमें ठहराये तथा भोजनादि परिचर्याके द्वारा उसका यथोचित सत्कार करे।[१] स्मृतिकारने अतिथिके भोजन करनेके पूर्व स्वयंके भोजन करनेका सर्वथा निषेध किया है।[२] मनुस्मृतिमें अतिथि-सत्कारका महत्त्व निरूपित करते हुए कहा गया है कि गृहागत अतिथिका सत्कार सर्वविध मंगलका विधायक होता है।[३]

उपनिषदोंमें तो अतिथिसत्कारको अति पवित्र कर्म—धर्म माना गया है। तैत्तिरीयोपनिषद्में अन्तेवासीके विद्याध्ययनकी समाप्तिपर आचार्य उसे अपने उपदेश-वचनोंमें माता, पिता, गुरु और अतिथिको देवतुल्य माननेकी सीख देते हैं—

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।[४]

अपने उपदेश-वचनोंमें आचार्य अतिथिसेवा, आतिथ्यकर्मको विशिष्ट महत्त्व प्रदान करते हैं। कठोपनिषद्में तो अतिथि-सत्कारका व्यापक निरूपण किया गया है।

कठोपनिषद् कृष्णयजुर्वेदकी कठशाखाके अन्तर्गत एक महत्त्वपूर्ण उपनिषद् है। इसमें उद्दालक ऋषि वाजश्रवाके पुत्र नचिकेतासे सम्बन्धित अत्यन्त रोचक एवं ज्ञानगर्भित आख्यान वर्णित है।

ऋषि वाजश्रवाने विश्वजित् यज्ञ सम्पन्न किया। यज्ञकी परिसमाप्तिपर उन्होंने यज्ञफल-प्राप्त्यर्थ ऋत्विजोंको गायें दान कीं। विश्वजित् यज्ञकी व्यवस्थाके अनुसार यज्ञकी समाप्तिपर यजमान अपना सर्वस्व दान कर देता है; किंतु वाजश्रवा ऋषिने जो गायें दानमें दीं, वे सब वृद्ध थीं। वे अनुपयोगी हो चुकी थीं। उनकी उपयोगिता सब प्रकारसे नष्ट हो गयी थी। उन्होंने तृण खाना छोड़ दिया था और उनकी दूध देनेकी क्षमता भी समाप्त हो चुकी थी।[५]

ऋषिबालक नचिकेता यह सब देख रहा था। अपने पिताको सर्वस्व दानरूपी यज्ञमें सर्वथा अक्षम, क्षीणकाय एवं अनुपयोगी गायोंको दानमें देते देख बालक नचिकेताका मन विचलित हो उठा। उसे लगा कि इससे तो यज्ञ विफल हो जायगा और पिताजी यज्ञफलकी प्राप्तिसे वंचित रह जायँगे।

चूँकि विश्वजित् यज्ञमें यजमानके द्वारा अपना सर्वस्व दानमें दे दिया जाता है और पिता वाजश्रवाकी सर्वसम्पत्तिमें तो उनका पुत्र भी सम्पत्तिका एक अंश बनता है, अतः व्यवस्थाका अनुपालन करते हुए पिता वाजश्रवाको अपने पुत्रको भी दानमें दे देना चाहिये। संवेदनशील बालक नचिकेताका मन विचलित हो रहा था। अतः वह अपने पिता वाजश्रवासे पूछ बैठा कि वे उसे किसे दानमें दे रहे हैं ? पितासे हठपूर्वक बार-बार यह प्रश्न करनेपर रुष्ट वाजश्रवाने पुत्र नचिकेतासे कहा कि वे उसे मृत्यु—यमको दे रहे हैं।[६] बस, फिर क्या था। पिता वाजश्रवाके मुखसे निकले वचनोंका अक्षरशः पालन करते हुए बालक नचिकेता यमालयमें स्वयं उपस्थित हो जाता है। जिस समय नचिकेता यमसदन पहुँचता है, उस समय यम वहाँपर उपस्थित नहीं थे। यमदेवताकी अनुपस्थितिमें यमलोक पहुँचनेके कारण बालक नचिकेता यमदेवताके आतिथ्य-सत्कारसे तीन दिनतक वंचित रहा। नचिकेता यमदेवताके यहाँ तीन दिनोंतक उनकी प्रतीक्षा करता रहा। उस कालमें

---

१. सम्प्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके। अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥ (मनु० ३। ९९)

२. मनु० ३। ११५

३. धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वातिथिपूजनम्॥ मनु० ३। १०६

४. तैत्तिरीयोपनिषद् १। ११। २

५. पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः। (कठोपनिषद् १। १। ३)

६. स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति। द्वितीयं तृतीयं तः होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति॥ (कठोपनिषद् १। १। ४)

उसने वहाँ अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया। यमके अपने आवासपर लौटनेपर उन्हें वहाँ नचिकेताके आनेका वृत्त जाननेको मिला। यमदेवताकी अनुपस्थितिमें नचिकेताका बिना कुछ ग्रहण किये उनकी प्रतीक्षामें तीन दिनतक उनके यहाँ उपस्थित रहना यमदेवताके लिये महान् पश्चात्तापका कारण बनता है। अत: उन्होंने नचिकेतासे क्षमा-याचना की और प्रतीक्षामें तीन दिनोंतक अन्न-जल न ग्रहण करनेके कारण उससे अपने इच्छानुसार तीन वर माँग लेनेका आग्रह किया।[१] यमदेवताके इस आचरणमें भारतकी चिरन्तन अतिथि-सत्कार-संस्कृतिकी विशेष प्रतिष्ठा प्रकट होती है, जिसमें एक ओर आतिथेयके अपराधबोध, पश्चात्ताप तथा दूसरी ओर अतिथि-परितोष-प्रयासकी अभिव्यक्ति है। यमदेवताका मानना है कि गृहस्थके यहाँ अग्निदेवता ही अतिथिके रूपमें पदार्पण करते हैं और इसीलिये विज्ञजन अतिथिका पाद्य-अर्घ्य आदिके द्वारा प्रथम स्वागतरूप शान्ति-उपचार किया करते हैं। यमसदनमें भी नचिकेताकी सर्वप्रथम सत्कार-परिचर्या पादप्रक्षालनादिके द्वारा सम्पन्न की जाती है।[२] गृहस्थके यहाँ अतिथिका बिना भोजनादि ग्रहण किये वास करना अति अनिष्टकर माना गया है। जिस गृहमें अतिथि बिना भोजन किये वास करता है, उस अल्पबुद्धि गृहपतिकी किसी भी वस्तुप्राप्तिकी इच्छा फलवती नहीं होती। सुसंगतिसे प्राप्त होनेवाले तथा मधुर वाणीके प्रभावसे प्राप्त होनेवाले सुफलोंसे वह वंचित हो जाता है। यज्ञ-यागादि करने तथा बाग-बगीचा आदि लगानेका श्रेष्ठ फल भी उसे नहीं मिलता। उसकी सन्तति, वंशपरम्परा और पशुवंश सभी विनाशको प्राप्त हो जाते हैं।[३] इसीलिये यमदेवता आगत अतिथिकी प्रसन्नताके लिये प्रासादमें प्रवेश करते ही बालक नचिकेताको उसकी इच्छाके तीन वर प्रदान करते हैं। अतिथि-सत्कारका परम कल्याणकारी स्वरूप स्मृतियोंकी अपेक्षा उपनिषद्-वाङ्मयमें अधिक विदग्धतापूर्वक वर्णित मिलता है।

यमदेवताके अनुरोधपर बालक नचिकेता जो तीन वर माँगता है, उसमेंसे प्रथम वरस्वरूप वह अपने पिताकी प्रसन्नता माँगता है; क्योंकि वह अपने हठसे पिताको रुष्टकर यमलोक गया था।[४] द्वितीय वरके रूपमें नचिकेता यमदेवसे अग्नि-विज्ञानके रहस्यका उद्घाटन करनेहेतु निवेदन करता है, जिससे लोकमें लोगोंके लिये स्वर्गप्राप्तिका मार्ग प्रशस्त हो सके।[५] तृतीय वरके रूपमें वह आत्मतत्त्वका विवेचन करनेहेतु निवेदन करता है।[६] उक्त तीनों वरोंका अपना-अपना महत्त्व है। प्रथम वरमें पितृपरितोष, पारिवारिक सौमनस्यका भाव है। द्वितीय वरमें स्वर्गप्राप्ति तथा तज्जन्यसुखका भाव विद्यमान है तथा तीसरे वरमें परमतत्त्वकी जिज्ञासाके समाधानकी पिपासा है। नचिकेताके वरयाचनाक्रममें प्रथम वरसे लोकको यह सन्देश जाता है कि परिवारमें पिता और माताका पद सर्वोपरि है। पुत्रको कभी भी अपने आचरणसे उन्हें पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिये। उन्हें सदा प्रसन्नता प्रदान करना चाहिये, ताकि गृहमें भौतिक सुखसमृद्धिरूप मंगलकी वृष्टि होती रहे। द्वितीय वरसमाधानमें लोकके लिये स्वर्गप्राप्तिके साधनका उद्घाटन किया गया है तथा तृतीय वरमें आत्मतत्त्वके गूढ़ रहस्यका उद्घाटन किया गया है। यमसदनमें यमदेवताके यहाँ अतिथिके रूपमें पहुँचे बालक नचिकेताकी वरयाचनामें संसारके सभी प्राणियोंके प्रेय और श्रेय—उभयविध कल्याणका मार्ग प्रशस्त मिलता है। भारतीय संस्कृतिमें अतिथिसत्कारकी परम्परा परम शुभ एवं श्रेयस्कर-रूपमें विद्यमान है।

---

१. तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे अनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्य:। नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व॥ (कठोपनिषद् १।१।९)

२. वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्। तस्यैताः शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्॥ (कठोपनिषद् १।१।७)

३. आशाप्रतीक्षे संगतः सूनृतां च इष्टापूर्ते पुत्रपशूःश्च सर्वान्। एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे॥ (कठोपनिषद् १।१।८)

४. शान्तसंकल्प: सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो। त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे॥ (कठोपनिषद् १।१।१०)

५. स त्वमग्निः स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वःश्रद्दधानाय मह्यम्। स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण॥ (कठोपनिषद् १।१।१३)

६. येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके। एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः॥ (कठोपनिषद् १।१।२०)

जीवनकी सान्ध्य वेला

(श्रीकन्हैयासिंहजी विसेन)

आम की यह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है—अब यहाँ पिक या सिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ—
जीवन दह गया है।
दिये हैं मैंने जगत् को फूल-फल
किया है अपनी प्रभा से चकित चल,
पर अनश्वर था सकल पल्लवित पल—
ठाठ जीवन का वही
जो ढह गया है।
स्नेह—निर्झर बह गया है।
रेत ज्यों तन रह गया है।

(सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला')

महाकवि निरालाकी इन पंक्तियोंको पढ़ते हुए लगता है कि जीवनयात्राकी थकान, निराशा, अर्थहीनतासे जूझते हुए कविने प्रतीकात्मक शैलीमें लौकिक माध्यमसे संसारके लिये एक शाश्वत सन्देशकी अभिव्यक्तिको स्वर प्रदान किया है कि आम्रवृक्षकी सूखी दिखनेवाली यह डाली भी कभी हरी-भरी थी, इसमें फल-फूल लदे रहते थे और बदलती हुई ऋतुओंके साथ कभी कोयल, कभी मोर भी आकर घंटों बैठे रहते थे—लेकिन अब कोई नहीं आता; क्योंकि वह सब सपना था—जो हरा-भरा था और अब सत्य है जो सूखा और ठूँठा है, जिससे किसीका स्वार्थ नहीं सधता है। वास्तवमें, मानवीय जीवनमें भी, आमकी इसी सूखी डालकी भाँति परिस्थितियाँ समान रूपसे विद्यमान हैं। जबतक व्यक्ति चलता-फिरता है, बातचीत करता है, देखता है, तभीतक स्त्री और धन उसके हैं और सब उससे स्नेह करते हैं—***'जब लगि डोलत, बोलत, चितवत धन दारा हैं तेरे।'*** (सूरदास) तभीतक परिवार और समाज उसको महत्त्व देता है। संसारमें शारीरिक सामर्थ्य और स्वास्थ्यके घटते ही व्यक्तिकी उपेक्षा होने लगती है, फिर इसका महत्त्व नहीं हैं कि व्यक्ति धनी है अथवा गरीब। हाँ, यदि व्यक्ति ज्यादा धनी है तो उसके बारेमें समाजको सच्चाई नहीं ज्ञात होती है, सिवाय मौत के। पर यदि गरीब है तो उससे लोग मिल-जुल सकते हैं, लेकिन जीवनके उत्तरार्धमें हैं दोनों अकेले ही। बहुत ही कम लोग हैं जो जीवनकी इस वेलामें भी परिवार और समाजका पूर्ववत् स्नेह-सहयोग प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त करते हैं। अन्ततोगत्वा अकेलेपन और सामाजिक पारिवारिक अनुभूतियोंको बेबाक चित्रित करते हुए निरालाजीकी अभिव्यक्ति शाश्वत समष्टिका सत्य उजागर करते हुए कहती है—

मैं अकेला देखता हूँ—आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य बेला।
पके आधे बाल मेरे, हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मंद होती जा रही, हट रहा मेला।

(निराला)

कवि देखता है कि उसके पास लगनेवाला मेला अब समाप्त हो रहा है, शरीर और स्वास्थ्य भी जीवनकी सान्ध्य-वेलाकी साक्षी दे रहे हैं; क्योंकि केश श्वेत हो चले हैं, चेहरा प्रभाहीन और चाल मन्द हो चली है और धन उसके पास है ही नहीं। अतएव अब उससे किसीका स्वार्थ सधना सम्भव नहीं है। फलतः अब समाज और परिवारके लिये उसकी उपयोगिता समाप्त हो चली है और आमकी सूखी डालकी तरह जो हरी-भरी, फूलने-फलनेवाली शाखाओंके मध्य साथ-साथ रहते हुए भी सबसे अलग है, उपेक्षित है; क्योंकि अब उसके पास देनेके लिये कुछ बचा ही नहीं है। यह है परोपकार और उदारताका कटु सत्य; जो मानव ही नहीं, प्रायः समस्त वानस्पतिक प्रजातियोंके लिये भी एक-जैसा ही है और यही है उसकी नियति भी; क्योंकि फल आनेपर उसे हाथ उठाकर तोड़ा जाता है और हाथ न पहुँचनेकी स्थितिमें अधिक ऊँचाईपर होनेके कारण उसे बाँसकी लम्बी लगी और पत्थरसे पीटकर तोड़ लिया जाता है और इसके

पश्चात् सूख जानेपर उसे तोड़कर जलाकर ताप लिया जाता है। स्वार्थकी पराकाष्ठाकी यही स्थिति गोस्वामीजीको भी विचलित करती है और वे कह उठते हैं—

हरे चरहिं तापहिं बरे फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत सब परमारथ रघुनाथ॥

शरीरके स्वास्थ्यका क्या भरोसा, कभी भी आदमी बीमार—रोगग्रस्त हो सकता है और यदि यह न भी हो तो बुढ़ापा तो आना ही है। उससे तो कोई बच सकता नहीं और जब शरीर असमर्थ हो, अस्वस्थ हो, तब अपना आँगन ही विदेश हो जाता है; क्योंकि चाहते हुए भी हम न तो कमरेसे बाहर निकल सकते हैं और न ही बरामदेसे घरमें जा सकते हैं; फलतः जिस शरीरसे देश-विदेशकी यात्राएँ की गयीं, देशाटन किया गया, तीर्थयात्राएँ हुईं, बड़े-बड़े पराक्रम और पौरुषके कार्य किये गये; वही शरीर अब कितना अशक्त और असहाय हो चला है, इसका मार्मिक, हृदयस्पर्शी और यथार्थ चित्रण कबीरसे सुनें—

जिन पावन भुई बहु फिरा, देखा देश, विदेश।
तिन पावन थति पकड़िया आंगन भया बिदेस॥

पर वाह रे बुढ़ापा! तुम भी जानते हो, मैं भी जानता हूँ कि प्राचीमें उगनेवाला अरुणिम सूर्य, मध्याह्नमें अग्निवर्षा करनेवाला सूर्य सायंकाल अर्थात् जीवनकी अन्तिम वेला (वृद्धावस्था)-में कितना निरीह, असहाय हो जाता है और अग्निवर्षी किरणें काँपती हुई प्रतीत होती हैं, जो अपने अस्तित्वके लिये संघर्ष करते हुए थक चुकी होती हैं। यह है बुढ़ापाका प्रभामण्डल—जो समस्त शक्ति, सौन्दर्य, पौरुष और पुरुषार्थका समापनकर्ता बनता है। वृद्धावस्था सौन्दर्यकी चिर शत्रु है। कोई रोग आये या न आये वह तो आयेगी ही, लेकिन मृत्यु वृद्धावस्थाकी प्रतीक्षा नहीं करती, वह तो चाहे जब आ सकती है। भगवान् न करे किसीको कोई रोग हो, लेकिन कोई रोग किसीसे अनुमति लेकर तो आता नहीं, किसीकी इच्छा या सम्मतिकी उसे अपेक्षा भी नहीं है। कब कौन-सा रोग किसको अपना ग्रास बनायेगा, कहना कठिन है। इतिहास साक्षी है कि लुकमान हकीम और वैद्य धन्वन्तरि जैसे मनीषियोंको मृत्युने नहीं बख्शा! रावणके कारागारमें बन्दी बनाया गया मृत्युदेव सदाके लिये बन्दी नहीं हो सकता था। दस मस्तक और बीस भुजाओंवाले गर्वोन्मत्त रावणकी फड़कती भुजाएँ और रावणको भी बाँध देनेवाले सहस्रबाहु अर्जुनकी पराक्रमी भुजाएँ भी मृत्युसे परास्त हो गयीं। फिर हमलोग-सरीखे एक मस्तक-दो हाथोंवाले दुर्बल मनुष्यको नहीं भूलना चाहिये कि उसे भी मरना है।

मृत्यु जीवनका ध्रुव सत्य है। असम्भव शब्दके अस्तित्वको नकारनेवाले नैपोलियनकी मृत्यु एक नन्हेसे समुद्री टापूके कारागारमें हुई। मुसोलिनीका प्राणान्त फाँसीके तख्तेपर हुआ और जर्मनीको खण्डहर करनेवाला हिटलर इस तरह मरा कि उसके शवका पता भी नहीं चल सका। याद रखें—धन-जन-ऐश्वर्यका गर्व शीघ्र ही मिटनेवाला है; क्योंकि यहाँ नेवलेने सर्पको पकड़ रखा है। सर्पने मेढकको और मेढक मक्खियोंके शिकारहेतु जीभ लपलपाता हुआ मस्त है—बस, निगलनेभरकी देर है। सब जानते हैं और अच्छी तरह जानते हैं कि मौत आयेगी, जरूर आयेगी, पर वाह रे निश्चिन्तता—मन कभी अपने मरनेकी बात सोचता ही नहीं है। महाभारतमें एक कथा आती है, यक्षरूपधारी धर्मने युधिष्ठिरसे पूछा—'सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?' इसपर युधिष्ठिरने कहा—'संसारमें रोज-रोज प्राणी यमलोकमें जा रहे हैं, किंतु जो बचे हुए हैं, वे सर्वदा जीते रहनेकी इच्छा करते हैं, इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या होगा—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

(महा०वन० ३१३।११६)

कहते हैं कि एक अति वृद्धा अपने सिरपर लकड़ीका बोझ लिये जा रही थी, रास्तेमें थकान और शारीरिक असमर्थतासे व्यथित होकर उसने सिरका बोझ जमीनपर फेंकते हुए कहा कि मौत भी नहीं आ जाती, जिससे मैं इस दारुण यन्त्रणासे छुट्टी पा जाती और वृक्षकी छायातले सुस्ताने लगी। तभी वहाँ एक आदमी आया और उसने पूछा कि माताजी! आपने मुझे क्यों

बुलाया है? इसपर वृद्धाने कहा—बेटा! तुम कौन हो और क्यों आये हो? उसने उत्तर दिया कि मैं मृत्यु हूँ और अभी आपने मुझे बुलाया था, इसलिये आया हूँ। आपने क्यों बुलाया? बुढ़ियाने उत्तर दिया—बेटा! मैंने तुझे इसलिये बुलाया था कि यह बोझा उठाकर सिरपर रख दो, जिससे मैं घर ले जा सकूँ; क्योंकि मैं बहुत थक गयी हूँ और इसे अकेले नहीं उठा पाऊँगी। वाह रे मानव! मौतको भी धोखा देनेकी अद्भुत क्षमतावाली तुम्हारी बुद्धि मुबारक हो तुम्हें!

हमने भी देखा है और शायद आपने भी देखा होगा। कसाई (वधिक) हाथमें शस्त्र लिये खड़ा है और अपने शस्त्रकी धारको वध करनेके लिये तेज कर रहा है, परंतु वध किया जानेवाला बकरा आनन्दमें—मस्तीमें है, खेलता-कूदता है, उछल-कूद करता है और बकरियोंके मध्य काम-क्रीड़ामें मग्न है और बार-बार सामने रखी हरी-पत्तियोंको भी खाये जा रहा है—

निकट आयुध बधिक धारे, करत तीच्छन धार।
अजा नायक मगन क्रीडत, चरत बारम्बार॥

(सूरदास)

ठीक यही बकरेकी-सी दशा भोगोंमें मग्न मनुष्योंकी है, जिसका उसे ज्ञान नहीं हो रहा है और शीघ्र ही उसकी जीवनलीला समाप्त होने जा रही है और वह आमोद-प्रमोद तथा मायामें आकण्ठ डूबा हुआ है तथा मौतका नाम भी नहीं सुनना चाहता है; क्योंकि वह मृगतृष्णाके पीछे मस्त दौड़ रहा है और मृगतृष्णा है सांसारिक सुखोंका नग्न सत्य, जिसे हम सुनना नहीं चाहते हैं और अपनेको उससे अलग मानते हैं।

मृगतृष्णाकी स्थिति देखें—मरुप्रदेश—रेगिस्तान। जेठकी तपती दोपहरी, ऊपरसे सूर्यकी अग्निवर्षा, नीचे भड़भूजेके भाड़की बालुकाकी प्रतिद्वन्द्विता करती अपार बालुका राशि। न कहीं वृक्षकी छाया, न कहीं जलका लेश। बड़ी उष्णता, भयंकर ताप, तीव्र पिपासा—हरिणोंका प्यासा झुण्ड दौड़ता जा रहा है। प्राणोंकी शक्ति पैरोंमें आ गयी है, पूरी शक्तिसे छलांग लगाते हुए मृग दौड़ रहे हैं—एक आशा और एक विश्वासके साथ कि आगे समुद्रकी अपार जलराशि लहरा रही है, वहाँ पहुँचनेभरकी देर है, ताप शान्त हो जायगा, प्यास बुझ जायगी। आत्मा तृप्त और ठंडी हो जायगी—सम्पूर्ण काया। एक नहीं अनेक झुंड मृगोंके हैं और वे दौड़ते ही जा रहे हैं, सिर्फ दौड़ते ही जा रहे हैं। प्रत्येक यूथ अपने आगेके झुंडको देखता है और सोचता है कि तृप्त हो जायँगे, सुखी हो जायँगे। यह दौड़, यह प्रगति, यह प्रतिद्वन्द्विता, यह ताप, ज्वाला उत्तरोत्तर भीषण होती जा रही है। प्रत्येक अपने आगेके झुंडको देखते हुए बड़ी तत्परता, शीघ्रता और पूरी शक्तिसे दौड़ रहा है। लेकिन जल—वह तो आगे और आगे ही दीखता है। लहराती किरणोंमें दीखता जल (प्रकाश और बालुकासे संयुक्त) आगे ही आगे भाग रहा है; क्योंकि वहाँ जल है ही नहीं तो मिलेगा कैसे? कैसे प्यास बुझेगी, कैसे शीतलता तृप्ति और शान्ति प्राप्त होगी? वहाँ है तड़पन, मूर्छा और मृत्यु, जो दौड़ समाप्तकर थककर गिरनेपर प्रत्येक मृगको प्राप्त होती है। त्रासदी यह है कि मृग है पशु और संसारके भोगोंमें आसक्त मानव भी पशु ही है, जिसे उसकी तृष्णा भटका रही है—सुख-शान्तिके लिये। स्त्रीसुख, धनसुख, जनसुख, मान-प्रतिष्ठाके सुख, वासनाके सुखके लिये दौड़ रहा है मानव-मृग प्यासा, थका, हारा, अशान्त और क्लान्त। मृग-मरीचिकाकी भाँति भोगोंका समुद्र मानवके सम्मुख लहरा रहा है। मरुभूमिकी बालुका तो शायद रातमें कुछ ठंडी भी हो जाती है, लेकिन भोगोंकी ज्वाला अहर्निश धधक रही है। एक मनुष्य दूसरेको देखकर सोचता है कि वे सुखी हैं, सम्पन्न हैं, समृद्ध और सम्पत्तिशाली और हमें भी वहाँ पहुँचना है, तभी हम सुखी होंगे। मतलब प्रत्येक मृगमानव अपनेसे आगे देखता है, वहाँतक पहुँचनेका महत्त्वाकांक्षापूर्ण प्रयास करता है। सब असन्तुष्ट हैं, अधिकाधिक भोगसामग्री प्राप्त करनेमें प्रयासरत हैं—बढ़ी है तृष्णा, बढ़ी है प्यास, अशान्ति और संघर्ष, बढ़ा है द्वन्द्व-फंद; बढ़ी है चोरी, बेईमानी, शैतानी अपने साथ दु:खोंका पहाड़ लेकर न जिसका आदि है और न अन्त। भोगका सेवन बढ़ाता है रोग, संघर्ष, भय, कलह और अशान्ति, द्वेष, कटुता, हिंसा, वैर और छीना-झपटी; क्योंकि जहाँ सुख है ही नहीं, वहाँ मिलेगा कैसे? वहाँ तो

निराशा, दु:ख, अशान्ति, अवसाद, चिन्ताएँ ही मिलती हैं। मृगतृष्णाके पीछे दौड़ते मृग मूर्च्छित होते हैं, गिरते हैं, तड़पते हैं और मरते हैं, लेकिन संसारके भोगोंमें आसक्त मृगमानव जीवनभर अशान्ति, दु:ख, निराशा भोगनेके बाद मृत्युका ग्रास बनता है। वह भी हजारों-हजार बार दारुण मृत्युकी यातनाको भोगते हुए मरता है; क्योंकि भोग प्राप्त करता है पापसे और पापका परिणाम है बारंबार जन्म और मृत्यु।

व्यक्तिको मोह है अपनी समृद्धि, सम्पत्ति और सम्बन्धोंपर—अपनी सन्तानोंसे सुख-समृद्धि प्राप्तिकी प्रत्याशारूपी मृगमरीचिका रात-दिन उसे अभिभूत किये रहती है, जबकि विडम्बना यह है कि सम्पूर्ण जीवनभर, तन-मन-धनसे समर्पित अपनी ही सन्तानें बुढ़ापेमें व्यक्तिको एकाकी, निराश्रित और असहाय बना देती हैं; क्योंकि पुत्र अपने परिवारसहित अपने कार्यस्थल, देश-विदेशमें नौकरी, व्यवसायके सम्बन्धमें माता-पितासे दूर चला जाता है और फिर वहीं बस जाता है। पुत्रियाँ अपनी ससुरालमें रहती हैं और वृद्ध माता-पिता अपने घरपर ही रहते हैं एकाकी और बेसहारा। यदि पति-पत्नी दोनोंमेंसे किसी एककी मौत हो जाती है; जो होनी ही है, तब फिर वही व्यक्ति अकेला हो जाता है।

वास्तवमें धन-संचय, परिवारका पालन-पोषण, मकान, दूकान, राज्य, शक्ति और सम्पत्तिके त्यागनेकी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है त्यागभावनाकी और प्राप्त सुख-सुविधाओंको त्यागभावनासे ही ग्रहण करनेकी प्रवृत्तिसे, जिससे मानसिक सुख-शान्ति और वैचारिक समरसताको बनाये रखा जा सकता है। इस सम्बन्धमें हमें भरतके चित्रकूट-प्रस्थानका प्रसंग स्मरण करना चाहिये। जहाँ रामसे मिलनेके लिये जानेके पूर्व भरत राज्यकी व्यवस्थाको गम्भीरतासे लेते हुए विचार करते हैं कि सम्पत्ति—राज्य आदि सब रामका है। वे स्वामी हैं, मैं सेवक हूँ। मेरा धर्म स्वामीकी सम्पत्तिकी सुरक्षा और देखभाल है, ऐसा न करनेका परिणाम मेरे लिये भला नहीं होगा। अतएव मुझे प्रयत्नपूर्वक इसकी सम्यक् व्यवस्था और साज-सम्भाल करनी चाहिये। काश! ऐसा हमलोग भी सोच पाते—

संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साइँ दोहाई॥

(रा०च०मा० २।१८६।३-४)

अपनेको कर्ता और मालिक न मानकर मात्र देख-रेख करनेवाला ही मानना चाहिये, जिससे पक्षपात नहीं होगा, कर्तव्योंका सम्यक् पालन होगा और आवश्यकतानुसार सब कर्मोंका उचित निर्वहन करना सम्भव होगा। त्यागयुक्त भोग-भावना व्यक्तिको ही नहीं समाजको भी उपकृत करती है, जबकि मोह व्यक्ति ही नहीं समाजको भी संकटग्रस्त बनाता है। देखें—कारागारमें बंदी कैदी प्राप्त वस्त्र और बर्तनोंको अपना मानते हुए उनकी सुरक्षा करते हुए उसे साफ-सुथरा रखता है और जब कारागारसे मुक्त होता है, तब वह अपनी कोठरी, कम्बल, बर्तनसे मोह रखते हुए भी उससे लिपटकर रोता नहीं है; क्योंकि वास्तवमें उसने कभी सच्चे अर्थोंमें इन्हें अपना समझा ही नहीं था। यह है त्यागसे भोग करनेका अभिप्राय। हमें यह शाश्वत वैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं भूलना चाहिये कि कोई भी पदार्थ पहले उत्पन्न होता है, तब युवा होता है और फिर बूढ़ा होने लगता है, उसकी शक्ति नष्ट होने लगती है और अन्तमें उसकी समाप्ति हो जाती है।

वास्तवमें हमें यह याद रखना चाहिये कि समय कम और समस्याएँ अनन्त हैं। कहीं ऐसा न हो कि हमें अपने आत्मकल्याणके लिये कुछ करनेका समय ही न मिल पाये और हम मात्र धनकी मृगतृष्णाके पीछे ही दौड़ते रह जायँ। जबकि यहाँसे कोई भी धन-कुबेर धनकी गठरी लेकर जाते हुए नहीं देखा गया। अब रही बात मृत्यु, बुढ़ापा और कष्टोंकी तो इसे सहज भावसे लेना चाहिये; क्योंकि यह सब शाश्वत समस्याएँ हैं, जिनका निर्वहन प्रारब्ध करेगा ही, तो फिर चिन्ता क्यों?

प्रारब्ध पहले बना, पीछे बना शरीर।
कबीर अचम्भा है यही मन नहिं बाँधे धीर॥
कबीर सो धन संचिये, जो आगेको होय।
शीश चढ़ावे गाठरी, जात न देखा कोय॥

नामब्रह्मकी उपासनामें मनोयोगकी स्थिति

(पं० श्रीजानकीशरणजी द्विवेदी, व्याकरण-साहित्याचार्य)

शास्त्रोंमें भक्तिके दो भेद बताये गये हैं—वैधी और परा। वैधीभक्तिको साधनभक्ति कहा जाता है और परा या अनुरागात्मिकाभक्तिको साध्यभक्ति कहा जाता है। साधनभक्तिके अन्तर्गत भगवान्के गुण, नाम और लीलाका श्रवण, नाम-रूप-गुण-धामका कीर्तन, उनके नाम-रूपादिका स्मरण, परमात्माके चरणोंकी सेवा, अर्चा, उनका वन्दन, भगवान्का दास्य, उनका सख्य और उनके प्रति आत्मनिवेदन—ये नौ भेद माने जाते हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भा० ७।५।२३)

यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि युधिष्ठिरके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए पितामह भीष्मने नामकीर्तनको सर्वोत्कृष्ट साधन स्वीकार करते हुए कहा है—

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा॥

(श्रीविष्णुसहस्रनाम ८)

इस नामकीर्तनरूप आराधनाको सर्वाधिक बतानेका कारण क्या है, इसका उत्तर देते हुए शांकरभाष्यमें भगवान् शंकराचार्यने कहा है कि इस आराधनामें हिंसा आदि पापकर्मोंका अभाव है। इनमें किसी अन्य पुरुषकी, द्रव्यकी और देश-काल आदिके नियमकी अपेक्षा नहीं है, यही इसकी अधिक मान्यताका कारण है—

'अस्य स्तुतिलक्षणस्यार्चनस्याधिक्ये किं कारणम्। उच्यते—हिंसादि, पुरुषान्तरद्रव्यान्तरदेशकालादिनियमानपेक्षत्वम् आधिक्ये कारणम्।'

उपर्युक्त तथ्यको—

न देशकालनियमः शौचाशौचविनिर्णयः।
परं सङ्कीर्तनादेव राम रामेति मुच्यते॥
न देशनियमो राजन्न कालनियमस्तथा।
विद्यते नात्र सन्देहो विष्णोर्नामानुकीर्तने॥
कालोऽस्ति यज्ञे दाने वा स्नाने कालोऽस्ति सज्जपे।
विष्णुसङ्कीर्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीपते॥
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्वापि पिबन्भुञ्जञ्जपंस्तथा।
कृष्ण कृष्णेति सङ्कीर्त्य मुच्यते पापकञ्चुकात्॥

—इत्यादि वचन भी प्रमाणित करते हैं। इन वचनोंका निर्गलितार्थ यह है कि भगवन्नाम-कीर्तनमें देश और कालका नियम नहीं है, शौचावस्था अथवा अशौचावस्थामें भी राम-राम—ऐसा संकीर्तन करके प्राणी मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार नामब्रह्मसे सम्बन्धस्थापनकी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध हो जानेके अनन्तर यह देखना है कि नामब्रह्मसे सम्बन्ध बनानेमें अर्थात् राम-नामके उच्चारण करनेमें मनोयोगकी क्या स्थिति है। इस सन्दर्भमें विचार करनेपर हमें भगवान् पाणिनिके द्वारा रचित पाणिनीय शिक्षाकी ओर दृष्टि डालनी है। पाणिनीय शिक्षामें वर्णोच्चारणके सम्बन्धमें निम्नलिखित प्रक्रियाका निरूपण किया गया है—

आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान्मनोयुङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्॥
सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः।
वर्णाञ्जनयते....... ॥

इसका तात्पर्य यह है कि आत्मा अर्थात् अन्तःकरण संस्काररूपमें (सूक्ष्म रूपमें) स्थित स्वगत अर्थको बुद्धिका विषय बनाकर उस अर्थके बोधनकी इच्छासे मनसे सम्बन्ध स्थापित करता है, उसे प्रेरित करता है। बुद्धिविषयीभूत अर्थका बोध करानेकी इच्छासे युक्त मन कायाग्निको प्रताड़ित करता है, मनसे अभिहत कायाग्नि उदान वायुको प्रेरित करता है। उदान वायु ऊपर जाता हुआ शिरःकपालसे अवरुद्ध होकर पुनः लौटकर मुखमें स्थित कण्ठ-ताल्वादि स्थानोंमें आघात करके वर्णध्वनिको पैदा करता है।

उपर्युक्त वर्णोच्चारणकी प्रक्रियाका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि किसी शब्दके उच्चारण करनेके मूलमें मनोयोगका होना अपरिहार्य है। ऐसी स्थितिमें जब हमारी वागिन्द्रिय 'राम'शब्दका उच्चारण करती है, तो वागिन्द्रियके द्वारा उच्चरित होनेवाले 'र् आ म् अ'—इन प्रत्येक वर्णध्वनियोंकी अभिव्यक्तिके मूलमें मनोयोग रहता ही है।

वेदांगके प्रमुख आचार्य भगवान् पाणिनिके द्वारा निर्धारित की गयी इस उच्चारण-प्रक्रियाका यदि सामान्य जनको अनुभव न हो तो इससे पूर्वोक्त वर्णोच्चारणके सिद्धान्तमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। जो वाक्य आप्तपुरुषके द्वारा उच्चरित होते हैं, उन्हें शब्दप्रमाणके रूपमें स्वीकार किया जाता है। शब्दशास्त्रके प्रणेता पाणिनिमुनिका आप्तत्व वर्णोच्चारणकी प्रक्रिया-निर्वचनके सम्बन्धमें स्वत:सिद्ध है। प्रकृति-प्रत्यय-विभागके द्वारा साधुशब्दोंमें रहनेवाली साधुत्व नामकी जातिके अभिव्यंजक शब्दशास्त्रके निर्माता भगवान् पाणिनिमें वर्णोच्चारणकी प्रक्रियाभिज्ञता क्यों नहीं मानी जानी चाहिये?

भगवान् पाणिनि ही नहीं भगवती श्रुति भी कहती हैं कि—

मनसा वा अग्रे सङ्कल्पयत्यथ वाचा व्याहरति।

अर्थात् पहले मन बुद्धिविषयीभूत अर्थके प्रतिपादक शब्दके उच्चारणका संकल्प करता है, इसके बाद वाणीसे उस शब्दका उच्चारण करता है। और भी—

यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति।

अर्थात् मनसे जिस अर्थका ध्यान करता है, उस अर्थके प्रतिपादक शब्दको वाणीसे कहता है। इन श्रुतियोंसे भी यह भलीभाँति प्रकट है कि 'राम' शब्दोच्चारणके पूर्वमें बुद्धिविषयीभूत राम रूप अर्थका प्रतिपादन करनेमें समर्थ राम शब्दके उच्चारणका पहले मन संकल्प करता है, तत्पश्चात् वागिन्द्रियसे राम शब्दका उच्चारण होता है।

इन श्रुतियोंका उदाहरणके रूपमें उल्लेख करते हुए भगवान् आद्यशंकराचार्यने विष्णुसहस्रनामके चौदहवें श्लोकके शांकरभाष्यमें कहा है कि उपर्युक्त दोनों श्रुतियोंके बलसे स्मरण और ध्यानका भी नामसंकीर्तनके अन्तर्गत ही अन्तर्भाव हो जाता है।

वाल्मीकिरामायणमें श्रीहनुमान्‌जीने कहा है—

मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभाष्ववस्थासु...... इत्यादि ॥

—इस वचनसे भी यही सिद्ध होता है कि 'राम' शब्दके उच्चारणमें मनोयोगपूर्वक ही वागिन्द्रिय प्रवृत्त होती है।

इन सब सन्दर्भोंका पर्यालोचन करनेसे यह सिद्ध होता है कि कल्याणकामी पुरुषकी यदि जन्म-जन्मान्तरके पुण्यकर्मोंके फलीभूत होनेके कारण भगवन्नामजप या संकीर्तनमें प्रवृत्ति हो रही हो, तो उसके सम्मुख मनोयोगके बिना मशीनकी भाँति राम-राम रटनेसे कुछ नहीं होगा इत्यादि असम्बद्ध बात नहीं कहनी चाहिये।

पहले भगवन्नामके जपमें प्रवृत्त होनेपर बार-बार नामका विस्मरण होगा। विस्मरणकी स्थितिमें शास्त्रोंमें नामजपकर्ताको सावधान करते हुए लिखा है—

निमेषे समतिक्रान्ते हरेर्ध्यानविवर्जिते।
दस्युभिर्मुषितेनेव उच्चैराक्रन्दितुं वरम्॥

यदि एक निमेष भी भगवन्नामका विस्मरण हो जाय, तो लुटेरोंके द्वारा लुटे हुए व्यक्तिकी भाँति जोर-जोरसे आक्रन्दन करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि नामविस्मरणकी स्थितिको अपना सर्वस्व लुटा हुआ मानकर पुनः वेगपूर्वक नामजपमें लग जाना चाहिये। ऐसा करनेसे नामजपमें होनेवाली अरुचि नष्ट हो जायगी और नामजपका अभ्यास हो जायगा। अभ्यास होनेके अनन्तर निरन्तर जप करते रहनेपर नामज़पमें आनन्द प्राप्त होने लगेगा। तब भी अपनी साधनावस्था ही मानकर जप करते रहना चाहिये, जिससे रामनामानुराग बद्धमूल हो जायगा, बस काम बन गया। सन्तोंने इस नामजपरूप साधनभक्तिको साध्यके रूपमें भी अंगीकार किया है।

अब प्रश्न यह उठता है कि नामजपके समय मन इतस्ततः क्यों भ्रमण करता है? इसका समाधान यह है कि जपके समय जगत्‌का चिन्तन मनकी अतिशय चंचलताके कारण होता है—

न हि चञ्चलताहीनं मनः क्वचन विद्यते।
चञ्चलत्वं मनो धर्मो वह्नेर्धर्मो यथोष्णता॥

(लघुयोगवासिष्ठ ९। २३)

नामजपकी साधनासे उपर्युक्त मनकी चंचलता भी समाप्त हो जायगी। मन बाह्यविषयावलम्बनका परित्यागकर अन्तर्मुख हो जायगा और जो-जो साधकके कल्याणके लिये अपेक्षित होगा, वह सब परब्रह्म परमात्मा राम-नामकी कृपासे साध्य हो जायगा।

भ्रूणहत्या—एक जघन्य अपराध

(डॉ० शैलजाजी अरोड़ा)

वेद-शास्त्रमें दो प्रकारके पाप जघन्यतम बताये गये हैं—एक गर्भपात और दूसरा किसीके घरको जला देना। वस्तुतः भ्रूणहत्याका घिनौना कुकृत्य मानवजातिपर एक कलंक है। गर्भपात एक जीते-जागते निर्दोष शिशुकी निर्मम हत्या है। चूँकि यह शिशु मानवका है, अतः यह मानवहत्या है। भ्रूणहत्या एक अनैतिक, अन्यायपूर्ण, अधार्मिक एवं हानिकारक कृत्य है; क्योंकि यह एक ऐसे निर्दोष, निरीह, असहाय, निर्बल, निरपराध तथा मूक प्राणीकी हत्या है, जो अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकता और न ही अपनी रक्षाके लिये कोई प्रतिकार अथवा पुकार ही कर सकता है। उसका कोई अपराध भी नहीं है। फिर ऐसे निरपराध-निर्दोष प्राणीकी निर्ममतापूर्वक हत्या कर देना किसी महापराधसे कम नहीं है। हम यह भी नहीं जानते कि गर्भस्थ जीव कौन है, कैसा है।

जीव मनुष्यशरीरमें अवतरित होकर अपना और दूसरोंका भी उद्धार कर सकता है। वह देश और समाजकी सेवा कर सकता है। शास्त्रोंमें मानवको ईश्वरकी सर्वश्रेष्ठ कृति बताया गया है, परंतु स्वार्थ एवं भोगेच्छाके वशीभूत होकर उसकी हत्या कर देना एक ऐसा कुकृत्य है, जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। शास्त्रोंके अनुसार ऐसा महान् पाप करनेवालोंको घोर नरकोंकी भयंकर यातना भोगनी पड़ती है। पाराशरस्मृतिमें कहा गया है—ब्रह्महत्यासे जो पाप लगता है, उससे दुगुना पाप गर्भपात करानेसे लगता है। नारदपुराण (७।५३)-में तो यहाँतक कहा गया है कि गर्भपात करने-करानेवालेके उद्धारका कोई उपाय ही नहीं है। 'वृद्धसूर्यारुणकर्मविपाक' का कथन है कि 'गर्भपात करानेवालोंकी अगले जन्मोंमें सन्तान नहीं होती।'

धर्मशास्त्रोंमें **'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव'** कहकर माता-पिताको सन्तानके द्वारा पूजित बताया गया है। कहा गया है कि माँ-बापके समान शरीरका पालन-पोषण करनेवाला दूसरा नहीं है—**'मातृसमं नास्ति शरीरपोषणम्'** और आज स्वयं माता-पिता ही गर्भस्थ शिशुकी हत्या करनेपर उतारू हो गये हैं। इसे दुर्भाग्य और कुबुद्धि ही कहा जा सकता है। **'माता कुमाता न भवति'** की उक्तिको आजकी तथाकथित माताओंने भुला ही दिया है। आजकल गर्भपातको प्रोत्साहन देकर इसको आर्थिक और सामाजिक दृष्टिसे उचित ठहराना एक फैशन बनता जा रहा है। माता-पिता अपनी ममताकी, अपने मासूम बच्चोंकी इस प्रकार हत्या करवा रहे हैं; जैसे उन्होंने जीवहत्या न करके साधारण-सी शल्यचिकित्सा करवायी हो और एक बड़े बन्धनसे मुक्ति पा ली हो। समझमें नहीं आता कि ऐसे घिनौने नृशंसका ताण्डव कैसे सम्भव हो जाता है अपने ही माँ-बापके लिये? वे आखिर यह क्यों भूल जाते हैं कि वे जिस भ्रूणको समाप्त करनेका कुकृत्य कर रहे हैं, वह स्वयं उनका ही अंश है। ऐसा नहीं है कि अशिक्षित महिलाएँ ही यह कुकृत्य कर रही हैं, अपितु यह कार्य आधुनिक तथा पढ़ी-लिखी महिलाओंद्वारा अधिक किया जा रहा है।

सामान्यतः लोगोंका यह मानना है कि जबतक गर्भस्थ शिशु चार-पाँच माहका नहीं हो जाता, तबतक वह मांसका मात्र एक पुलिन्दा है, पर यह भ्रान्ति है। गर्भाशयमें जीवनलीलाकी गाथा तो अण्डाणु और शुक्राणुके संगठित होते ही शुरू हो जाती है। तभी तो उसके आकारमें इतनी तेजीसे वृद्धि होती है और यही उसके जीवन्त होनेका प्रमाण है।

अमेरिकन डॉक्टर बेनार्ड नाथेन्सनद्वारा निर्मित फिल्म दी साइलेण्ट स्क्रीमकी वीडियो कैसेटमें दिखाया गया है कि किस प्रकार गर्भस्थ भ्रूण अपनी माताकी कोखमें शल्य औजारोंसे जकड़ा हुआ जीवनके लिये क्रन्दनभरा संघर्ष करता है। भ्रूणहत्याके दृश्य इतने हृदयविदारक थे, जिसे देखनेके बाद गर्भपात करनेवाला डॉक्टर भी रुआँसा होकर क्लीनिकसे चला गया तथा कभी लौटकर नहीं आया। ज्ञातव्य है कि दुनियाके लाखों चिकित्सकोंने इस फिल्मको देखनेके बाद गर्भपातका घिनौना ताण्डव रचना बन्द कर दिया है। मनुष्यद्वारा किसी निर्दोषकी हत्या किये जानेपर उसे अदालतद्वारा आजीवन कारावास अथवा फाँसीकी सजा सुनायी जाती है। गर्भपात भी तो एक निर्दोष प्राणीकी निर्मम हत्या है। जब किसी निर्दोषकी हत्याका प्रकरण घटित होता है तो आहत व्यक्तिके भाई-बहन, माँ-बाप, सगे-सम्बन्धियोंद्वारा न्याय प्राप्त करनेकी प्रक्रिया अपनायी

जाती है, पर जिस हत्याको करनेमें स्वयं माँ-बापकी सभागिता हो, ऐसे अपराधपूर्ण पापके प्रति न्यायिक प्रक्रियाकी आवाज कौन उठाये?

अब प्रश्न उठता है कि भ्रूणहत्या-जैसे बढ़ते जघन्य अपराधका कारण क्या है? मुख्य रूपसे उसके तीन कारण हैं—एक है अवैध सन्तानको नष्ट करना। दूसरा है परिवारनियोजन और तीसरा है बेटेकी चाहतमें बेटीके भ्रूणको खत्म करना। जहाँतक अवैध सन्तानका प्रश्न है, यह कहना उचित होगा कि कोई बच्चा नाजायज नहीं होता बल्कि नाजायज होते हैं बच्चेके माँ-बाप। अपने कुकर्मको छिपानेके लिये गर्भस्थ भ्रूणकी हत्या करना कहाँतक उचित है? इसके लिये नैतिक आचरणकी आवश्यकता है, जैसा कि पंचतन्त्र (३। ९४)-में कहा गया है—

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

अर्थात् शरीर अनित्य है, ऐश्वर्य भी सदा नहीं रहेगा और मृत्यु सदैव निकट स्थित रहती है। इस कारण केवल धर्मका संग्रह करना चाहिये अर्थात् मनुष्यको सदैव नैतिक आचरण ही करना चाहिये।

आजकल कन्या-भ्रूणहत्याके मामले अधिक सामने आ रहे हैं। समाजमें अधिकांश लोग बेटीकी अपेक्षा बेटा ही चाहते हैं। अल्ट्रासाउण्ड करानेके बाद अगर बेटी होनेका पता चल जाय तो अनेक परिवार गर्भपात करा लेते हैं। कैसी विडम्बना है कि कहाँ तो नवरात्रोंमें छोटी-छोटी कन्याओंको माँ-दुर्गाका स्वरूप मानकर उनकी पूजा की जाती है और कहाँ इसके विपरीत कन्या-भ्रूणहत्या करके घोर पाप किया जाता है।

अच्छा यही है कि आजका समाज समय रहते कन्याभ्रूणहत्याके पापसे बचे। परमात्माने जो भी बेटा या बेटी दी है, उसे सहर्ष स्वीकार करे। हिन्दूधर्ममें विवाह-संस्कार इसलिये सम्पन्न कराया जाता है ताकि सृष्टिका चक्र चलता रहे। संसारचक्र को चलाना परमात्माके कार्यमें सहयोग करना माना जाता है।

भ्रूणहत्याकी बढ़ती समस्याके निवारणहेतु सर्वश्रेष्ठ उपाय है—संयम। हमारे देशमें संयमकी सदा प्रधानता रही है। शास्त्रोंमें केवल सन्तानोत्पत्तिके लिये स्त्री-पुरुषके सहवासका विधान किया गया है। अतः अपनी बढ़ती भोगप्रवृत्तिपर अंकुश लगाना चाहिये। वासनापूर्तिके लिये गर्भपातके नामपर गर्भको जन्मसे पूर्व ही मिटाकर प्रकृतिके आधारभूत सिद्धान्तका हनन करना किसी भी प्रकार उचित नहीं है।

भ्रूणहत्याको रोकनेके लिये एक सशक्त तथा कड़े कानूनकी भी आवश्यकता है। गर्भपातको न केवल अवैध घोषित किया जाना चाहिये, अपितु इसपर उसी सजाका प्रावधान होना चाहिये जो एक जीवित व्यक्तिकी हत्यापर लागू होता है। साथ ही शिक्षाद्वारा समाजिक मान्यताओंमें परिवर्तन तथा पाश्चात्य संस्कृति एवं आधुनिकीकरणके नामपर नग्नप्रदर्शन एवं यौन-स्वच्छन्दता और उससे उत्पन्न बलात्कार तथा अवैध गर्भोंपर रोक लगाना भी अत्यावश्यक है। भारतके उच्चतम न्यायालयने वर्ष १९९४ ई०में अपने एक महत्त्वपूर्ण निर्णयमें कहा था कि किसीका जीवन लेना न केवल अपराध है, अपितु धार्मिक दृष्टिसे एक पापमय कृत्य भी है। गर्भाधानके समयसे ही भ्रूणको एक मानवजीवन माना जाता है।

भ्रूणहत्याके व्यापक दुष्परिणाम हो सकते हैं। गर्भपात केवल स्त्रीकी भावनाओंको ही नहीं, अपितु उसके शरीरको भी गम्भीर नुकसान पहुँचाता है। गर्भपात महिलाके दूसरे गर्भधारणमें कठिनाई पैदा कर सकता है, इसके अलावा गर्भपातके पश्चात् स्त्रीको रक्तस्राव, रोगसंक्रमण, मानसिक रोग आदिकी परेशानी पैदा हो सकती है। व्यक्तिगत परेशानियोंके अलावा कन्या-भ्रूणहत्याओंके कारण समाजमें स्त्री-पुरुष-जनसंख्याका अनुपात भी निरन्तर गड़बड़ा रहा है। ताजा जनगणनाके अनुसार देशमें पुरुष-महिला-अनुपात १००० पुरुषोंकी तुलनामें मात्र ८९३ महिलाओंका रह गया है।

आँकड़ोंसे स्पष्ट है कि यदि हम समय रहते सावधान नहीं हुए तो भविष्यमें व्यभिचार, नैतिक पतनके साथ ही अनेक सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओंका सामना करना पड़ेगा और हमारा देश घोर संकटमें फँस जायगा।

अतः समझदारी इसीमें है कि हम सब मिलकर इस जघन्य कन्या-भ्रूणहत्यापर समय रहते विराम लगायें। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि नारीकी पूर्णता माँ बननेमें ही है, वह तो ममतामयी जननी है और ममताको सुरक्षित रखना नारीका परम कर्तव्य है।

कहानी—

हमीद खाँ भाटीकी गो-सेवा

(श्रीरामेश्वरजी टाँटिया)

प्रत्येक गाँव या कस्बेमें कभी-कभी ऐसे व्यक्ति हो जाते हैं, जिनको बहुत समयतक लोग याद किया करते हैं और उनकी अमिट छाप जनमानसपर अंकित हो जाती है। इस प्रकारके मनुष्य केवल धनी अथवा विद्वान् घरानोंमें ही पैदा होते हैं, ऐसी बात नहीं है।

बीकानेरके उत्तरमें पूगल नामका इलाका है। कहा जाता है, किसी समयमें यहाँ पद्मिनी स्त्रियाँ होती थीं। जो भी हो, आजकल तो वहाँ वीरान, रेतीली बंजर-भूमि है। पीनेके पानीकी कमी रहती है। इसलिये गाँव भी छोटे और दूर-दूर हैं।

यहाँके बासिन्दोंका मुख्य धन्धा भेड़ पालना है। थोड़ेसे ब्राह्मण और बनिये हैं, जो लेन-देन या दुकानदारीका काम करते हैं। उनके सिवा यहाँ मुसलमान गूजरोंकी पर्याप्त संख्या है, जिनके पास बेहतरीन किस्मकी गायें हैं। वे इनका दूध-घी बेचकर अपना निर्वाह करते हैं। कहावत है—'सेवासे मेवा मिलता है', शायद इसीलिये इनकी गायें दूध ज्यादा देती हैं और अच्छी नस्लके बछड़े-बछड़ियाँ भी।

सन् १९५१ ई० में इस तरफ भयंकर अकाल पड़ा था। कुओंमें पानी सूख गया। घरोंमें जो थोड़ा-बहुत घास और चारा बचा हुआ था, उससे उस वर्ष किसी प्रकार पशुओंकी जान बची। अब दूसरे वर्ष भी वर्षा नहीं हुई और अकाल पड़ गया तो यहाँके लोगोंकी हिम्मत टूट गयी।

कलकत्तेकी मारवाड़ी-रिलीफ सोसाइटीने दोनों वर्ष ही वहाँ राहतका काम किया था। मैं भी दूसरे वर्ष कुछ समयतक उस सिलसिलेमें वहाँ रहा, हम देखते कि नित्य प्रति हजारों स्त्री-पुरुष और बच्चे अपने ढोरोंको लिये पैदल कोटा, बारां और मालवाकी तरफ जाते रहते थे। ४-५ महीनोंके बाद वापस आनेकी सम्भावना रहती, इसलिये घरका सारा सामान भी गायों और बैलोंपर लदा हुआ रहता। घर छोड़कर जानेमें दुःख होना स्वाभाविक है और फिर अभावोंसे घिरी हुई हालतमें। बीहड़ लम्बा रास्ता, वैशाखकी गर्मी, इसलिये सबके चेहरोंपर दुःख एवं थकानकी स्पष्ट छाया नजर आती थी। रास्ता काटनेके लिये स्त्रियाँ भजन गाती हुई चलतीं। उन लोगोंसे पूछनेपर प्रायः एक-सा ही उत्तर मिलता कि पानी, अनाज, घास और चारा मिलता नहीं, क्या तो हम खायें और क्या इन पशुओंको खिलायें?

हमें पूगल क्षेत्रके गाँवोंके सीमान्तपर गाय-बैलोंके बहुतसे कंकाल और लाशें देखनेको मिलीं। पता चला कि बूढ़े बैलों और गायोंको उनके मालिक जंगलोंमें छोड़ गये। यहाँ भूख, प्यास और गर्मीसे इनके प्राण निकल गये।

कई बार तो सिसकती हुई गायें भी दिखायी दीं। उनके लिये यथाशक्ति चारे-पानीकी व्यवस्थाकी गयी, परंतु समस्या इतनी कठिन थी कि यह बन्दोबस्त बहुत थोड़े पैमानेपर ही हो सका। यह भी पता चला कि अच्छी हालतके लोगोंने भी पानी और चारेकी कमीके कारण बेकाम गाय-बैलोंको मरनेके लिये जंगलमें छोड़ दिया है। ज्यादातर घरोंमें इस प्रकारकी वारदातें हो चुकी थीं। इसलिये कोई आपसकी निन्दा-स्तुतिकी गुंजाइश भी नहीं थी।

यहींके एक गाँवमें एक दिन दोपहरके समय मैं पहुँचा, धरती गर्मीसे धू-धू करके जल रही थी। अंगारोंके समान तपती हुई रेतकी आँधी चल रही थी। तालाबों और कुओंमें पानी कभीका सूख गया था। लोग १०-१५ मीलकी दूरीसे पानी लाकर प्यास बुझाते, अधिकांश लोग गाँव-इलाका छोड़कर चले गये थे, कुछ ब्राह्मण और बनिये बचे हुए थे। यहीं मैंने हमीद खाँ भाटीके बारेमें सुना और उसके घर जाकर मिला।

घर कच्चा था; पर साफ-सुथरा और गोबरसे लिपा-पुता। हमीद खाँकी उम्र ६५-७० वर्षके लगभग थी। शरीरका ढाँचा देखकर पता लगा कि किसी समय काफी बलिष्ठ रहा होगा। अब तो हड्डियाँ निकल आयी थीं,

चेहरेपर गहरी उदासी छायी थी।

दुआ-सलामके बाद मैंने पूछा, 'खाँ साहब! गाँवके प्राय: सारे लोग चले गये फिर आप क्यों यहाँ इस तरहकी किल्लतमें अकेले रह रहे हैं?'

वे कुछ देरतक तो मेरी तरफ फटी-फटी आँखोंसे देखते रहे, फिर कहने लगे, 'अल्लाह मालिक है, उसका ही भरोसा है। कभी-न-कभी तो वर्षा होगी ही। बेटे-बहुएँ बच्चों और धन (यहाँ गाय-बैल, ऊँट आदिको धन कहते हैं)-को लेकर एक महीने पहले ही मालवा चले गये हैं। मुझे भी साथ ले जानेकी बहुत जिद करते रहे, पर भला आप ही बताइये, अपनी धौली और भूरी दोनोंको छोड़कर कैसे जाऊँ? इन दोनोंसे तो एक कोस भी नहीं चला जाता। (धौली और भूरी इनकी बूढ़ी गायें थीं, जिनमें एक लंगड़ी और दूसरी बीमार थी)।

आज इनकी इस प्रकारकी हालत हो गयी है, नहीं तो दोनोंने न जाने कितने नाहर-भेड़ियोंसे मुठभेड़ ली है। दूध भी इनके बराबर आस-पासके गाँवोंमें किसी गायके नहीं था। ३-४ सेर तो बछड़े ही पी जाते, फिर भी १०-१२ सेर प्रत्येकका हमारे लिये बच जाता।

ये दोनों मेरे घरकी ही बेटियाँ हैं, जिस वर्ष मेरे छोटे लड़के फत्तेका जन्म हुआ था, उसके लगभग ही ये दोनों जन्मी थीं। बीस वर्षतक हम लोग इनका दूध पीते रहे। अब आप ही बताइये बुढ़ापेमें इन्हें कहाँ निकाल दूँ? भला कोई अपनी बहन-बेटीको घरसे थोड़े ही निकाल देता है?' बातें करते हुए उनकी आवाज रुआँसी हो आयी थी। देखा, उनकी धुँधली आँखोंसे टप-टप आँसू गिर रहे हैं।

बातें तो और भी करना चाहता था, परंतु इतनेमें सुनायी दिया कि बाहरसे सहनमें धौली और भूरी रँभा रही हैं, शायद भूखी या प्यासी होंगी। हमीद खाँ उठकर बाहर चले गये।

गाँवके मुखिया पं० बंशीधरके साथ ८-१० व्यक्ति रातमें मिलनेको आये। उनके कहनेके अनुसार ५० वर्षोंमें ऐसा भयंकर अकाल नहीं पड़ा था। हमीद खाँकी बात चलनेपर उन्होंने कहा, 'हमीद खाँ भी जिद्दी कम नहीं है। अपने लिये दो जूनका खानातक नहीं जुटा पाता, पर इन दोनों गायोंपर जान देता है। दिनमें धूप बहुत हो जाती है, इसलिये रातको दो बजे उठकर ५ मील दूर स्थित तालाबसे दोनोंके लिये एक मटका पानी लाता है। घरवाले जो अनाज छोड़कर गये थे, उसमेंसे बहुत-सा बेचकर इनके लिये चारा और भूसा खरीद लाया। जब वह चुक गया तो अपना मकान ऊँचे ब्याजपर गिरवी रखकर और चारा लिया है।'

गर्मीके मौसममें भी इस तरफ रातें ठण्डी हो जाती हैं, परंतु मुझे नींद नहीं आ रही थी। सोच रहा था—क्या वास्तवमें ही हमीद खाँ मूर्ख और जिद्दी है? बातचीतसे तो ऐसा नहीं लग रहा था। हाँ, एक बात समझमें नहीं आयी, वह तो मुसलमान है; जिसके लिये गाय 'माता' नहीं है, फिर क्यों इन दो बेकाम गायोंके पीछे नाना प्रकारके कष्ट सहकर इनके चारे-पालेके लिये अपना मकान गिरवी रख दिया है। थोड़े दिनों बाद मूल और ब्याज बढ़कर इतना होगा कि चुकाना असम्भव हो जायगा। जब उसके बाल-बच्चे मालवासे थके-हारे वापस आयेंगे तो उन्हें शायद अपना पैतृक घर छोड़ देना पड़ेगा।

जानेसे पहले एक बार फिर हमीद खाँसे मिलनेकी इच्छा हुई। बहुत सुबह वहाँ जाकर देखा कि वे धौली और भूरीके शरीरपर तन्मय होकर हाथ फेर रहे हैं और वे दोनों बड़ी ही करुण दृष्टिसे उनकी तरफ देख रही हैं, शायद कह रही होंगी कि गाँव छोड़कर सब चले गये, फिर भी तुम इस प्रकार भूखे-प्यासे रहकर मृत्युके मुखमें जा रहे हो। हमें अपने भाग्यपर छोड़कर बच्चोंके पास चले जाओ।

सोसाइटीकी तरफसे थोड़ी-बहुत व्यवस्थाकर मैं मन-ही-मन उस अपढ़ मुसलमानको प्रणाम करके भारी मनसे उस गाँवसे रवाना हुआ। १५ वर्ष बाद भी हमीद खाँका वह गमगीन चेहरा आजतक भुला नहीं पाया हूँ; अभीतक मनमें यह जिज्ञासा बनी हुई है कि वास्तविक गो-रक्षक उस गाँवके पं० बंशीधर और लाला रामकिशन हैं या हमीद खाँ भाटी। [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टाँटिया]

आयुर्वेदमें भस्मोंका महत्त्व

आयुर्वेद-चिकित्सा-विज्ञानमें अस्थि, खनिज, धातु आदिकी भस्मोंका निर्माण एवं प्रयोग इसके प्रादुर्भावकालसे ही प्रचलित है। इनका प्रयोग वैद्यजन विविध जटिल बीमारियोंपर करते आ रहे हैं। यथा—मृगशृंगभस्म, हाथी-दाँतकी भस्म, स्वर्णभस्म, रौप्यभस्म, लौहभस्म, स्फटिकभस्म, बंगभस्म, शंखभस्म, करपदभस्म, टंकणभस्म, मयूरचन्द्रिका-भस्म आदि।

इन भस्मोंका निर्माण कुशल वैद्यके द्वारा ही सही ढंगसे किया जाता है। अधिकांश भस्में महँगी होती हैं, हर साधारण व्यक्ति इनका निर्माणकर उपयोग नहीं कर सकता है। अतः इनका प्रचलन वर्तमानमें एलोपैथिक दवाइयोंकी चकाचौंधमें अत्यन्त न्यून मात्रामें हो गया है। एलोपैथीसे अर्थार्जन अच्छा होता है। अतः कुछ वैद्यजन भी अब आयुर्वेदकी आड़में एलोपैथीके माध्यमसे चिकित्सा करने लगे हैं।

यहाँ कुछ ऐसी भस्मोंका विवरण प्रस्तुत है, जिनका निर्माण सरल और सस्ता है तथा भस्मोंका कच्चा पदार्थ भी आसानीसे मिल जाता है और ये उपयोगमें निरापद भी हैं। अर्थात् इनसे लाभ तो होगा ही नुकसान किसी भी दशामें नहीं है। इनके प्रयोगसे व्यक्ति आर्थिक बोझसे बच जाता है। अतः सर्वसाधारण इसका प्रयोगकर स्वास्थ्य लाभ कर सकते हैं।

(१) मयूरचन्द्रिका-भस्म—यह मोरके चंदेलेकी भस्म है, पंखके ऊपरका चंदेला काटकर दीपककी लौमें जलाकर खरलमें पीसकर महीन कर लें। इसे १ रत्तीसे ३ रत्तीतक शहदके साथ रोगीको चटानेसे हिचकी, वमन, श्वास रोगमें तत्काल लाभ होता है। इसे दिनमें तीन-चार बार दे सकते हैं।

(२) कम्बल-भस्म—यह शुद्ध ऊनी कम्बलकी भस्म है। कम्बलके अभावमें भेंड़की ऊन ठीकसे साफ करके जलाकर कपड़ेमें छानकर भस्म तैयार कर लें। इसे १ से ३ रत्तीतक शहदके साथ मिलाकर चटानेसे स्त्रियोंके रक्तप्रदरमें तत्काल लाभ होता है। आवश्यकताके अनुसार दिनमें तीन बार प्रयोग करें। एक-दो दिनमें पूर्ण लाभ हो जाता है। (बच्चेदानीमें कोई खराबी न हो तो)

(३) हाथीदाँतकी भस्म—किसी मटकीमें हाथी-दाँतका चूर्ण डालकर कपड़ा-मिट्टीसे मुँह बन्दकर कण्डेकी आगमें दबाकर दो-तीन घण्टे रख दें। बादमें स्वांगशीत होने दें। (स्वयं ठण्डा होने दें।) फिर भस्म निकालकर पीस लें। इस प्रकार हाथीदाँतकी भस्म तैयार है।

इसमें बराबरकी मात्रामें रसोंत (पंसारीके यहाँ मिलती है) मिलाकर बकरीके दूधमें घोटकर गंजे सिरमें लगायें। एक-दो सप्ताह प्रयोग करें। बाल उग आते हैं। (जले हुए स्थानपर बाल नहीं उगेंगे)

(४) पीपलके पत्तोंकी भस्म—बसन्त (पतझड़)-में पीपल वृक्षसे गिरे पत्ते एकत्रकर साफ कर लें, फिर उन्हें जलाकर भस्म कर लें। उसे पीसकर कपड़ेसे छान लें। ५ ग्रामकी मात्रामें समान भाग शहदसे दिनमें दो बार लगभग २१ दिन या ३१ दिन लगातार लेनेसे दमारोग हमेशाके लिये चला जाता है।

(५) पीपलके छिलकेकी भस्म—पीपलके छिलके जलाकर भस्म बना लें, पीस-छानकर सीसीमें भर लें। इसे आधा तोला लेकर १ तोला मिश्री मिलाकर बासी पानीसे नित्य ७ दिनतक प्रातः लेनेसे रक्तप्रदर एवं श्वेतप्रदरमें लाभ होता है।

(६) नीमके पत्तोंकी भस्म—नीमके ताजे पत्ते छायामें सुखाकर फिर जलाकर भस्म तैयार कर लें। इसे नित्य दिनमें तीन बार १-१ चम्मचकी मात्रामें जलके साथ फाँक लें। कुछ दिनमें सभी प्रकारकी पथरीमें लाभ होता है।

(७) नारियल-जटा-भस्म—नारियलके ऊपरकी जटाओंको साफकर सम्पुट विधिसे भस्म तैयारकर पीस एवं छान लें। ४-५ ग्रामकी मात्रामें दहीमें मिलाकर एक

सप्ताहतक लेनेसे खूनी बवासीरमें लाभ होता है।

(८) नारियल नारेटी भस्म—नारेटीके ऊपरके सब रेशे दूरकर उस नारेटीको जलाकर भस्म तैयार कर लें। इस भस्मको नारियलके शुद्ध तेलमें खूब घोटकर मलहम बना लें। इसे कुछ दिन दाद एवं छाजन (एग्जिमा)-पर लगानेसे रोग जड़से साफ हो जाता है।

(९) बादामके छिलकोंकी भस्म—बादामके छिलके और मोरसली वृक्षकी छालको जलाकर भस्म बनाकर उसमें आधा भागमें फिटकरी भस्म डालें तथा १/४ भाग सेंधा नमक डालकर दन्तमंजन बनाकर उपयोग करें। दाँतोंके लिये लाभदायक है।

(१०) कागज भस्म—कागजको जलाकर उसे पानीमें घोलकर पिलानेसे बच्चोंका अफीमका नशा उतर जाता है।

हमारे यहाँ भस्मका प्रयोग परम्परासे होता आ रहा है। भगवान् शंकरने सर्वप्रथम भस्मका प्रयोग करना सिखाया है। वे स्वयं शरीरपर भस्म लगाकर रहते हैं जबकि और कोई देवता इसका प्रयोग नहीं करते। इसका वैज्ञानिक कारण भी है। भगवान् शंकर कैलासपर्वतपर निवास करते हैं। जहाँ भारी ठण्डक होती है। हवाका प्रभाव शरीरपर होता है, परंतु भस्ममें शरीर-रक्षाके भारी गुण हैं। साधु लोग जो शंकरजीकी तरह जटाधारी होकर गाँवसे बाहर बाग-बगीचोंमें या जंगलोंमें रहते हैं, वे आज भी भस्म लेपनकर शरीर-रक्षा करते हैं। उनका शरीर रोगमुक्त एवं शारीरिक-मानसिक व्याधियोंसे परे होता है। उनको सांसारिक मोह नहीं सताता। इस प्रकार भस्मका वर्णन अकथनीय है। देव-मन्दिरोंपर हवनकी भस्मको प्रसाद-स्वरूप खानेसे एवं तिलक लगानेसे शरीरके रोग दूर हो जाते हैं। हमारे यहाँ देव-मन्दिरोंपर प्रसादसे ज्यादा महत्त्व हवनकी भस्मका होता है।

उज्जैनमें भगवान् महाकालकी भस्मी-आरतीका बड़ा महत्त्व है। श्रद्धालु लोग यथा समय दर्शनको जाते हैं और भस्मी-आरतीका लाभ लेते हैं। [**वैद्य श्रीमोहनलालजी गुप्त, आयुर्वेदरत्न, सुठालिया, जि०-राजगढ़ (म०प्र०)**]

पापमें आकर्षण है, सावधान!

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र)

पापमें आकर्षण है। मनुष्य उस क्षणिक आकर्षणके वशीभूत होकर विवेक-बुद्धिको खो बैठता है। अपने आध्यात्मिक स्वरूपको विस्मृत कर बैठता है और पापपंकमें फँस जाता है। शैतानका मायाजाल कुछ ऐसा मादक-मोहक है कि अनुभवशून्य व्यक्ति उसे गहरी अन्तर्दृष्टिसे नहीं देख पाता। यदि पापमें आकर्षण न हो, तो कोई पाप करे ही क्यों?

विश्वामित्र गहन तपश्चर्यामें लीन थे। दिन-रात चित्त एकाग्रकर अपने योगबलसे इन्द्रका सिंहासन जीत लेना चाहते थे। इतनेमें ही निर्जन वनमें एक मधुर कण्ठसे निकला हुआ गीत आकर उनके हृदयकी तन्त्रीसे लगा। कहाँ निर्जन वन और कहाँ नारीका मधुर गीत। वे छिपकर देखने लगे कि स्वर कहाँसे आ रहा है। उन्होंने देखा मेनकाका लावण्य, सौन्दर्यकी मूर्ति, विश्वको विचलित करनेवाली माया। वे उसके आकर्षणमें फँस गये। तपस्वीका चित्त चलायमान हो गया। उन्होंने उसका पाणिग्रहण किया। कुछ मास पश्चात् मेनका उनका तप भंगकर भाग खड़ी हुई। महर्षिको भयंकर पश्चात्ताप एवं आत्मग्लानि हुई। हजारों बिच्छुओंके काटने-जैसी असहनीय पीड़ासे कातर होकर वे बोले—

'यह मेनका थी स्वर्गकी अप्सरा! धोखा, छल, माया! हाय! नारीके रूपमें कितना जादू है! विश्वामित्र, अब तुम योगभ्रष्ट तपस्वी हो। यदि पापमें आकर्षण न हो, तो कोई पाप करे क्यों? मेरे जीवनकी यह दूसरी हार है। मेनकाके रूपने मेरी बुद्धिपर परदा डाल दिया था। मेनके! मैं तुमसे घृणा करता हूँ। तुमसे ही नहीं, तुम्हारे ध्यानतकसे घृणा करता हूँ। पापिनि! मैं अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ा जा रहा था, तुम मेरे मार्गमें बाधा होकर आ गयी। मेरे जीवनकी

तपस्या मिट्टीमें मिल गयी!'

यह है, पापके क्षणिक आकर्षणमें फँसकर लक्ष्य-भ्रष्ट होनेवाले साधककी करुण पुकार—पश्चात्तापके आँसू, कर्तव्यच्युत तपस्वीकी आत्माका हाहाकार। इस पश्चात्तापमयी स्थितिमें हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति तनिक-सा असावधान होकर पड़ सकता है।

भर्तृहरिने कहा है, 'नीतिज्ञजन निन्दा करें या स्तुति, लक्ष्मी आये या जाये, आज ही मरण हो अथवा युगान्तरमें हो, परंतु न्याय-मार्गसे विवेकीजन एक पद भी नहीं हटते।' चित्तकी वृत्तियोंका निरोध करना ही 'योग' कहलाता है।

आकर्षण एक मायाजाल है, जिसमें कम बुद्धि और हलकी चित्त-वृत्तिके व्यक्ति सहज ही फँसते हैं। जो वस्तु बाहरसे जितनी अधिक आकर्षक है, वह वास्तवमें अन्दरसे उतनी ही खोखली, अपूर्ण और विषैली हुआ करती है।

दूरीमें आकर्षण है। जबतक वस्तुएँ दूरीपर हैं, तबतक बड़ी आकर्षक प्रतीत होती हैं, किंतु ज्यों-ज्यों वे समीप आती हैं, उनका आकर्षण क्रमशः क्षीण होता जाता है। अत्यधिक बनाव-शृंगारकर अपना बाह्य रूप आकर्षक बनानेवाले व्यक्ति अपनी आन्तरिक कुरूपताको ढकनेमें यह उद्योग किया करते हैं। फैशनकी पोशाक, अधिक बनाव और आभूषण आदि अन्दरकी कुरूपताको छिपानेके ही उपाय हैं।

कहते हैं प्रारम्भिक युगमें जब आदम-हव्वा स्वर्गके एक मनोरम उद्यानमें रहते थे, शैतानने एक आकर्षक अजगरका रूप धारणकर उन्हें वर्जित वृक्षके फल खानेके लिये उत्सुक किया था। आदम मनीषी थे। उनपर आकर्षणका कुछ प्रभाव न पड़ा, किंतु उनकी पत्नी हव्वापर आकर्षणका मायाजाल चल गया। वह अपने-आपको न रोक सकी और उसने वर्जित वृक्षका फल खा ही लिया, जिसके दण्डस्वरूप उन्हें स्वर्ग छोड़ देना पड़ा।

जब सीताजीने मायावी मारीचका हरिनवाला आकर्षक स्वरूप देखा, तब उसका मृगचर्म प्राप्त करनेकी भावना उनके मनमें उदित हुई। उन्होंने पतिदेवसे उसे प्राप्त करनेका अनुरोध किया तथा अप्रत्याशित कठिनाइयोंकी शिकार बनीं। यदि आकर्षणसे उद्भूत उस मोहजालसे वे अपनेको संयमित कर पातीं, तो वे अनेकों कठिनाइयोंसे बच सकती थीं (यह दूसरी बात है कि भक्तोंकी दृष्टिमें यह सब उनकी लीला थी)।

आकर्षणका प्रभाव पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंपर विशेष रूपसे होता है; क्योंकि वे स्वभावतः कलाप्रिय और भावुक होती हैं। उन्हें अपनी मनोवृत्तियोंपर आसानीसे काबू नहीं होता। सामाजिक जीवनमें आकर्षक रूप धारणकर झूठी बातें बना अनेक दुष्ट उन्हें पथ-भ्रष्ट कर देते हैं। अतः उन्हें आकर्षणके मोहजालसे विशेष सावधान रहनेकी आवश्यकता है। 'सब चमकनेवाला सोना नहीं होता'—इस उक्तिका तथ्य एवं अनुभव तभी प्रकट होता है, जब हम प्रत्येक आकर्षक व्यक्तिमें सज्जनताका आरोप करते हैं।

बाहरसे आकर्षक लगनेवाले व्यक्ति आन्तरिक विकासकी दृष्टिसे ही शून्य नहीं होते, वरं प्रायः अनैतिक भी हो सकते हैं। इसी प्रकार आकर्षक विज्ञापनोंद्वारा सनसनी पैदा करनेवाले माल, दैनिक व्यवहारकी वस्तुएँ, खूबसूरत रैपरोंमें लिपटी हुई साबुनें, हेयर आयल, इत्र, अगरबत्तियाँ, रंग-बिरंगे कपड़े, पुस्तकें छलपूर्ण होती हैं। साबुन लपेटनेवाले कागजमें खुशबू लगाकर क्षणिक आकर्षण उत्पन्न कर दिया जाता है, जब कि उसमें खुशबू अत्यल्प होती है। बच्चोंको लुभानेवाले बिस्कुट, चाकलेट, मिठाईकी गोलियाँ अपने स्थायी लाभके कारण नहीं, वरं बाहरी आकर्षणके कारण ही बिकती हैं।

आकर्षणके थोथे-उथले मायाजालसे सावधान रहें। दूरसे आकर्षित करनेवाली वस्तुको समीपसे ध्यानपूर्वक देखनेसे उनकी वास्तविकताका रहस्य आपपर प्रकट हो जायगा और आप अनेक पाप, अपकीर्ति तथा हानियोंसे बच जायँगे। उस क्षणिक सुख, आकर्षक वस्तु या मोहवश किये हुए कार्यसे क्या लाभ, जो आपको जीवनपर्यन्त दुःखके समुद्रमें ढकेल दे!

सच्चा सुख

(श्रीकैलाशचन्द्रजी व्यास 'सत्य')

तुम सुखी हो?
क्यों नहीं? अवश्य हूँ।
क्योंकि मैं धनवान् हूँ।
क्योंकि मैं जमींदार हूँ।
क्योंकि मेरा कई महलोंपर अधिकार है।
क्योंकि मेरी पत्नी रूप एवं शीलका अवतार है।
क्योंकि मेरे लड़के शिक्षित एवं गुणवान् हैं।
क्योंकि मेरा समाजमें ऊँचा स्थान है।
क्योंकि मेरे आज्ञानुरक्त नौकर-चाकर हैं।
क्योंकि बड़े-बड़े आदमी मेरे भक्त हैं।
क्योंकि मेरे यहाँ आमोद-प्रमोदके कई साधन हैं।
क्योंकि मेरे आत्मीयजन कई उच्च पदोंपर हैं।
क्योंकि गरीबोंके समान मेरी इच्छाओंका ह्रास नहीं होता।
क्योंकि दीनोंके समान मेरी आवश्यकताओंका उपहास नहीं होता।
क्योंकि मुझे किसी अभावका आभासतक नहीं मिलता।
फिर मेरे सुखी होनेमें क्या सन्देह?
मैं सर्वथा सुखी हूँ।
अरे!
तुम इस वैभवमें सुख खोज रहे हो।
इस विलासिताको सुख मान बैठे हो।
कहाँ है सुख इसमें?
क्या तुम्हें शान्ति मिली?
क्या तुम्हें अपनी पूँजीसे सन्तोष हुआ?
क्या तुम्हें अपने अतुल वैभवसे परितोष हुआ?
क्या तुम्हें अपनी प्रतिष्ठासे कभी तृप्ति हुई?
क्या तुम्हारी अधिकारोंकी चाह पूरी हुई?
क्या तुम्हारी अशान्ति कम हुई?
क्या तुम्हारी भ्रान्ति नष्ट हुई?
क्या तुम्हें अपनी स्थितिसे सन्तोष हुआ?
विलासिताको सुख माननेवाले मानव!
यह बाह्याकर्षण है।
यह विडम्बनामात्र है।
यह मृगतृष्णा है।
यह भ्रम-जंजाल है।
यह सुखकी भूल-भुलैया है।
यह दूरसे आकर्षित करनेवाला पहाड़ोंका सौन्दर्य है।
यह आत्महननका अमोघ अस्त्र है।
यह सच्चिदानन्दके खोज-पथमें खड़ा पहाड़ है।
यह मझधारमें नैयाको डुबा देनेवाली बाढ़ है।
पगले!
सुख इस वैभव-विलासितामें कहाँ?
संसारमें 'सुख' नामकी कोई वस्तु है ही नहीं।
सुख चाहते हो?
तो दुःखके गहरे गर्तमें गिरानेवाले इन विलासिताके बन्धनोंको तोड़ दो।
इस माया-घटको फोड़ दो।
इस स्वर्ण-पात्रमें भरे जहरको उड़ेल दो।
और उस सच्चिदानन्दकी खोजमें—
एक अमिट साधना लिये—
बढ़े चले आओ—
इस आत्मपथपर।
स्वयं अपनेमें खोजो—
तो पाओगे कि—
सच्चा सुख प्राणिमात्रमें परमात्माको देखनेमें है।
सच्चा सुख असहायों और अपाहिजोंसे सहानुभूति रखनेमें है।
सच्चा सुख दीन-दलितोंकी सहायता करनेमें है।
सच्चा सुख अपने स्वार्थका त्याग करनेमें है।
सच्चा सुख दीपककी तरह दूसरोंके लिये जलनेमें है।
सच्चा सुख फूलकी तरह खिलकर परार्थ परागके बिखेरनेमें है।
सच्चा सुख पतंगेकी तरह परमार्थकी लौपर मचलनेमें है।
अरे!
विश्वका समस्त ऐश्वर्य—
अतुल स्वर्गीय वैभव—
हेमपूर्ण भण्डार—
रत्नराशि-आगार—
क्या यह सब प्रवंचनामात्र थी?
काश!
मैं पहले ही जान पाता!!

सन्त मुक्ताबाई

(श्री श्रीकिशोरजी तारे)

सन्त ज्ञानेश्वरकी सबसे छोटी बहन थीं सन्त मुक्ताबाई, जीवन भी सबसे छोटा पाया था उन्होंने। सन् १२७९ ई० में जन्म और सन् १२९७ ई० में जीवनान्त हुआ, यानी १८वें सालमें सारी बुराइयों एवं अड़चनोंको झेलकर, अथाह ज्ञानकी प्राप्तिकर, ४२ पदोंकी रचनाकर, कई शिष्योंको ज्ञानदान दे सन्त मुक्ताबाई अनन्तमें विलीन हुईं।

एक बार जब वे नहा रही थीं तो उनका एक शिष्य अचानक अन्दर चला गया। उन नवतरुणीका गीला सौन्दर्य देख वह चौंक गया एवं दोनों आँखोंको हथेलियोंसे ढककर 'क्षमा करो माँ! मुझसे बड़ी भूल हुई' ऐसा बारम्बार कहने लगा तो मुक्ताबाईने (तब वे मात्र १६ वर्षकी थीं) 'चुप रहो' कहकर डाँट दिया, 'भगवान्का दिया जीवन गँवाया, स्त्री-पुरुष-भेदमें ज्ञान गँवाया' ऐसा कह समझाया कि एक बार शिष्य बनकर 'माँ' कहा तो हर क्षण मनमें यही भाव होना चाहिये। उम्र हो गयी, पर मनका बेलगाम होना आप अभीतक नहीं रोक पाये—

'भावभक्तिकर, बनते विरागी, पाना चाहते ब्रह्मरूप,
हर स्त्री अब माँ स्वरूपा, निर्मल, शरीर हीन, निरूप,
चांगदेव ध्यान दो, मनका अश्व रोको, बनो सन्तरूप।'

ध्यान रहे सन् १२८० ई० में सन्त चांगदेवका महाराष्ट्रमें बड़ा आदर होता था। हाथमें वे एक या दो साँप रखते थे तथा साथमें पालतू शेर भी था। शेरपर वे सवारी भी करते थे, सो बाकी सारे सन्तोंपर वे भारी पड़ते थे। एक बार वे सन्त ज्ञानदेव और उनके भाई-बहनोंके सामने आये तो उन्हें लगा, ये चारों बच्चे उन्हें, शेर एवं साँपको देख डर जायेंगे, पर तीनों सिर्फ हँसे और मुक्ताबाईने छूटते ही कहा—'आदमी भी जमीन नहीं छोड़ता, पंढरपुरके श्रीविट्ठल भी ईंटोंपर खड़े हैं, सो ये आदरके पात्र हैं, पर जो व्यक्ति माटीसे दूर रहता है, वह सिर्फ अहंकारी होता हैं। कृपया इन जानवरोंको मुक्ति दो और अहंकार छोड़ जमीनपर आओ।' तो चांगदेव एकदम सकपकाये फिर मुक्ताबाईने उन्हें शास्त्रार्थमें हराकर अपना शिष्य बनाया।

सन्त ज्ञानेश्वरका परिवार दक्षिण गोदावरीके आपेगाँवका था। उनके दादाजी भी भगवान्के भक्त थे और ५५ वर्षकी आयुमें उन्हें एक बेटा विट्ठलपन्त हुआ। वह भी ईश्वरभक्त था और यज्ञोपवीतके बाद घर छोड़कर मन्दिर-मन्दिर, तीर्थ-तीर्थ घूमने लगा। इधर आळन्दी गाँवमें एक सिद्धोपन्त थे, जिन्हें रोहिणी नामक कन्या थी। उन्हें उसके विवाहकी चिन्ता थी। एक बार स्वप्नमें विट्ठलदेव आये और उन्होंने कहा, 'चिन्ता न कर, मेरे नामका एवं तुम्हारे गोत्रका एक संन्यासी आयेगा, उसे अपना दामाद बनाना तो जो नाती होंगे, उससे दोनों परिवार प्रसिद्ध हो जायेंगे।' सिद्धोपन्त सतत देखते रहे और विट्ठलपन्त जैसे ही आळन्दी आये, तो उन्हें अपना दामाद बना लिया। शादीके बाद बेटीका नाम रखुमा हो गया। मगर विट्ठलपन्तको संसार या स्त्री-संगमें कोई रस न था। वे बार-बार पत्नीसे कहते, 'मुझे संन्यास लेने दे, वरना आज तो मैं मृत-जैसा हूँ।' सुन-सुनकर रखुमा भी त्रस्त हुई एवं एक रात 'ठीक है, जाओ, संन्यास लो, ऐसे भी पति कहाँ बने हो!' कहा तो विट्ठलपन्त तुरंत छोड़कर चले गये। तब भी शादीको चार-पाँच वर्ष हो गये थे।

विट्ठलपन्त काशी गये और योगी रामानन्द स्वामीके शिष्य बने। १२ वर्ष रामानन्दजीके साथ घूमते-घूमते विट्ठलपन्त फिर आळन्दी आये। किसीने रखुमाको आकर कहा, 'तेरा पति चैतन्यस्वामी नामसे रामानन्दजीके अखाड़ेमें है' तो रखुमाने जाकर योगीके चरण पकड़े। उसके माथेमें सिन्दूर एवं गलेमें मंगलसूत्र देख रामानन्दजीने **'पुत्रवती भव'** ऐसा आशीर्वाद दिया। रखुमाने कहा, 'आपका शिष्य चैतन्य मेरा पति है एवं मुझे पुत्र दिये बिना आपके साथ १२ वर्षसे है, तो मैं कैसे पुत्रवती होऊँगी?' रामानन्दजीने तुरंत चैतन्यको आज्ञा दी, 'संसारी बनो और पत्नीको पुत्र दो।' गुरुकी आज्ञा प्रमाण मान विट्ठलपन्त रखुमाके साथ हो लिये और उसी रात रखुमाकी इच्छा पूर्ण हुई।

एकके बाद एक निवृत्तिनाथका सन् १२७२ ई० में, ज्ञानेश्वरका सन् १२७५ ई० में, सोपानदेवका १२७७ ई० में और मुक्ताबाई (इसे महाराष्ट्रमें प्यारसे मुक्ताई कहते हैं)-का सन् १२७९ ई० में जन्म हुआ। दस वर्षोंके बाद वहाँके ब्राह्मणोंसे जब प्रार्थना की गयी कि 'बच्चोंका यज्ञोपवीत

करना है' तो सबने कहा कि संन्यासी कभी गृहस्थ नहीं होता, सो हममेंसे, कोई भी आपके बच्चोंका यज्ञोपवीत नहीं करायेगा!' विट्ठलपन्त गिड़गिड़ाये, ये भी बताया कि गुरुकी आज्ञा थी और अन्तमें ये भी पूछा कि 'इसका प्रायश्चित्त क्या है?' तो सारे ब्राह्मणोंने एकजुट होकर कहा, 'देहान्त! देहान्त करो, यही प्रायश्चित्त है तुम्हारे संन्यासके बाद गृहस्थ-जीवन अपनानेका!' वह जमाना ही अलग था। ब्राह्मणोंका निर्णय ब्रह्मवाक्य कहलाता था और विट्ठलपन्त एवं रखुमाने पैठणमें जा वहाँके ब्राह्मणोंको बताकर नदीमें प्रवेशकर आत्महत्या की। कैसा जमाना था?

तीन भाई और तीन वर्षकी मुक्ताई! पर चारोंने हिम्मत नहीं हारी। सोपान एवं मुक्ताई घर सँभालते, निवृत्तिनाथ एवं ज्ञानदेव रोजी-रोटीका इन्तजाम करते और बचे समयमें वेद, पोथियाँ एवं ग्रन्थ पढ़ते आपसमें चर्चा करते। अनजानेमें ही सारा वैदिक ज्ञान मुक्ताईको हुआ, पर गाँवमें ब्राह्मण इन्हें सतत तंग करते, झोपड़ी तोड़ देते, मटका फोड़ देते, बड़े बच्चोंसे पिटवाते। सो, अन्तमें तंग आकर ये चारों पैठण चले गये। पैठणके ब्राह्मणोंके मनमें आत्महत्या करनेवाले, धर्मके लिये प्राण देनेवाले विट्ठलपन्त एवं रखुमाके लिये आदर था। सो जब ये चारों पैठण पहुँचे तो सबकी सहानुभूति मिली। खाने-पीने, आवास, पठन-पाठनकी चिन्ता न रही। सारे ब्राह्मणोंके साथ चारोंकी धर्म-चर्चा हुई एवं सभीने इनके ज्ञानको उम्रके हिसाबसे अद्वितीय कहा। इन्होंने यज्ञोपवीतकी अनुमति माँगी तो सबने इनका यज्ञोपवीत करा दिया। ब्राह्मण सभाने इन्हें ज्ञानी एवं धर्माचार्यकी उपाधि दी तथा जब दो-चार दुष्टोंने 'सबमें देवता है तो इस भैंसेमें है सिद्ध करो' ऐसी चुनौती दी तो ज्ञानदेवने भैंसेके कानमें दस बार ओंकार कहा और उसकी पीठपर हाथ फेरकर कहा कि 'दो शब्द संस्कृतके कहो' तो भैंसा बोला, '**ॐ, ॐ, ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥**' यह वेद-घोष सुन सारे लोग स्तब्ध रह गये और फिर 'सन्त ज्ञानेश्वरकी जय' से सारा पैठण गूँज उठा। सबसे आश्चर्य है कि वह भैंसा करीब तीन साल सन्त ज्ञानेश्वरके साथ रहा एवं हर जगह जब उसे कहते 'दो शब्द संस्कृतके कहो ज्ञानदेव!' तो वह वेद-घोषके वे छः-सात शब्द सुनाता था। 'आडगाँव' नामक गाँवमें उस भैंसेकी मृत्यु हुई।

फिर तो पूरे महाराष्ट्रमें सन्त ज्ञानेश्वरकी धूम हो गयी, पर स्त्रियोंका शंका-समाधान मुक्ताई करती थी। एक-से-एक विद्वान् शास्त्रार्थको आते, पर मुक्ताईसे हार जाते। सन्त नामदेव, सन्त विठोबा खेचर, सन्त गोरा कुम्हार, सन्त जनाबाई सारे आते और रसोईघरमें मुक्ताईसे स्नेहसे वार्तालाप करते; पर जैसे हर कहानीका अन्त होता है, वैसे ही ज्ञानेश्वरी और तीन-चार ग्रन्थ लिखनेके बाद सन्त ज्ञानेश्वरका भी हुआ, उन्होंने समाधिकी घोषणा की। सारा महाराष्ट्र उमड़ पड़ा और ठीक दोपहरको सन् १२९६ ई० में उन्होंने समाधि ली। इस समय मुक्ताईका करुण क्रन्दन उन्हें सुनायी न दिया। दो-चार मास गये, दुःखसे मन उबरे भी न थे कि दूसरे भाई सोपानदेवने भी समाधि ली। दो-दो प्यारे भाई चले गये अब तो मुक्ताई व्याकुल हो गयी। बीच-बीचमें लोगोंके छेड़नेपर सबसे बड़े भाई भी कहते, 'मैं भी समाधि लेना चाहता हूँ, पर मुक्ताईकी देखभाल करनी है न?' सो मुक्ताईने तय किया कि सारे मन्दिर एवं मठोंका दर्शन करना है। २०-२५ भक्तों, सन्त नामदेव एवं भाई निवृत्तिनाथके साथ उन्होंने घूमना शुरू किया और फिर एक दिन खाना-पीना भी छोड़ दिया।

कबतक शरीर साथ देता? एलोराके मन्दिरके दर्शन हुए, घृष्णेश्वरके दर्शन हुए पर अब कदम उठ नहीं रहे थे वरन् घिसट रहे थे। सुबहके ग्यारह बजे ग्रीष्मकी तेज धूप और सामने थे सोमेश्वर। एक-एक कदम मुश्किल हो रहा था। सारे लोग समझा रहे थे, 'रुक जाओ, मुक्ता, रुक जाओ।' तभी अचानक हवाकी रफ्तार बढ़ी, इतनी तेज हुई कि खड़े रहना मुश्किल था। तेज हवाके साथ धूल-राख का एक ऐसा गुबार आया कि सबकी आँखें बन्द हो गयीं। निवृत्तिनाथ भी दोनों हाथोंसे आँखें मलने लगे एवं मुक्ताईका हाथ छूट गया, फिर आँखें खोलीं तो मुक्ताई कहीं नहीं थीं। तेज हवा उन्हें उड़ा ले गयी। चारों ओर दस-दस मील खोज की गयी, पर शरीर भी न मिला। ईश्वरभक्त ईश्वरतत्त्वमें विलीन हुईं। ज्येष्ठ माहकी कृष्णपक्षकी दशमी, गुरुवार दिन था एवं गाँवका नाम कोयावी। वहीं एक मुक्ताई मन्दिर है अब!

जैसा निवृत्तिनाथने कहा था, एक माह बाद उन्होंने भी समाधि ली। चारोंके चारों ईश्वरके पास पहुँचे। ज्योति ज्योतिसे मिली। जिस कार्यके लिये शरीर धारण किया था, वह पूरा हुआ। सो शरीरसे मुक्ति ली।

जीवनचर्या—श्रीरामचरितमानसमें

(श्रीदेवेन्द्रजी शर्मा)

[गतांक संख्या ६ पृ०-सं० ७२१ से आगे]

लंकाकाण्ड

लंकाकाण्डका आरम्भ भगवान् श्रीरामद्वारा श्रीरामेश्वर धामकी महिमा और महत्त्वके वर्णनसे होता है, जिसमें श्रीभगवान् स्पष्ट तौरपर कह देते हैं कि—

..। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥
सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥
संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥

(रा०च०मा० ६।२।६—८, ६।२)

अर्थात् जो मनुष्य अपने आपको मेरा तो भक्त कहता है और वह भगवान् श्रीशंकरजीसे द्रोह करता है—ऐसा मूढ़ मनुष्य मुझे कदापि प्रिय नहीं होता। उसे न तो मेरी भक्ति ही प्राप्त होती है और न मैं ही प्राप्त होता हूँ। अतः मेरी भक्ति प्राप्त करनेके लिये भगवान् श्रीशंकरका भजन अति आवश्यक है। श्रीभगवान्ने बालकाण्डमें वर्णित नारद-मोहके प्रसंगमें भी यही कहा है—

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥

(रा०च०मा० १।१३८।७)

अंगदजी और रावणके संवादमें चौदह दोष-दुर्गुणोंका वर्णन है—

कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥
सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी॥
तनु पोषक निंदक अघ खानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी॥

(रा०च०मा० ६।३१।२—४)

अर्थात् (१) वाममार्गी, (२) कामी, (३) कंजूस, (४) अत्यन्त मूढ़, (५) अति दरिद्री, (६) अत्यन्त बदनाम, (७) अत्यधिक बूढ़ा, (८) नित्यका रोगी, (९) निरन्तर क्रोधयुक्त रहनेवाला, (१०) भगवान् श्रीविष्णुसे विमुख रहनेवाला, (११) वेद और सन्तोंका विरोधी, (१२) केवल अपने ही शरीरका पोषण करनेवाला, (१३) परायी निन्दा करनेवाला और (१४) पापकी खान (महान पापी)—इन चौदह दोष-दुर्गुणोंसे युक्त मनुष्य जीते हुए भी मरे हुए (मृत)-के ही समान होते हैं। अतः उपर्युक्त चौदह दोष-दुर्गण जीवनचर्याके सन्दर्भमें हम सभीके लिये नितान्त ही चिन्तनीय हैं।

अपने मुखसे अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि इससे पुण्य घटते हैं, इस जीवनोपयोगी सूत्रको इस भाँति निरूपित किया गया है—

छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती। निज मुख कहें सुकृत जेहि भाँती॥

(रा०च०मा० ६।७२।३)

किसी कार्यमें लाभ होनेसे उसके प्रति लोभकी स्थिति बनती है, रावणके सिरोंकी बार-बार वृद्धिको गोस्वामीजीने इसी रूपकसे व्यक्त किया है—

काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥

(रा०च०मा० ६।१०२।१)

उपर्युक्त दो पंक्तियोंमें चेतावनी दी गयी है कि अपने मुखसे अपने ही सुकृतों/सत्कर्मोंका बखान करनेसे उनका क्षय होता है और लाभका लोभ करनेवाले मनुष्यका हरेक लाभके बाद लोभ बढ़ता ही जाता है। अतः उपर्युक्त दोषोंसे बचना चाहिये।

लंकाकाण्डमें वर्णित उपर्युक्त सभी कथन अपने कल्याणके लिये एक श्रेष्ठ जीवनचर्यामें अपनानेयोग्य हैं।

[क्रमशः]

'गोबिन्द माधव श्याम बिहारी'

(आचार्या श्रीमती लीला यादव)

पावन चरण सरोज तेरो प्रभु, शीश झुकावत विधि त्रिपुरारी।
वेद पुरान बखान करें यश, जय बंशीधर जय बनवारी॥
अमिय सुधामय नाम तेरो प्रभु, मोहन श्याम गोवर्धन धारी।
लख चौरासी को काटियो बंधन, गोबिन्द माधव श्याम बिहारी॥

साधनोपयोगी पत्र

(१)

घरमें रहकर ही भगवान्‌का भजन कीजिये

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आप पन्द्रह सालकी उम्रसे ही श्रीशंकरभगवान्‌की प्रतिदिन पूजा करते हैं और श्रीरामायण तथा भगवान् श्रीराममें आपका प्रेम है, यह बड़े ही आनन्दकी बात है। आपका ऐसा अनुमान है कि 'भगवान् श्रीसीतारामचन्द्रजीके चरणोंमें मेरा प्रेम तो है, पर अधिक नहीं है' और उस प्रेमकी अधिकताके लिये आप चिन्तित हैं, सो बड़ी अच्छी बात है। प्रेमकी कमीका बोध प्रेमकी वृद्धिमें सहायक हुआ करता है। भगवान् श्रीसीतारामके चरणोंमें प्रेम होनेका यही साधन है कि उनको आप अपना परम प्रेमास्पद समझें और उनकी याद क्षणभरके लिये भी न भूलें, ऐसा प्रयत्न करें। श्रीरामायणका प्रेमपूर्वक, अन्य किसी प्रकारकी कामना न रखकर पाठ करें। पण्डितजीके बतलानेपर भी नवरात्रमें आपने धन-प्राप्ति आदिके लिये कोई प्रयोग न करके—

यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता॥

—इस सम्पुटके साथ केवल भक्ति तथा प्रेमकी प्राप्तिके लिये ही पारायण किया—यह बहुत अच्छी बात है। आप भगवान् श्रीसीतारामके प्रेमकी प्राप्तिके लिये एकान्तमें बैठकर रोते हुए भगवान्‌से कातर प्रार्थना करें। उनसे अपनी ही भाषामें अपने मनके भाव बतलायें। उनसे कहें—'प्रभो! मैं साधनहीन दीन हूँ, आपके प्रति मेरे हृदयमें जरा भी प्रेम नहीं है, आप ही इस तुच्छ दीनपर दया करके इसे अपना परम दुर्लभ प्रेम प्रदान कीजिये।' आप विश्वास कीजिये—भगवान् श्रीराम अकारण कृपालु हैं, मृदुल स्वभाव हैं, जनवत्सल हैं, पतितपावन हैं और करुणाके अगाध सिन्धु हैं। उनके सम्मुख जाते ही जीव कोटि-कोटि जन्मोंके पापोंसे छूट जाता है। उनके अपने वचन हैं—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

उनके परम पावन तारक मन्त्र रामनामने असंख्य जीवोंको संसारसागरसे तार दिया है। असंख्योंको भगवान्‌का प्रेम प्राप्त करवाया है। आप उस रामनामका आश्रय लीजिये। उसका स्मरण कीजिये। विश्वासको उत्तरोत्तर बढ़ाइये। उन्हींकी कृपासे सारे पाप कटेंगे, उन्हींकी कृपासे हृदयके सारे काम-क्रोधादि शत्रुओंका नाश होगा, उन्हींकी कृपासे भक्ति-प्रेमकी प्राप्ति तथा उनके दर्शन होंगे। प्रत्येक स्थितिमें उन्हें आप अपना सहायक मानकर उनपर निर्भर रहिये। उनमें चित्त लगाइये। उनकी कृपा आपको सहज ही सारी कठिनाइयोंसे परे पहुँचा देगी।

आपने वनमें जानेकी बात लिखी, सो ऐसा विचार कभी नहीं करना चाहिये। जंगलमें जाते ही भगवान् मिल जायँगे, ऐसा सोचना मूर्खता है। विवाहिता पत्नी, माता-पिता, छोटे भाई आदिके पालन-पोषणकी जिम्मेदारी आपपर है, उसे भगवान्‌की पूजा समझकर निभाइये। आपका प्रत्येक कर्म भगवान्‌की पूजा बन जायगा। आप अपने पिताजीकी भाँति कमरेमें भगवान् श्रीसीतारामजीका चित्र रखकर पूजा करना चाहते हैं, सो बड़ी अच्छी बात है, अवश्य कीजिये। छोटे साइजकी भगवान् श्रीसीतारामजीकी सुन्दर तसवीर मँढ़वाकर रखिये और प्रतिदिन चन्दन, फूल, माला, धूप, दीप, नैवेद्य आदिके द्वारा उसका पूजन कीजिये। बाहर जाना पड़े और सुविधा हो तो भगवान्‌के चित्रको साथ लेते जाना चाहिये और चन्दन, पुष्प आदि जो भी सामग्री जुट जाय, उसीसे भगवान्‌के चित्रपटकी पूजा कर लेनी चाहिये। श्रीशंकरजीकी पूजा तो आप चाहे जहाँ कर ही सकते हैं। शिवपूजाके स्थान प्रायः सभी जगह मिल जाते हैं। कभी सुविधा न हो तो पहलेसे दैनिक पूजाका पूरा प्रबन्ध करके जाना चाहिये। चित्रपट समझकर पूजा नहीं करनी है, पूजा करनी है भगवान् समझकर। इसलिये जहाँतक बने, अपने हाथोंसे ही पूजा करनी चाहिये। नहीं तो पूरी व्यवस्था करके बाहर जाना चाहिये।

दूकानदारी करनी पड़ती है, सो ठीक है, उसको भी प्रभुकी सेवाका कार्य समझकर करें। प्रत्येक ग्राहकमें तथा जिनसे भी काम पड़े, उन सबमें भगवान् विराजमान हैं, ऐसा समझकर उनके साथ बर्ताव करें। भगवान् माननेपर क्रोध आप ही नहीं आयेगा। हाँ, कभी न्यायसंगत अवसर आनेपर भीतरसे क्रोधशून्य रहते हुए ही क्रोधका व्यवहार

करना पड़े या कोर्टमें नालिश करनी पड़े तो आपत्ति नहीं है, पर उसमें भी द्वेष, क्रोध तथा अहितकी भावना न रखकर प्रेम तथा हितकी भावना रखें।

स्त्रीके साथ प्रेम करें, उसके साथ सदा सद्व्यवहार करें, परंतु उसमें आसक्त न हों। उसमें भी भगवान्‌को देखनेकी चेष्टा करें। राम देखनेपर काम आप ही भाग जायगा। *'जहाँ राम तहाँ काम नहिं।'*

नाम-जप आप कोई-सा भी करें, परंतु साथमें अपना नाम जोड़नेकी जरूरत नहीं। *'रघुपति राघव राजाराम, पतितपावन सीताराम'*—सभी एक हैं। जिसमें आपकी विशेष रुचि हो और जो सहज जान पड़े, उसीका सदैव जप और कीर्तन कर सकते हैं। असलमें भगवान्‌की कृपापर विश्वास रखकर उनका भजन करनेसे बहुत शीघ्र लाभ होता है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

भगवान्‌में विश्वास तथा प्रेम कैसे हो ?

प्रिय महोदय, सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। धन्यवाद, आपके प्रश्नोंका संक्षिप्त उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

(१) सत्संग, भगवान्‌में विश्वास बढ़ानेवाले भक्त-चरित्रोंका अध्ययन, विश्वासी भक्तोंका संग और बार-बार अपनेमें विश्वासकी दृढ़ता करनेसे विश्वास होता है, बढ़ता है और सदा रहता है।

(२) भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला आदिका बार-बार श्रवण, कीर्तन और मनन करना, भगवान्‌के नामका जप करना, प्राणिमात्रको भगवान्‌का स्वरूप समझकर सबको सुख पहुँचाने तथा सबका हित करनेकी चेष्टा करना, कुसंगतिका सर्वथा त्याग करना, विषयचिन्तनके बदले भगवच्चिन्तन हो, इसके लिये सावधानी रखना, व्रत-नियमादिका पालन करना, सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय करना, नियमित सन्ध्या-वन्दनादि करना, दीनोंपर दया करना—इन साधनोंसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। इन सबमें भगवान्‌का स्मरण और सर्वत्र सबमें भगवान्‌को देखना—ये दो प्रधान साधन हैं। इनके सम्पादनसे अन्तःकरणकी शुद्धि ही नहीं, भगवान्‌की प्राप्ति भी हो सकती है।

(३) भगवान्‌के तत्त्वको तथा प्रेम-रहस्यको जाननेवाले प्रेमी भक्तोंके संगसे भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, धाम, गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, भक्तवत्सलता आदि स्वभावका परिचय प्राप्त करनेपर तथा भगवान्‌की प्रेममयी लीला-कथाओंके श्रवणसे भगवान्‌में प्रेम होता है और सच्चा प्रेम सदा बढ़नेवाला तो होता ही है।

(४) जो वस्तु जिससे उत्पन्न होती है, वह उसीका स्वरूप मानी जाती है। सम्पूर्ण जगत्‌के निमित्त और उपादान कारण श्रीभगवान् हैं, यह उन्हींसे उत्पन्न हुआ है, उन्हींमें स्थित है और उन्हींमें विलीन होगा। अतः यह वस्तुतः भगवद्रूप ही है। भगवत्-स्वरूप सदा सुखमय है; इस प्रकार बार-बार विचार और मनन करनेपर सब कुछ आनन्दमय भगवत्-स्वरूप दिखायी देने लगता है। इस भावकी दृढ़ता सत्संगसे हुआ करती है। जो लोग जगत्‌को भगवत्-स्वरूप नहीं मानते, उनके लिये यह अनित्य तथा सदा दुःखमय ही रहता है।

(५) एकान्तमें सरलता, श्रद्धा, विश्वास, सद्भाव, सच्चाई तथा उत्कण्ठाके साथ कातर भावसे भगवान्‌को पुकारिये और बार-बार अपनेको भगवान्‌के चरणोंमें समर्पण करते हुए अपनी भाषामें प्रार्थना कीजिये—'प्रभो! मैं आपका हूँ, आपकी शरणमें हूँ, मैं और मेरा सर्वस्व सब आपके श्रीचरणोंमें समर्पित है, आप स्वीकार कीजिये।' यों अपनेको भगवान्‌के चरणोंमें सौंपकर मनके नेत्रोंसे देखिये—भगवान्‌ने मुसकराते हुए आपको स्वीकार कर लिया। फिर आप अपने मनमें यह दृढ़ निश्चय और विश्वास कीजिये कि मुझे भगवान्‌ने स्वीकार कर लिया है, अब मैं और मेरा सब भगवान्‌का हो गया। फिर कहीं भी अहंकार तथा ममताको न आने देकर सबको भगवान्‌का समझिये और सारे काम भगवान्‌के समझकर भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये, भगवान्‌की प्रेरणाके अनुसार करते रहिये। यह समझिये कि मैं यन्त्र हूँ, वे यन्त्री हैं, वे जब जैसे जो कुछ कराते हैं, मुझसे वही होता है। न मेरा कुछ है, न मैं कुछ हूँ। मैं तो उनके हाथकी कठपुतली हूँ, वे जैसे नचाते हैं, वैसे ही नाचता हूँ। मुझे न भय है, न चिन्ता है। वास्तवमें शरणागत हो जानेपर निर्भयता और निश्चिन्तता तो अपने-आप ही आ जाती है। ये तो शरणागतिके स्वरूप ही हैं।

(६) हृदयमें रहनेवाले काम, क्रोध, अभिमान, द्वेष, विषयासक्ति, मोह, विषमता आदि दोषोंको हटानेके लिये वैराग्य, क्षमा, संतोष, प्रेम, समता आदि दैवी गुणोंको तथा समस्त दैवी गुणोंके प्राण एवं परमाधार भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीनारायण—किसी भी स्वरूपको हृदयमें बसा लेना चाहिये। भगवान्‌के आते ही दोष वैसे ही नष्ट हो जायँगे, जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है। शेष भगवत्कृपा।

(३)

पतिदेवका सद्भाव बढ़ाइये

प्रिय बहन! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपकी सारी बातें पढ़ीं। आप अपनी नम्रता, विनय और सेवासे अपने पतिदेवको सदा अपने अनुकूल बनाये रखिये, फिर घरकी सारी प्रतिकूलता आपके अनुकूल हो जायगी। आप घबराइये नहीं। पतिदेव आपके बहुत साधुस्वभावके सच्चरित्र हैं और आपके प्रति उनके मनमें सद्भाव भी है, फिर और क्या चाहिये। उनका यह सद्भाव सदा बढ़ता रहे, यही प्रयत्न कीजिये। इसका उपाय है—सरलता, सेवा, स्वार्थका त्याग, कुछ भी माँग न करना, आज्ञाका पालन करना, प्रतिकूल आचरणका त्याग करना, किसीका दोष या चुगली उनके सामने न करना, उनके माता-पिता (अपने सास-ससुर)-को सुख पहुँचानेकी चेष्टा करना और सदा मधुर, नम्र तथा निष्कपट बर्ताव करना। आपका भजनमें प्रेम है तथा भगवान्‌में विश्वास है—यह बड़ी अच्छी बात है। भगवान्‌का भजन मन-ही-मन करती रहें और भगवान्‌से प्रार्थना करें, जिससे जीवनके सारे कार्य भगवत्कार्य और समस्त जीवन भजनमय बन जाय। शेष भगवत्कृपा।

(४)

भगवान् विष्णु और श्रीकृष्ण एक ही हैं

प्रिय बहन! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आप श्रीकृष्णकी उपासना करती हैं और द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करती हैं, सो इसमें कोई आपत्ति नहीं है। भगवान् श्रीविष्णु और भगवान् श्रीकृष्ण एक ही हैं। अत: आप इसी मन्त्रका जप करती रहें, छोड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

लेख पढ़कर प्राणायाम आपको नहीं करना चाहिये। प्राणायामकी क्रिया ठीक न होनेपर तरह-तरहके रोग हो जाते हैं, जिनका मिटना बहुत कठिन होता है। अनुभवी योगीकी सन्निधिमें रहकर ही योगाभ्यास करना उचित होता है। ऐसे अनुभवी योगी प्रथम तो मिलने कठिन हैं, और यदि कोई ऐसे माने भी जायँ तो स्त्रीका किसी भी परपुरुषकी सन्निधिमें रहना सर्वथा अधर्म है तथा महान् हानिकारक होनेसे वर्जित है।

इस युगमें सर्वोत्तम साधन है—भगवान्‌के नामका जप। मैं तो आपसे अनुरोध करता हूँ, आप भगवन्नाम-जपका अभ्यास करें। यह सर्वथा निरापद है और ऊँचे-से-ऊँचा फल देनेवाला है। शेष भगवत्कृपा।

(५)

प्रणवका जप शुद्ध होकर करना चाहिये

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला, धन्यवाद। आपने सब समय ॐ (प्रणव)-के जप तथा सन्ध्याके सम्बन्धमें जो कुछ पूछा है, उसके उत्तरमें निवेदन है कि 'प्रणव' का जप शुद्ध स्थितिमें ही करना चाहिये। हर समय हर अवस्थामें नहीं। कई जगह ऐसी भी मान्यता है कि अकेले प्रणवका जप गृहस्थको नहीं करना चाहिये। किसी भगवन्नामके साथ जोड़कर—जैसे **'हरिः ॐ', 'ॐ नमो नारायणाय'**—इस प्रकार करना चाहिये। जो कुछ भी हो, अशुद्ध अवस्थामें तो निषिद्ध है ही। एकाग्र मनसे छः महीनेतक प्रतिदिन नियमपूर्वक प्रणवका नित्य बारह हजार जप करनेसे संन्यासीको चित्तशुद्धि होकर तत्त्वसाक्षात्कारकी योग्यता प्राप्त होती है, ऐसा कहा गया है। जपकी संख्यासे जहाँ फलका विधान होता है, वहाँ श्रद्धा-सत्कार और एकाग्र मनसे किये जानेवाले जपकी बात ही समझनी चाहिये।

भजन-स्मरणको सन्ध्या नहीं माना जा सकता; द्विजको प्राणायाम, सूर्योपस्थान तथा गायत्री-जपसहित सन्ध्या अवश्य करनी चाहिये। त्रिकाल नहीं तो, प्रातः, सायं—दो समय तो अवश्य सन्ध्या करें। गायत्रीकी एक-एक माला दोनों समय जप करें, नहीं तो, कम-से-कम २१ मन्त्रका जप तो अवश्य कर लें। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६७, शक १९३२, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ४।५५ बजेतक	रवि	पूर्वाषाढ़ रात्रिमें ११।२१ बजेतक	२७ जून	× × × ×
द्वितीया ,, ६।१२ बजेतक	सोम	उत्तराषाढ़ ,, १।२५ बजेतक	२८ ,,	मकरराशि प्रातः ५। ५२ बजेसे।
तृतीया रात्रिमें ७।५२ बजेतक	मंगल	श्रवण ,, ३।४७ बजेतक	२९ ,,	भद्रा दिनमें ७। २ से रात्रि ७। ५२ बजेतक, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत। चन्द्रोदय रात्रि ८। ५५ बजे।
चतुर्थी ,, ९।४७ बजेतक	बुध	धनिष्ठा अहोरात्र	३० ,,	कुम्भराशि सायं ५। ४ बजे, पञ्चकारम्भ सायं ५। ४ बजे।
पंचमी ,, ११।४८ बजेतक	गुरु	धनिष्ठा प्रातः ६।२१ बजेतक	१ जुलाई	× × × ×
षष्ठी ,, १।४५ बजेतक	शुक्र	शतभिषा दिनमें ८।५९ बजेतक	२ ,,	भद्रा रात्रिमें १। ४५ बजेसे, मीनराशि रात्रिशेष ४। ५१ बजेसे।
सप्तमी ,, ३।२९ बजेतक	शनि	पूर्वाभाद्रपद ,, ११।३० बजेतक	३ ,,	भद्रा दिनमें २। ३७ बजेतक।
अष्टमी रात्रिशेष ४।५१ बजेतक	रवि	उत्तराभाद्रपद दिनमें १।४२ बजेतक	४ ,,	श्रीशीतलाष्टमीव्रत, मूल दिनमें १। ४२ बजेसे।
नवमी अहोरात्र	सोम	रेवती दिनमें ३।३२ बजेतक	५ ,,	मेषराशि दिनमें ३। ३२ बजेसे, पञ्चक समाप्त दिनमें ३। ३२ बजे।
नवमी प्रातः ५।४५ बजेतक	मंगल	अश्वनी सायं ४।५६ बजेतक	६ ,,	भद्रा सायं ५। ५८ बजेसे, मूल सायं ४। ५६ बजेतक।
दशमी ,, ६। १० बजेतक	बुध	भरणी ,, ५।४८ बजेतक	७ ,,	भद्रा प्रातः ६। १० बजेतक, वृषराशि रात्रि ११। ५४ बजेसे।
एकादशी ,, ६।५ बजेतक	गुरु	कृत्तिका ,, ६।११ बजेतक	८ ,,	योगिनी एकादशीव्रत सबका।
द्वादशी ,, ५।३० बजेतक	शुक्र	रोहिणी ,, ६।५ बजेतक	९ ,,	भद्रा रात्रिशेष ४। २५ बजेसे, प्रदोषव्रत।
त्रयोदशी रात्रिशेष ४। २५ बजेतक चतुर्दशी रात्रिमें २।५७ बजेतक	शनि	मृगशिरा ,, ५।३१ बजेतक	१० ,,	भद्रा दिनमें ३। ४१ बजेतक, मिथुन राशि प्रातः ५। ४८ बजेसे मास शिवरात्रिव्रत।
अमावस्या ,, १।८ बजेतक	रवि	आर्द्रा ,, ४।३९ बजेतक	११ ,,	स्नान-दान-श्राद्ध आदिकी अमावस्या।

सं० २०६७, शक १९३२, सूर्य उत्तरायण, दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, आषाढ़ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ११।३ बजेतक	सोम	पुनर्वसु दिनमें ३।२७ बजेतक	१२ जुलाई	कर्कराशि दिनमें ९।४५ बजे।
द्वितीया ,, ८।४४ बजेतक	मंगल	पुष्य ,, २।१ बजेतक	१३ ,,	चन्द्रदर्शन, श्रीजगदीश रथयात्रा, मूल दिनमें २। १ बजेसे।
तृतीया सायं ६।१८ बजेतक	बुध	श्लेषा ,, १२।२४ बजेतक	१४ ,,	भद्रा रात्रिशेष ५। २ बजेसे, सिंहराशि दिनमें १२। २४ बजेसे।
चतुर्थी दिनमें ३।४८ बजेतक	गुरु	मघा ,, १०।४५ बजेतक	१५ ,,	मूल दिनमें १०। ४५ बजेतक, भद्रा दिनमें ३। ४८ बजेतक, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी ,, १।२२ बजेतक	शुक्र	पूर्वा फाल्गुन दिनमें ९।५ बजेतक	१६ ,,	कन्याराशि दिनमें २।४२ बजेसे।
षष्ठी ,, ११।१ बजेतक	शनि	उत्तरा फाल्गुन प्रातः ७।३२ बजेतक	१७ ,,	स्कन्दषष्ठीव्रत, कर्दमषष्ठी (बंगाल) कर्कको संक्रन्ति में सूर्य दिनमें ७।४९ बजे।
सप्तमी ,, ८।५२ बजेतक	रवि	हस्त प्रातः ६।९ बजेतक चित्रा रात्रिशेष ५।१ बजेतक	१८ ,,	भद्रा दिनमें ८। ५२ बजेसे रात्रि ७। ५५ बजेतक, तुलाराशि सायं ५।३५ बजेसे, भानुसप्तमी, सौरश्रावणमासारम्भ।
अष्टमी प्रातः ६।५८ बजेतक	सोम	स्वाती ,, ४।१३ बजेतक	१९ ,,	श्रीपरशुरामाष्टमी (उड़ीसा) खर्चीपूजा-(त्रिपुरा)
नवमी ,, ५।२४ बजेतक दशमी रात्रिशेष ४। १३ बजेतक	मंगल	विशाखा रात्रिमें ३।४७ बजेतक	२० ,,	वृश्चिक राशि रात्रिमें ९।५४ बजेसे, पुष्य नक्षत्रमें सूर्य रात्रिमें ८।६ बजेसे।
एकादशी रात्रिमें ३।३० बजेतक	बुध	अनुराधा ,, ३।४९ बजेतक	२१ ,,	मूल रात्रिमें ३।४९ बजेसे, भद्रा दिनमें ३।५१ बजेसे रात्रिमें ३।३० बजेतक, श्रीविष्णुशयनी एकादशीव्रत (स्मार्त्त)।
द्वादशी ,, ३।१५ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा रात्रिशेष ४।१८ बजेतक	२२ ,,	श्रीविष्णुशयनी एकादशीव्रत (वैष्णव) धनुराशि रात्रिमें ४। १८ बजेसे, चातुर्मास्य व्रतारम्भ।
त्रयोदशी ,, ३।३४ बजेतक	शुक्र	मूल अहोरात्र	२३ ,,	प्रदोषत्रयोदशीव्रत, राष्ट्रियश्रावणमास दिन ३१
चतुर्दशी रात्रिशेष ४। २२ बजेतक	शनि	मूल प्रातः ५। २० बजेतक	२४ ,,	मूल प्रातः ५। २० बजेतक, भद्रा रात्रिमें ४। २२ बजेसे चौमासी चौदश (जैन), श्रीशिवपवित्रारोपण।
पूर्णिमा अहोरात्र	रवि	पूर्वाषाढ़ प्रातः ६।५२ बजेतक	२५ ,,	भद्रा सायं ५।० बजेतक, मकरराशि दिनमें १। २१ बजे स्नान-दान व्रतादिकी पूर्णिमा, गुरुपूर्णिमा, श्रीव्यासपूजा।
पूर्णिमा प्रातः ५।३८ बजेतक	सोम	उत्तराषाढ़ दिनमें ८।४९ बजेतक	२६ ,,	प्रातःकालकी उदयापूर्णिमा, श्रावणमास प्रयुक्त सोमवारव्रतारम्भ।

कृपानुभूति

माँका चमत्कार

वर्तमान समयमें जहाँ व्यक्तिने पाश्चात्य सभ्यताके प्रभावमें आकर परमात्मापर विश्वास करना छोड़ दिया है, वहीं कुछ ऐसी भी घटनाएँ घट जाती हैं, जो व्यक्तिको परमपिता परमात्मापर विश्वास करनेको बाध्य कर देती हैं। ऐसी ही एक घटना यहाँ प्रस्तुत है—

मैं एक गरीब किसान परिवारसे सम्बन्धित हूँ। मेरे परिवारमें कुल सात सदस्य हैं। मैंने वर्ष १९९८ ई० में अपने खेतमें माँ भगवतीका एक मन्दिर तथा वहींपर अपने परिवारके रहनेके लिये छोटा-सा मकान बनवाया। मैं अपनी नौकरी तथा परिवारके भरण-पोषणसे बचे समयका अधिकांश भाग माँकी सेवामें ही लगाता हूँ।

घटना २१ नवम्बर २००९ ई० दिन शनिवारकी है। मेरे यहाँ दो भैंसें पली थीं, एक भैंस दूध दे रही थी तथा दूसरी भैंस दसवीं बार ब्यानेके लिये थी। उक्त भैंसको सुबह प्रसवका दर्द होना शुरू हुआ और वह दोपहर दो बजेतक चलता रहा, लेकिन बच्चा बाहर नहीं आ पा रहा था, इससे भैंस काफी परेशान हो रही थी। मैंने गाँवके एक-दो लोगोंको बुलाया। गाँवका ही एक व्यक्ति इस मामलेमें जानकार था, उसने भैंसके पेटमें हाथ डालकर बच्चेके दोनों आगेके पैर तथा मुँह बाहर खींचनेकी कोशिश की तथा और लोगोंने भी बच्चेको बाहर खींचा तो भी बच्चा बाहर नहीं आया। उसके बाद मुझे लोगोंने बताया कि हवाई अड्डेके पास गिरगाँवमें एक गुर्जर जातिका व्यक्ति है, जो इस विषयमें काफी अच्छा जानकार है, उसे बुला लो। मैंने अपने बड़े लड़केको तथा गाँवके एक व्यक्तिको मोटर साइकिल लेकर उसके पास भेजा, किन्तु वह नहीं मिला, अतः एक दूसरे व्यक्तिको वे लोग ले आये, उसने भी आकर बच्चेको बाहरकी ओर खींचा, लेकिन उस समयतक बच्चा मर चुका था। उसके बाद उसने बच्चेके गलेमें रस्सीका फन्दा डालकर खींचा तो भी बच्चा टस-से-मस न हुआ। इससे भैंसको काफी परेशानी हो रही थी। उसके बाद मैंने गिरगाँववाले व्यक्तिको बुलानेके लिये बड़े लड़केको दुबारा भेजा, लेकिन वह फिर भी नहीं मिला। मैंने लड़केको फोन किया तो उसने बताया कि वह कहीं निकल गया है तो मैंने लड़केसे कहा—वापस लौट आओ, माँ जो करेंगी, सो अच्छा ही करेंगी।

मुझे भैंसको देखकर काफी असहनीय पीड़ा हो रही थी; क्योंकि वह बड़े जोर-जोरसे रँभा रही थी। सुबहसे लेकर रात्रिके ७.३० बज चुके थे। मैंने तथा वहाँ मौजूद लोगोंने भैंसके बचनेकी उम्मीद छोड़ दी थी तथा सभी लोग कहने लगे थे कि अब तो इसका परमात्मा ही मालिक है।

मुझसे रहा नहीं गया। मैं तुरंत हाथ-मुँह धोकर माँके मन्दिरमें गया और मैंने मन्दिरमें लगे घण्टेको बड़े जोरसे बजाया तथा धूप-अगरबत्ती आदि लगाकर सच्चे मनसे माँकी प्रार्थना की। उस समय मेरी आँखोंसे आँसू बह रहे थे तथा शरीरमें कम्पन भी हो रहा था। उसके बाद मैं मन्दिरके बाहर आया तो बड़े लड़केका फोन आया, उसने मुझे बताया कि वह व्यक्ति मिल गया है, जिसे लेने गये थे। मैंने लड़केसे कहा—उसे जल्दी ही लेकर आ जाओ। तबतक डॉक्टर भी आ गया था, डॉक्टरने भी खूब कोशिश की, लेकिन वह भी कामयाब नहीं हुआ। तब कुछ लोगोंने मुझसे कहा कि चाकू मँगाओ, जिससे बच्चेके टुकड़े-टुकड़े करके बाहर निकाल देते हैं। परंतु उसके लिये सबने मना किया और कहा कि अभी रुक जाओ, कुछ देरमें वह व्यक्ति आ ही रहा है। इस बीच वह व्यक्ति आ ही गया। उसने बड़ी फुर्तीसे पहले तो भैंसको तीन बार प्रणाम किया, फिर उसके पेटमें हाथ डालकर जाँच की और कहा कि इस बच्चेके दो मुँह हैं, इसीलिये परेशानी हो रही है। आपलोग भैंसकी चिन्ता न करें और काफी ताकत लगाकर बच्चेको खींचनेकी कोशिश करें। उसके बाद उस व्यक्तिने तुरंत बच्चेके दोनों गर्दनोंमें रस्सीके फन्दे डालकर अन्दर बाँध दिया और १०-१५ लोगोंने मिलकर बड़ी ताकतके साथ उसे खींचना शुरू कर दिया। एक बार तो रस्सी ही टूट गयी, लेकिन जब दुबारा रस्सी बाँधकर बच्चेको खींचा तथा सब लोगोंने माँका बड़े जोरसे जयकारा लगाया तो एकदम झटकेके साथ बच्चा बाहर आ गया और जो लोग रस्सी पकड़े थे, वे सब-के-सब इधर-उधर लुढ़क गये। सबने बच्चेको देखा, वह बड़ा आश्चर्यजनक था। उसके दो मुँह, आठ पैर तथा दो पूँछ अलग-अलग तथा दोनोंका धड़ एक ही था। उसके बाद माँ कालीकी कृपा तथा उस व्यक्तिकी कर्तव्यनिष्ठाके लिये मैंने कृतज्ञता प्रकट की।

मुझे पूरा विश्वास है कि जो व्यक्ति परमात्माके सहारेपर रहता है, उसके बड़े-से-बड़े संकट भी तिनकेके समान हो जाते हैं। मुझे माँ कालीकी कृपा और उस गुर्जर युवककी निःस्वार्थ परदुःखकातरता जीवनभर याद रहेगी।

—लाखनसिंह राजपूत

पढ़ो, समझो और करो

(१)

कर्तव्यनिष्ठा

घटना २३ मई २००९ ई० की है, हमारे गाँवमें सन् २००१ ई० से प्रत्येक शनिवारको गाँवके इण्टर कालेजके प्रिन्सिपल साहबके घरपर श्रीरामचरितमानसके सुन्दरकाण्ड का पाठ आयोजित होता आ रहा है। उसी क्रममें उपर्युक्त तिथिपर भी पाठारम्भ होनेहीवाला था, गाँवके सभी मानस-प्रेमी भाई-बन्धु प्रिन्सिपल साहबके दरवाजेपर एकत्र हो गये थे, परंतु स्वयं प्रिन्सिपल साहब वहाँ उपस्थित नहीं थे। थोड़ी देरमें वे भी कहींसे आ गये। मानस-पाठका कार्य विधिवत् पूर्ण हुआ, परंतु सबके मनमें प्रिन्सिपल साहबके देरसे आनेकी बात कौंध रही थी। बादमें पता चला कि प्रिन्सिपल साहब शामको कुछ आवश्यक कार्यवश बाजारके लिये निकले तो बगलवाले गाँवके आगे जानेपर रोडपर उन्हें एक प्लास्टिकका कैरीबैग पड़ा हुआ मिला। उन्होंने बैगको उठाकर गाड़ीकी डिग्गीमें रख लिया और बाजार चले गये। बाजारमें अपना कार्य समाप्त करनेके पश्चात् वे एक परिचितके मेडिकल स्टोरपर बैठे तो उन्हें उस कैरीबैगका ध्यान आया। उन्होंने जैसे ही उसे खोला तो उसमें एक पासबुक एवं पाँच-पाँच सौके ७९ नोट यानी ३९५०० रु० देख वे आश्चर्यचकित हो गये। पुनः पासबुक देखा तो उसपर पासके ही ग्रामके निवासी एक सज्जनका पता लिखा था। उन्होंने उन सज्जनसे जब टेलीफोनपर सम्पर्क किया तो वे गाँवके बाजारमें बड़ी हताश स्थितिमें घबड़ाये-से मिले और कहा कि अरे साहब! क्या बताऊँ? मेरे साथ एक बड़ी दुर्घटना हो गयी है। मैंने आज बैंकसे ४०,००० रु० निकाले, प्लास्टिकके कैरीबैगमें डाला और बाइकसे घर चल पड़ा। किन्तु पता नहीं वह बैग कहाँ गिर गया! मुझे जहाँतक स्मरण है कि पासके बाजारतक वह था। अब मैं बड़ी ही परेशानीमें हूँ; क्योंकि कल मेरे मकानकी छत पड़नी है और बिल्डिंग मैटेरियलवालेको आज ही ४०,००० रु० देना था, किन्तु अब बुद्धि कार्य नहीं कर रही है कि क्या करूँ? इसपर प्रिन्सिपल साहबने कहा कि आप मिठाई लेकर घर चलो, मैं आ रहा हूँ। इतना सुननेपर वे सज्जन आश्चर्यचकित होकर बोले—साहब! बैग आपको मिला है क्या? उनके 'हाँ' करनेपर उसकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। घर पहुँचकर प्रिन्सिपल साहबने कहा कि इसमें तो साढ़े उनतालीस हजार रुपये ही हैं तो उन सज्जनने कहा कि हाँ उस बैगमें एक पासबुक है, जिसमें मैंने आज ही उन्हीं रुपयोंमेंसे ५०० रु० जमा किया है, अतः उनतालीस हजार पाँच सौ ही नगद रुपया बैगमें होगा। प्रिन्सिपल साहबने उन्हें बैग सौंप दिया। इस प्रकार उनकी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठाने पड़ोसी गाँवके उन सज्जनकी तो आर्थिक हानि बचायी ही, साथ ही हम सबके लिये भी प्रेरणा दी कि जीवनमें ऐसे परहितके सत्कार्य किये जायँ।

—सी०पी० राय शर्मा

(२)

अनुकरणीय मानवता

मेरा पुत्र भोपालमें बी० फार्मा कोर्समें एडमीशन लेकर अध्ययन कर रहा था। छुट्टियोंमें वह दिनांक १२.६.२००४ ई० को अपने घर लालीदेवी (झाबुआ) आ रहा था। ट्रेनद्वारा भोपालसे उज्जैन आकर वहाँसे दूसरी ट्रेनसे मेघनगरहेतु आना था। रात्रिमें दो बजे वह उज्जैन आया। ट्रेन दो घण्टे देरसे मेघनगर जानेवाली थी, तबतक प्लेटफार्मके बेंचपर वह सामान (बैग)-सहित आराम करने लगा। अचानक नींदकी झपकी लग गयी, जब उसकी नींद टूटी तो उसने देखा कि मेरा बैग गायब है। वह बड़ा परेशान एवं बैचेन हो गया; क्योंकि उस बैगमें मार्कशीट एवं सारे सर्टीफिकेट थे। पहले तो उसने अपने आसपास ही ढूँढ़ा, परंतु बैग नहीं मिला। तब उसने पुलिसमें रिपोर्ट दर्ज करायी, फिर भी बैगका पता न चला। बैचेन होकर हमें फोन लगाया और वास्तविक स्थितिसे अवगत कराया। हमने सांत्वना एवं ढाढ़स बँधाया और उसे घरपर बुला लिया। हमने (परिवारसहित) अपनी कुलदेवी माँ अन्नपूर्णासे प्रार्थना की, माँ! हमलोगोंकी सच्ची श्रद्धा एवं भक्ति है तो खोयी हुई वस्तुएँ वापस दिला दें। हम अपनी कुलदेवीके सच्चे भक्त हैं, नवरात्रिकी नवमीको हमारा पूरा परिवार पूरी श्रद्धाके साथ प्रतिवर्ष पूजन करता है।

माँसे हमारी प्रार्थना चलती रही। १५ दिन बाद किसी सज्जनका इन्दौरसे फोन आया कि आपकी फाइल हमारे

पास आयी है, उसमें महत्त्वपूर्ण दस्तावेज हैं, ले जायँ। जब मैं इन्दौर (सांवेर रोड) गया, तो वह कबाड़खानेकी दूकान थी। उस सज्जनने बताया कि हम कबाड़ खरीदते हैं, कोई बोरेमें कबाड़ बेचने आया था। जब नौकरोंने बोरा खोला तो यह फाइल हमें दी। हमने देखा तो इसमें महत्त्वपूर्ण कागज थे। फाइलमें टेलीफोन नं० भी था। तब हमने फोनद्वारा आपको खबर कर दी। उस सज्जनने हमसे पूरी जानकारी लेनेके बाद फाइल हमें सौंप दी।

मैं सद्भावनाके रूपमें उन्हें कुछ रुपये देने लगा तो उन्होंने साफ इनकार कर दिया और कहा—क्यों हमें शर्मिन्दा कर रहे हैं, मानवताके नाते यह तो हमारा कर्तव्य था। और तो और उन्होंने मुझे बैठाकर चाय, नाश्ता करवाया और बोले—मुझे एक अच्छा कार्य करके खुशी मिली, यह क्या कम है—धन्य हैं ऐसे मानव, धन्य हैं ऐसे सज्जन; जिन्हें मेरा परिवार कभी भूलेगा नहीं, मेरा पूरा परिवार अपनी कुलदेवी एवं उन सज्जनको धन्यवाद देता है।

आज भी ऐसे नेक एवं ईमानदार व्यक्ति हैं, जो इस प्रकारकी सद्भावना रखते हैं। यदि कोई दूसरा होता तो शायद इस ओर ध्यान ही नहीं देता।—**गणपतिसिंह वर्मा**

(३)

भगवान् खुद जगाने आये

जून २००६ ई० की घटना है। हमारे भागलपुर शहरमें वृन्दावनसे एक महात्माजी आये थे। दिनांक ११.६.२००६ से १८.६.२००६ तक उनका भागवतपर प्रवचन होनेवाला था, जिसके पोस्टर मैंने पहले ही देख लिये थे। बस, उस दिनसे मनमें बड़ी उत्सुकता पैदा हो गयी कि वह तारीख जल्दी आये, ताकि भागवत-कथा सुननेका लाभ मिले।

आखिरमें वह ११ तारीख आ ही गयी। प्रतिदिन सायंकाल तीन बजेसे कथा प्रारम्भ होती थी, मैं पहले दिन कुछ पहले ही पण्डालमें पहुँचकर बैठ गया। महाराजजी ठीक तीन बजे मंचपर विराजमान हो गये, मैं बड़ी लगनसे कथा सुनता था। अभी चार ही दिन हुए थे, मैं दोपहरका भोजन करके ऊपर छतकी कोठरीमें थोड़ा आराम करने चला गया। थोड़ी ही देरमें मुझे काफी गहरी नींद आ गयी। जब ढाई बजा तो नींदमें ही मुझे लगा कि मेरी पत्नी मुझे जगानेके लिए मेरे पैर जोरोंसे हिलाकर कहती है कि ढाई बजे गये, प्रवचन सुनने नहीं जाइयेगा। मैंने उसे जवाब दिया कि उठ रहा हूँ। मैं जब कपड़े पहनकर नीचे आया तो पत्नीको देखा कि वह भी सोयी हुई है, चूँकि देर हो रही थी, इसलिये मैं चला गया।

शामको जब मैं प्रवचन सुनकर घर आया तो पत्नीसे कहा कि आज अगर तुम नहीं उठाती तो मेरा प्रवचन सुनना छूट जाता। पत्नीने जवाब दिया कि मैं कहाँ गयी थी आपको उठानेको! मैंने पूछा क्या तुमने मेरे पैरको जोरोंसे नहीं हिलाया था और बोली नहीं थी कि ढाई बज गये, प्रवचन सुनने नहीं जाइयेगा? तो पत्नी बोली कि मैं छतपर गयी ही नहीं, मैं तो नीचेवाली कोठरीमें खुद सोयी थी। तब मुझे ज्ञात हुआ कि प्रवचन सुननेकी लगन एवं उत्सुकताका फल था, जो भगवान् खुद जगाने आये। प्रभुकी इस कृपाका ध्यानकर मन आज भी गद्गद हो उठता है—**अशोककुमार मिश्रा**

(४)

अनूठा मातृभक्त बालक

सन् १८३१ ई० की बात है, दक्षिण भारतके चित्तूर जिलेके गाँवके किसानोंकी फसल प्राकृतिक कारणसे चौपट हो गयी। एक किसानको मालगुजारीके रुपये सरकारी खजानेमें जमा न करानेके आरोपमें पकड़कर जेल भेज दिया गया।

अचानक किसानकी पत्नी किसी घातक रोगसे पीड़ित हो गयी। घरमें उसका इलाज करानेवाला कोई नहीं था। १२ वर्षीय पुत्र रंगनाद परेशान हो उठा कि उसकी माँका इलाज कौन कराये? सेवा कौन करे?

उन दिनों चित्तूरके जिला जज प्रभाकर राव थे। वे अत्यन्त न्यायप्रिय तथा धार्मिक थे। कई बार गरीब लोगोंके मुकदमेमें उनकी सहायता कर दिया करते थे। अपने वेतनका एक चौथाई भाग गरीबों एवं असहायोंकी सेवापर खर्च करते थे।

१२ वर्षीय रंगनाद एक पड़ोसीको साथ लेकर जज साहबके बंगलेपर पहुँचा। उसने कहा—'सर, मेरी माँकी तबियत बहुत खराब है। उसके जीवनको खतरा है। यदि पिताजी जेलसे बाहर नहीं आये तो उन्हें डॉक्टरको कौन दिखायेगा? उनकी देखभाल कौन करेगा? उन्हें १५ दिनके लिये जमानतपर छुड़वानेकी कृपा करें।'

जजने कहा—'नियमानुसार रुपये जमा कराकर जमानत

दी जा सकती है।'

रंगनादने कहा—'मेरे पास एक रुपया भी नहीं है, आप पिताजीके बदले मुझे जेल भेज दें। जब माँ ठीक हो जायगी तो वे जेल चले जायँगे; मैं बाहर आ जाऊँगा।'

जिला जज बालककी मातृभक्ति और उसकी सरलता देखकर हतप्रभ रह गये। उन्होंने अपने विशेष अधिकारका उपयोग करते हुए किसानको जेलसे रिहा करा दिया। साथ ही बालकको कुछ रुपये देते हुए बोले—इन्हें माँके इलाजमें खर्च कर देना।

आगे चलकर यह मातृभक्त बालक कई भाषाओंका विद्वान् बना। रंगनाद शास्त्रीके नामसे उसने शिक्षाके क्षेत्रमें अच्छी ख्याति पायी।

वर्तमान समयमें माता-पिताकी घोर अवहेलना करने वाले क्या उपर्युक्त प्रसंगसे कुछ प्रेरणा ले सकते हैं?

(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी)

[प्रेषक—शिवकुमार गोयल]

(५)

ईमानदारीकी मिसाल

आजके युगमें जहाँ बेईमानीका समुद्र अपनी उत्ताल तरंगोंसे आलोडित हो रहा है, वहीं ईमानदारीरूपी मनोरम द्वीप भी दृष्टिगोचर होते हैं, जिन्हें देखकर मन और हृदय शीतल हो जाते हैं। यहाँ ईमानदारीकी एक ऐसी ही घटना प्रस्तुत है, जिसकी सुवास आजके स्वार्थमय विषाक्त वातावरणको सुगन्धित करती है—संगरिया-निवासी एक फर्मके मुनीमने नौ लाख रुपये वापस लौटाकर जो मिसाल कायम की है, वह शायद इलाकेमें पहले कभी देखनेको नहीं मिली। प्राप्त सही जानकारीके अनुसार संगरियाकी पुरानी धान मण्डीकी फर्म केवलराम कृष्णलालके मुनीम पवनकुमारने स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुरकी स्थानीय शाखामें फर्मका एक लाख बासठ हजारका चेक लगाया, इसपर कैशियरने दस लाख बासठ हजारकी पेमेन्ट कर दी। मौकेपर पवनकुमारने कैशियरसे कहा कि आपने रुपये ज्यादा दिये हैं, मगर कैशियरने कहा कि रुपये सही दिये हैं। अधिक रुपये मिलनेपर पवनकुमारने बैंकके उप-प्रबन्धकको नौ लाख रुपये वापस देकर कहा कि आपके कैशियरने एक लाख बासठ हजारकी जगह दस लाख बासठ हजार रुपये दे दिये हैं। जब कैशियरने कैश मिलाया तो उसके होश उड़ गये, लेकिन उपप्रबन्धक महोदयने सारी स्थिति बतायी तो कैशियरकी जानमें जान आयी। उसने पवनकुमारको धन्यवाद दिया। यह ईमानदारीकी एक बहुत बड़ी मिसाल है। यह १ मई सन् २००९ ई० की सत्य घटना है।—**हरिसिंह वर्मा**

(६)

नाम-जपकी एक आश्चर्यजनक घटना

मुझसे आयुमें सात-आठ वर्ष बड़े मेरे एक मित्र थे, जो '**हरिः ॐ तत्सत्**' के नामसे जाने जाते थे। नमस्कारमें भी वे इन्हीं शब्दोंका प्रयोग करते थे तथा उन्हींसे अपनेको सम्बोधित किया जाना उपयुक्त समझते थे। अद्वैत वेदान्तदर्शनमें उनकी अविचल आस्था थी। अन्य लोग भी इसी सिद्धान्त पर चलें—यह उनकी उत्कट लालसा थी। उन्हें आश्चर्य था कि लोग इस साधारण-सी बातको क्यों नहीं समझते और अन्यथा आचरण करते हैं! उनका आवास मेरे आवाससे लगभग एक किलोमीटरकी दूरीपर था।

अकस्मात् मुझे एक सज्जनने सूचित किया कि '**हरिः ॐ तत्सत्**'का निधन हो गया है। मैं भागता हुआ उनके आवासपर पहुँचा। उनके लड़के विदेशमें थे, अतः अन्तिम संस्कारके लिये उनकी प्रतीक्षा की जा रही थी। घरपर नौकरोंके अतिरिक्त संवेदना व्यक्त करने आये हुए कुछ व्यक्ति थे। उनका शव कमरेमें ही रखा हुआ था। उनका चेहरा तेजसे उद्दीप्त था, माथेपर चंदन आदि लगा दिया गया था। मैंने उन्हें प्रणाम किया और सन्तप्त हृदयसे घर चला आया।

कुछ दिन बाद मेरे एक अधिवक्ता मित्र, जो उनके भी घनिष्ठ थे, मुझे मिले। उन्होंने जो मुझे बताया वह मेरे लिये आश्चर्यकी बात थी। उन्होंने कहा कि मैंने मृत्युके लगभग छः घंटे बाद '**हरिः ॐ तत्सत्**' के शवका मोबाइल कैमरेसे चित्रांकन किया। चित्रके साथ ही उसमें कुछ ध्वनि तरंगोंका भी समावेश हो गया, उन्होंने मोबाइल मेरे कानमें लगाया तो उससे लगातार '**हरिः ॐ तत्सत्**' '**हरिः ॐ तत्सत्**' की ध्वनि निकल रही थी। मैं आश्चर्यमें डूब गया तथा इसका वैज्ञानिक विश्लेषण करनेकी चेष्टा करने लगा। मेरे लिये यह एक अद्भुत घटना थी, किंतु सत्य तो सत्य ही था।—**एन०एल० पाण्डेय**

मनन करने योग्य

सच्चा संन्यास

एक सुन्दर, कुलीन, संस्कारी और बलिष्ठ शरीरके युवकका मन बहुत प्रयासके बाद भी लौकिक व्यवहार एवं सांसारिक सम्बन्धोंमें नहीं लगता था। होनेको घरमें उसके स्तर और पात्रताका सब साधन था। पिताका एक अच्छा चलता छोटा-सा व्यवसाय, प्रेम करनेवाली माँ, सुविधा-सम्पन्न घर; पर जाने क्या अवसाद था, क्या रीतापन कि बस एक ही प्रश्न मन-मस्तिष्कमें घूमता रहता कि क्या सर्वसमर्थ ईश्वरने ये मूल्यवान जीवन इसलिये दिया है कि उसे पशुओंकी भाँति आहार, निद्रा, भय और मैथुन-वृत्तियोंकी बलि चढ़ा दिया जाय या और कुछ प्रयोजन है? प्रकृतिका एक अद्भुत नियम है, विशेष रूपसे अध्यात्म और धर्मके क्षेत्रमें कि यदि सच जाननेकी जिज्ञासा और जीवनके मौलिक प्रश्नोंका उत्तर पानेकी प्यास प्रामाणिक हो तो कुआँ खुद प्यासेके पास चलकर आता है।

एक पुस्तकसे युवकको सूचना मिली कि दुरूह हिमालयके अन्त:प्रान्तमें कोई मठ है, जहाँ शताधिक वर्षके एक ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध, अनुभवसिद्ध संन्यासी रहते हैं और कई-कई लोग अपनी जिज्ञासाके समाधानके लिये उनके पास पहुँचते हैं और उनका प्रयोजन सिद्ध भी होता है।

मठ दूर तो था ही, यात्रामार्ग कठिन, श्रमसाध्य और दुर्गम भी, पर युवकका संकल्प भी दृढ़ था और वह सहजतासे विचलित होनेवाला न था। वह जीवन और प्राणोंका जोखिम लेकर उस मठकी खोजमें चल पड़ा। बड़ी असुविधाएँ और कठिनाइयाँ उठाता, जान हथेलीपर धरे वह युवक आखिर मठ पहुँचा और साधुश्रेष्ठके सम्मुख भी। सहृदय साधुने पहले उसे कुछ दिन स्वस्थचित्त होने, यात्राकी थकान मिटाने, नियमित भोजन करने और मठमें ही विश्राम करनेकी सलाह दी और उसकी व्यवस्था भी की। वे युवकके वैराग्य और दृढ़ निश्चयसे प्रभावित भी थे और प्रसन्न भी।

आखिर युवकके जीवनका वह बहुप्रतीक्षित मूल्यवान् दिन आ पहुँचा, जब संन्यासीने उसकी जिज्ञासाओं और प्रश्नोंपर बात करनेके लिये उसे एकान्तमें अपने कक्षमें बुलाया। आन्दोलित, उद्वेलित, उत्तेजित और उत्साहित युवक अपने कक्षमें प्रस्तरमूर्तिसदृश शान्त बैठे संन्यासीकी सेवामें उपस्थित हुआ और आज्ञा पाकर अपनी सारी व्यथा-कथा, अरुचि, उच्चाटन, असमंजस, अशान्ति, जिज्ञासा, प्रश्न और सन्देह बड़े विश्वाससे संन्यासीको बताने लगा।

दत्तचित्त सुनते रहे वे अनुभववृद्ध संन्यासी। युवककी बात खत्म होते ही संन्यासीने जो प्रश्न किया, हतप्रभ रह गया युवक उसे सुनकर।

बेटा! तुम्हारे गाँवमें चावल क्या भाव मिलते हैं?

सन्न रह गया युवक—क्या अर्थ है इस प्रश्नका? क्या प्रयोजन, क्या संगति बैठती है उसकी विरक्ति और चावलके भावकी।

खीझकर युवकने उत्तर दिया—भाड़में जाय वह गाँव और यदि वहाँ चावल मुफ्त भी मिलते हों तो उसमें मेरी रुचि नहीं है।

उत्तर सुनते ही संन्यासी उठे और युवकको गले लगा लिया। प्रसन्नता और हार्दिक पुलकन उनके चेहरेपर थी। उन्होंने स्वीकृत किया उसे अपने अनुशासन और मार्गदर्शनमें। दीक्षा और संन्यास देनेकी सहमति भी दी।

युवक तो धन्य और कृतकृत्य हो गया। ऐसा लगा उसे मार्ग मिल गया, पर एक बात उसे हमेशा सालती रहती—काँटे-सी चुभती, वह थी संन्यास और चावलके भावकी संगतिकी। बहुत प्रयासके बाद भी जब वह इस गुत्थीको सुलझानेमें सफल न हुआ तो उसने साहसकर संन्यासीसे ही निवेदन किया इस पहेलीके उत्तरका।

वृद्ध संन्यासीने एक उन्मुक्त अट्टहास किया और सप्रेम अपने नये शिष्यके सिरपर हाथ फेरते बोले—बेटा! संसारसे उपराम होकर क्रोधमें, उत्तेजनामें, पराजयकी पीड़ामें, हानिसे हारकर, परिवारके दुर्व्यवहारसे टूटकर, प्रेममें असफल होकर, अपनोंसे धोखा खाकर लोग तथाकथित संन्यासके लिये युगोंसे शान्त, तपस्याके लिये उपयुक्त इस अमृत-क्षेत्रमें आ तो जाते हैं, परंतु अपना धन्धा, व्यापार, दुकानें, मित्र, शत्रु, पुत्र, पुत्री, पत्नी, पिता, घर, मकान, नौकरी, सत्ता, अधिकार, धन, पद, कुलीनता, बुद्धिमत्ता, शास्त्रज्ञान, विजयके किस्से, जाने क्या-क्या कूड़ा-करकट भी साथ ले आते हैं। यहाँ आकर उनकी कुण्ठाएँ और कामनाएँ, एषणाएँ और इच्छाएँ एक संसारसे भी ज्यादा सूक्ष्म, घातक और बाँधनेवाला संसार गढ़ लेती हैं। उन्हें खुद तो कुछ मिलता ही नहीं; दूसरे यहाँके वातावरणकी शुचिता और शान्ति प्रदूषित होती है; सो अलग।—**डॉ० श्रीनारायणजी तिवारी**

य: शृणोति नरो नित्यमेतदाख्यानमुत्तमम्।
सम्प्राप्नोति नरः सत्यं संसारसुखमद्भुतम्॥ ५०

ज्ञानदं मोक्षदं चैव कीर्तिदं सुखदं तथा।
पावनं श्रवणान्नूनमेतदाख्यानमद्भुतम्॥ ५१

अखिलार्थप्रदं नृणां सर्वधर्म
धर्मार्थकाममोक्षाणां

जनमेजयेन राज्ञासौ
उवाच संहितां दिव्यां व्यासः स

चरितं चण्डिकायास्तु शुम्भदैत्यवधाश्रितम्।
कथयामास भगवान्कृष्णः कारुणिको मुनिः।
इति वः कथितः सारः पुराणानां मुनीश्वराः॥ ५४

जो मनुष्य उनके इस उत्तम आख्यानको नित्य सुनता है, वह संसारमें अद्भुत सुख प्राप्त करता है, यह सत्य है। इस पवित्र और अद्भुत आख्यानका श्रवण करनेसे यह ज्ञान, मोक्ष, कीर्ति और सुख प्रदान करता है। यह मनुष्योंकी सभी कामनाओंकी पूर्ति ... समस्त धर्मोंका सार और धर्म, अर्थ, ...तिका परम कारण बताया

...मेजयके पूछनेपर सभी ...त्यवतीपुत्र व्यासने उनसे ...वतसंहिता कही। परम दयालु भगवान् कृष्णद्वैपायन मुनि व्यासने शुम्भदैत्यके वधकी कथापर आधारित देवी चण्डिकाके चरित्रका वर्णन किया था। हे मुनीश्वरो! समस्त पुराणोंका सारस्वरूप यह इतिहास मैंने आपलोगोंसे कह दिया॥ ५३-५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे सुरथराजसमाधिवैश्ययोर्देवी-भक्त्येष्टप्राप्तिवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

प्र० ति० २०-६-२०१०
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७
पंजीकृत-संख्या—NP/GR—13/2010
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE NO.-WPP/GR/-03/2010

श्रावणमासमें पाठ-पारायण एवं स्वाध्यायहेतु गीताप्रेसके प्रमुख प्रकाशन
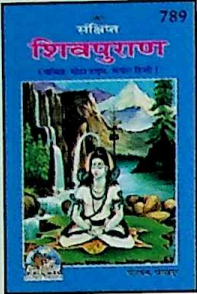
संक्षिप्त शिवपुराण (कोड 789) मोटा टाइप, सचित्र, सजिल्द, ग्रन्थाकार—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म शिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें इन्हें पञ्चदेवोंमें प्रधान अनादि सिद्ध परमेश्वरके रूपमें स्वीकार किया गया है। शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। भगवान् शंकरके उपासकोंके लिये यह पुराण संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य रु० १३०, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च रु० ३७ अतिरिक्त। **(कोड 1468) विशिष्ट संस्करण,** मूल्य रु० १६५, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च रु० ४३ अतिरिक्त। **(कोड 1286)** मूल्य रु० १५०, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च रु० ३७, गुजरातीमें भी उपलब्ध।

रुद्राष्टाध्यायी (कोड 1627), सानुवाद पुस्तकाकार—भगवान् शिवकी उपासनामें रुद्राष्टाध्यायीका विशेष महत्त्व है। इसके द्वारा भक्तगण रुद्राभिषेक करके मनोभिलषित सिद्धि प्राप्त करते हैं। इस पुस्तकमें रुद्राष्टाध्यायीके मन्त्र, उनका हिन्दी-अनुवाद, संकल्प, गौरी-गणेश-पूजन, शिव-पूजन, ध्यान, उत्तर-पूजन, आरती, क्षमा-प्रार्थना आदि संगृहीत हैं। मूल्य रु० २०, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च रु०२२ अतिरिक्त।
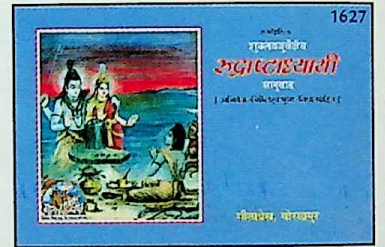
शिवस्तोत्ररत्नाकर (कोड 1417) सचित्र, सजिल्द, पुस्तकाकार—भगवान् शिवके चरित्र बड़े ही उदात्त तथा अनुकम्पापूर्ण हैं। ये थोड़ी ही उपासनासे प्रसन्न होकर अपने भक्तोंको सब कुछ प्रदान कर देते हैं। इस पुस्तकमें भक्तोंके लिये उपयोगी भगवान् शिवके विभिन्न स्तोत्रों, स्तुतियों, सहस्रनाम तथा आरती आदिका सुन्दर संकलन किया गया है, जिससे भक्तजनोंको पठन-पाठन, कीर्तन और मनन करनेमें सुविधा हो। मूल्य रु० २२, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च रु० २० अतिरिक्त।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम् (कोड 29) मूल, मोटा टाइप, ग्रन्थाकार—श्रीमद्भागवतमहापुराण भक्त और मोक्षका अनुपम सोपान है। इसके प्रत्येक श्लोकमें भक्ति, प्रेमकी अनुपम सुगन्धि है। भव-बन्धनोंसे मुक्ति प्राप्त करनेकी कामनासे इस पुराणके सप्ताह अनुष्ठानकी परम्परा है। मूल श्लोकोंका पाठ करनेकी दृष्टिसे यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य रु० १२५, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च रु० ३५ अतिरिक्त। **(कोड 124) मूल, मझला,** मूल्य रु० ७५, **विशिष्ट संस्करण (कोड 1855)** मूल्य रु० ७५, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च रु० २८ अतिरिक्त।
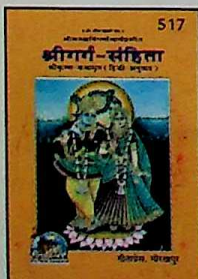
श्रीगर्ग-संहिता (कोड 517) सचित्र, सजिल्द, ग्रन्थाकार—यह ग्रन्थ यदुकुलके महान् आचार्य महामुनि श्रीगर्गजीकी रचना है। इसमें श्रीमद्भागवतमें सूत्ररूपसे वर्णित श्रीराधा-कृष्णकी लीलाओंका विस्तृत वर्णन किया गया है। श्रीराधाजीके दिव्य आकर्षणसे आकर्षित भगवान् श्रीकृष्णका रासरासेश्वरी श्रीराधा एवं गोपिकाओंके साथ रासलीलाका इतना सुन्दर और सरस वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। भगवान् श्रीकृष्णके अनुरागी भक्तोंके लिये यह दिव्य ग्रन्थ नित्य स्वाध्यायका विषय है। मूल्य रु० ११०, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च रु० ३५ अतिरिक्त।

कल्याण

तुम यदि निराशा, असफलता, दु:ख, शोक, विषाद, अशान्ति, अवनति, दुर्गति, अवरोध, कलह, युद्ध, भय, बन्धन, बीमारी और विनाश इत्यादि बातें सोचते रहोगे, मनमें इन्हींकी कल्पना करके इन्हींके विविध भयानक चित्रोंको देखते रहोगे तो याद रखो—तुम्हारी कल्पनाके ये चित्र बाहर भी तुम्हारे लिये वैसा ही भयानक वातावरण, वैसे ही बुरे संयोग, वैसे ही असाधारण कारण और अन्तमें वैसी ही परिस्थिति उत्पन्न कर देंगे। मनमें जैसा संकल्प होता है, वैसा ही परिणाम भी होता है—

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।'

अतएव यदि शुद्ध परिणाम चाहते हो तो नित्य शुद्ध संकल्प करो। उत्साह, सफलता, सिद्धि, सुख, आनन्द, आह्लाद, शान्ति, उन्नति, विकास, प्रेम, सेवा, निर्भयता, मुक्ति, स्वस्थता और निर्माणके सुन्दर सुशोभन संकल्प करो। इनसे तुम्हारा चित्त-क्षेत्र बहुत ही निर्मल सुगन्धिसे भर जायगा। फिर बाहरके वातावरण, संयोग, कारण और परिस्थिति भी ठीक वैसी ही बन जायगी। जीवन अपरिमित अपूर्व सुख-शान्तिसे ओतप्रोत हो जायगा।

याद रखो—जो लोग दिन-रात अशुभ संकल्प करते रहते हैं, वे स्वयं तो दु:खी रहते ही हैं, जगत्‌को भी स्वभावत: ही अपने अशुभ भावोंका दान देकर—उन्हें फैलाकर सबको न्यूनाधिकरूपसे दु:खी करते हैं। इसी प्रकार शुभ संकल्प करनेवाले पुरुष स्वयं सुखी होते हैं और संसारके सब प्राणियोंको भी सुखी करते हैं।

यह भी याद रखो कि सारे शुभका परम आधार है—ईश्वरमें विश्वास। समस्त शुभ विचार, शुभ संकल्प, शुभ गुण और शुभ भाव ईश्वर-विश्वाससे ही उदित होते और टिकते हैं। जिसका ईश्वरमें विश्वास नहीं, वह शुभ संकल्प और शुभ पदार्थोंका उत्पादन, संग्रह-संवर्धन और संरक्षण नहीं कर सकता। उसका चित्त बरबस अशुभकी ओर प्रवृत्त होगा।

याद रखो—जिसका ईश्वरमें विश्वास होगा, वही यह समझेगा कि दुनिया—जो कुछ है, सब ईश्वर है और दुनियामें जो कुछ है, सब ईश्वरका है। वही अपनेको और अपने सब कुछको ईश्वरके अर्पण कर सकेगा। इस प्रकार जो अपना सर्वस्व ईश्वरको अर्पण कर देता है, उसका फिर जगत्‌के साथ केवल पवित्र सेवाका सम्बन्ध शेष रह जाता है। वह केवल सेवाके लिये ही जीवन धारण और जीवनके समस्त कार्योंका यथाविधि सम्पादन करता है; क्योंकि वह सचराचर प्राणीमें अपने प्रभुको देखता है—***'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥'***

याद रखो—इस प्रकारके विश्वासी सेवकमें सारे सद्‌गुण, सारे सद्विचार, सारे सत्संकल्प अपने-आप ही आ जाते हैं—उसके चित्तमें कभी अशुभका, असत्‌का उदय ही नहीं होता। वह सर्वथा और सर्वदा नित्य नयी-नयी उमंगसे अपने प्रभुके सुखमय स्मरणके साथ-साथ उनकी सेवाके ही शुभ संकल्प किया करता है और इसी आनन्दमें निमग्न रहता है कि प्रभु कृपापूर्वक सेवामें उसे निमित्त बनाते हैं और उसकी सेवा स्वीकार करते हैं।

उसको न अपनेमें मोह-ममता रहती है और न तो जगत्‌के किसी पदार्थमें ही। वह अपने शरीरकी तथा जगत्‌के पदार्थोंकी इसीलिये देख-रेख करता है कि वे प्रभुकी सेवाके साधन हैं। ऐसी अवस्थामें उसके अन्त:करणमें अशुभका तो कोई लेश रहता ही नहीं, वरं वह आग्रहपूर्वक किन्हीं शुभ संकल्पोंको भी अपनेमें रखनेका प्रयत्न नहीं करता। वे तो उसी प्रकार अनिवार्यरूपसे उसके हृदयमें स्वाभाविक बने रहते हैं, जैसे चन्द्रमाके साथ उसकी निर्मल शीतल सुधामयी ज्योत्स्ना और सूर्यके साथ उसका प्रखर प्रकाश रहता है।

जबतक ऐसा न हो, तबतक सत्संग, स्वाध्याय और भजनके द्वारा ईश्वरमें विश्वास बढ़ानेकी तथा बार-बार अशुभ संकल्पोंको हटाकर शुभके स्मरण, संवर्धन और संरक्षणकी सतत चेष्टा करते रहो। **'शिव'**

विद्यार्थी-जीवनके सदाचार

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भारतमें आजकल बालकोंको जो शिक्षा-दीक्षा प्राप्त हो रही है, वह भारतीय संस्कृतिके लिये तो घातक है ही उन बालकोंके लिये भी अत्यन्त हानिकर और उनके जीवनको असंयमपूर्ण, रोगग्रस्त, दु:खी बनाकर अन्तमें मानव-जीवनके चरम लक्ष्य—भगवत्प्राप्तिसे वंचित रखनेवाली है। अधिकांश बुद्धिमान् सज्जन बहुत विचार-विनिमयके अनन्तर इसी निर्णयपर पहुँचे हैं कि वर्तमान शिक्षाप्रणाली हमारे बालकोंके लिये सर्वथा अनुपयोगी है। त्रिकालज्ञ ऋषि-मुनियोंका जो अनुभव था, वह सब प्रकारसे इस लोक और परलोकमें कल्याणकारक था, पर आज हमलोग उनके अनुभवके लाभसे वंचित हो रहे हैं; क्योंकि उन महानुभावोंकी जो भी शिक्षा है, वह शास्त्रोंमें है तथा अन्य प्रकारके व्यर्थके कार्योंमें समय खो देनेके कारण समयाभावसे और श्रद्धा-भक्ति एवं रुचिकी कमीसे हमलोग शास्त्र पढ़ते नहीं, अत: उनसे प्राय: अनभिज्ञ रहते हैं। हमारी संतान तो इस ज्ञानसे प्राय: सर्वथा ही शून्य होती जा रही है। इसलिये भारतीय संस्कृतिके प्रति श्रद्धा रखनेवालों तथा बालकोंके सच्चे शुभचिन्तकोंको ऐसी शिक्षा-पद्धति बनानेका प्रयत्न करना चाहिये, जिससे बालक-बालिकाओंमें ईश्वरभक्ति, माता-पिताकी सेवा, देव-पूजा, श्राद्ध, एकनारीव्रत, सतीत्व आदिमें श्रद्धा उत्पन्न हो। साथ ही अभिभावकोंको स्वयं भी इनका पालन करना चाहिये। जो अभिभावक स्वयं सद्गुण-सदाचारका पालन नहीं करते, उनका बच्चोंपर असर नहीं हो सकता।

ऐसी उत्तम शिक्षाके लिये गीता, भागवत, श्रीरामचरितमानस, वाल्मीकीय और अध्यात्म रामायण, महाभारत, जैमिनीय अश्वमेध, पद्मपुराण, मनुस्मृति आदि धार्मिक ग्रन्थोंका स्वयं अध्ययन करना चाहिये और बालक-बालिकाओंको भी कराना चाहिये। यदि प्रतिदिन अपने घरमें, चाहे एक घण्टा या आधा घण्टा ही हो, सब मिलकर इन ग्रन्थोंका क्रमसे अध्ययन करें तो बालकोंको घर बैठे ही शास्त्र-ज्ञान हो सकता है। इस प्रकारके अभ्याससे ऋषि, मुनि, महात्मा, शास्त्र, ईश्वर और परलोकमें श्रद्धा-विश्वास बढ़कर बालकोंका स्वाभाविक ही उत्थान हो सकता है तथा बालक आदर्श बन सकते हैं। बालकोंकी उन्नतिसे ही कुटुम्ब, जाति, देश और राष्ट्र तथा भावी संतानोंकी उन्नति हो सकती है। अत: बालकोंके शिक्षण और चरित्रपर अभिभावकोंको विशेष ध्यान देना चाहिये।

शिशुकक्षासे लेकर विश्वविद्यालयोंकी उच्चतम कक्षाओंतकके विद्यार्थी आज धर्म-ज्ञानशून्य पाये जाते हैं, यह इसी वर्तमान शिक्षाका दुष्परिणाम है। यहाँतक कि उनमें भारतीय शिष्टाचारका भी अभाव होता चला जा रहा है, यह बड़े ही खेदकी बात है।

बालकोंको चाहिये कि आलस्य-प्रमाद, भोग, दुर्व्यसन, दुर्गुण और दुराचारोंको विषके समान समझकर उनको त्याग दें एवं सद्गुण-सदाचारका सेवन, विद्याका अभ्यास, ब्रह्मचर्यका पालन, माता-पिता और गुरुजनोंकी एवं दु:खी-अनाथ प्राणियोंकी सेवा नि:स्वार्थभावसे कर्तव्य समझकर तथा ईश्वरकी भक्तिको अमृतके समान समझकर उनका श्रद्धापूर्वक सेवन करें। यदि इनमेंसे एकका भी निष्कामभावसे पालन किया जाय तो कल्याण हो सकता है, फिर सबका पालन करनेसे तो कल्याण होनेमें सन्देह ही क्या हो सकता है?

छ: घण्टेसे अधिक सोना, दिनमें सोना, असमयमें सोना, काम करते या साधन करते समय नींद लेना, काममें असावधानी करना, अल्पकालमें हो सकनेवाले काममें अधिक समय लगा देना, आवश्यक कामके आरम्भमें भी विलम्ब करना तथा अकर्मण्यताको अपनाना आदि सब 'आलस्य' के अन्तर्गत हैं। इसी प्रकार मन, वाणी और शरीरके द्वारा न करनेयोग्य व्यर्थ चेष्टा करना तथा करनेयोग्य कार्यकी अवहेलना करना 'प्रमाद' है और ऐश-आराम, स्वाद-शौक, फैशन-विलासिता, विषयोंका

सेवन, इत्र-फुलेल, सेंट-पाउडर आदिका लगाना, श्रृंगार करना, थियेटर-सिनेमा आदिका देखना, विलास तथा प्रमादोत्पादक क्लबोंमें जाना आदि सब 'भोग' हैं।

बीड़ी, सिगरेट, गाँजा, भाँग, चरस, कोकिन, अफीम, आसव आदि मादक वस्तुओंका सेवन, चौपड़-ताश-शतरंज खेलना आदि सब 'दुर्व्यसन' हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ, दर्प, अभिमान, अहंकार, मद, ईर्ष्या आदि दुर्गुण हैं, हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, मांसभक्षण, मदिरापान, जूआ खेलना आदि 'दुराचार' हैं।

संयम, क्षमा, दया, शान्ति, समता, सरलता, सन्तोष, ज्ञान, वैराग्य, निष्कामता आदि 'सद्गुण' हैं और यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत एवं सेवा-पूजा करना तथा अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्यका पालन करना आदि 'सदाचार' हैं। इनके अतिरिक्त विद्याका अभ्यास, ब्रह्मचर्यका पालन, माता-पिता और गुरुजनोंकी सेवा तथा ईश्वरकी भक्ति—ये सभी परम आवश्यक और कल्याणकारी हैं।

प्रतिदिन भगवान्‌की मूर्ति या चित्रपटकी षोडशोपचारसे पूजा करे अथवा मनसे अपने इष्टदेवके स्वरूपको अपने हृदयके भीतर या बाहर आकाशमें स्थित करके उनकी पूजा और नमस्कार करे तथा इष्टदेवकी स्तुति-प्रार्थना करे। इस प्रकार नित्यकर्म करनेके पश्चात् अपने घरमें माता-पिताको तथा जो अवस्था, ज्ञान या पदमें अपनेसे बड़े हों, उनको एवं आचार्य, अध्यापक और शिक्षकको प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिये। नित्य प्रणाम करनेका लाभ बतलाते हुए मनुजी (मनुस्मृति २।१२१ में)-कहते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

'जो नित्य प्रणाम करनेके स्वभाववाला और वृद्धोंकी सेवा करनेवाला है, उसके आयु, विद्या, यश और बल—ये चार बढ़ते हैं।' अभिवादनके बाद आसन, व्यायाम आदि करके अपने अभ्यासके अनुसार थोड़ा दुग्ध-पान करना चाहिये। रात्रिमें भिगोये हुए चनोंका प्रातः सेवन भी दुग्ध-पानके समान ही लाभदायक है। इसके बाद विद्याका अभ्यास करना चाहिये। फिर पवित्र, सात्त्विक, उचित और हल्का भोजन करना चाहिये। अधिक भोजन करना आरोग्य, आयु, स्वर्ग और पुण्यका नाशक और लोकनिन्दित है, इसलिये उसे त्याग दे।

जो बालक असत्य बोलता है, उसका कोई विश्वास नहीं करता, न उसकी इस लोक और परलोकमें प्रतिष्ठा ही होती है। अतएव सत्य, प्रिय, मित और हितभरे वचन बोलने चाहिये तथा सबका विश्वासपात्र बनना चाहिये। जो किसीको धोखा नहीं देता, अपना दायित्व समझता है, कर्तव्यच्युत नहीं है, समय व्यर्थ नहीं बिताता है और गुरुजनोंके इच्छानुसार कार्य करके उनको अपनी आवश्यकता पैदा कर देता है, वही बालक विश्वासपात्र समझा जाता है। ये सब बातें स्वार्थत्यागपूर्वक सेवा करनेसे स्वभावतः ही हो जाती हैं। इसलिये हरेक कार्यमें स्वार्थत्याग करके सबकी सेवा करनी चाहिये।

बालक-बालिकाओंकी भौतिक, बौद्धिक, व्यावहारिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति हो, उनमें सभ्यता, शिष्टाचार, विनय, सेवा, संयम, बल, तेज, सद्गुण-सदाचार, विवेक और ज्ञान बढ़े तथा बुद्धि तीक्ष्ण हो—ऐसी उत्तम शिक्षासे युक्त पुस्तकें ही उन्हें पढ़ानी चाहिये।

ब्रह्मचर्यका पालन

वास्तवमें ब्रह्मचर्य शब्दका अर्थ है—ब्रह्मके स्वरूपमें विचरण करना यानी ब्रह्मके स्वरूपका मनन करना। जिसका मन नित्य-निरन्तर सच्चिदानन्द ब्रह्ममें विचरण करता है, वही सच्चा ब्रह्मचारी है। इसमें अत्यन्त आवश्यकता है—शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धिके बलकी। यह बल प्राप्त होता है—वीर्यकी रक्षासे। इसलिये सब प्रकारसे वीर्यकी रक्षा करना ही ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करना कहा जाता है। अतः बालकोंको चाहिये कि न तो ऐसी कोई क्रिया करें, न ऐसा संग ही करें तथा न ऐसे पदार्थोंका सेवन ही करें कि जिससे वीर्यकी हानि हो।

सिनेमा-थियेटरोंमें प्रायः कुत्सित दृश्य दिखाये जाते हैं, इसलिये बालक-बालिकाओंको सिनेमा-थियेटर

कभी नहीं देखना चाहिये और सिनेमा-थियेटरमें नट-नटी तो कभी बनना ही नहीं चाहिये। इस विषयके साहित्य, विज्ञापन और चित्रोंको भी नहीं देखना-पढ़ना चाहिये; क्योंकि इसके प्रभावसे स्वास्थ्य और चरित्रकी बड़ी भारी हानि होती है और दर्शकका घोर पतन हो सकता है।

बालकोंको स्त्रियोंका संसर्ग, जूआ, गाली-गलौज, परस्पर लड़ाई-झगड़ा, परनिन्दा, इत्र, तेल, फुलेल, पुष्पमाला, अंजन, बालोंका शृंगार, नाचना-गाना आदिका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। मनुस्मृति (२। १७७—१७९)-में कहा गया है—

वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।

× × ×

अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम्॥
द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च॥

'ब्रह्मचारी विद्यार्थीको मद्य, मांस, चन्दन, माला, उबटन लगाना, आँखोंको आँजना, जूते और छत्र धारण करना एवं काम, क्रोध और लोभका आचरण करना तथा नाचना, गाना, बजाना एवं जूआ, गाली-गलौज और निन्दा आदिका करना तथा झूठ बोलना एवं स्त्रियोंको देखना, आलिंगन करना और दूसरेका तिरस्कार करना—इन सबका भी (सर्वथा) त्याग कर देना चाहिये।'

इसी प्रकार विद्यार्थी बीड़ी, सिगरेट, भाँग, तम्बाकू आदि मादक वस्तुओंका भी कभी सेवन न करे। ऊपर बतलाये हुए विषयोंके सेवनसे धन, चरित्र, आयु, बल, बुद्धि, आरोग्य तथा इस लोक और परलोककी हानि होती है, इसलिये इन सबका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

विद्यार्थी हिंसा, द्रोह, ईर्ष्या, झूठ, कपट, छल-छिद्र, चोरी, बेईमानी, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिका भी सर्वथा त्याग कर दे; क्योंकि इनसे इस लोकमें निन्दा होती है और उसका लोग विश्वास नहीं करते तथा मरनेपर परलोकमें दुर्गति होती है। दुराचार आदि दोषोंसे प्रत्यक्षमें ही मनुष्यका पतन हो जाता है। इस प्रकार बालक-बालिकाओंको ऊपर बताये हुए नियमोंका आचरण करते हुए ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये।

माता-पिताकी सेवा

बालकोंके लिये अपने माता-पिताकी सेवा करना परम कर्तव्य और अत्यन्त आवश्यक है। इनकी सेवा करनेसे महान् लाभ और न करनेसे महान् हानि है। जिनके माता-पिता जीवित हैं, उनकी चाहे कितनी ही उम्र क्यों न हो, माता-पिताके आगे वे बालक ही हैं। अतः सबको अपने माता-पिताकी सेवा करनी चाहिये। सेवासे अभिप्राय है—तन-मन-धनद्वारा आदरसे सेवा-शुश्रूषापूर्वक उनको सुख पहुँचाना, उनकी आज्ञाका पालन करना, उनके संकेत और मनकी रुचिके अनुसार आचरण करना तथा उनके चरणोंमें नमस्कार करना; क्योंकि बालकके पालन-पोषण और विवाह आदि कार्योंमें माता-पिता महान् क्लेश सहते हैं तथा मरनेपर अपना सर्वस्व पुत्रोंको देकर जाते हैं। ऐसे परम हितैषी माता-पिताको जो त्याग देता है अथवा उनकी सेवा नहीं करता, वह घोर नरकमें जाता है। पद्मपुराणके भूमिखण्ड (६३। ४—६)-में बतलाया है कि—

पितरौ विकलौ दीनौ वृद्धौ दुःखितमानसौ॥
महागदेन संतप्तौ परित्यजति पापधीः।
स पुत्रो नरकं याति दारुणं कृमिसंकुलम्॥
वृद्धाभ्यां यः समाहूतो गुरुभ्यामिह साम्प्रतम्।

'जो किसी अंगसे हीन, दीन, वृद्ध, दुःखी तथा महान् रोगसे पीड़ित माता-पिताको त्याग देता है, वह पापात्मा पुत्र कीड़ोंसे भरे हुए दारुण नरकमें पड़ता है।'

इसलिये बालकों और नवयुवकोंसे हमारा निवेदन है कि वे निष्कामभावसे उपर्युक्त साधनोंद्वारा अपने जीवनके स्तरको ऊँचा उठायें, उसे सदा उन्नत करें। उसका पतन न होने दें।

परमात्मतत्त्वकी नित्यता

(श्रीताराचन्दजी आहूजा)

लक्ष्यका जीवनमें बड़ा महत्त्व होता है। हम जिस किसी भी चीजको अपना लक्ष्य बना लेते हैं, हमारी जीवनरूपी गाड़ी उसी ओर दौड़ने लगती है। लक्ष्य वह धुरी है, जिसके चारों ओर हमारे जीवनकी समस्त गतिविधियाँ घूमने लग जाती हैं। जैसे किसी व्यक्तिने धनार्जनको अपने जीवनका लक्ष्य बना लिया है तो वह अपने कारोबारपर अपना पूरा ध्यान और समय देनेका प्रयास करेगा। यदि वह मन्दिर भी जाता है तब भी उसकी प्रार्थना अपने कारोबारको बढ़ानेके लिये ही होगी। यदि वह अपने सद्गुरुके पास जाता है तब भी वह गुरुसे यही आशीर्वाद लेगा कि उसका कारोबार बढ़ जाय अर्थात् वह गुरु और परमात्माका साध्यके स्थानपर साधनके रूपमें उपयोग करेगा। वह मन्दिरमें भगवान्से उनकी भक्ति माँगनेकी अपेक्षा कारोबारकी बढ़ोत्तरीके लिये याचना करेगा। उसके लिये भगवान्से भी अधिक महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान् वस्तु है—धन एवं कारोबार। इसके विपरीत यदि किसी व्यक्तिने परमात्माकी प्राप्तिको अपने जीवनका लक्ष्य निर्धारित कर लिया है तो वह सब चीजोंको साधनके रूपमें उपयोगमें लानेका प्रयास करेगा अर्थात् धन, परिवार, समाज, संसार, शरीर आदि सभीको साधन बनाकर परमात्माको प्राप्त करनेकी चेष्टा करेगा।

सन्त-महात्मा कहते हैं कि धार्मिक व्यक्ति वह नहीं है, जो रोज मन्दिर जाता है, जो रोज नमाज पढ़ता है या गुरुद्वारेमें शीश नवाता है। धार्मिक व्यक्ति वह भी नहीं है, जो धार्मिक और आध्यात्मिक पुस्तकें—ग्रन्थ आदिका पठन-पाठन करता है। धार्मिक उस व्यक्तिको भी नहीं कहा जा सकता, जो धार्मिक कार्योंमें व्यस्त रहता है अथवा ईश्वर-तत्त्वपर प्रवचन देता है। इन सब क्रियाओंका उद्देश्य धन कमाना भी हो सकता है। कुछ लोग जीविकोपार्जनहेतु प्रवचन देनेका कार्य करते हैं, ऐसे ही कुछ लोग पैसा कमानेके लिये धार्मिक कर्मकाण्ड आदिका कार्य करते हैं। कुछ लोग धनकी आशा लेकर मन्दिर जाते हैं तो कुछ लोग विपत्तियोंसे मुक्ति पानेहेतु धार्मिक स्थलोंकी यात्रा करते हैं। इन धार्मिक क्रिया-कलापोंका एक ही उद्देश्य होता है—कामनापूर्ति। अतः ऐसे लोगोंको पूर्णतः धार्मिक नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः धार्मिक व्यक्ति तो वह है, जिसके अन्तःकरणमें अहर्निश ईश्वरकी स्मृति रहती है और जिसके जीवनका प्रधान लक्ष्य केवल ईश्वरकी प्राप्ति ही होता है।

महापुरुषोंका कथन है कि भगवान्की स्मृति केवल उसे रहती है, जो भगवान्को अपना समझता है। प्रकृतिका नियम है कि जिसे हम अपना समझते हैं, उसे हम कभी भूलते नहीं हैं। हम उस वस्तु या व्यक्तिको ही भूलते हैं, जिसे हम अपना नहीं समझते। जैसे कोई व्यक्ति अपने माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी आदि परिजनोंको नहीं भूलता तो इसका कारण यही होता है कि वह इनको अपना मानता है। इनका स्मरण करनेके लिये पृथक्से कोई उपाय नहीं करना पड़ता। भगवान्की स्मृति हमें इसलिये नहीं होती; क्योंकि हम उसे अपना नहीं मानते। हम संसारकी वस्तुओंको तो अपना मानते हैं, लेकिन भगवान्को नहीं। गुरुवाणी कहती है—***'सब किछ अपना इक राम पराया।'*** परायी वस्तुकी याद नहीं आती, उसे याद करना पड़ता है। हमने भगवान्को पराया मान रखा है और उसकी वस्तुओंको अपना मान रखा है। कैसी विचित्र बात है कि हमने सब कुछ देनेवालेको तथा अपने मूलको तो पराया और जड़ एवं नश्वर वस्तुओंको अपना समझ लिया है, जिनका हमारे साथ स्थायी और नित्यताका सम्बन्ध नहीं है।

सन्त-मनीषी कहते हैं कि संसारकी सब वस्तुएँ एवं हमारे नाते-रिश्तेदार सब अनित्य हैं, क्षणभंगुर हैं, नश्वर हैं। इसलिये वे कभी हमारे बन नहीं सकते। हम रोज देखते हैं कि संसारकी सब वस्तुएँ एक-एक करके नष्ट हो रही हैं और हमारे नाते-रिश्तेदार भी हमको छोड़कर जा रहे हैं, फिर भी उन वस्तुओं एवं परिजनोंके प्रति हमारी मोह-ममता भंग नहीं होती। केवल परमात्मा ही नित्य हैं, शाश्वत हैं, सनातन हैं, इसलिये वे ही हमारे अपने हो

सकते हैं। स्वामी श्रीरामकृष्णदेवजीका कथन है कि ईश्वर नित्य है, शेष सब अनित्य, ईश्वर सत्य है, बाकी सभी असत्य, ईश्वर वस्तु है, शेष सभी अवस्तु। परमसन्त श्री गुरु नानकदेवजी गुरुवाणीमें कहते हैं—

कूड़ राजा कूड़ परजा कूड़ सभ संसार।
कूड़ मंडप कूड़ माड़ी कूड़ बैसणहार॥
कूड़ सोयना कूड़ रूपा कूड़ पैन्हणहार।
कूड़ काया कूड़ कपड़ा कूड़ रूप अपार॥
कूड़कूड़ै नेहों लग्गा विसरया करतार।
किसनाल कीचै दोसती सभ जग चलनहार॥

(आदिग्रन्थ पृ० ४६८)

अर्थात् संसारके सब रिश्ते और पदार्थ झूठे हैं, राजा और प्रजा झूठे हैं, महल और भवन तथा उसमें रहनेवाले झूठे हैं, संसारके सम्पूर्ण धन और सब पदार्थ झूठे हैं। शरीर, सुन्दरता, सुन्दर वस्त्र और सब हार-शृंगार झूठे हैं। संसारके सब रिश्ते छलमात्र हैं, परंतु कितने आश्चर्यकी बात है कि मनुष्य झूठसे नेह कर रहा है और उस परमात्माको और उसके नामको विस्मृत किये बैठा है।

मनुष्यके पास आज जो कुछ भी है, वह उसकी इच्छाके कारण है। हमने जो चाहा, वही भगवान्ने हमें दिया है। यह बात अलग है कि हमने चाहा तो बहुत कुछ है, लेकिन हमारे पास उससे कम है। इसका कारण है सुरसाके मुँहकी तरह बढ़ती हुई हमारी तृष्णा। कामनाओंकी पूर्तिके लिये हमें अनेक जन्म लेने पड़ेंगे। हमने अभीतक भगवान्को पानेकी कामना नहीं की है, इसलिये वे हमें मिले नहीं हैं। जिन्होंने भगवान्को पानेकी इच्छा और पुरुषार्थ किया, भगवान्ने उनपर दया करके अपने धाममें प्रवेश दे दिया। इसलिये मनुष्यकी बुद्धिमत्ता इसीमें है कि वह तृष्णासे मुँह मोड़कर परमात्माके लिये तृषित हो जाय। संसारके विषय-भोगोंसे कभी तृप्ति नहीं होती—***'बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, बिषय-भोग बहु घी ते॥'***

कामनाकी जितनी पूर्ति करेंगे, वह उतनी बढ़ती जायगी। उसे बुझानेके लिये सन्तोषरूपी शीतल जल डालना होगा। इसलिये सन्तोषको परमधन कहा गया है—**'सन्तोषं परमं धनम्।'** लेकिन सन्तोष धन उसीको मिलता है, जो ईश्वरको अपना सगा मानता है। जो ईश्वरसे विमुख है, उसकी सम्पत्ति एवं प्रभुताई तो वैसे ही जाती है, जैसे पायी ही न हो—

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥

भगवान्की ओर चलनेमें इन्द्रियोंकी, शरीरकी, मन एवं बुद्धिकी योग्यताकी आवश्यकता नहीं है। कोई मूक हो, बहरा हो, लूला-लँगड़ा ही क्यों न हो, भगवान्की ओर खूब मस्तीसे चल सकता है। संसारमें योग्यताको लेकर अधिकारकी बात कही जाती है, लेकिन भगवान्के यहाँ तो चाहनामात्रसे अधिकार हो जाता है। वहाँ योग्यता-अयोग्यताका कोई प्रश्न नहीं है। कितना पढ़ा-लिखा है, कितना सुन्दर है, कितना बलवान् है, कितना धनवान् है, कैसा शरीर है, कैसा कुल है, किस वर्ण, देश, आश्रम-सम्प्रदायका है? इन सब बातोंका कोई अर्थ नहीं। आवश्यकता केवल इतनी है कि हमारी भगवान्के लिये भावना कितनी गहन है, व्याकुलता कितनी तीव्र है, मिलापकी व्यग्रता कितनी तीखी है। उसे तो हमारा भाव चाहिये—**'भावग्राही जनार्दनः।'** अर्थात् ईश्वर भाव-ग्रहण करते हैं, और कुछ नहीं। भाव ही प्रधान है, शेष सब गौण है। गोपियोंको उनके माधुर्य भावने ही प्रभुसे मिलाया था।

महापुरुषोंका कथन है कि सबका प्रकाश करनेवाला, सबका एकमात्र आधार, सबका आश्रय, सबको सत्ता, स्फूर्ति देनेवाला, सबको शक्ति प्रदान करनेवाला, सबकी रक्षा करनेवाला, सबकी सहायता करनेवाला, सबका भरण-पोषण करनेवाला परमात्मतत्त्व सब जगह, सब देशमें, सब कालमें, सब वस्तुओंमें, सम्पूर्ण घटनाओंमें, सम्पूर्ण व्यक्तियोंमें, सब अवस्थाओंमें है, ज्यों-का-त्यों परिपूर्ण है। वह ज्योतियोंका ज्योति और सबका कारण भगवान् है। सन्त-मनीषियोंने कहा भी है—

वह ज्योतियों का ज्योति है सबसे प्रथम भासता।
अद्वैत सनातन अरु सर्व विश्व प्रकाशता॥

स्वामी विवेकानन्दजीका कथन है कि मनुष्यमात्रका एक ही चिन्तन, धर्म है कि वह स्वयंमें परमेश्वरकी अनुभूति करे और यह समझनेकी चेष्टा करे कि इस नश्वर संसारमें ईश्वरके अलावा जो कुछ है, वह सब व्यर्थ

है। यह जानकर कि यह संसार एक धोखा है, यहाँ सब कुछ मिथ्या है और यदि कुछ सत्य है तो वह है केवल ईश्वरकी उपासना। यदि हम इस तथ्यको आत्मसात् कर लें तो सब दु:खों एवं कष्टोंपर विराम लग जायगा और हम आवागमनके दुश्चक्रसे मुक्त होकर परमात्माके परम धाममें प्रवेश करनेके योग्य बन जायँगे। जब हम सांसारिक वस्तुओंसे अनासक्त होकर परमात्माके साथ आसक्त हो जाते हैं तब हमें लगता है कि केवल ईश्वरका ही अस्तित्व है, शेष सारी चीजें नाम और रूपका आभासमात्र हैं, नाम-रूप सागरमें उठनेवाली लहरोंके समान अस्थायी और नश्वर हैं। दूसरी ओर ईश्वर सागरके समान शाश्वत बना रहता है। जब हमारे समक्ष सागरसे संयुक्त होनेकी सम्भावना है तो फिर स्वयंका एक लहरके साथ आसक्त होनेका भला क्या औचित्य है?

भक्तिमें प्रीतिका स्वरूप

(श्रीगोपालदासवल्लभदासजी नीमा, बी०एस०-सी०, एल-एल-बी०)

अष्टछापके कवि एवं श्रीविट्ठलनाथजीके सेवक (शिष्य) गोविन्दस्वामी एक पदमें वर्णन करते हैं—*'प्रीतम प्रीति ही ते पैये॥ यद्यपि रूप गुण सील सुघरता इन बातन न रिझैये॥ १॥ सत कुल जन्म करम शुभ लक्षण वेद पुराण पढैये॥ गोविन्द बिना स्नेह सू आलो रसना कहा जु नचैये'॥ २॥* भक्तिका प्रमुख तत्त्व है प्रेम—*सब ते ऊँची प्रेम सगाई*। **'स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तः'** कहकर श्रीवल्लभाचार्यजी भक्तिमें अतिशय प्रेमको स्वीकार करते हैं। भक्तका भगवान्‌के प्रति होनेवाला गाढ़ आकर्षण राग कहलाता है। प्रभुसे मिलन होनेपर बिछुड़ जानेकी आशंका तथा वियोगमें मिलनेकी उत्कण्ठा ही प्रेम है। सांसारिक विषयोंसे रोके हुए चित्तसे भगवन्नामका प्रेमपूर्वक जप करना ध्यान है। बिना प्रयत्नके भगवन्नाम प्रीतिसहित लेनेको स्मरण कहते हैं। *'गोपीप्रेमकी ध्वजा। जिन गोपाल किए अपने वश उर धरि स्याम भुजा॥'* परमानन्ददासकी उक्त रचना गोपियोंकी कृष्णप्रीतिको सर्वोत्तम मानती है।

श्रीशुकदेवजी वृत्रासुरके प्रसंगमें स्पष्ट कहते हैं कि आदर्श भक्तको कैसा होना चाहिये और उसकी एकाग्रता, अनन्यता तथा प्रेमकी प्रगाढ़ता कैसी होनी चाहिये। भगवान्‌को प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए वृत्रासुरने प्रार्थना की—जैसे पक्षियोंके पंखविहीन बच्चे अपनी माँकी राह देखते रहते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माँका दूध पीनेके लिये अकुला उठते हैं और सर्वोपरि जैसे वियोगिनी प्रेमिका अपने प्रियतमसे मिलनेके लिये बेचैन हो उठती है, वैसे ही हे कमलनयन, रमणीयताकी मूर्ति सर्वसौभाग्यनिधि परमात्मन्! तुम्हें देखनेके लिये मेरे नेत्र सजल प्रीतिसे छटपटा रहे हैं।

श्रीजीवगोस्वामीने प्रीतिसन्दर्भ नामक ग्रन्थमें भगवान्‌की ऐश्वर्य तथा माधुर्यपरक लीलाओंसे माधुर्य लीलाको सर्वश्रेष्ठ बताया है। उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थमें कहा गया है कि रसराज श्रीकृष्ण और उनकी प्राणवल्लभा गोपियाँ माधुर्यभावकी प्रीतिका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। श्रीवल्लभाधीशने पुष्टिसम्प्रदायमें गोपियोंको गुरु माना है। भगवद्विषयक स्नेह, प्रीति, रति वह अंगार है, जो मनके कामबीजको भून डालता है। जैसे भुने हुए अन्नमें अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकते, वैसे ही कृष्णासक्त मनमें लौकिक कामनाओंको अंकुरित होनेका अवसर ही नहीं मिलता।

भगवान्‌से केवल सम्बन्ध हो जाना चाहिये। वह सम्बन्ध चाहे जैसा हो—कामका हो, क्रोधका हो या भयका हो, स्नेह (प्रीति), नातेदारीका, सौहार्द्रका हो। चाहे जिस भावसे भगवान्‌में नित्य-निरन्तर अपनी वृत्तियाँ जोड़ दी जायँ, वे भगवान्‌से ही जुड़ती हैं। इसीलिये वृत्तियाँ भगवन्मय हो जाती हैं और उस जीवको भगवान्‌की ही प्राप्ति होती है।

गोपियोंको भगवान् श्रीकृष्णने महाभागा कहा है। उन्होंने श्यामसुन्दरके लिये सारी कामनाएँ, सारे भोग छोड़ दिये थे। उनकी प्रीति, अनुराग तथा परम प्रेम कृष्णके लिये ही था। गोपियाँ सर्वत्र श्रीकृष्णका ही अनुभव करती थीं।

कष्ट और दुःखसे मुक्त होनेकी कला

[सच्चा प्रेम त्यागमें है]

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

एक प्रश्न है कि किसीके शरीरमें बड़ी पीड़ा हो रही है। उसे बिच्छू काट लिया है या अन्य प्रकारकी कोई वेदना है। उस वेदनामें भगवान्‌का मंगलमय विधान है और उसमें भगवान्‌को सुख होता है। इसे हम सुख मानें, यह कैसे समझा जाय? इसीपर कुछ विचार-विनिमय करना है। यह सारा जगत् स्थिर है मनपर और मनमें जिसके जैसा भाव है, उसी प्रकारकी उसको अनुभूति होती है। यह समझनेकी बात है।

भीष्म पितामह शरशय्यापर पड़े हैं। उनके रोम-रोममें बाण विद्ध हैं। उनके शरीरमें दो अँगुल भी जगह नहीं बची है, जहाँ बाण न बिंधा हो। शरीरको बेधकर बाण नीचे जमीनपर टिक गये। परंतु सिरमें बाण नहीं लगे थे। उन्हीं बाणोंकी शय्यापर भीष्मजी सो रहे हैं। उनका सिर लटक रहा है। भीष्मजीने कहा—अरे! सिर तकलीफ पा रहा है। तकिया दो। वहाँपर कौरव और पाण्डव सभी थे। जो बचे हुए थे, अन्य लोग भी थे। सभी दौड़े कि दादाजीको तकिया दें। कोई बड़ा तकिया लाये, कोई छोटा तकिया लाये, कोई लम्बा तकिया और कोई मसनद लाये। इसपर पितामहने कहा—'मूर्खो! यहाँसे जाओ।' अर्जुनको बुलाओ। जब अर्जुन आये तो उन्होंने कहा—'बेटा! तकिया दो।' फिर अर्जुनने अपने तरकशसे बाण निकाले। वहाँ देखनेवाले लोग आश्चर्य करने लगे कि दादाजी तकिया माँग रहे हैं और यह बाण निकाल रहा है। यहाँपर कोई लड़ाई थोड़े हो रही है। अर्जुनने तीन बाण निकाले और पितामहके मस्तक़पर मारा। बाण सिरसे निकलकर जमीनपर टिक गये। सिरका तकिया हो गया। इसपर पितामह भीष्मने कहा—'बेटा! मैं आशीर्वाद देता हूँ। तेरा कल्याण हो।' अब भला, कोई आदमी घावोंसे कराह रहा है और कोई उसे नया घाव और कर दे तथा वह आशीर्वाद दे। यह कोई सुसंगत बात है क्या? परंतु इस समय भीष्मजीका मन जो है, वह दूसरे तरहका है। उस समय वहाँ जो जर्राह (सर्जन) थे, जिन्हें दुर्योधनने मरहम-पट्टीके लिये बुलाया था, उन सबको वहाँसे हटा देनेके लिये भीष्मजीने कहा। उन्होंने कहा—मेरा गौरव इन बाणोंकी नोंकपर पड़े रहनेमें है। घाव मेरे हैं, ये हरे रहें। मैं नहीं कराहता। यह उनका मन था न! इस मनमें उन घावोंकी तकलीफ थी क्या? यद्यपि उन्हें महान् तकलीफ थी। श्रीकृष्णने जब धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा कि देखो, भैया! धर्मका सूर्य (अस्त) होनेको है। भीष्मजी धर्मके सूर्य हैं। वे मरने जा रहे हैं। यह सूर्यास्त हो जानेके बाद धर्मका प्रकाश नहीं रहेगा। कुछ प्रकाश लेना हो तो ले लो। जब धर्मराजके साथ श्रीकृष्ण शेष पाण्डव तथा अन्यके साथ भीष्म पितामहके पास पहुँचे और उनसे कहा कि आप उपदेश दें। तब भीष्मजीने कहा—महाराज! रोम-रोममें पीड़ा हो रही है। इतनी भयानक पीड़ा है कि मुझसे बोला नहीं जा रहा है। तब भगवान्‌ने उन्हें अमृतभरी दृष्टिसे देखा और आशीर्वादात्मक हाथ किया। उनकी सारी पीड़ा शान्त हो गयी। पीड़ा तो उन्हें महान् थी, फिर भी उस पीड़ामें भीष्मजीने माँगा क्या? तकियेके रूपमें तीन बाण माँगे। यदि उनके मनमें कायरता होती तब ऐसा नहीं होता।

पीड़ाकी अनुभूतिको मिटानेके दो तरीके हैं। यह बहुत सुन्दर समझनेकी चीज है। इसमें एक प्रक्रिया है—अद्वैतज्ञानकी और दूसरी प्रक्रिया है—भक्तिकी। यदि दर्द हो रहा है और यह मान लें कि यह दर्द मुझको हो रहा है—हाय-हाय! मैं मरा जा रहा हूँ तब दर्दकी अनुभूति बहुत ज्यादा होगी और बड़ी मानसिक पीड़ा होगी। फिर मनमें आये कि यदि यह दर्द कहीं अधिक बढ़ गया और मैं मर न जाऊँ। तब यह दर्द और बढ़ जायगा। यह सब करके देख लीजिये। यह बिलकुल तात्त्विक चीज है, मनोवैज्ञानिक चीज है। और, यदि मनमें यह आ जाय कि मैं द्रष्टा हूँ। इस हाथमें पीड़ा है, मुझमें नहीं। मैं इसको देखनेवाला हूँ। जहाँ आप भोगनेवालेसे देखनेवाले बने तो तुरंत पीड़ाकी मात्रा कम हो जायगी और साथ-ही-साथ मानसिक क्लेश तो रहेगा ही नहीं। इसे करके देखिये। द्रष्टा बनिये। पीड़ा उसी समय कम हो जायगी। जो मन पीड़ासे डर रहा था, वह मन अब न आ सकेगा। अब द्रष्टा बन गये। इस तरीकेसे बड़ी-से-बड़ी पीड़ामें मनुष्य शान्त रह सकता है, सुखी रह सकता है। दूसरा तरीका है—प्रेमका। यह बड़ी सुन्दर बात है। पीड़ा हो रही है। बहुत दर्द हो रहा है और मनने यह कहा कि मेरे प्रेमास्पद, प्राणाराम, प्रियतम श्रीकृष्ण देखो न! हँस रहे हैं। उनको सुख हो रहा है। यह पीड़ा उनको सुखदायिनी है। चूँकि, उनको सुखदायिनी है,

इसलिये यह पीड़ा बनी रहे। यह भावना मनमें होगी। ये दो तरीके हैं। इन दोनोंको करके देखिये।

यदि हाथमें पीड़ा हो रही है और उस पीड़ाके समय यदि यह धारणा हो कि मुझे पीड़ा हो रही है, सहा नहीं जाता। कहीं पीड़ा और बढ़ न जाय तब यह भावना करें कि मैं उस पीड़ाको देखनेवाला हूँ, पीड़ाको भोगनेवाला नहीं। यह धारणा जहाँ बद्धमूल हुई, उसी समय देखेंगे कि पीड़ा घटने लगी। जो आपका मन अपनेमें पीड़ाका अनुभव करके पीड़ा बढ़ा रहा था, वह मन अब नहीं रहा। पीड़ा मुझमें नहीं है, मैं पीड़ाको देखनेवाला—द्रष्टा हूँ। पीड़ा मेरे हाथमें है—यह बात जहाँ बद्धमूल हुई तो स्वाभाविक ही पीड़ा घटने लगेगी। जो मन पीड़ाको बढ़ा रहा था, वह नहीं रहा और जो मानसिक क्लेश था, वह नष्ट हो जायगा। इस प्रकारसे व्यक्ति पीड़ाको कम कर सकता है। दूसरी जो प्रेमकी प्रक्रिया है, वह और अच्छी है। उसमें यदि पीड़ा हो रही है और हमारे मनमें आया कि इस पीड़ासे हमारे प्रियतम हँस रहे हैं। इस पीड़ासे उनको सुख हो रहा है। इसलिये यह बनी रहे। यह पीड़ा मिटे नहीं; क्योंकि यह उनके सुखकी सामग्री है। फिर पीड़ाकी जो यातना है, वह चूँकि प्रियतमके सुखको बढ़ानेवाली है; इसलिये वह दर्द दर्द रहते हुए भी सुखकी सामग्री बन जायगा। दर्द कम हो जायगा। इन दोनों प्रक्रियाओंको करके देखिये। मुझे यह कहना नहीं चाहिये, लेकिन बता दें कि मैंने इन दोनों चीजोंको करके देखा है।

अब मैं प्रेमवाली बात बताता हूँ। मैं बीमार था। डॉक्टरोंने मुझसे कह दिया कि आप अलग रहा करो। किसीसे बातचीत नहीं करना है। मुझे एकान्त कमरेमें रखा गया। आने-जानेवालोंसे कह दिया गया कि इनसे बोलना नहीं है। जब डॉक्टर आते, देखते और इंजेक्शन देते थे, उस समय मैं बीमार रहता था और डॉक्टर गये, किवाड़ बन्द हुआ फिर मैं बीमार नहीं। इस तरहकी बात कई बार हुई। यह बात मुझे कहनी नहीं चाहिये, परंतु यह बिलकुल प्रयोगात्मक चीज है। आप सबके लाभके लिये बताया कि आप सबसे यह हो सकती है। आप सभी कर सकते हैं। यह केवल मनपर निर्भर है।

एक बात क्रान्तियुगकी है। अलीपुर-बमकाण्ड हुआ। मानिकतल्लामें श्रीअरविन्द आदि गिरफ्तार हुए। यह शायद सन् १९०८ ई०की बात है। अभियुक्तोंमें एक व्यक्ति था—नरेन्द्रनाथ गोस्वामी। वह आ तो गया था क्रान्तिकारीदलमें, परंतु वह था असहिष्णु—सहन नहीं कर सकता था। उसको पीड़ा सहन नहीं हुई। उसने कहा कि मैं सरकारी गवाह बन जाता हूँ। वह सरकारी गवाह बन गया। उसको यूरोपियन वार्डमें रखा गया। इन्हींका एक साथी था—कन्हाईलाल दत्त। कन्हाईलाल दत्तने तय किया कि नरेन्द्रको मार देना है।

अगर नरेन्द्र नहीं मरता है तो इसका बयान सेशनकोर्टमें सत्य माना जायगा और अरविन्द इत्यादिपर अभियोग लग जायगा। नरेन्द्र यदि मर गया तो उसका बयान ही नहीं हो पायेगा। दूसरा कोई डर है नहीं। इसलिये नरेन्द्रको मार डालना है। योजना बन गयी। बाहरसे एक कटहलमें छः गोलियाँ भरी हुई एक पिस्तौल भेज दी गयी। उस समय कन्हाईलाल अस्पतालमें था, उसको १०४.५ डिग्री बुखार था। जब कटहल पहुँचा तब कन्हाईलालने जेलरको बुलाया और कहा मैं भी सरकारी गवाह बनना चाहता हूँ। आप मुझे एक बार नरेन्द्रसे मिला दें। आप मेरा ज्वर देख लें। अब मैं सहन नहीं कर सकता। उसको उस वार्डमें भेज दिया गया। पिस्तौल उसकी जेबमें थी। वह यूरोपियन वार्डमें अकेले गया; क्योंकि सरकारी गवाह बननेकी बात थी। वहाँसे सब हट गये थे। उसने गोली चलानी शुरू कर दी। नरेन्द्रनाथ भागा। पीछे-पीछे यह दौड़ा। छः गोली समाप्त हो गयी। नरेन्द्रनाथ गोस्वामी गिर पड़ा। उसका प्राणान्त हो गया। कन्हाईलाल जो अट्ठारह वर्षका सुन्दर नौजवान था, पकड़ लिया गया। प्रमाण था ही, सब गवाह थे और उसने स्वीकार कर लिया कि मैंने मारा है। उसको फाँसीकी सजा हुई। सजा होनेके बाद वह तेईस दिनतक जीवित रहा। इन दिनोंमें उसका वजन बारह पौण्ड बढ़ गया। यह आश्चर्यजनक बात है या नहीं? जिसको फाँसी होनेवाली हो, मरनेके नामपर लोग सिहर उठते हैं, काँप जाते हैं कि मरण न हो जाय, परंतु कन्हाईलालका मन निश्चिन्त हो गया। इसलिये प्रतिदिन उसका वजन बढ़ा। यह कोई मामूली बात है? परंतु उसके मनमें इतनी प्रसन्नता थी कि मैंने अपना कार्य कर दिया। यह पाप हो या पुण्य—यह अलग बात है।

इसी प्रकार रणमें योद्धा लोग मरने जाते थे। उनका मन ही था न! उनको क्या बाण लगनेपर, गोली लगनेपर दर्द नहीं होता था? होता था, परंतु उनके मनमें यह बात थी कि हम देशके लिये, धर्मके लिये, जातिके लिये मर रहे हैं। हम अपनी शानसे मर रहे हैं। **[क्रमशः]**

'मामेकं शरणं व्रज'

[प्रपत्तियोग]

(श्रीप्रसूनकुमारजी)

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा०रा० युद्धकाण्ड १८। ३३)

भगवान् श्रीराम कहते हैं—जो एक बार भी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ। यह मेरा सदाके लिये व्रत है।

प्रपत्ति (प्रपन्न) और भक्तिमें सूक्ष्मतम भेद है। भगवान्के ऊपर अपना सब भार छोड़कर निर्द्वन्द्व हो जाना 'प्रपत्ति' है। परंतु अपने उद्धारकी कामनासे भगवान्की प्रार्थना भक्ति है। इस प्रकार जहाँ भक्तिमें उद्धारकी कामना रहती है, वहीं प्रपत्ति निष्काम है। वस्तुतः प्रपत्तिमें ज्ञान और कर्मके अतिरिक्त भक्ति भी समाहित रहती है। प्रपत्तिके छः मुख्य भेद हैं—

आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥
तवास्मीति वदन् वाचा तथैव मनसा विदन्।
तत्स्थानमाश्रितस्तन्वां मोदते शरणागतः॥

(श्रीहरिभक्तिविलास ११। ४१७-४१८)

अर्थात् भगवान्के अनुकूल विषयका व्रतरूपसे ग्रहण, उनके प्रतिकूल विषयका त्याग, भगवान् मेरी रक्षा करेंगे—ऐसा दृढ़ विश्वास, रक्षकके रूपमें भगवान्का ग्रहण, भगवान्को आत्म-समर्पण एवं उनके चरणोंमें आर्ति-ज्ञापन—ये छः लक्षण शरणागत भक्तके हैं।

हे भगवान्! 'मैं तुम्हारा हूँ'—इस प्रकार कहते हुए, मनसे भी इसी प्रकार जानकर तथा शरीरसे भगवान्के लीला-स्थानोंका आश्रय लेकर शरणागत आनन्दका उपभोग करता है। इसलिये श्रीचैतन्यमहाप्रभु कहते हैं—

ए सब छाड़िया आर वर्णाश्रमधर्म।
अकिञ्चन हया लय कृष्णैकशरण॥

(श्रीचै०च० मध्य २२। ५०)

अर्थात् शरणागतको चाहिये कि कृष्ण-बहिर्मुखजनके संगका त्याग करके तथा अकिंचन होकर अर्थात् कृष्ण-प्राप्तिके लिये स्त्री-पुत्र-धन-सम्पत्ति आदिकी आसक्तिको छोड़कर मात्र श्रीकृष्णके शरणापन्न हो जाय।

जबतक भोगोंकी वासना हृदयमें रहती है, कृष्ण-भक्तिकी प्राप्ति कदाचित् नहीं हो सकती है। किंतु जिनमें कृष्ण-प्राप्तिकी कामना ही नहीं है, जो उनके बहिर्मुख हैं, जो संसारकी वस्तुओंकी—स्त्री-पुत्र, धन-सम्पत्ति, यश-मान आदिकी प्राप्तिके लिये दिन-रात प्रयत्नशील हैं—ऐसे लोग इन वचनोंकी आड़में वर्णाश्रमधर्मका पालन त्याग दें तो उन्हें निश्चय ही नरक-यातना भोगनी होगी तथा वे इहलोक एवं परलोक दोनोंसे भ्रष्ट हो जायेंगे।

भगवान् श्रीकृष्णने सभी धर्मोंके त्यागके साथ अपनी शरण ग्रहण करनेकी शर्त लगायी है **'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'** (गीता १८। ६६)

यदि बुद्धिमान् व्यक्तिको भगवान्के गुणोंका ज्ञान हो जाय तो वह अन्य समस्त बातोंको छोड़कर उन्हींका भजन करने लगता है। इसलिये श्रीउद्धवजीका कथन है—

अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥

(श्रीमद्भा० ३। २। २३)

अहो! भगवान्में कैसी दयालुता है। दुष्टा पूतना प्राण-विनाश करनेकी इच्छासे जिनको अपने स्तनोंमें लगे हुए कालकूट विषका भी पान कराकर माताके उपयुक्त गतिको प्राप्त कर गयी, उन भगवान् श्रीकृष्णको छोड़कर ऐसा दयालु कौन है, जिसकी शरणमें जाऊँ।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुका कथन है—

शरणागत अकिञ्चनेर एकइ लक्षण।
तार मध्ये प्रवेशये आत्मसमर्पण॥

(श्रीचै०च० मध्य २२। ५३)

शरणागत और अकिंचन भक्त, इन दोनोंका एक ही लक्षण है आत्म-समर्पण अर्थात् देह-दैहिक विषय भगवान्को समर्पित करना। परंतु इन दोनों भक्तोंमें भेद है। जो लोग सांसारिक भोगोंके इच्छुक हैं तथा उनकी प्राप्तिके लिये

यथासाध्य चेष्टा भी करते रहते हैं, किंतु जब वे अपने उद्देश्यमें असफल होते हैं तो घबड़ाकर संसारसे विरक्त हो जाते हैं तथा भगवान्‌के शरणापन्न हो जाते हैं—ऐसे भक्त 'शरणागत भक्त' कहलाते हैं। दूसरी ओर जो सांसारिक भोगोंको भगवद्भक्तिके प्रतिकूल जानकर अपने सभी कर्म भगवान्‌को समर्पित करते हैं 'अकिंचन भक्त' कहे जाते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण चार प्रकारके भक्तोंका वर्णन गीतामें करते हैं—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

(गीता ७।१६)

हे भरतश्रेष्ठ! चार प्रकारके पुण्यात्मा मेरी सेवामें रत रहते हैं—आर्त (पीड़ित); जिज्ञासु, अर्थार्थी (जिन्हें धनकी आवश्यकता है) तथा ज्ञानी—जिन्हें परमसत्यका ज्ञान है।

भगवान् श्रीकृष्ण अन्यत्र भी कहते हैं—

चतुर्विधा मम जना भक्ता एव हि मे श्रुतम्॥
तेषामेकान्तिनः श्रेष्ठा ये चैवानन्यदेवताः।
अहमेव गतिस्तेषां निराशीः कर्मकारिणाम्॥
ये च शिष्टास्त्रयो भक्ताः फलकामा हि ते मताः।
सर्वे च्यवनधर्मास्ते प्रतिबुद्धस्तु श्रेष्ठभाक्॥

(महा० शान्तिपर्व ३४१।३३—३५)

हे अर्जुन! तुमने चार प्रकारके भक्तोंके सम्बन्धमें मुझसे सुना है। इनमें जो एकान्ततः मेरा ही भजन करते हैं, दूसरे देवताको अपना आराध्य नहीं मानते हैं, वे सर्वश्रेष्ठ हैं। निष्काम भावसे समस्त कर्म करनेवाले भक्तोंकी मैं परमगति हूँ। जो शेष तीन प्रकारके भक्त हैं, वे फलकी इच्छा रखनेवाले हैं। अतः वे सभी नीचे गिरा दिये जाते हैं। परंतु ज्ञानी भक्त मुझे प्राप्त कर लेते हैं। श्रीमद्भगवद्गीताके आदि, मध्य और अन्तका समन्वय ही प्रपत्ति (प्रपन्न) है, जो इस महान् ग्रन्थका प्रधान विषय है। यथा—

१. **'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥'** (२।७) मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरणमें आये हुए मुझ दासको आप उपदेश दीजिये।

२. **'निवासः शरणं सुहृत्।'** (९।१८) जिसमें प्राणी निवास करते हैं—वह वासस्थान, शरणमें आये हुए दुःखियोंका दुःख दूर करनेवाला, प्रत्युपकार न चाहकर उपकार करनेवाला मैं ही हूँ।

३. **'मामेकं शरणं व्रज।'** (१८।६६) मुझ एककी शरणमें आ जा।

मायासे बचनेके लिये भगवान्‌की शरणागतिके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है। अतः भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७।१४)

अर्थात् मेरी त्रिगुणमयी माया दुस्तर है, जिससे पार होना कठिन है। इसलिये जो सब धर्मोंको छोड़कर सर्वतोभावसे मेरी शरण ग्रहण कर लेता है —वह मायासे पार हो जाता है।

जो साधक शरणागत होकर भगवान्‌को आत्मसमर्पण कर देता है, भगवान् उसे तत्काल अपने समान चिन्मय कर देते हैं। श्रीउद्धवजीके प्रति भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयाऽऽत्मभूयाय च कल्पते वै॥

(श्रीमद्भा० ११।२९।३४)

मनुष्य जब अन्यान्य समस्त कर्मोंको त्यागकर मुझमें आत्मसमर्पण कर देता है, तब उसके लिये भी विशेष कुछ करनेकी मेरी इच्छा होती है, उसी कारण वह जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्तकर मेरे ऐश्वर्य-भोगके योग्य हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण पुनः कहते हैं—

ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥

(श्रीमद्भा० १०।४६।४)

अर्थात् जो लोग मेरे लिये ही लौकिक और पारलौकिक धर्मोंको छोड़ देते हैं, उनका भरण-पोषण मैं स्वयं करता हूँ, ऐसा मेरा व्रत है—**'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** (गीता ९।२२)।

मनुष्यको एकमात्र भगवान्‌का ही भरोसा करना चाहिये। उन्हींको अपना भर्ता, त्राता, उद्धर्ता समझना चाहिये। वही शरण्य एवं वरेण्य हैं। उनके अतिरिक्त और कोई भी इस दुःखसागरसे पार नहीं करा सकता। प्रपत्ति-योगके अतिरिक्त कोई दूसरा सरल एवं सुलभ साधन भी नहीं है, जिसके द्वारा हम भव-सागरको पार कर सकें।

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

सच्चे हृदयसे भगवान्‌को पुकारो। सिवाय भगवान्‌के कोई रक्षा करनेवाला नहीं है। भगवान्‌की गोद सबके लिये तैयार है। वे सर्वसमर्थ हैं, परम दयालु हैं और सर्वज्ञ हैं। वे आपकी भीतरकी पीड़ाको, लगनको जानते हैं कि यह सच्ची है या नकली? जो भगवान्‌को नहीं मानता, उनका खण्डन करता है, उसकी भी भगवान् रक्षा करते हैं, पालन करते हैं।

याद करनेयोग्य केवल प्रभु ही हैं।

गीता, रामायण-जैसे ग्रन्थ रहते हुए, भगवान्‌का नाम रहते हुए हम दुःख पायें—यह आश्चर्यकी बात है!

× × × ×

वक्ता स्वतन्त्र नहीं होता, प्रत्युत श्रोताके अधीन होता है। श्रोताओंके कारणसे ही वक्ताके भीतर बातें पैदा होती हैं। वक्ताको श्रोतासे अधिक लाभ होता है।

संसार बहुत पतनकी तरफ जा रहा है। ऐसे समयमें सत्संग मिल जाय तो बड़ी भगवत्कृपा है! संसारका पद तो योग्यतासे मिलता है, पर भगवान्‌का आश्रय योग्यतासे नहीं मिलता। वे सबके लिये सुलभ हैं।

गीताकी सार बात है—शरणागति। ***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'***—यह सार चीज है। भगवान् पूरे-के-पूरे आपके हैं। उनकी शरण हो जायँ।

× × × ×

खास बात है—भगवान्‌पर भरोसा रखें, उनपर निर्भर हो जायँ। समयके सदुपयोगका विशेष ध्यान रखें। हरदम सावधान रहें। साधक वही होता है, जो हरदम सावधान रहता है। संसारके काममें कितनी ही सावधानी रखें, उसमें कमी रहेगी ही। अतः हरदम भगवान्‌में लगे रहो, उनको पुकारते रहो कि 'हे नाथ! आपको भूलूँ नहीं' और उसके नामका जप करते रहो। आशा भगवान्‌की ही रखो। संसारकी आशा रखनेसे दुःख पाना ही पड़ेगा—'**आशा हि परमं दुःखम्।**' परमात्मा भविष्यकी चीज नहीं है। उनकी प्राप्ति वर्तमानकी वस्तु है। भविष्यकी आशा रखनेसे धोखा होगा। परमात्माकी प्राप्ति आपको (स्वयंको) होती है, अन्तःकरणको नहीं। करणके भरोसे मत रहो। आप भी वर्तमान हैं और परमात्मा भी वर्तमान हैं, फिर देरी क्यों? उसकी प्राप्ति करणके द्वारा नहीं होती। उसकी प्राप्ति करण (मन-बुद्धि-इन्द्रियों)-के त्यागसे होती है। प्राणायाम शरीरकी शुद्धिके लिये है।

जिससे जितना लोगे, उसके मरनेपर उतना ही दुःख होगा। अतः संसारसे लो मत, उसकी सेवा करो। किसीकी आशा मत रखो।

× × × ×

जहाँ वस्तुएँ अधिक होती हैं तथा अधिक वस्तुओंकी जरूरत होती है, वहीं दरिद्रता होती है।

बाहर संसारकी तरफ इतनी दृष्टि चली गयी कि भीतरका ज्ञान नष्ट हो गया! वास्तवमें आपका स्वरूप सुखरूप है—***'चेतन अमल सहज सुख रासी॥'*** परंतु दृष्टि बाहर चली जानेसे दुःख पा रहे हैं।

जो दूसरों का नाश करता है, उसका नाश ब्याजसहित होगा!

× × × ×

बत्तियाँ अलग-अलग हैं, पर प्रकाश एक है। ऐसे ही अनन्त ब्रह्माण्ड जिस प्रकाशमें दीखते हैं, वह प्रकाश एक है। उसमें प्रकाशकत्वका अभिमान नहीं है। ज्ञान अथवा सत्ता एक है। नफा-नुकसान, जन्म-मरणमें बड़ा अन्तर है, पर इनके ज्ञानमें क्या अन्तर है? उस ज्ञानमें स्थित रहना है। सब अवस्थाएँ बनने-बिगड़नेवाली हैं, पर अपने होनेपनका ज्ञान बनने-बिगड़नेवाला नहीं है। उस ज्ञानमें मैं-पन नहीं है।

× × × ×

कमानेकी धुनसे भी देनेकी धुन ज्यादा होनी चाहिये। देनेसे ही धनकी रक्षा होती है—स्वार्थ और परमार्थ दोनों सिद्ध होते हैं। दूसरोंको सुख देनेसे अपनेको प्रत्यक्षमें शान्ति मिलती है। एक-दूसरेका हित, सेवा करना हमारी वैदिक संस्कृति है—

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥

(गीता ३। ११)

'एक-दूसरेको उन्नत करते हुए तुमलोग परम कल्याणको प्राप्त हो जाओगे।'

× × × ×

वास्तवमें सन्तों और भगवान्‌की वाणीमें विरोध नहीं आता। विरोध हमारी बेसमझीसे दीखता है।

विवेकशक्तिका नाम मानवशरीर है। विवेकशक्ति मनुष्यमें विशेष है। मनुष्य तो विवेकका अनादर कर देता है, पर पशु-पक्षी ऐसा नहीं करते। मनुष्य विवेकशक्तिका सदुपयोग-दुरुपयोग दोनों कर सकता है। मनुष्यको परमात्मप्राप्तिका जन्मजात अधिकार है। अपने उद्धारकी योग्यता और अधिकार—दोनों भगवान्ने मनुष्यको दिये हैं। मानवशरीर दुरुपयोगके लिये नहीं है, प्रत्युत सबकी सेवा करनेके लिये है और भगवान्को याद रखनेके लिये है।

× × × ×

मनुष्यशरीर मिलना बहुत दुर्लभ है। जो वस्तु मिल जाती है, उसकी दुर्लभताका ज्ञान नहीं होता। जो विवेकशक्ति है, वही मनुष्यपना है। शरीरको तो अधम बताया गया है—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

(मानस, कि० ११।२)

देवता आदिमें भी विवेक है, पर वह भोगके लिये है। पशु-पक्षियोंका विवेक जीवन-निर्वाहके लिये है। मनुष्यका विवेक परमात्मप्राप्तिके लिये है। मनुष्य-शरीर प्राप्त होनेपर परमात्मप्राप्तिके लिये निराश नहीं होना चाहिये। परमात्मा सभी मनुष्योंके लिये पूरे-के-पूरे हैं। उनपर सभीका पूरा हक लगता है।

जहाँ 'भोजनालय' का बोर्ड लगा हो, वहाँ वस्त्र कैसे मिलेगा? ऐसे ही संसारमें भगवान्ने बोर्ड लगा रखा है—**'दुःखालयम्'** (गीता ८।१५) फिर यहाँ सुख कैसे मिलेगा?

सहारा लेना जीवका स्वभाव है। अगर सहारा लेना ही हो तो बड़ेका लो, छोटेका क्यों लो? आप अपना सर्वस्व भगवान्को दे दो और भगवान्का सर्वस्व ले लो! **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'** (गीता ४।११)। न रोकर जियो, न रोकर मरो। मौजसे जियो और मौजसे मरो। आप परमात्माके अंश हो, मिट्टीके लौंदे (शरीर) नहीं हो।

× × × ×

भगवान् अनन्त हैं और उनकी रची सृष्टि भी अनन्त है। चौरासी लाख योनियोंसे भी अतिरिक्त अनन्त योनियाँ हैं, जिनका हमें पता नहीं! पर इसको जाननेसे लाभ भी क्या? संसारकी, बातोंका अन्त नहीं है। उन्हें जाननेसे क्या लाभ? न जाननेसे क्या हानि? हाँ, एक जानकारीका अभिमान और हो जायगा! अभिमानको निकालना बड़ा कठिन है!

× × × ×

परमात्मप्राप्ति चाहनेवालेके लिये खास बात है—अपनी अहंताको बदलना कि 'मैं साधक हूँ।' अहंता बदल जायगी तो मन-बुद्धि आदि सब बदल जायँगे; व्यवहार बदल जायगा, साधन हरदम होगा। पूरा संसार अहंता (मैं-पन)-में भरा हुआ है। अहंता बदलनेसे संसार बदल जाता है।

× × × ×

जो वस्तु थोड़ी होती है, उसका मूल्य अधिक होता है। आज कलियुगमें भगवान्की भक्ति बहुत थोड़ी हो गयी है। अतः भगवान् सस्ते हो गये हैं, भक्त महँगे! जो भगवान्के भजनमें लगे हैं, उनके लिये जमाना बड़ा अच्छा आया है। साधन करनेसे आज जैसा फर्क पड़ता है, वैसा पहले नहीं पड़ता था। साधन करनेवालोंका यह अनुभव है कि काम-क्रोधादि पहलेसे कम आते हैं, ज्यादा वेगसे नहीं आते और ज्यादा देर नहीं ठहरते।

× × × ×

कर्कोटक, दमयन्ती, नल और ऋतुपर्णका नाम लेनेसे कलियुग असर नहीं करता*। इसी तरह भगवन्नामका जप-कीर्तन करनेसे कलियुग असर नहीं करता। भगवन्नाम अशुद्ध अवस्थामें भी लेना चाहिये, नहीं तो मनुष्य बीमारीकी अवस्थामें अशुद्ध रहनेसे भगवन्नाम नहीं लेगा तो सद्गति कैसे होगी? अन्तकालमें भगवान्का चिन्तन कैसे होगा?

भगवन्नाम लेनेसे कलियुग, पाप, प्रेत-पिशाच आदि सब भाग जाते हैं। नाममें अनन्त शक्ति है। नाम लेनेसे बड़े-बड़े रोग मिट जाते हैं।

भगवान् हमारे पासमें हैं—ऐसा विश्वास न होनेसे ही भय लगता है।

बड़ोंको यदि छोटोंको शिक्षा देनी हो तो वाणीसे न देकर आचरण से दें।

---

* कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च। ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम्॥ (महा० वन० ७९।१०)

बीज और वृक्षका दार्शनिक विवेचन

(श्रीजयकुमारजी मिश्र)

परब्रह्म परमात्मा ही सम्पूर्ण सृष्टिके एकमात्र आधार हैं। चराचर भूतोंकी अन्तरात्मा हैं; जलचर, थलचर, गगनचर सभी उन्हींके अंश हैं। प्रलयकालमें ये सभी प्राणी उन्हीं परमात्मामें विलीन हो जाते हैं, इतना ही नहीं, उस समय समस्त ब्रह्माण्ड भी परमात्मामें ही विलीन हो जाते हैं। परमात्मामें विलीन होनेका क्रम हमारे धर्मग्रन्थोंमें इस प्रकार प्राप्त होता है—पृथ्वी जलमें, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें, वायु आकाशमें, आकाश अहंकारमें, अहंकार महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्व प्रकृतिमें लय हो जाता है। पृथ्वीसे लेकर प्रकृतितकके सभी पदार्थ प्रलयकालमें परमेशमें समा जाते हैं, कुछ भी शेष नहीं रह जाता। केवल एक वही परमेश्वर ही शेष रह जाता है, जो समस्त कारणोंका भी कारण—परम कारण है। उस समय सब कुछ त्रिगुणातीत परमात्मामें विलीन होनेसे ज्ञान, अज्ञान, सत्, असत्‌का बोध समाप्त हो जाता है—**'नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमिर्नासीत्तमोज्योतिरभूच्च नान्यत्।'**

(विष्णुपुराण १। २। २३)

उस समय प्रलयकालमें न दिन था, न रात्रि थी, न आकाश था, न पृथ्वी थी, न अन्धकार था, न प्रकाश ही था। परमात्माके अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। सम्पूर्ण जगत् परमात्मासे ही पैदा होता है, वही बीजरूप जगन्नियन्ता
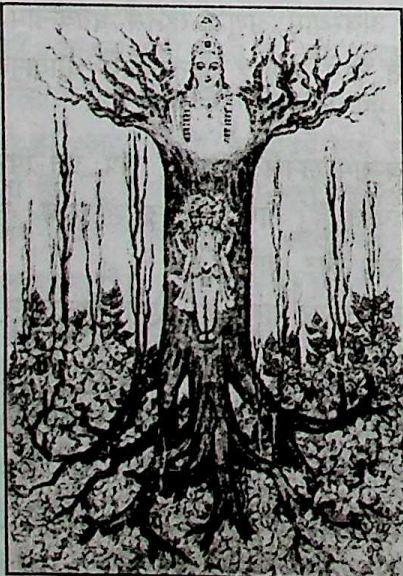
संसाररूपी वृक्ष होकर फैल जाता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी यही बात बतायी गयी है कि इस संसाररूपी वृक्षका मूल (अर्थात् कारणरूप परमात्मा) ऊपर स्थित है और उन्हींसे सृष्टिक्रममें उलटे वृक्षके समान संसारका विस्तार होता है और पुनः प्रलयक्रममें जो जिससे उद्भूत हुआ है, उसीमें लयको प्राप्त होता है और सम्पूर्ण विश्व परमात्मामें विलीन हो जाता है।

न्यग्रोधः सुमहानल्पे यथा बीजे व्यवस्थितः।
संयमे विश्वमखिलं बीजभूते तथा त्वयि॥

(विष्णुपुराण १। १२। ६५)

जिस प्रकार नन्हेंसे बीजमें विशाल वट-वृक्ष विद्यमान रहता है, उसी प्रकार प्रलयकालमें यह सम्पूर्ण जगत् बीज-स्वरूप परमात्मामें लीन रहता है। फिर सर्गकालमें बीजरूप परमात्मासे पैदा होकर वट-वृक्षकी भाँति विस्तारवाला हो जाता है।

बीजादङ्कुरसम्भूतो न्यग्रोधस्तु समुत्थितः।
विस्तारं च यथा याति त्वत्तः सृष्टौ तथा जगत्॥

(विष्णुपुराण १। १२। ६६)

समस्त चराचर ब्रह्माण्ड बीजरूप परमात्मासे ही पैदा होकर संसाररूपी वृक्षका रूप धारण कर लेता है। जो संसारका योनिरूप और समस्त देहधारियोंका बीज है।

परमात्मामें चराचर जगत् व्याप्त है—कहनेका तात्पर्य यह है कि सर्वप्रथम बीज है, तत्पश्चात् वृक्ष है। प्रलयकालमें पृथ्वी आदिका भी विनाश हो जाता है तो वृक्ष कहाँ रह गया? तब तो केवल एक बीजरूप प्रभु ही थे। कारणसे ही कार्यकी उत्पत्ति होती है, बीज कारण है और उससे वृक्षादिकी उत्पत्ति कार्य है। कारणरूप बीज सूक्ष्म होता है और कार्यरूप वृक्षादि स्थूल होता है। परमात्मा सबके मूल कारण हैं। सभी कारणोंका उन्हींमें पर्यवसान होता है।

जैसे निर्गुण-निराकार ब्रह्म समयानुकूल निराकारसे साकार हो जाता है, उसी प्रकार वही परमेश्वर समयानुसार बीजरूपसे वृक्षरूप हो जाता है, पहले निर्गुण है, फिर बादमें सगुण-से-सगुण होता चला जाता है। उसी प्रकार बीजसे

वृक्ष तथा वृक्षसे बीजकी उत्पत्ति होती चली जाती है।

परंतु सबसे पहले बीज है, ऐसा बारम्बार संकेत प्राप्त होता है। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है और न ही कोई शंकाका स्थान ही है। वृक्षका आधार बीज ही है; जो प्रलयकालमें भी परमात्मरूपसे विद्यमान रहता है, उसका विनाश नहीं होता।

मुख्य बीजसे अंकुरित वृक्ष है और वह अंकुरित वृक्ष समय पाकर विशाल रूप धारण कर लेता है, परंतु उस विशाल वृक्षमें सूक्ष्म रूपसे बीज ही व्याप्त रहता है, जिससे कि प्राप्त परिणाममें बीज ही है। जैसे—भगवान् विष्णुके नाभिसे कमलकी उत्पत्ति हुई और उस कमलपर सूक्ष्मदर्शी ब्रह्माजी प्रकट हुए, परंतु ब्रह्माजीको कमलके सिवा और कुछ भी नहीं दिखायी पड़ा कि वास्तवमें इस कमलकी उत्पत्तिका आधार क्या है!

वे उस प्रभुको अपनेसे बाहर समझकर जलके भीतर ढूँढ़ते रहे, परंतु जलमें उन्हें कुछ भी नहीं मिला। उन्हें यह समझमें नहीं आया कि अंकुर उग आनेपर उस व्याप्त बीजको अलग कैसे देखा जाय! फिर उन्हींकी कृपासे वे अपने महाकारण परमात्माको जान सके।

जो बीजसे वृक्षको भिन्न देखता है, उसके लिये अज्ञानताके कारण बीजस्वरूपको जानना कठिन हो जाता है। वृक्ष, लता, गुल्म सभी तरुवरोंमें बीज ही मुख्य है। बीजरूपमें प्रभु हैं जो कि निर्गुणसे सगुण, सगुणसे निर्गुण होकर अपनी मायाके द्वारा वैसे ही सदा सर्वत्र व्याप्त हैं, जैसे गूलरके छोटेसे बीजमें विशाल वृक्षका स्वरूप विद्यमान रहता है—

ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥

और वह वृक्ष बीजमें अव्यक्त रहता है—

अब्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे॥

अन्ततोगत्वा यही स्थिति है कि उस आत्मासे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे औषधि, औषधिसे अन्न और अन्नसे प्राणी उत्पन्न होते हैं, ठीक इसी प्रकार प्रकृतिका लय भी इसी क्रममें होता है। जो जिससे उत्पन्न होता है, वह उसीमें लीन हो जाता है और अन्तमें सब कुछ परमात्मामें लीन हो जाता है। वे ही सबके बीज हैं और पुनः उन्हींकी लीलाशक्तिसे सृष्टि-प्रक्रिया चला करती है। परमात्मा बीज (कारण) है और उनसे उत्पन्न यह समस्त चराचर जगत् वृक्षरूप (कार्यरूप) है।

गायकी रक्षासे ही संस्कृतिकी रक्षा

(आचार्य श्रीअमरनाथजी दीक्षक)

भारतीय धर्मग्रन्थोंमें पृथ्वी तथा गायको जन्म देनेवाली माताके समान आदरणीय कहा गया है। अतः गोरक्षा मानव समाजका परम धर्म है। गाय भारतीय संस्कृतिका प्राण है। यह गंगा, गायत्री, गोविन्दकी तरह पूज्य है। शास्त्रोंमें इसे समस्त प्राणियोंकी माता कहा गया है—'**मातरः सर्वभूतानां गावः।**' इसी कारण आर्य संस्कृतिमें शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य, जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि सभी धर्म-सम्प्रदाय गोमाताके प्रति आदर भाव रखते हैं। दिव्य गुणोंके कारण उसे हम गोमाता कहकर पूजते हैं। पंचगव्यका पान किये बिना हम यज्ञमें बैठनेके अधिकारी नहीं होते। पंचगव्य गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र एवं गोबरसे बनता है। घर-परिवार या मन्दिरोंमें होनेवाले छोटे-बड़े अनुष्ठानोंकी भूमि गायके गोबरसे लीपनेके बाद ही पवित्र होती है। प्रथम पूजा हमेशा गायके गोबरसे निर्मित गणेशकी मूर्तिकी ही की जाती है। गायके गोबरको खेतोंमें डालनेसे उपजमें कई गुनी वृद्धि हो जाती है। तभी तो लोकमानसमें प्रचलित है यह उक्ति—

खाद पड़े ते खेत में धन धान्यों की रास।
जो गृह गोबर से लिपे सुख शान्ति निवास॥

हमारे धर्मग्रन्थोंमें बताया गया है कि गोमाताके अंगोंमें देवताओंका निवास होता है। पद्मपुराणके अनुसार गोमाताके सिरमें ब्रह्मा, ललाटमें वृषभध्वज, मध्यमें अन्य देवगण और रोम-रोममें महर्षियोंका वास है। गोमाताकी पूँछमें शेषनाग, खुरोंमें अप्सराओं, मूत्रमें गंगाजी तथा नेत्रोंमें

सूर्य-चन्द्रमाका निवास होता है। गायके मुखमें चारों वेदों, कानोंमें अश्विनीकुमारों, दाँतोंमें गरुड, जिह्वामें सरस्वती तथा अपान (गुदा)-में सारे तीर्थोंका निवास है। भविष्यपुराण, स्कन्दपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, महाभारतमें भी गोमाताके अंग प्रत्यंगमें देवी-देवताओंकी स्थितिका वर्णन प्राप्त होता है।

भगवान् श्रीरामने अवतार क्यों लिया, इसके विषयमें पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।'

असुरोंका मानना है कि देवगण यज्ञ-हवनसे बलवान् होते हैं और यज्ञ-हवन कार्य गोघृतसे सम्पन्न होते हैं, अतः गाय एवं गोपालकोंको नष्ट कर देना चाहिये। मानसमें वर्णन आता है कि विविध देवताओंके साथ पृथ्वी गायका रूप धारणकर ब्रह्माके पास गयी। सबने आक्रान्त होकर भगवान्से रक्षाकी पुकार की। तब परमात्मा श्रीरामने इस धराधामपर अवतार लिया तथा गो-ब्राह्मणोंकी रक्षा की। जिस देशमें गो तथा ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणोंको कष्ट पहुँचाया जायगा, उस देशका पतन अवश्यम्भावी है।

भारतीय राजा एवं ऋषिगण गोपालक होते थे। भगवान् श्रीरामके पूर्वज दिलीपने नन्दिनी गायकी छायाकी तरह सेवा की थी एवं पुत्ररत्न प्राप्त किया था—**'छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्॥'** (रघुवंश २।६) भगवान् शंकर नन्दीको सदा अपने साथ रखते हैं। भगवान् श्रीकृष्णका

गो-प्रेम तो जगत्-प्रसिद्ध ही है। वे गोचारण करते हैं। गायों एवं ग्वालोंकी रक्षा करते हैं। गोके प्रति प्रेमके कारण ही वे गोपाल कहे गये। गोलोकवासी सन्त प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीने श्रीकृष्णके गो-प्रेमके विषयमें एक रचनामें लिखा है—

नंगे पायन फिरे हाथ में लकुटी लेके।
गाय चराई नित्य धूप अरु बरसा सैके॥
दावानल कर पान गोपगण निर्भय कीन्हे।
कामधेनु है तुष्ट नाम गोपालहि दीन्हे॥

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें **'यज्ञः कर्मसमुद्भवः'** कहकर सृष्टिके विकासका आधार यज्ञको बताया है। विधिपूर्वक किया गया यज्ञ इच्छित फल देनेवाला होता है। यज्ञकी सम्पन्नता गो और गव्यपदार्थोंपर ही निर्भर है। अतः सब प्रकारसे गायकी रक्षा और सेवा करनी चाहिये। गोदान ही नहीं गो-सेवाका भी संकल्प लेना चाहिये।

भारतीय परम्परा है कि मृत्युके पहले, बादमें तथा प्रायः सभी धार्मिक अनुष्ठानोंमें गोदान किया जाता है, जिससे जीव वैतरणी पार हो जाता है तथा अभीष्ट मनोरथ प्राप्त करता है।

आज भी गोदानकी परम्परा प्रचलित है। जो गोभक्त गोमाताकी सेवा करते हैं, पवित्र संकल्पके साथ गोदान करते हैं, उन्हें वैतरणीजनित कष्ट नहीं भोगने पड़ते। गायका दूध एवं घृत अमृतके समान लाभप्रद है। अतः रोगनिवारणके विविध प्रयोगोंमें गोमूत्र, दुग्ध एवं घृत आदिका उपयोग होता चला आया है। गोवंशकी रक्षा केवल कहने या प्रचार करनेसे नहीं हो सकती, इसके लिये दृढ़ संकल्पकी आवश्यकता है। भारतीय संस्कृतिमें गो अवध्य है। गोवध महान् पाप है। प्रत्येक भारतीयको गोके पालन, संरक्षण एवं संवर्धनहेतु प्रयत्नशील रहना चाहिये। गायों तथा गोशालाओंकी रक्षा करनी चाहिये, तभी हम अपनी संस्कृतिकी रक्षा कर सकेंगे। गोपालकोंकी रक्षासे ही हम सुरक्षित हो सकते हैं।

हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं

(डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

आशय—भगवान्‌को न भूलनेका आशय है—हर समय, हर स्थानपर, हर परिस्थितिमें, मृत्युके क्षणमें भी भगवान्‌की सही रूपमें सजीव स्मृति (याद) बनी रहना। भगवान्‌की स्मृतिमात्रसे भीषणतम दुःख तत्काल मिट जाता है और भगवान् मिल जाते हैं। इसी स्मृतिका नाम है—सादर सुमिरन। श्रीरामचरितमानस (१।११९।४)-में इसकी महिमाका वर्णन है—

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

इसका अर्थ है—जो मनुष्य आदरपूर्वक उनका (भगवान्‌का) स्मरण करते हैं, वे तो संसाररूपी (दुस्तर) समुद्रको गायके खुरसे बने हुए गड्ढेके समान (अर्थात् बिना किसी परिश्रमके) पार कर जाते हैं।

क्या नहीं भूलूँ?—आपको नहीं भूलूँ। इसका गहरा भाव इस प्रकार है—

१-आप मालिक हैं—हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि इस जगत्‌के मालिक आप हैं। आपने इस जगत्‌की केवल तीन चीजें मुझे सौंपी हैं—शरीर, सम्बन्धी (पति, पत्नी, सन्तान, माता-पिता, भाई-बहन आदि परिवारजन), सामान—सम्पत्ति। इन तीनोंके मालिक भी आप हैं। मुझे इन चीजोंको आपकी चीजें मानकर आपकी प्रसन्नताके लिये रखनी है।

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामकी वाणी है—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
(५।४८।४-५)

इसका अर्थ है—माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार—इन सबके ममत्वरूपी तागोंको बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बटकर उसके द्वारा जो अपने मनको मेरे चरणोंमें बाँध देता है, [ऐसा व्यक्ति मेरे हृदयमें वास करता है]।

२-सँभाल तथा सदुपयोग—हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि मुझे आपके सामान और सम्पत्तिको सँभालकर रखना है और इनका सदुपयोग करना है।

श्रीरामचरितमानस (२।१८६।३-४)-में श्रीभरतलालजीकी वाणी है—

संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साइँ दोहाई॥

इसका अर्थ है—सारी सम्पत्ति श्रीरघुनाथजीकी है। यदि उसकी व्यवस्था (रक्षा)-किये बिना उसे ऐसे ही छोड़कर चल दूँ तो परिणाममें मेरी भलाई नहीं है; क्योंकि स्वामीका द्रोह सब पापोंमें शिरोमणि है।

३-शरीरकी सेवा—हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि स्थूल शरीरको आपने बनाया है, आप ही इसके मालिक हैं। आप ही इसके लिये श्वास, हवा, जल, भोजन, वस्त्र, आवास आदिकी व्यवस्था करते हैं। मेरे लिये यह शरीर आपका मेहमान है। मुझे आपकी प्रसन्नताके लिये इस शरीरकी भरपूर सेवा करनी है, इसको संयम-नियमसे रखना है।

४-सूक्ष्म तथा कारणशरीर—हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि सूक्ष्म तथा कारणशरीर भी आपके मेहमान हैं। मुझे इनकी भी सेवा करनी है। सूक्ष्म शरीरको ममता, कामना, राग-द्वेषसे मुक्त, निर्मल रखना है। कारणशरीरको कर्तापनसे मुक्त एवं अहंकृतिरहित रखना है, इसके अस्तित्वको मिटा देना है।

श्रीरामचरितमानस (५।४४।५)-में भगवान् श्रीरामकी वाणी है—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

अर्थात् जो मनुष्य निर्मल मनका होता है, वही मुझे पाता है। मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते।

५-परिवारजन—हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि परिवारजन आपके साक्षात् स्वरूप हैं और मुझे इनकी खूब सेवा करनी है, इनको भरपूर प्रेम देना है।

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामकी वाणी है—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(४।३)

इसका अर्थ है—हे हनुमान्! वही मेरा अनन्य भक्त है, जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक हूँ और यह चराचर (जड़-चेतन) जगत् मेरे स्वामी भगवान्‌का स्वरूप है।

६-लौटाना—हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि आप अपनी दी हुई तीनों चीजें (शरीर, सम्बन्धी और सामान) मुझसे वापस अवश्य लेंगे, कब, कहाँ और कैसे लेंगे—इसका पता नहीं है। जब भी आप अपनी कोई भी चीज मुझसे वापस लें तो मुझे आपको आपकी चीज प्रसन्नतापूर्वक वापस लौटानी है।

७-कार्य—हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि मैं प्रातःकाल उठनेसे लेकर रात्रिमें सोनेतक शरीर, घर, परिवार, व्यापार, नौकरी, ऑफिस आदिके जितने भी कार्य करता हूँ, वे आपके कार्य हैं। मुझे आपके सभी कार्य आपकी प्रसन्नताके लिये पूरी सावधानी और निष्काम भावनासे करने हैं।

८-नुकसान नहीं करता—हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि कोई भी परिवारजन, रिश्तेदार, मित्र, व्यक्ति मेरा शारीरिक, आर्थिक तथा मानसिक नुकसान नहीं करता है। मुझे होनेवाले शारीरिक तथा मानसिक नुकसानके नौ कारण हैं—मेरे कार्य, मेरा भाग्य, मेरा प्रारब्ध, मेरी ग्रहदशा, मेरी असावधानी, होनहार, देवदोष, पितृदोष, एवं विधिका विधान। भगवान्! मुझे दुःख, चिन्ता, अशान्ति, तनाव आदिके रूपमें होनेवाले मानसिक नुकसानका कारण भी मेरी अपनी भूलें हैं—पराधीनता, शरीर, परिवार, सामान-सम्पत्तिमें मेरा मोह, शरीरको मैं मान लेना, अपने स्वरूपको भूल जाना, आपमें मेरा कच्चा विश्वास।

९-विधान मंगलकारी—हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि आपके प्रतिकूल-से-प्रतिकूल दिखायी देनेवाले विधानसे भी मेरा कणमात्र भी नुकसान नहीं होता है, उसमें मेरा परम हित छिपा रहता है। इसलिये मुझे उसमें एकदम निश्चिन्त एवं प्रसन्न रहना है। हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि अपनी तरफसे सावधानी रखनेके बाद भी मेरे जीवनमें अपने-आप अथवा किसी व्यक्तिके माध्यमसे जिस प्रतिकूल परिस्थितिका निर्माण हो जाता है, उसका नाम है आपका विधान। अपनी तरफसे सद्भाव रखने, सेवा और प्रेमका व्यवहार करनेके बाद भी यदि मेरा कोई परिवारजन मुझसे नाराज रहता है अथवा मेरे साथ प्रतिकूल व्यवहार करता है, वह भी आपका विधान है।

१०-महिमा—हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि आप मेरे माता-पिता हैं, करुणासागर हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, सब जगह मौजूद हैं। इसलिये मुझे खतरनाक एवं भीषण डरावनी जगहपर भी निर्भय एवं निश्चिन्त रहना है। मुझे किसी भी स्थानपर किसी भी परिस्थितिमें किसी भी हिंसक एवं विषैले जीव-जन्तु, चोर, डाकू, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच आदिसे डरना नहीं है। जब मेरे प्रभु मेरे पास हैं, जब मेरे माता-पिता मेरे साथ हैं, वे सर्वशक्तिमान् हैं तो मुझे किसका डर।

हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि आप सर्वज्ञ हैं—भूत-भविष्यकी सब बातें भलीभाँति जानते हैं, आपको मेरी आवश्यकताओंका पता है, इसलिये मैं आपसे संसारकी कोई चीज कभी नहीं माँगूँ।

११-कठपुतली हैं—हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि इस संसारका कोई भी मनुष्य कोई भी प्राणी अपनी ओरसे कुछ भी नहीं करता है, मैं भी नहीं। सबको सब कुछ आप स्वयं करवाते हैं या आपकी माया करवाती है। अहंकारमें लिप्त होनेके कारण मनुष्य यह मान लेता है कि मैं करता हूँ। वास्तवमें सब आपके हाथोंकी कठपुतलियाँ हैं, सबको आप ही नाच नचाते हैं। इसलिये जो मुझे सुख देता है, मैं उसके राग-मोह, आसक्तिमें नहीं फँसूँ और जो मुझे दुःख देता है, मैं उसपर क्रोध करके द्वेषमें नहीं फँसूँ। केवल अपने कर्तव्यका पालन करता रहूँ बड़ी सावधानीसे।

संसारमें उलझूँ नहीं।

श्रीरामचरितमानसमें वर्णन आता है—

बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ॥

(१।१२४ (क))

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥
नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत॥

(४।११।७, ४।७।२४)

इनका अर्थ इस प्रकार है—तब महादेवजीने हँसकर कहा—न कोई ज्ञानी है, न मूर्ख। श्रीरघुनाथजी जब जिसको जैसा करते हैं, वह उसी क्षण वैसा ही हो जाता है (शिवजी कहते हैं—) हे उमा! स्वामी श्रीरामजी सबको कठपुतलीकी तरह नचाते हैं। (काकभुशुण्डिजी कहते हैं—) हे पक्षियोंके राजा गरुड़! नट (मदारी)-के बन्दरकी तरह श्रीरामजी सबको नचाते हैं, वेद ऐसा कहते हैं।

मायाके सम्बन्धमें श्रीरामचरितमानसमें दो वर्णन इस प्रकार आते हैं—

बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा॥

(१।५६।५)

माया बिबस भए मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा॥

(१।१३३।३)

इनका अर्थ इस प्रकार है—फिर भगवान् शंकरने श्रीरामचन्द्रजीकी मायाको सिर नवाया, जिसने प्रेरणा करके सतीके मुँहसे भी झूठ कहला दिया।

(भगवान्‌की) मायाके वशीभूत मुनि ऐसे मूढ़ हो गये कि वे भगवान्‌की अगूढ़ (स्पष्ट) वाणीको भी न समझ सके।

१२-नहीं देना—हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि मेरे परिवारका कोई भी सदस्य अथवा कोई भी अन्य व्यक्ति मुझे कुछ नहीं दे सकता। वह मेरी चिन्ता, दु:ख, अशान्तिको मिटा नहीं सकता, मुझे शान्ति, मुक्ति, भक्ति दे नहीं सकता, आपसे मिला नहीं सकता। इसकी साधना तो मुझे ही करनी होगी। मेरे शरीरको मिलनेवाली सुख-सामग्री एवं सुख-सुविधाएँ मेरे प्रारब्धसे मिलती हैं, मिलेंगी। परिवारजन तथा व्यक्ति एक पोस्टमैनकी तरह उनमें केवल माध्यम बनते हैं। इसलिये मैं किसी भी परिवारजन तथा व्यक्तिके मोहमें आबद्ध नहीं होऊँ। उसको आपका स्वरूप मानकर प्रेम देता रहूँ और बदलेमें कुछ नहीं चाहूँ।

१३-केवल आप हैं—हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि इस संसारमें विभिन्न रूपोंमें केवल आप हैं और आप अपनी लीला कर रहे हैं। प्रेम देनेसे कण-कणमें आपके दर्शन हो जाते हैं, इसलिये मैं सबको प्रेम दूँ।

श्रीमद्भगवद्गीता (७।७, १९)-में आया है—

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

इनका अर्थ इस प्रकार है—इसलिये हे धनंजय! मेरे सिवाय (इस जगत्‌का) दूसरा कोई किंचिन्मात्र भी (कार्य-कारण) नहीं है, जैसे सूतकी मणियाँ सूतके धागेमें पिरोयी हुई होती हैं, ऐसे ही यह सम्पूर्ण जगत् मुझमें ही ओतप्रोत है। बहुत जन्मोंके अन्तिम जन्ममें अर्थात् मनुष्यजन्ममें सब कुछ परमात्मा ही हैं—इस प्रकार जानकर जो ज्ञानवान् मेरे शरण होता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।

१४-आप ही पधारे हैं—हे नाथ! मैं यह नहीं भूलूँ कि आप ही मेरे माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्रियाँ, भाई-बहन, सास-बहू, ननद-भाभी, देवरानी-जेठानी आदि परिवारजन बनकर पधारे हैं—मेरे रागकी निवृत्तिके लिये, मुझे आपके साकारस्वरूपको प्रेम देनेका सुअवसर प्रदान करके मुझे आपका प्रेमी-भक्त बनानेके लिये। इसलिये मुझे आपके सभी रूपोंको भरपूर सुख-सुविधा, प्रेम, प्रसन्नता देना है। आपके उन रूपोंको विशेष प्रेम देना है, जो मेरे साथ प्रतिकूल व्यवहार करते हैं। प्रेम देनेसे इन परिवारजनोंमें मुझे आपके दर्शन हो जायँगे।

श्रीरामचरितमानस (१।१८५।५)-में भगवान् शंकरकी वाणी है—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

अर्थात् मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब जगह समान रूपसे व्यापक हैं। प्रेमसे वे प्रकट हो जाते हैं।

ब्राह्म मुहूर्त और हमारा शरीर

(श्रीरामनारायणजी लोहिया)

प्रात: लगभग चार बजेसे सूर्योदयतकका समय ब्राह्म मुहूर्त कहलाता है। ब्राह्म मुहूर्तका भावार्थ है भगवान्‌का समय। पूरे दिन [२४ घण्टों]-में यह समय सर्वोत्तम है। इस कालावधिमें प्रकृतिके पाँचों तत्त्व—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश सम अवस्थामें रहते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्यके अनुपम, भव्य और दिव्य दर्शन होते हैं। यह समय तन-मन और आत्माके विकासके लिये अति उत्तम एवं आनन्ददायक होता है। सम्पूर्ण वातावरण पवित्रता, शुद्धता, शान्ति, प्रसन्नता, नवीनता एवं नीरवतासे ओत-प्रोत रहता है। दिनभरके ध्वनि-प्रदूषणके स्थानपर इस सुखद वेलामें नीरवता तथा शान्तिकी प्रधानता रहती है। हर प्रकारके वाहनोंका आवागमन बन्द-सा रहता है, अत: शोरगुल, चीख-पुकार, खट-खट, घड़-घड़ आदिकी हानिकारक ध्वनियोंसे वातावरण मुक्त रहता है। वातावरणमें मात्र पक्षियोंकी चहचहाहट, हवाकी सरसराहट सुनायी पड़ती है, जो सुहावनी लगती है। शीतल मन्द समीर बहती है। शुद्ध, स्वास्थ्यवर्द्धक, जीवनदायक प्राणवायु सर्वत्र व्याप्त रहती है। ऋतुके अनुरूप पुष्पकी महक वातावरणको सुरभित कर देती है। जैसे-जैसे सूर्योदयका समय पास आता है; वनस्पतियों, दूबोंके कोमल-कोमल पत्तोंका रंग अँधेरी कालिमा त्यागकर हरित हो जाता है। नवीनता हर क्षेत्रमें अँगड़ाई लेती दृष्टिगोचर होती है। ऐसेमें ओससे भीगी हरी-हरी दूबपर नंगे पाँव चलना सुखकर लगता है तथा कई प्रकारकी व्याधियोंमें राहत मिलती है, नेत्र-ज्योति तेज होती है।

ब्राह्म मुहूर्तके इस समय हमारे शरीरमें स्फूर्ति और ताजगी रहती है। इस समय जो भी कार्य किया जाय, वह बहुत अच्छा होता है, इसी कारणसे हमारे पूर्वजोंने दिनचर्याका शुभारम्भ ब्राह्म मुहूर्तसे करनेका निर्देश दिया है। ब्राह्म मुहूर्तमें जागरणसे दिनचर्याकी एक योजनाबद्ध जीवन-शैली निर्मित होती है, इसपर अमल करनेपर स्वास्थ्यकी नि:शुल्क सुरक्षाके साथ सद्गुणोंका विकास तथा दुर्गुणोंका त्याग होता है। आधुनिक धनप्रधान एवं इन्द्रियप्रधान दोषोंका शमन भी इसमें विहित है।

शास्त्रोंमें कहा गया है कि जो व्यक्ति आलस्य छोड़ प्रात: जल्दी जागता है, प्रात:कालीन सुरम्य समयमें भ्रमण करता है, उचित व्यवहारपर लेन-देनद्वारा धन प्राप्तकर उसकी रक्षा और स्वयं भोग करता हुआ; दूसरोंको भी भोग कराता है, वह सुन्दर चरित्रका वीर पुरुष पुत्रपौत्रादि और आयुको बढ़ाता है और निरन्तर सुखी रहता है।

आत्मानुशासन या आत्मसंयम या अपने आपपर नियन्त्रणका अभ्यास ब्राह्म मुहूर्तमें बिस्तर-त्यागसे हो जाता है; क्योंकि उस समय वातावरण शान्त एवं शीतल रहता है। अत: निद्रा भी गहरी एवं अच्छी आती है। ऐसेमें इच्छा नहीं होते हुए भी बिस्तर त्याग देना चाहिये।

दुर्गुणों, दोषों, प्रलोभनोंसे संघर्ष करनेकी शक्ति आत्मामें आती है। मनमर्जी तथा इन्द्रिय-दासता त्यागकर आत्म-संयम अपनानेकी प्रवृत्ति होती है। अंग्रेजीमें एक कहावत है ***'अरली टू बेड एण्ड अरली टू राइज, मेक्स ए मैन हेल्थी-वेल्थी एण्ड वाइज'*** अर्थात् जल्दी सोना एवं प्रात: जल्दी उठना मनुष्यको स्वस्थ एवं बुद्धिमान् बनाता है। आरोग्य एवं बल प्रदान करनेवाली सूर्य-किरणोंका लाभ प्रात: जल्दी उठनेवाले ही प्राप्त कर पाते हैं एवं जो सोते रहते हैं, वे इस लाभसे वंचित रहते हैं।

सूर्य-स्नान चैतन्य एवं जीवनशक्तिका अजस्र स्रोत है। प्रात:काल सूर्यसे जो किरणें प्रवर्तित होती हैं, वे जब हमारे शरीरको स्पर्श करती हैं, तो शरीरको नवीन बल, चैतन्य, असीम आनन्द एवं नवीन स्फूर्ति मिलती है। इस प्रकारसे अनेक लाभ देनेवाली सूर्यकी किरणें प्रात: जल्दी ही सूर्यमेंसे प्रस्फुटित होती हैं, पूरे दिनभर नहीं।

आयुर्वेदके अनुसार ब्राह्म मुहूर्तमें उठनेसे वर्ण, कीर्ति, मति, लक्ष्मी, स्वास्थ्य तथा आयुकी प्राप्ति होती है, इससे शरीर कमलकी तरह प्रफुल्लित हो जाता है—

वर्णं कीर्तिं मतिं लक्ष्मीं स्वास्थ्यमायुश्च विन्दति।
ब्राह्मे मुहूर्ते सञ्जाग्रच्छ्रियं वा पङ्कजं यथा॥

आरोग्यशास्त्रके अनुसार जो व्यक्ति सूर्योदयके पश्चात् देरतक सोते रहते हैं, उनकी श्वास-प्रश्वासकी क्रिया सामान्य तरीकेसे नहीं चल पाती। फलस्वरूप ऐसे व्यक्ति कई प्रकारकी व्याधियोंसे ग्रस्त हो जाते हैं, ऐसे व्यक्तियोंको बेचैनी, आलस्य, थकावट-जैसी कई परेशानियोंका सामना करना पड़ता है।

[प्रेषक—श्रीबंसीलालजी चेचानी]

विदेशोंमें राम-कथाका स्वरूप

(डॉ० श्रीकमलकिशोरजी गोयनका)

राम-कथा भारतकी ही नहीं, विश्वकी सम्पत्ति है। वह संस्कृतभाषामें रची गयी, फिर भारतकी अन्य भाषाओंमें उसका अनुवाद हुआ और उसके साथ-साथ अन्य देशोंकी भाषाओंमें भी वह रूपान्तरित, परिवर्तित रूपमें पहुँची और वह जहाँ भी पहुँची, वहाँके जन-मानसका अंग बनती चली गयी। एशियाके देशोंमें तो राम-कथा इतनी अधिक प्रचलित है कि 'रामायण' को कुछ विद्वानोंने 'एशियाका महाकाव्य' ही कह दिया है। इन देशोंमें हजारों वर्षोंसे राम-कथा प्रचलित है और वह उनके जीवन, धर्म, चिन्तन, संस्कृति, कला आदिका महत्त्वपूर्ण अंग बन चुकी है। यद्यपि इन देशोंमें रामायणकी कथा तथा चरित्रोंमें परिवर्तन हो गया है, किंतु रूपान्तरके बावजूद वे चरित्र लोक-मानसमें इतने घुल-मिल गये हैं कि उनका अपना एक अलग रूप ही विकसित हो गया है। राम-कथाके माध्यमसे इन देशोंमें भारतीय संस्कृति पहुँची और वहाँकी जनताने उसे अपने साहित्य और धर्मका हिस्सा बना लिया।

जिन देशोंमें कई शताब्दियोंके पूर्व राम-कथा पहुँची; उनमें चीन, तिब्बत, जापान, इण्डोनेशिया, थाईदेश, लाओस, मलेशिया, कम्बोडिया, श्रीलंका, फिलीपीन्स, बरमा, रूस आदि देश प्रमुख हैं। चीनमें रामायणकी कथाका प्रवेश तीसरी शताब्दीतक अवश्य ही हो गया था। बौद्ध महाधीश खांग शंग हुईने २५१ ईस्वीमें डब्ल्यू० यू० (२२२-२८०)-के शासन-कालमें अनामक जातकका चीनी भाषामें अनुवाद किया था, जो लिऊ तऊत्व किंगके सिक्स पारिमिता सूत्रके पाँचवें ग्रन्थमें ४६वीं कहानी है। यह कहानी वाल्मीकीय रामायणके मूल कथानकसे बहुत मिलती है। इसके बाद वेई वंश (३८६-५३४)-के ४७२ ईस्वीमें श्रमण चीचिया येने तान याओके साथ मिलकर दि निदान आफ किंग (The Naidana of King) की टेन लक्ज़रीज़ (Ten Luxuries) का चीनी भाषामें अनुवाद किया, जो त्व पाओत्वांग किंग (Tsa-Pao tsang King)-के प्रथम खण्डकी कहानी है। यह कथा राजा टेन लक्ज़रीज़ (जो कि दशरथ हैं)-की है, जो बीमार होनेपर राजकुमार रामको राजा बनाता है। इसके बाद इसमें कैकेयीकी ईर्ष्या, रामका भाई लसना (लक्ष्मण)-के साथ १२ वर्षका वनवास, भरतका चरण-पादुकाओंको राजगद्दीपर रखकर शासन तथा अवधि पूर्ण होनेपर रामका लौटना और राजा बनना आदि घटनाएँ दी गयी हैं। इसके उपरान्त मिंग वंश (१३६८-१६४४)-के सर्वप्रमुख उपन्यासकार ऊ-चेंग-एनने दि मंकी हपि ऊची (Hsi-yw-chi)-की रचना की, जिसका दैविक वानर सुन-ऊ-खुंग (Sun-Wu-Kung) चीनी जनतामें बहुत लोकप्रिय हुआ। कुछ विद्वानोंका मत है कि वानर सुन-ऊ-खुंग हनुमान् ही हैं और उसके प्रभावमें ही इसकी रचना हुई है। इसके उपरान्त चीनके ताइ क्षेत्रोंमें लंकाश (Lankashia) वर्णनात्मक काव्यकी रचना हुई, जो दूर-दूरतक प्रचारित हुआ। इसे धार्मिक सभाओंमें मठाधीश धार्मिक ग्रन्थके रूपमें पढ़ते थे तथा लोकगायक इसे गा-गाकर लोगोंको सुनाते थे। लोगोंमें लंकाशके नामपर दो पाण्डुलिपियों—दि ग्रेट लंका तथा दि स्माल लंका प्रसिद्ध हैं, यद्यपि एक-दो घटनाओंके परिवर्तनके बावजूद दूसरी पाण्डुलिपियाँ पहलीका सारांश ही हैं। इसका मुख्य कथानक रामायणपर आधारित है, पर उसका पूर्णतः अनुवाद भी नहीं है, वह उसका पुनः सृजन है।

खोतान अर्थात् पूर्वी तुर्किस्तानमें भी राम-कथा प्रचलित थी। श्री एच०डब्ल्यू०बेली ने सात सौसे अधिक पदोंकी रामायण खोज निकाली है, जो नवीं शताब्दीकी है। इस राम-कथामें वसिष्ठ-विश्वामित्रके संघर्षको परशुरामके पिताके साथ रामके पिता सहस्त्रबाहुके संघर्षके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। राम दशरथके पौत्र और सहस्त्रबाहुके पुत्र बताये गये हैं। राम क्षत्रिय-हन्ता परशुरामका वध करते हैं। सीता रावणकी परित्यक्ता कन्या है तथा राम-लक्ष्मण दोनोंकी पत्नी बतायी गयी है। खोतानमें सम्पत्तिकी रक्षाके लिये सभी भाइयोंका विवाह एक ही स्त्रीसे किया जाता

रहा है, जिसके कारण इसका आरोपण राम-कथापर हो गया है। रावणका मर्म-स्थल अँगूठा बताया गया है तथा उसका वध नहीं होता। वह बौद्ध हो जाता है तथा सीता लोकापवादके कारण पाताल-प्रवेश करती हैं।

तिब्बतमें राम-कथाका प्रवेश मुख्यत: बौद्ध जातकोंके कारण हुआ। डॉ० कामिल बुल्केके अनुसार राम-कथा अनामक जातक तथा दशरथ जातकके माध्यमसे तिब्बत पहुँची। इन दोनों जातकोंका क्रमश: तीसरी और पाँचवीं शताब्दीमें चीनी भाषामें अनुवाद हुआ था। इसके अतिरिक्त राम-कथाका लिखित रूप १३वीं शतीसे प्राप्त होता है। द बुस (Bus) के दमार-स्तोन-चोस-ग्र्याल (Dmar-Ston-rgyal) ने अपने गुरु सा-स्क्या पण्डितसे सुनी कथाके आधारपर लिखा, जिसके कारण इसमें अनेक त्रुटियाँ हैं। सा-स्क्या पण्डित (Sa-Shya Pandita) ने सुभाषित-रत्न-निधि नामसे ४५७ चौपाइयोंका एक संग्रह तिब्बती भाषामें लिखा था, जिसमें कहीं-कहीं राम-कथाका उल्लेख है, इसके अलावा संस्कृत-ग्रन्थ काव्यादर्शका तिब्बती अनुवाद फाग्स-पा (Phags-Pa)-ने १३वीं शतीमें करवाया था। इसमें भी राम-कथा मिलती है। डॉ० कामिल बुल्केके अनुसार यद्यपि तिब्बतमें राम-कथा बौद्ध-कथाओंके रूपमें पहुँची थी, तथापि इसपर गुणभद्रके उत्तरपुराण तथा गुणाढ्यकी रचना बृहत्कथाका प्रभाव है। गुणाढ्य एक जैन लेखक था और उसकी रचनामें सीता रावणकी पुत्री बतायी गयी है।

तिब्बतसे होकर राम-कथा मंगोलिया पहुँची, लेकिन इसका सम्बन्ध वाल्मीकीय रामायणसे न होकर बौद्ध एवं जैन राम-कथाओंसे था। ऐसा विश्वास है कि तिब्बतके लामा लोगोंने धर्म-प्रचारके लिये मंगोलियामें इस कथाका प्रचार किया। मंगोलियामें राम-कथा राजा जीवककी कथा है, जो आठ अध्यायोंमें विभक्त है। इस कथाकी छ: पुस्तकें लेनिनग्राद पुस्तकालयमें सुरक्षित हैं।

जापानमें राम-कथा चीनके माध्यमसे पहुँची। चीनमें रामायण जातक-कथासे पहुँची और इसी रूपमें जापानमें गयी। १२वीं शताब्दीमें रचित होबुत्सुशु नामक ग्रन्थमें रामायणकी कथा जापानीमें उपलब्ध है, लेकिन ऐसे प्रकरण भी हैं, जिनसे कहा जा सकता है कि जापानी इससे पूर्व भी राम-कथासे परिचित थे। विगत एक हजार वर्षसे बुगाकु अथवा गागाकु नामसे प्रसिद्ध संगीत-नृत्यकी ऐसी कुछ शैलियाँ जापानके राजमहलोंमें सुरक्षित हैं, जिनसे दोरागाकु नाट्य-नृत्य शैलीमें राम-कथा मिलती है। १०वीं शताब्दीमें रचे ग्रन्थ 'साम्बो-ए-कोताबा' में दशरथ और श्रवणकुमारका प्रसंग मिलता है। 'होबुत्सुशु' की राम-कथा और रामायणकी कथामें भिन्नता है। जापानी कथामें शाक्य मुनिके वनगमनका कारण निरर्थक रक्तपातको रोकना है। वहाँ लक्ष्मण साथ नहीं हैं, केवल सीता ही उनके साथ जाती हैं। सीता-हरणमें स्वर्ण-मृगका प्रसंग नहीं है, अपितु रावण योगीके रूपमें रामका विश्वास जीतकर उनकी अनुपस्थितिमें सीताको उठाकर ले जाता है। रावणको ड्रैगन (सर्पराज)-के रूपमें चित्रित किया गया है, जो चीनी प्रभाव है। यहाँ हनुमान्‌के रूपमें शक्र (इन्द्र) हैं और वही समुद्रपर सेतु-निर्माण करते हैं। कथाका अन्त भी मूल राम-कथासे भिन्न है।

जापानमें संस्कृत विद्वान् प्रो० युताका इवामोतो सम्पूर्ण वाल्मीकिरामायणका गत कई वर्षोंसे जापानीमें अनुवाद कर रहे हैं और 'आदिकाण्ड' तथा 'अयोध्याकाण्ड' के अनुवाद अलग-अलग जिल्दोंमें प्रकाशित भी हो चुके हैं। प्रो० इवामोतो जापानमें एक रामायण पुस्तकालयकी स्थापनाके लिये प्रयत्नशील हैं।

इण्डोनेशियामें भारतीय शासक 'अजी कका' (७८ ई०)-के समय में संस्कृत भाषा तथा 'पल्लव' एवं 'देवनागरी' लिपिके प्रयोगके प्रमाण मिलते हैं। बादमें यह 'कवि-भाषा' के रूपमें विकसित हुई। राम-कथाके आगमनकी तिथिपर विवाद हो सकता है, किंतु सातवीं शतीके प्रम्बनानके शिव-मन्दिरपर शिलोत्कीर्ण राम-कथा मिलती है, जिसपर शैव एवं बौद्ध शिल्प-शैलियोंका प्रभाव है। इसके उपरान्त १४वीं शतीमें जावाके पनातरान नामक स्थानपर निर्मित शिव-मन्दिरमें भी राम-कथा मिलती है। यह राम-कथा भित्तिपर लम्ब रेखाओंमें उत्कीर्ण फूल-पत्तियोंकी बेलसे सज्जित बेङ् शैलीमें १०६ दृश्योंमें सम्पन्न हुई है। इन दोनोंके अलावा पूर्व जावामें जलतुण्डोंके

अवशेषोंमें १०वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धके भित्ति-चित्र उपलब्ध हैं। बालिमें भी भित्ति-चित्रों तथा आधुनिक वास्तुकलामें सीताकी अग्नि-परीक्षा आदि महत्त्वपूर्ण दृश्योंका अंकन होता रहा है। इण्डोनेशियामें अभिलेख एवं साहित्यके रूपमें भी राम-कथा प्राप्त होती है। ८वीं शताब्दीके राजा संजयके अभिलेखमें राम-कथाका उल्लेख हुआ है। नौवीं शताब्दीतक मध्य जावामें रावण, लंका, पवन, अयुद्धा, भरत, राम, लाघव, सीता, बालि, लक्ष्मण इत्यादि नाम प्रचलित हो चुके थे, जिसका विस्तृत विवेचन एच०बी० सरकारने 'इण्डियन इन्फ्लुएन्सेज आन दि लिटिरेचर ऑफ जावा एण्ड बालि' में किया है। छठी शताब्दीमें मध्य जावाका एक भाग 'लंग्गा' कहलाता था। इसी प्रकार राजा बलितुङके एक अभिलेखमें किसी प्राचीन जावा राम-कथाके पाठकी चर्चा आयी है।

प्राचीन जावा-रामायण या प्राचीन ककविन-रामायण इण्डोनेशियाकी सर्वाधिक प्राचीन एवं विशालकाय रचना है, जिसके रचनाकारके रूपमें योगेश्वर कविका प्रमाण मिलता है। इस रामायणमें २६ सर्ग हैं, जिनमें २७७१ श्लोक हैं। इसकी तुलना संस्कृतके भट्टिकाव्यसे की जाती है, क्योंकि दोनोंके कुछ सर्गोंमें साम्य मिलता है। इसके अतिरिक्त बालिके संस्कृत-साहित्यमें भी कई ग्रन्थ हैं, जिनमें राम-कथा मिलती है। इण्डोनेशियामें आज भी नृत्य एवं अभिनयके माध्यमसे राम-कथा प्रस्तुत की जाती है।

थाईदेशमें यह परम्परागत विश्वास है कि राम-कथाकी सृष्टि उनके ही देशमें हुई थी। वहाँ जब भी नया शासक राजसिंहासनपर आरूढ़ होता है, वह उन वाक्योंको दोहराता है, जो रामने विभीषणके राजतिलकके अवसरपर कहे थे। सन् १३५० ई०में राम खरांग नामक राजाके पौत्र फ्र राम थिवोडने राजधानी सुखोथाई (सुखस्थली)-को छोड़कर 'अयुधिया' अथवा 'अयुत्थय' (अयोध्या)-की स्थापना की। यह विशेषरूपसे उल्लेखनीय है कि राम खरांगके पश्चात् नौ शासकोंके नाम राम-शब्दकी उपाधिसे विभूषित थे। वे राम प्रथम, राम द्वितीय आदि नामोंसे अभिहित होते थे। यहाँ वाल्मीकिकृत रामायणके आधारपर अनेक महाकाव्योंकी रचना हुई। इनमें सर्वप्रथम ग्रन्थ है रामकियेन अर्थात् राम-कीर्ति। इसके लेखक महाराज राम प्रथम माने जाते हैं। इसमें कुछ अंश कम्बोडियाकी अपूर्ण कृति रामकेतिसे भी लिये गये हैं। राम द्वितीयने नृत्य-नाट्यका सूत्रपात किया और रामकियेन नाट्य-रूपकका सृजन किया। इसके अभिनयमें राजपरिवारके प्रमुख सदस्य भी भाग लेते थे, जो गौरव-गरिमाकी बात मानी जाती थी। आज यह नृत्य-नाट्य थाईदेशकी राष्ट्रीयताका अभिन्न अंग बन गया है।

लाओसमें राम-कथा संगीत, नृत्य, चित्रकारी, स्थापत्य और साहित्यकी धरोहरके रूपमें ताड़-पत्रोंपर सुरक्षित है। राजमहल और व्येन्त्याने-नगरकी नाट्यशालामें राम-कथाका संगीत-रूपकके रूपमें मंचन होता है। राम-कथा यहाँ दो रूपोंमें मिलती है—एक रूपान्तर 'फालम' (प्रिय लक्ष्मण, प्रिय राम) जो व्येत्स्याने प्रदेशसे प्राप्त हुआ है, दूसरे पोम्पचाक (ब्रह्मचक्र) जो उत्तरी लाओसकी मेकांग घाटीसे प्राप्त हुआ है। पहली रचना एक जातक-काव्य है। भगवान् बुद्ध जेतवनमें एकत्र भिक्षुओंको श्रीरामकी कथा सुनाते हैं। इसकी रचना लवदेशमें हुई थी, इसी कारण यह यहाँके लोगोंको सर्वप्रिय है। इन दोनों रूपान्तरोंकी रामकथा एवं पात्र-सृष्टि वाल्मीकि-रामायणकी अपेक्षा थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया, मलाया आदिमें मिलनेवाली राम-कथासे अधिक मिलती है।

मलेशिया मुस्लिम देश होनेपर भी वहाँ भारतीय संस्कृतिका प्रभाव रहा है। यहाँ राम-कथा साहित्य, छाया नाटक तथा रामायण-नृत्यमें मिलती है। मलय रामायणकी प्राचीनतम प्रति सन् १६३३ ई०में बोदलियन पुस्तकालयमें सुरक्षित की गयी। यह अरबी लिपिमें है, जिससे स्पष्ट है कि इसपर इस्लामका प्रभाव है। इसके तीन पाठ रोकड़ा वान रेसिंगा, शेलाबेर और मैक्सवेलके मिलते हैं। मलय राम-कथाके साहित्यिक पाठ प्राय: हिकायत सेरी रामके नामसे प्राप्त होते हैं, किंतु डब्ल्यू०ई० मैक्सवेलद्वारा सम्पादित ग्रन्थका नाम श्रीराम है। एक और ग्रन्थ हिकायत महाराज रावण भी मिलता है, जो हिकायत सेरी रामसे

मिलता है। हिकायत सेरी राम ग्रन्थमें रावणके चरित्रसे लेकर राम-जन्म, सीता-जन्म, राम-सीता-विवाह, राम-वनवास, सीता-हरण और सीताकी खोज, युद्ध, सीता-त्याग तथा राम-सीताके पुनर्मिलनतककी कथा है। डॉ० कामिल बुल्केने इस ग्रन्थपर पड़े प्रभावोंके सम्बन्धमें लिखा है कि इसपर जैन तथा बंगाली राम-कथाओंका प्रभाव निर्विवाद है। उड़िया राम-साहित्य, रंगनाथ तथा कम्ब रामायण अर्थात् भारतके पूर्वी तटकी रचनाओंका प्रभाव सेरी रामपर पड़ा है। सेरी रामके अनेक प्रसंग आनन्दरामायण, कथासरित्सागर, मैरावणचरित आदिमें विद्यमान हैं। सेरी रामपर रामायण ककविन तथा मुसलमानी धर्मका जो प्रभाव है, वह एक प्रकारसे अनिवार्य ही था।

कम्बोडिया (कम्पूचिया)-में पहली शताब्दीसे ही राममयी संस्कृतिका प्रचार-प्रसार मिलता है। छठी-सातवीं शताब्दीके खण्डहरों तथा शिलालेखोंमें रामायणके प्रमाण मिलते हैं। रामकेर या रामकेर्ति कम्बोडियाका अत्यधिक लोकप्रिय महाकाव्य है, जिसने यहाँकी कला, संस्कृति, साहित्यको प्रभावित किया है। इसके लेखकका नाम अज्ञात है। इसकी प्राचीनतम हस्तलिपियाँ सत्रहवीं शतीकी उपलब्ध होती हैं। इसके अनेक पाठभेद हैं और कोई सर्वमान्य रूप नहीं है, फिर भी वह राष्ट्रकी आत्माकी सुन्दरतम अभिव्यक्ति है। इसकी लोकप्रियताका एक कारण यह भी है कि यहाँके शासक जयवर्मन सप्तमके जीवनकी घटनाएँ रामके जीवनकी घटनाओंसे बहुत मिलती हैं। आज भी यह कथा सत्य एवं न्यायकी चिरन्तन विजयकी प्रतीक मानी जाती है।

श्रीलंकामें राम-कथाका कोई विशद ग्रन्थ नहीं मिलता, वैसे कई लेखकोंने रामायणकी गाथाओंको सिंहली भाषामें लिखा है। इनमें कुमारदासका जानकीहरण प्रमुख है। यहाँ रामकी अपेक्षा हनुमान् तथा सीतासे सम्बन्धित कहानियाँ अधिक प्रचलित हैं, जिसका सम्भवतः कारण यह है कि राम यहाँ बहुत कम समय रहे थे। कुछ विद्वान् रामायणको कवि-कल्पना मानते हैं और कुछ राम, रावण, सीता, हनुमान् आदिको तो स्वीकार करते हैं, परन्तु रामायणकी लंकाको वर्तमान श्रीलंका नहीं मानते, बल्कि वह द्वीप श्रीलंकाके दक्षिणमें अथवा इण्डोनेशियाका कोई द्वीप मानते हैं।

फिलीपीन्समें राम-कथा महरादिया लावना नामसे १३वीं-१४ वीं शताब्दीकी प्राप्त होती है। इसमें राम-कथा तथा पात्रोंका स्वरूप बदला हुआ है। यहाँकी राम-कथामें रामको मन्दिरी, लक्ष्मणको मंगवर्न, सीताको मलाइला तिहाइया कहा गया है। फिलीपीन्सकी राम-कथामें भी असत्पर सत्की जय दिखायी गयी है। रावण बुरा है, वह परास्त होता है (मारा नहीं जाता), राम-सीताका दाम्पत्य स्थापित होता है।

बरमा (ब्रह्मदेश)-में ईसाके पूर्व ही राम-कथा यहाँ पहुँच चुकी थी। ईसाके दो शताब्दी पहलेसे विष्णु एवं बुद्धके प्रमाण मिलते हैं, लेकिन यह आश्चर्यकी ही बात है कि राम-कथाका साहित्यिक सृजन सत्रहवीं शताब्दीके पूर्वका उपलब्ध नहीं होता। प्रथम रचना रामवस्तु इसी कालकी मिलती है और इसमें राम-कथाको बौद्ध कलेवरमें प्रस्तुत किया गया है। इसके नायक बोधिसत्त्व राम हैं, जो कि तुषित स्वर्गसे देवताओंकी प्रार्थनापर अवतरित हुए हैं। दूसरी रचना महाराम है, जो अठारहवीं शताब्दीके अन्त अथवा उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें रची गयी थी। यह कृति भी गद्यमें ही है। यह मूलतः रामवस्तुका ही विस्तृत एवं अलंकृत रूप है। तीसरी मुख्य गद्य रचना 'राम-तोन्मयो' है, जो १९०४ ई०में साया-हत्वे-ने लिखी। इसमें पात्रोंके नामों तथा प्रसंगोंको बदल दिया गया है। चौथी रचना है राम-ताज्यी, जिसे अ-ओ-पयो-ने १७७५ ई०में लिखा है। यह गीतिकाव्य है, जिसे इसके रचयिताने बंगालके बाउल गायकोंकी भाँति नगर-नगर, ग्राम-ग्राम घूम-फिरकर गाया तथा इस प्रकार 'रामाख्यान' का प्रचार-प्रसार किया। पाँचवीं रचना राम-भगान है, जिसे १७८४ ई०में ऊ-तो-ने लिखा। इसका कथानक-राम-सुग्रीव-मैत्रीतक ही सीमित है। छठी रचना अलौंग राम-ताज्यी है, जिसे साया-हतुन-ने १९०५ ई०में रचा। यह भी गीतिकाव्य है। सातवीं रचना नाटक थिरी राम गद्य एवं पद्य दोनोंमें है। यह नाटक भी आठवीं-नवीं शतीके

अन्त या प्रारम्भमें १३२० ताड़पत्रोंपर लिखा गया था। आठवीं रचना भी गद्य-पद्यमय नाटक पोन्तव राम है, जिसे ऊ-कू-ने १८८० ई०में लिखा था। नवीं रचना है, पोन्तव राम-लखन, जिसे ऊ-गौंग गोने १९१० ई०में लिखा था। मुख्यतः यह कृति रामके प्रति सीताके उत्कट प्रेमकी कहानी है। बर्मामें १७६७ ई० से रामलीला (थामाप्वे) भी रातको खेली जाती है। दिसम्बर, १९०५ ई० में बरमासे एक नाटक-मण्डलीने भारत आकर अयोध्या तथा दिल्लीमें भी अपनी कलाका प्रदर्शन किया था। यहाँकी चित्रकला, मूर्तिकला, कशीदाकारी, हस्तशिल्पपर भी रामाख्यानका प्रचुर चित्रण हुआ है।

रूसमें राम-कथाका प्रवेश दो सौ वर्षोंसे अधिक पुराना नहीं है। १८३३ ई०में युवा पाठकोंके लिये म० चिस्तीकोवका प्राचीन भारतीय महाकाव्य—रामायण-अनुवाद प्रकाशित हुआ। इससे पूर्व १८१९ ई०में पीटर्सवर्गकी पत्रिका सरेब्नावात्येल प्रास्वेशियेनिया इब्लागोत्वारोनियाके दसवें अंकके भाग ८ में वाल्मीकिकृत रामायणका एक बहुत बड़ा अंश 'पुत्रकी मृत्युपर माता-पिताका सन्ताप' शीर्षकसे प्रकाशित हो चुका था। १८४४ ई०में मायाक पत्रिकामें प्रकाशित द० कोप्त्येवका रामायणसे एक अंश शीर्षक अनुवाद भी छपा। रूसी विद्वान् ए० व्येमकिन तथा व० एर्माननने भी रामायणके अनुवादके प्रयास किये, ग्रिन्तसेरकी कृति प्राचीन भारतीय महाकाव्य—उद्भव एवं प्रकार भी रामायणके अध्ययनकी गम्भीर चेष्टा थी। व०स० पोतापोवाका काव्यानुवाद बहुत लोकप्रिय हुआ। तुलसीकृत श्रीरामचरितमानसका रूसी भाषामें अनुवाद १९४८ ई०में प्रकाशित हुआ, जिसे अलेक्सेई वारान्निकोवने अनेक वर्षके परिश्रमके बाद किया था। सोवियत संघमें रामायणके प्रति रुचि बढ़ती जा रही है। १९८६ ई०में मास्को-स्थित प्रकाशन-गृह 'खुदोज्येस्त विन्नाया लितरातू. रा' से ब्येरा पोतापोवाके नये अनुवादमें वाल्मीकि-रामायणके कुछ अंश प्रकाशित हुए हैं। पावेल गिन्तसेरने 'प्राचीन भारतका प्रथम काव्य' शीर्षकसे इस पुस्तककी भूमिका लिखी है।

प्रवासी भारतीयोंने मारिशस, फीजी, सूरीनाम, गुयाना आदि देशोंमें राम-कथाका प्रचार-प्रसार किया। इन देशोंमें १९वीं शताब्दीमें भारतसे हजारों लोग बन्धक मजदूरोंके रूपमें ले जाये गये। ये लोग अपने साथ 'श्रीरामचरितमानस' भी ले गये और इस प्रकार राम-कथाके द्वारा भारतीय धर्म एवं संस्कृतिसे जुड़े रहे। मारीशसमें 'श्रीरामचरितमानस' की साथ लायी प्रतियाँ जब्त कर ली जाती थीं और इसके लिये दण्डित किया जाता था, लेकिन भारतवंशियोंने उसे कण्ठस्थ करके जीवित रखा। रातको ये भारतवंशी 'श्रीरामचरितमानस' का पाठ करते थे और जीवन-शक्ति प्राप्त करते थे। आजादीके बाद मारिशसमें रेडियो तथा टेलीविजनसे राम-कथापर नियमित चर्चा होती है और बैठकों तथा मन्दिरोंमें उसका पाठ होता है। फीजीमें भी ये 'गिरमिट' मजदूर बनाकर लाये गये भारतीय साथमें 'श्रीरामचरितमानस' लेकर आये। आरम्भमें राम-लीलाएँ होती थीं, लेकिन कालान्तरमें ये समाप्त हो गयीं। यहाँ दीपावली मनायी जाती है और यह लक्ष्मी-पूजाके साथ रामके अयोध्या-आगमनका भी प्रतीक है। सूरीनाममें १८७३ ई०को भारतीय मजदूर पहुँचे थे, जो गीता, रामायण, हनुमान-चालीसा, हदीश, सत्यार्थ-प्रकाशके साथ 'श्रीरामचरितमानस' भी साथमें लाये थे। यहाँके भारतीय मूलके परिवारोंमें रामायण अवश्य मिलेगी। रामनवमीके दिन डचमें भी रामपर विशेष कार्यक्रम होते हैं और रेडियो, टेलीविजन आदि इन्हें प्रसारित करते हैं। यहाँके भारतवंशी मानते हैं कि रामायणने ही उनके समाज, धर्म तथा संस्कृतिको जीवित रखा है। गुयानामें १८३८ ई०में भारतीय मजदूर पहुँचे और ये भी मानसको साथ लेकर आये थे। ये लोग रातको राम-कथा गाते थे, शनिवारको हनुमान्जीकी पूजा करते थे तथा रविवारको मन्दिरोंमें रामचरित सुनते थे। अब भी यह परम्परा विद्यमान है तथा लक्ष्मी-सभा, बाल-सभा, नवयुवक-सभा, रामायण, गोल, कीर्तन-मण्डली आदिमें राम-कथाका गान होता है। दक्षिण अफ्रीकामें भी राम-कथा इसी रूपमें आयी थी और वर्तमान कालमें प्रो० एस०आर० मिश्रने 'रामरसायन सनातन-धर्म संगठन' बनाया और अनेक रूपोंमें राम-कथाका प्रचार-प्रसार किया।

संकटापन्न हिमालय

(स्वामी श्रीविवेकानन्दजी सरस्वती, कुलाध्यक्ष)

समस्त राष्ट्रीय सुरक्षाकी उपेक्षाकर भारतकी वर्तमान केन्द्र सरकार एवं हिमालय क्षेत्रमें स्थित राज्योंकी सरकारें नगाधिराज हिमालयके विनाशके लिये कटिबद्ध हो चुकी हैं, जबकि हिमालयके विनाशका अर्थ है—सम्पूर्ण आर्यावर्त्तकी संस्कृति, सभ्यता, परम्परा एवं वहाँके जनसामान्यके जनजीवनका विनाश। भारत ही नहीं, अपितु विश्वके समस्त भूगर्भशास्त्रियों एवं मूर्धन्य पर्यावरणविदोंने अनावश्यक रूपसे हिमालयके साथ छेड़-छाड़ करनेको समस्त उत्तराखण्ड ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतके विनाशके लिये खुली चुनौतीके रूपमें स्वीकार किया है; क्योंकि हिमालय एक संवेदनशील पर्वत है। इसकी विशेषता, महत्ता एवं उपयोगिता विश्वके अन्य पर्वतोंसे अधिक है; क्योंकि इसपर अनेक जीवनदायी वृक्ष-वनस्पति, औषधियाँ तो प्राप्त होती ही हैं, जलका विशाल स्रोत भागीरथी गंगाके रूपमें भी हमें उपलब्ध होता है। यमुनाको छोड़कर उत्तराखण्डकी समस्त नदियोंका मिलन गंगामें उत्तराखण्डकी भूमिमें ही होता है। जो इतना संवेदनशील पर्वत हो, उसपर गंगा-जैसी नदीको रोककर अनेक बाँध बनाना तथा उसके समस्त प्राकृतिक मार्गोको अवरुद्धकर सुरंगमेंसे निकालना एक भयंकर विनाशकारी प्राकृतिक आपदाको निमन्त्रण देना ही है। सुरंगोंके निर्माणमें जितनी बारूद एवं विस्फोटक सामग्रीका प्रयोग होता है, उससे हिमालयपर रहनेवाले सामान्य जीव-जन्तुसे लेकर हिमालयके पुत्र मनुष्योंपर इतना विनाशकारी प्रभाव पड़ रहा है कि वहाँका पर्यावरण दूषित हो जायगा और जापानके नागाशाकी तथा हिरोशिमा-जैसी भयावह स्थिति उत्पन्न हो जायगी। ऐसी परिस्थितिमें पर्वतपुत्र हिमालयवासियोंको अपनी जन्मभूमिका परित्याग करनेके लिये या उसी दूषित वातावरणमें रहकर जीवन नष्ट करनेके लिये विवश होना पड़ेगा। हमारी सरकारें अपनी अदूरदर्शिताके कारण इस भयावह सत्यको न स्वयं समझती हैं और न जनताको समझने देती हैं। यह तो वैसी ही बात मालूम पड़ती है, जैसे कि कोई व्यक्ति सोनेके अण्डोंके लोभमें प्रतिदिन एक सोनेका अण्डा देनेवाली मुर्गीको मार डाले और मारनेके पश्चात् पछताये तथा अन्ततोगत्वा हाथ मलता रह जाय। गंगा-जैसी विशाल, सदा-नीरा, सतत प्रवहमान नदीको केवल तुच्छ लाभ (विद्युत्-उत्पादन)-के वशीभूत होकर प्रदेशवासियों एवं देशवासियोंको मिथ्या विकास दिखाकर (जो वास्तवमें विनाश है) सरकार उनसे छल कर रही है।

टिहरी बाँधकी योजनाकी पोल तो खुल चुकी है, जिसके सम्बन्धमें महान् लाभोंका स्वप्न दिखाकर स्थानीय जनता एवं प्रदेशवासियोंको धोखा दिया गया था। वैज्ञानिकोंके द्वारा इस बाँधके निर्माणकी योजनाको अस्वीकार किये जानेपर भी विदेशी ऋण प्राप्त करनेके लोभमें जब इसका निर्माण अपनी हठधर्मिताके कारण सरकारने प्रारम्भ किया, तब अनेक दूरदर्शी व्यक्तियोंने बाँध-निर्माणकी हानिको दर्शाते हुए अनेक लेख लिखे तथा वहाँ जाकर उस स्थलका निरीक्षण भी किया। वहाँके निवासियोंको क्रूरतापूर्वक उजाड़ दिया गया, बिना उनकी कुछ व्यवस्था किये दर-दर भटकनेके लिये उनको विवश किया गया तथा आजतक भी उन निर्वासित पर्वतपुत्र हिमालयवासियोंके पुनर्वासकी कोई समुचित व्यवस्था नहीं की गयी। बाँधकी चपेटमें आनेवाले भू-भागोंमें अनेक प्रकारकी दुर्लभ एवं दिव्य औषधियोंका विनाश तो हुआ ही, वहाँका पर्यावरण भी भयंकर रूपसे प्रभावित हुआ। स्थानीय लोगोंका तो कहना है कि टिहरी बाँधसे पहले तथा सुरंगोंमें गंगाको डालनेसे पूर्व यहाँ कोहरा नहीं पड़ता था। यहाँतक कि हम कोहरेके विषयमें अपरिचित-से थे। अब प्रातः ९-१० बजेतक और कभी-कभी तो सम्पूर्ण दिवस ही पश्चिमी उत्तरप्रदेश एवं पंजाब, हरियाणाकी भाँति यहाँ कोहरा पड़ता है। जहाँ प्रातःकाल जनवरी, फरवरीके महीनेमें भी सुन्दर सुहावनी धूप खिलती थी, वहीं अब दिनभर कोहरा छाया रहता है, जिससे वहाँकी वृक्ष-वनस्पतियाँ, जो टिहरी बाँधके जलागारमें नहीं आयी थीं अर्थात् उसकी सीमासे बच गयी थीं, वे भी दुष्प्रभावित हो रही हैं।

सरकारका दायित्व राष्ट्र एवं राष्ट्रीय जनताकी सुरक्षाका होता है, विश्वके किसी भी संविधानके द्वारा

किसी भी सरकारको वहाँके निवासियोंके ऊपर अत्यन्त नृशंस अत्याचार करनेका अधिकार नहीं है, परंतु विडम्बना है कि यह सब कुछ अकल्पनीय अत्याचार राजतन्त्रमें नहीं, अपितु विश्वके सबसे बड़े लोकतन्त्र कहे जानेवाले भारतमें हुआ और हो रहा है। अनेक वर्ष हो गये, जिस कुण्डको बरसाती जलसे भरनेकी योजना बतायी गयी एवं जनताको झूठा आश्वासन दिया गया, वह कुण्ड मार्च, अप्रैल, मईमें आश्वासनके विरुद्ध उस जलसे भरा जाने लगा, जिससे कृषक अपना खेत सींचते थे, उनके सामने समस्या हुई और हाहाकार मचा। सुना जाता है कि जितने जलसे वह टिहरी बाँधका विशाल सरोवर भरा जा सकता था, उससे अधिक जल उसमें आ चुका है, किंतु वह आज भी अपूर्ण है। विशेषज्ञों एवं प्रत्यक्षदर्शियोंके अनुसार जल दोनों ओरकी पहाड़ियोंके नीचे जा रहा है और अब तो पार्श्ववर्ती पहाड़ियाँ नीचे धँसने लगी हैं और उनमें दरार भी आ गयी है। ये सारे ही लक्षण हिमालयके विनाशकी सूचना दे रहे हैं, किंतु प्रजातान्त्रिक कही जानेवाली सरकारके कान पर जूँ भी रेंगती हुई दिखायी नहीं देती। सरकार दृष्टिहीन और मूक बनी हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी विदेशी षड्यन्त्रकी कठपुतली बनी हुई है; अन्यथा यह सब देखते, जानते हुए तो उसपर तत्काल प्रतिबन्ध लगा देना चाहिये था। जब उस भयानक कुकृत्यको रोकनेके लिये सरकारपर प्रभाव डाला जाता है, तो वहाँसे जो उत्तर आता है, वह किसी स्वस्थ मस्तिष्कका परिचायक नहीं होता। उस उत्तरको आप भी यदि पढ़ेंगे तो रोना और हँसना दोनों ही आपको आयेगा। वह उत्तर इस प्रकार है कि इस कार्यपर बहुत अधिक रुपया व्यय किया जा चुका है, इसलिये इसे अब रोकना उचित नहीं। इस मूर्खतापूर्ण उत्तरको सुनकर आश्चर्य तो होता ही है; साथ ही बौद्धिक दिवालियेपनका भी आभास होता है। इस अवसरपर सरकारसे यह पूछा जा सकता है कि कोई वस्तु आप अपने हितके लिये सेवनार्थ क्रय करके ले आयें; किंतु घर लानेके पश्चात् ज्ञात हुआ कि यह हमारे लिये पथ्यकारी नहीं, अपितु विनाशकारी है और वह एक प्रकारसे विष है, तो क्या आप उस वस्तुका सेवन अवश्य करेंगे, यह कहकर कि इसके खरीदनेमें बहुत पैसा लग चुका है? यदि नहीं, तो टिहरी बाँधपर बहुत पैसा व्यय हो चुका है, आपका यह तर्क सर्वथा निराधार और मूर्खतापूर्ण है। वास्तविकता यह है कि इस बाँध तथा अन्य बाँधोंके निर्माणकी योजना प्रकृतिके कोपको आमन्त्रित करनेवाली है। यह गंगाका विनाश अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होगा।

यही नहीं, इस प्रकारसे गंगाके विनाशके साथ ही उत्तराखण्ड एवं हिमालयका विनाशकर हिन्द महासागर एवं अरब सागरसे उठनेवाले मानसूनको रोककर समस्त उत्तर भारत, पूर्वोत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी प्रदेश; यहाँतक कि सम्पूर्ण भारतको मानसून-वृष्टिके द्वारा हरा-भरा बनानेवाले तथा जीवनप्रदाता हिमालयका विनाश करनेवाले लोग भयंकर राष्ट्रघातक कहे जा सकते हैं; क्योंकि हिमालयके विनाशसे भारतका पूर्ण भू-भाग मरुभूमिमें परिणत हो जायेगा। अपनी सन्तानोंके जीवनकी रक्षा एवं विश्व-पर्यावरणकी सुरक्षाके लिये हिमालयकी प्राणभूत गंगाका विनाश करना अक्षम्य अपराध है। भारतके सभी राष्ट्रभक्तों, मानवताके पुजारियों; विशेष करके उत्तराखण्डके निवासियों (हिमालयपुत्रों)-का यह दायित्व बनता है कि वे गंगाको प्राकृतिक रूपमें ही बहने दें तथा उस प्राकृतिक रूपमें प्रवहमान स्थितिमें जो कुछ अपना लाभ या विकास हो सकता है, उसे करें। गंगा बचेगी तो हिमालय बचेगा और हिमालय बचेगा तो भारत बचेगा। गंगाका विनाश हिमालयका विनाश है और हिमालयका विनाश आर्यावर्त्त राष्ट्रका विनाश है और तब हम यह कैसे कह पायेंगे कि हमारे देशकी उत्तर दिशामें पर्वतराज हिमालय है, जो पृथ्वीके मानदण्ड-सदृश है—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी विगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

(कु० सं० १।१)

अतः पृथ्वीके इस मानदण्डकी रक्षा करना हम-आप सभीका धर्म एवं पुण्यकर्म है।

'घन गरजत, मृदु दामिनि दमकत, रिमझिम बरसत बारी'

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

श्रावणमासका शुभागमन हुआ, आकाशमें कारे-कजरारे मेघ छा गये। बिजुरियाँ चमकने लगीं, बदरा गरजने लगे, रिमझिम-रिमझिम बरसती फुहारोंकी शीतलता शरीरको आनन्दित करने लगी। चम्पा-चमेली, मोगरा, बेला, मालती और पारिजातके पुष्पोंकी सुगन्ध अपने आँचलमें समेटे पुरवैया बयार धीरे-धीरे बहने लगी। कदम्बके वृक्षोंकी डालियोंपर बैठी कोकिलके कण्ठोंसे निकलती मधुर-मधुर गीतोंकी रसधारा, सरोवरोंमें अठखेलियाँ करती हुई सारसों और हंसोंकी जोड़ियाँ सबका मन हरने लगीं। दादुर, मोर और पपीहोंकी आवाजसे सारा व्रज क्षेत्र जीवन्त हो उठा।

ऐसे सुखद वातावरणमें ललिता सखी अपने भवनसे बाहर आकर सोचने लगी कि राधारानी तो कुंजवनमें पहुँच गयी होंगी। वह जानती थी कि श्रीकृष्ण अपनी वंशीके स्वरोंमें जब श्रीराधा नाम लेकर पुकारते हैं, उस ध्वनिको सुनकर वे तुरंत ही अपने प्रियतमके पास पहुँच जाती हैं। अब ललिताने विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा, सुदेवी, चम्पकलता, रंगदेवी और तुंगविद्या आदि समस्त सखियोंको बुला लिया। प्रातःकालके समय ये सखियाँ नित्य ही श्रीकृष्णके संग जलक्रीड़ाका सुख भोगने यमुनापर आया करती हैं। आजके सुहावने मौसमको और अधिक मधुर बनानेके लिये ये सखियाँ अपने वाद्य-यन्त्र भी साथ लायी हैं। कालिन्दीतटपर पहुँचकर जब उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण कदम्बके नीचे अकेले ही वंशी-वादन कर रहे हैं, वे समझ गयीं कि आज राधारानी उनके साथ नहीं हैं। ललिताजी तुरंत ही वृषभानु-भवन जा पहुँचीं, वहाँ जाकर देखा, श्रीराधा किसी सुखद स्वप्नमें खोयी हुई सो रही हैं। ललिताने उन्हें जगाया और कहने लगी—री सखी,

माधौ, तहाँ बुलाई राधे, जमुना निकट सुसीतल छहियाँ।
आछी नीकी कुसुँभी सारी गौरें, तन, चलि हरि पिय पहियाँ॥
दूती एक गई मोहिनि पै, जाइ कह्यौ यह प्यारी कहियाँ।
'सूरदास' सुनि चतुर राधिका, स्याम रैनि वृंदाबन महियाँ॥

अपनी सखीके मुखसे ऐसे प्रिय वचन सुनकर श्रीराधाने कुसुंभी रंगकी साड़ी धारणकर नखसे शिखतक शृंगार किया और चल पड़ी अपने प्रियतमसे मिलने। कुंज वनमें प्रवेशकर श्रीराधाने देखा,

कालिंदी-तट ठाढ़े नटवर।
कदँब-मूल मृदु बेनु बजावत, गावत मिलि सखियन सँग सुंदर॥
सिर सिखिपिच्छ मुकुटमनि-मंडित, अलकावलि अति लजवत मधुकर।
पीत बसन, बन-कुसुम-माल गल, कटि किंकिनि, पग बाजत नूपुर।
ढोलक-झाँझ-सितार-सरंगी मधुर बजावत सखीं लिऐं कर।
जल-खग बन-पंछी सब मोहित, गौ सब मुग्ध सुनत मृदु-मधु-सुर॥

(पद-रत्नाकर)

कदम्ब वृक्षकी छाँवमें खड़े श्रीकृष्ण वंशी-वादन कर रहे हैं, उपस्थित सभी सखियाँ विभिन्न वाद्य-यन्त्रोंसे सुसज्जित हैं। जैसे कोई नदी आतुर हो सागरमें विलीन हो जाती है, उसी प्रकार श्रीराधा भी अपने प्रियतमके अंकमें समा गयीं। इस दिव्य मिलनको देख सभी वाद्य-यन्त्र मुखरित हो उठे। ऐसे मनमोहक वातावरणमें इन सखियोंकी रास नृत्यकी इच्छा भी श्रीकृष्णने पूर्ण की। अब विश्रामकी दृष्टिसे प्रियाजीको संग ले मोहन एक निकुंजमें प्रवेश कर गये।

रिमझिम बरसती फुहारोंके बीच इन सखियोंने यमुना तटके निकटवर्ती कुंजमें कदम्ब वृक्षकी डारपर एक दिव्य झूलेका निर्माण कर दिया। सखियोंके आमन्त्रणपर श्रीराधा-माधव उस झूलेपर विराजमान हो गये। मेघ मल्हारके सुरों और ढोल-मृदंग आदिकी थापपर गीत गाती हुई सखियाँ युगलसरकारको झोंटे देने लगीं। इस लीलाका वर्णन करते हुए श्रीभाईजीने पद-रत्नाकरमें लिखा है—

झूलत सघन कुंज पिय-प्यारी।
घन गरजत, मृदु दामिनि दमकत, रिमझिम बरसत बारी॥
भींजत अंबर पीत, अलौकिक नील सुरंगी सारी।
मद भर मोर-मोरनी निरतत कूजत कोकिल सारी॥
गावत मधुरे सुर मल्हार मिलि सखिजन अरु पिय-प्यारी।
झोंटे देय झुलावत सखि ललितादिक बारी-बारी॥

चितवत स्यामा-स्याम परस्पर नित नव रस विस्तारी।
उमड़ि रह्यो आनंद सरस निधि सबहि जात बलिहारी॥

सघन वृक्षोंसे घिरे इस कुंजवनमें जिस समय प्रिया-प्रियतम झूल रहे थे, उस समय बादलोंकी गरजन और उनके पार्श्वसे दमकती बिजुरीके साथ रिमझिम-रिमझिम बरसती वर्षाकी बूँदोंसे भीगते युगलसरकार और सखियोंका मन-मयूर नाच उठा। श्रीराधा-माधवकी इस माधुरी लीलाके दर्शनोंसे अभिभूत हो सारा वनक्षेत्र जीवन्त हो उठा। कोयल कूकने लगी, मयूर नृत्य करने लगे, हिरनोंकी टोलियाँ कुलाँचे भरने लगीं। माधुर्य रससे ओत-प्रोत प्रिया-प्रियतम एक दूसरेकी ओर निहारते हुए सखियोंके मधुर गीतोंका आनन्द भोग रहे हैं। इस दिव्य आनन्दका सरस वर्णन श्रीभाईजीके शब्दोंमें—

हिंडोरें झूलत स्यामा-स्याम।
नव नट-नागर, नवल नागरी, सुंदर सुषमा-धाम॥
सावन मास घटा घन छाई, रिमझिम बरसत मेह।
दामिनि दमकत, चमकत गोरी, बढत नित्य नव नेह॥

× × × ×

हँसत-हँसावत रस बरसावत सखी-सहचरी-बृंद।
उमग्यौ आनँद-सिन्धु मगन भए दोऊ आनँद-कंद॥

जीवनचर्या—श्रीरामचरितमानसमें

(श्रीदेवेन्द्रजी शर्मा)

[गतांक संख्या ७ पृ०-सं० ७८३ से आगे]

उत्तरकाण्ड

श्रीरामचरितमानसमें उत्तर (अन्तिम) काण्डका आरम्भ श्रीभगवान्‌के वनवाससे लौटनेपर एक अद्वितीय पारिवारिक प्रेमके दर्शनसे होता है। श्रीभगवान्‌के द्वारा छोटोंका परिचय बड़ोंसे और बड़ोंका परिचय छोटोंसे करवानेकी अनुपम कलाके भी दर्शन होते हैं, जो निश्चित तौरपर जीवनचर्याका अंग बनानेयोग्य है। भगवान् श्रीराम कुलगुरु महर्षि वसिष्ठका परिचय लंकासे साथ आयी अपनी मित्रमण्डली (सुग्रीव-विभीषणादि)-से और इनका परिचय अपने गुरुदेवसे किस प्रकार करवाते हैं, आइये उसका दर्शन करें—

गुर बसिष्ट कुलपूज्य हमारे। इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे॥
ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥

(रा०च०मा० ७।८।६—८)

ध्यान देनेयोग्य बात है कि पूज्यका परिचय पूज्यके नातेसे और प्रियका परिचय प्रेमके नातेसे और साथ-ही-साथ दोनों ही पक्षोंको उच्च स्थान और उचित महत्त्व देते हुए करवाया जाता है। भगवान् श्रीराम सुग्रीव-विभीषणादि (जो अबतक परिवार और प्रजाजनसे श्रीभगवान्‌का प्रेमसे परिपूर्ण मिलन देखकर गद्‌गद हो रहे थे)-को सम्बोधित करके कहते हैं कि हे मित्रो! ये हमारे परम पूज्य कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ हैं और इन्हींकी कृपासे मैंने लंकाकी युद्धभूमिमें बड़े-बड़े राक्षसोंको मारा है। मानो धर्मरथमें उपदेशित ***'कवच अभेद बिप्र गुर पूजा'*** को भगवान् श्रीराम यहाँपर सिद्ध ही करना चाहते हैं। तदुपरान्त श्रीभगवान्‌का गुरुदेवके प्रति निवेदन आरम्भ हो जाता है और लंका-युद्धमें अपने प्राण दाँवपर लगानेवाले योद्धाओं/मित्रोंकी ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं कि—हे गुरुदेव! ये सब मेरे मित्र हैं और लंकाके समर-सागरमें ये सब मेरे लिये बेड़े (जलयान) बने थे। इन्होंने मेरे कार्यके लिये अपना जीवन ही मुझे अर्पित कर दिया। अतः ये सब मुझे भरतसे भी अधिक प्रिय हैं। इस प्रकार श्रीरामका गुरुदेवके प्रति पूर्ण आदर और मित्रोंके प्रति प्रगाढ़ प्रेमका दर्शन यहाँपर मिलता है, जो निश्चित तौरपर जीवनचर्याका अंग बनानेयोग्य है।

उत्तरकाण्डका अगला उद्धरण रामराज्यका है—जिसमें भगवान् श्रीरामकी एक राजाके रूपमें और साथ ही

समस्त प्रजाजनकी भी जीवनचर्याका दर्शन कुछ-एक पंक्तियोंमें कराया गया है—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥
सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी॥
एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

(रा०च०मा० ७। २०; ७। २१। २, ४, ७-८; ७। २२। ७-८)

भाव यह है कि राम-राज्यमें सभी प्रजाजन वेद-सम्मत अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार आचरण करते हैं और सुख पाते हैं। सब भय, शोक और रोगोंसे पूर्णतया मुक्त हो जाते हैं। सब परस्पर प्रेम करते हैं। सब उदार और परोपकारी हैं। सब नर-नारी विप्र-चरण-सेवक हैं। सब पुरुष एकनारी-व्रतमें रत और सभी नारियाँ मन-वचन-कर्मसे पति-हितकारी हैं। धर्म अपने चारों चरणोंसे पूरित है। सपनेमें भी सम्पूर्ण संसारमें अघ (पाप) दिखायी नहीं देता। एक आदर्श राजाके राज्यमें प्रजा भी आदर्शवादी हो जाती है। उन सबकी जीवनचर्या (आचरण) इतनी शुद्ध, पवित्र और निर्मल हो जाती है कि परिणामस्वरूप प्रकृति सम्पूर्ण सुख-सम्पदाओंकी वर्षा करती है। भगवान् श्रीरामके राज्यमें त्रेतायुग होते हुए भी सतयुगका प्रभाव प्रत्यक्ष दिखायी देने लगा। किसीको भी देव-कोपका भाजन नहीं बनना पड़ा और दैहिक-ताप यानी शारीरिक रोगोंका तो प्रश्न ही नहीं उठता। सब श्रीभगवान्‌की भक्तिमें रत होकर परम गतिके अधिकारी बन जाते हैं। ये है, सत्कर्मी राजा और प्रजाकी उचित जीवनचर्याके कारण परम सुखसे पूर्ण स्थिति।

जीवनचर्यामें क्या अकरणीय है, इस विषयमें श्रीभगवान् कहते हैं कि मानव-शरीर प्राप्त करके मनुष्यको न तो विषय-भोगोंमें लिप्त होना चाहिये और न ही उन कर्मोंको करना चाहिये, जिनका फल केवल स्वर्ग-प्राप्तितक सीमित है; क्योंकि स्वर्ग-भोगमें तो पुण्योंकी समाप्तिके बाद पुनः चौरासीके चक्करमें पड़ना पड़ता है—

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

(रा०च०मा० ७। ४४। १—३)

जीवनचर्याके करणीय पक्षको निरूपित करते हुए भगवान् श्रीराम प्रजाजनोंसे कहते हैं—

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥
पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा॥
औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥

(रा०च०मा० ७। ४५। १-२, ७-८; ७। ४५)

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥
बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा॥
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥
मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह।
ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह॥

(रा०च०मा० ७। ४६। १—८, ७। ४६)

श्रीभगवान् कहते हैं कि लोक-परलोक दोनोंमें सुख चाहनेके लिये सब लोग मेरे वचनोंको दृढ़तासे अपने-अपने हृदयमें धारण करें और उसे अपनी जीवनचर्यामें लायें। वेदों-पुराणोंमें वर्णित मेरी भक्ति ही भव-सागरसे सुखपूर्वक तरनेका एकमात्र उपाय है और यह सबको ही सुलभ भी है। मेरी अनन्य भक्ति स्वतन्त्र और सकल गुणोंकी खान है, परंतु यह सत्संगके माध्यमसे ही प्राप्त होती है। पुण्योंके उदय होनेपर संतोंका दर्शन मिलता है और सत्संग जन्म-

मृत्युके चक्करोंका अन्त करनेवाला है। संसारमें ब्राह्मणों (ब्रह्मज्ञों)-की पूजाके बराबर कोई पुण्य नहीं है और जो ऐसा करता है, उसपर सारे ऋषि-महर्षि और देवता प्रसन्न रहते हैं। यहाँपर श्रीभगवान् अपना एक गुप्त मत भी प्रकट करते हुए कहते हैं कि भगवान् श्रीशंकरजीके भजन बिना मेरी भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। अर्थात्—मेरी भक्ति प्राप्त करनेके लिये भगवान् शंकरका भजन अति आवश्यक है। ऐसा कहकर श्रीभगवान्ने हरि-हरमें ऐक्य (दोनोंके एक ही होने)-का प्रतिपादन किया है।

श्रीभगवान् आगे कहते हैं कि भक्तिमार्गमें योग, यज्ञ, जप, तप और उपवास-जैसे कठिन साधन नहीं करने पड़ते। मेरी भक्ति तो केवल मनकी कुटिलता त्यागकर सरल स्वभाव बनाने और यथालाभमें सन्तोष बरतनेसे ही हो जाती है। मेरा भक्त कहलाकर यदि कोई दूसरेसे आशा करे, तो फिर उसका विश्वास मेरे प्रति दृढ़ कैसे कहा जा सकता है? कोई किसीसे वैर, लड़ाई-झगड़ा न करे। न तो किसीसे आशा करे और न ही किसीसे भय करे। निष्काम होकर कर्म करना, घर-परिवारमें मोह-ममतासे रहित होकर अपने कर्तव्यका पालन करना, निष्पक्ष होना, अभिमानरहित होना, किसीके प्रति भी क्रोध न करना, ज्ञान-विज्ञानमें दक्ष होना, सत्संगमें प्रेम होना, विषय-भोगों और स्वर्ग-प्राप्तिके प्रति अरुचि होना। भक्ति पक्षको प्रधानता देना, दूसरोंका सम्मान करना, कुतर्कोंसे दूर रहना, मेरे नाम-जप और लीला-कथाओंके परायण रहना। ये सब वे आचरण हैं, जिनसे मैं स्वयं साधक/भक्तके वशमें हो जाता हूँ, ध्यान देनेयोग्य बात है कि श्रीभगवान् द्वारा अयोध्यावासियोंको दिया गया उपर्युक्त उपदेश मनुष्य-मात्रकी श्रेष्ठ जीवनचर्या ही तो है।

इसी काण्डमें आगे श्रीकाकभुशुण्डि और श्रीगरुड़जीके संवादमें श्रेष्ठ जीवनचर्याके कतिपय सूत्र प्राप्त होते हैं—

(१) *'बिनु गुर होइ कि ग्यान'*—अर्थात् ज्ञान चाहिये तो गुरु धारण करे।

(२) *'बिनु संतोष न काम नसाहीं'*—जीवनमें इच्छाओंको नियन्त्रित करनेके लिये सन्तोष करना सीखे।

(३) *'काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं'*—सन्तोषके बिना इच्छाएँ समाप्त नहीं होतीं और इच्छाओंके रहते जीवनमें सुख-शान्ति (विश्राम) कभी नहीं मिल सकता।

(४) *'राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा'*—इच्छाओंके शमनके लिये भगवद्-भजन करना परम आवश्यक है।

(५) *'बिनु बिग्यान कि समता आवइ'*—सम भावमें स्थित होनेके लिये गुरुसे प्राप्त ज्ञानको आचरणमें लाना चाहिये।

(६) *'बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा'*—अपने तनपर तेज लानेके लिये तप करना ही एकमात्र उपाय हैं।

(७) *'सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई'*—स्वभावमें शील (सौम्यता) लानेके लिये सन्तों, ब्रह्मज्ञों और विद्वज्जनोंकी सेवा करना परम आवश्यक है।

(८) *'निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा'*—आत्मिक सुखके बिना मन स्थिर नहीं हो सकता।

(९) *'कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा'*—बिना विश्वासके किसी भी कार्यमें सिद्धि/सफलता नहीं मिल सकती।

(१०) *'बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु। राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥'* अर्थात् बिना विश्वासके भक्ति नहीं हो सकती, जिसके बिना श्रीभगवत्कृपा नहीं मिल सकती और श्रीभगवान्की कृपाके बिना जीवका सपनेमें भी विश्राम (सुख-शान्ति) नहीं मिल सकती।

श्रीगोस्वामीजी श्रीरामचरितमानसमें मनुष्यके स्वार्थी होनेको भी सार्थक सिद्ध करते हैं—

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥

(रा०च०मा० ७। ९६। १)

बशर्ते कि मनुष्यका यह स्वार्थ मन-क्रम-वचन—तीनों प्रकारसे श्रीभगवान्के चरण-कमलोंमें विशुद्ध प्रीति करना हो। इस प्रकार इस श्रीरामचरितमानसरूपी सरोवरके उत्तरकाण्डरूपी घाटपर जीवनचर्यारूपी अनेक मुक्ताएँ बिखरी हैं, जिन्हें समेटकर मनुष्य अपने जीवनको धन्य एवं दैवीसम्पदासम्पन्न बना सकता है। [क्रमशः]

वर्षाऋतुमें आपका स्वास्थ्य

(आयुर्वेदाचार्य पं० श्रीरामनारायणजी शास्त्री)

यद्यपि हमारे देशमें छः ऋतुएँ प्रतिवर्ष आती-जाती हैं तथापि वर्षा, सर्दी और गरमी—इन तीन मौसमोंका हम प्रायः सभी स्थानोंपर सहज ही अनुभव करते रहते हैं। जब गर्मीकी ऋतुमें सूरजकी तीखी किरणोंसे तपी हुई धरती, वायु और आकाश प्राणियोंको बेचैन कर देते हैं तथा पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, वन-उपवन—सभी गरमीसे व्याकुल हो उदास-से दिखायी देने लगते हैं, तभी वर्षाका शुभागमन होता है। सूखे ताल-तलैया भरने लगते हैं और नदी-नद उफनने लगते हैं। इस रिमझिमके मौसममें नर-नारियों और सभी प्राणियोंके मनमें आनन्द उमड़ आता है। मेघोंकी गर्जना, बिजलीकी लुका-छिपी, वर्षाकी रिमझिम और आकाशका मनोहर रूप किस प्राणीको आनन्दविभोर नहीं कर देता?

इतना सुहावना मौसम होनेपर भी इसका आनन्द हम तभी पा सकते हैं, जब हम इस ऋतुके सम्बन्धमें जानकारी पाकर अपने स्वास्थ्यकी सँभालमें पूर्ण सावधानी रखें। यहाँ इसी विषयपर कुछ आवश्यक विचार प्रस्तुत हैं—

१-बरसातमें तपते हुए भूमण्डलपर सहसा पानी बरसने लगता है अर्थात् एक साथ बढ़ी हुई गरमीसे तपी धरतीपर अचानक शीतल जलका अभिषेक होने लगता है। इससे वही बात होती है जैसे जलती हुई आगपर कोई एकदम पानी उड़ेल दे। इस प्रकार धरतीके गर्भसे गर्म भाप निकलने लगती है, जो वातावरणको काफी प्रभावित करती है। बरसे हुए जलके साथ सिमटा हुआ कूड़ा-कचरा, कीड़े-मकोड़े आदि सभी हमारे जलाशयोंमें पहुँच जाते हैं, जिससे जल दूषित हो जाता है। इस तरह गर्म भापसे बोझिल हवा, बरसातसे मटमैला दूषित पानी और गीली एवं नमीयुक्त धरती—ये सब हमारे स्वास्थ्यपर विपरीत प्रभाव डालते हैं। इनसे यदि न बचें तो पाचन बिगड़ सकता है, ज्वर हो सकता है, पीलिया, अम्लपित्त आदि रोग हो सकते हैं, रक्त दूषित हो अनेक चर्मविकार हमें दुःख दे सकते हैं। इसी कारण विषूचिका अर्थात् हैजा, प्रवाहिका यानी पेचिश, विषमज्वर—मलेरिया आदि इस ऋतुमें बहुतायत-से होते देखे जाते हैं।

२-बादलोंसे घिरा आकाश हो या पानीकी रिमझिमका मधुर शब्द—कई लोग ऐसे समयमें देरतक सोनेमें आनन्दका अनुभव करते हैं। यह निश्चय ही हानिकर है। सूरज उगनेके समयसे एक घड़ी (ढाई घण्टा) पहले हमें अवश्य बिस्तर छोड़ देना चाहिये तथा शौच आदिसे निवृत्त हो तिल्ली या सरसोंके तेलकी मालिश कर हलका व्यायाम करना चाहिये।

३-वर्षामें वायुके विकार अधिक कष्ट देते हैं तथा अग्निबल क्षीण रहनेसे कफ तथा पित्त भी उपद्रव कर सकते हैं। इसलिये बिस्तरसे उठते ही एक गिलास उबले जलको ठंडाकर उसमें दो-तीन चम्मच नीबूका रस और तीन-चार चम्मच शहद डालकर सेवन करना अत्यन्त लाभकर है। इससे पेट साफ रहता है तथा पाचन शीघ्र बिगड़ता नहीं। जिन्हें नीबू अनुकूल न हों, वे पाँच लौंग पानीमें पीसकर और शहद मिलाकर ले सकते हैं।

४-जिन्हें वर्षाके दिनोंमें शरीरमें पीड़ा बनी रहती हो, उन्हें गर्मजलसे स्नान प्रारम्भ कर देना चाहिये। इसी प्रकार नम हवामें और वर्षामें भीगते हुए सोना कदापि हितकर नहीं है, विशेषतया बच्चोंको इनसे अवश्य बचाना चाहिये।

५-कलेवेमें गुड़से बनी लपसी, शहद, हरी मिर्च डालकर घीमें बनायी उपमा या नमकीन दलिया अथवा हरी मिर्च, नीबू और राईसे स्वादिष्ट बने पोहे खाकर ऊपरसे गर्म दूध या अन्य उष्ण पेय ले सकते हैं। जिस दिन बादल घिरे हों, पानी बरस रहा हो, झड़ी लग रही हो उस दिनका भोजन गर्म प्रकृतिका, हलका, लवण रसयुक्त तथा घृत-तेलसे सिद्ध किया हुआ विशेष अनुकूल रहता है। सामान्य रूपसे पुराना अन्न, पुराने चावल, मूँग, परवल, नीबू, हरी मिर्च, अनार, नारियल, चीनी आदिसे बने आहारका सेवन करना चाहिये। भोजनके साथ पुराने द्राक्षासवका सेवन भी लाभप्रद है।

६-जहाँ जलशोधनकी व्यवस्था नहीं है, वहाँ पीनेका पानी उबालकर ही उपयोगमें लेना चाहिये तथा तालाबके पानीका प्रयोग न कर कुएँका पानी पीनेके काममें लेना हितकर है। कदाचित् पानी गँदला हो तो उसे निर्मली

अथवा फिटकरी फेरकर साफ कर लेना चाहिये।

७-बरसातके दिनोंमें कीचड़, पानी, गर्म भाप आदिके कारण खुले पैर नहीं घूमना चाहिये। कपड़ोंको धूप दिखाते रहना चाहिये तथा पहनते समय झटककर पहनना चाहिये, जिससे कोई बरसाती कीड़ा छिपा न रह जाय। रातमें चारपाई बिछाकर तथा मच्छरदानी लगाकर सोना चाहिये। गूगुल, चन्दन, देवदारु, अगरु और कपूरकी धूप तैयारकर प्रातः-सायं घरोंको धूपित करना इस ऋतुमें बहुत लाभदायक है। इससे कृमि-कीटादिक दूर होकर वातावरण स्वच्छ और सुगन्धित हो जाता है। गहरी घासमें अथवा बगीचे या जंगलमें विचरण करते समय पूरी सावधानीसे चलना चाहिये। हाथमें छतरी या लकड़ी अवश्य रखें, इससे आप किसी भी जीव-जन्तुसे रक्षा पानेमें सहायता पायेंगे।

८-अपने देशमें इस मौसमका बहुत प्यारा तथा लोकप्रिय व्यायाम है—झूला झूलना। यह छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सभीके लिये मनोरंजक और लाभदायक है। हरे-भरे वन-उपवनमें मजबूत वृक्षकी शाखापर झूला बाँधकर स्वच्छन्द पेंग बढ़ाना कितना आनन्दप्रद है, यह वही बता सकता है जिसने यह आनन्द लिया है। झूला झूलना फेफड़ोंकी उत्तम कसरत है, साथ ही इससे मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं, रक्तशुद्धि होकर वर्णका रंग निखरता है, नेत्रोंकी ज्योति बढ़ती है, भूख बढ़ती है तथा पाचनक्रिया सुधरती है। इसके साथ ही इस व्यायामसे निर्भयता तथा मनमें उत्साह और प्रसन्नता उत्पन्न होती है। किंतु ध्यान रहे, गर्भवती स्त्रियाँ, बहुत दुर्बल व्यक्ति तथा रोगोंसे अभी-अभी स्वास्थ्यलाभ किये हुए व्यक्तियोंको यह व्यायाम नहीं करना चाहिये।

९-वर्षाऋतुमें पाचनकी गड़बड़ीका अनुभव होते ही सौंफका अर्क, पेपरमेण्टका अर्क, अजवायनका अर्क और कपूरका अर्क मिलाकर या पृथक् रूपसे सेवन करना चाहिये। नीबू, पोदीना और हरी मिर्च इस मौसममें अवश्य उपयोगमें लेते रहना चाहिये। इस ऋतुमें पाचन बिगड़कर अथवा जलवायुके दोषसे पेचिश पैदा होते देर नहीं लगती। पेचिशमें बारंबार शौचके साथ आँव और अक्सर खून भी आने लगता है तथा पेटमें ऐंठन या मरोड़ हो-होकर शौच जानेकी शंका बनी रहती है। प्रायः ज्वर भी हो जाता है तथा इसकी सँभाल न करें तो आँतोंमें चिरकारी सूजन और घाव हो जाते हैं। इसलिये पेचिशसे बचनेके लिये आहारपर अधिक ध्यान देना चाहिये। सड़ा-गला बासी भोजन, बाजारमें खुले बर्तनोंमें बिकनेवाले खानेके पदार्थ या वे फल जिनपर मक्खियाँ बैठा करती हैं, तले हुए चटपटे पदार्थोंका अतिसेवन तथा गंदे जलाशयोंका पानी पीना—ये सभी पेचिशको उत्पन्न कर सकते हैं। पेचिश होते ही अन्य भोजन बन्दकर ताजी छाछ, साबूदाना या दही-खिचड़ीका आहार लेना चाहिये तथा पिसी हुई सौंफमें मिसरी मिलाकर या बेलगिरीके चूर्णमें ईसबगोलकी भूसी मिलाकर पाँच-पाँच ग्रामकी मात्रामें छाछसे या सौंफके अर्कसे लेना प्रारम्भ कर देना चाहिये। फिर तुरंत योग्य चिकित्सकको बताकर उसकी सम्मतिके अनुसार व्यवस्था करनी चाहिये। सोंठ, सौंफ और मिसरी—समान भाग चूर्णकर भोजनके बाद चार-चार ग्रामकी मात्रामें जलके साथ लेनेसे पाचन नहीं बिगड़ने पाता।

१०-कभी-कभी पेचिशके सम्बन्धमें बताये गये कारणोंसे ही हैजा भी प्रारम्भ हो जाता है। इसलिये ज्यों ही किसी व्यक्तिको उल्टी-दस्त, ठंडा पसीना आना, हाथ-पैरोंमें ऐंठन, आँखें धँसी-सी लगना, पेशाब बन्द होना आदि लक्षण दिखायी दें तो तुरंत उसे चिकित्सालयमें पहुँचा देना चाहिये।

११-इस ऋतुमें मच्छरों और नमीयुक्त वातावरणके दोषोंसे मलेरिया बुखार भी हो जाता है, अतः इसका भी योग्य उपचार प्रारम्भ कर देना आवश्यक है। तुलसीकी चाय, बेलपत्र दूधमें उबालकर या अदरक और बड़ी इलायचीकी चाय—ये तीनों पेय बरसातके विकारोंसे बचाकर रखनेमें बड़े ही उपयोगी हैं।

१२-जिन-जिन स्थानोंपर अधिक कीचड़ रहता हो या कूड़ा-कचरा जमा होकर सड़ता हो या पालतू जानवरोंके कारण गंदगी रहती हो—उन सभीको साफ और कम-से-कम गीला रखनेका सदैव प्रयत्न करें तो हम आस-पासकी गंदगीसे होनेवाले रोगोंसे बच सकते हैं।

इस तरह सावधानी रखते हुए दिनचर्या, आहार-विहार आदिका पूरा ध्यान रखें तो इस सुन्दर मौसममें हम अपने स्वास्थ्यको अच्छा रख सकेंगे तथा इस ऋतुका पूरा आनन्द भी ले सकेंगे। [प्रे०—श्रीमहेशचन्द्रजी शास्त्री]

वृद्धावस्थामें सुखी कैसे रहें ?

(श्रीरमेशचन्द्रजी बादल, एम०ए०, बी०एड०)

संसारमें प्रत्येक व्यक्ति सुखी रहना चाहता है और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। दुःखों और कष्टोंका जीवन कोई नहीं चाहता। यद्यपि यह सत्य है कि इस संसारमें जिसने भी जन्म लिया है, उसे सुख और दुःख—दोनोंका मिला-जुला जीवन जीना पड़ता है। सुख-दुःख जीवनमें आते रहते हैं, सुख तो सभी भोग लेते हैं, किंतु दुःख धीर ही सहते हैं। तात्पर्य यही है कि प्रत्येक मनुष्यको अपने जीवनमें सुख और दुःख दोनोंको भोगना आवश्यक होता है। मनुष्यके जीवनकी चार अवस्थाओंमें अन्तिम अवस्था वृद्धावस्था ही मुख्य रूपसे विशेष कष्टप्रद होती है। इसीलिये लोग वृद्धावस्थाको भी एक बीमारी मानते हैं। इस अवस्थामें शरीरके सभी अंग शिथिल हो जाते हैं। शरीर कमजोर हो जानेपर अनेक रोगोंका भी आक्रमण होने लगता है और फिर मनुष्योंको दूसरोंके सहारे ही शेष जीवन गुजारनेके लिये बाध्य होना पड़ता है। बुढ़ापा कष्टदायी अनुभव होने लगता है। वृद्धावस्थाके शारीरिक कष्टोंको भोगते समय यदि परिवारके लोगोंकी उपेक्षा भी सहन करनी पड़े और इसके साथ यदि वह आर्थिक दृष्टिसे भी लाचार हो तो फिर उसे मानसिक क्लेश भी होता है, जो शारीरिक कष्टोंसे भी अधिक हो जाता है।

वृद्धावस्थाके शारीरिक और मानसिक कष्टोंसे बचनेके लिये प्रत्येक मनुष्यको पूर्वसे ही सावधान हो जाना चाहिये ताकि बुढ़ापेको अधिक दुःखदायी होनेसे बचाया जा सके।

विदुरनीतिमें कहा गया है—**'पूर्वे वयसि तत् कुर्याद येन वृद्धः सुखं वसेत्।'** अर्थात् पहली अवस्थामें वह काम करे, जिससे वृद्धावस्थामें सुखपूर्वक रह सके। तात्पर्य यही है कि प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वृद्धावस्थाके पूर्व ही उसके लिये मानसिक रूपसे तैयार रहे और आर्थिक दृष्टिसे कुछ बचत सुरक्षित रूपसे रखे ताकि उसे अपनी प्रतिदिनकी आवश्यकताओंके लिये किसीके सामने हाथ फैलानेकी जरूरत न पड़े। वृद्धावस्थाके लिये दो बातें अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, पहली बात तो यही है कि शरीरको यथासम्भव निरोग रखनेके उपाय करते रहना चाहिये, जैसे—प्रातःभ्रमण, योगाभ्यास आदि और दूसरी बात आर्थिक रूपसे कुछ बचत सुरक्षित रखना आवश्यक है। ये दो सुख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, कहा गया है—

पहला सुख निरोगी काया। दूजा सुख जब घर में हो माया॥

वृद्धावस्थाको सुखी बनानेके लिये इस शिक्षाको ग्रहण करना अच्छा होगा—जरूरतसे ज्यादा मत बोलिये। बिना माँगे बहू-बेटेको सलाह मत दीजिये। साठ सालकी उम्र हो जाय तो अधिकारका सुख छोड़ दीजिये। तिजोरीकी चाबी भी बेटेको दे दीजिये। मगर हाँ अपने लिये इतना जरूर बचा लेना चाहिये कि कलको किसीके सामने हाथ न फैलाना पड़े।

वृद्धावस्थामें शारीरिक रूपसे स्वस्थ रहनेके लिये कुछ उपयोगी सूत्र इस प्रकार हैं—

रहे निरोगी जो कम खाय।
बात न बिगरे जो गम खाय॥

अर्थात् कम खानेवाला शारीरिक रूपसे हमेशा निरोग रहेगा और गम खानेवाला सहनशील (सहन करनेवाला) सदैव लड़ाई-झगड़ोंसे बचा रहेगा। ये दोनों बातें प्रत्येक व्यक्तिके लिये आवश्यक हैं।

आचार्य चरकने भी हितकारी आहार-विहार करनेकी शिक्षा दी है। ऐसे व्यक्ति ३६ हजार रात्रि-दिन अर्थात् १०० वर्षोंतक जीवित रहते हैं। यथासम्भव भोजन सुपाच्य हो, शाकाहारी हो, तरल पदार्थ (दूध-मट्ठा आदि) तथा फल भी रहें। अधिक नमक-चिकनाईसे परहेज करें।

शारीरिक शक्तिके अनुसार प्रातःकालीन भ्रमण-व्यायाम, योगाभ्यास करनेसे शरीर स्वस्थ रहेगा। रीढ़की हड्डी सदैव सीधा रखनेका ध्यान रखें।

प्रतिदिनकी दिनचर्या इस प्रकार रखिये कि व्यस्तता बनी रहे। शरीरको उपयोगी कार्योंमें व्यस्त रखिये। अतः अपनी रुचिके अनुसार कार्य करें। यथा—बागवानी, धार्मिक पुस्तकोंका अध्ययन, लेखन, कलात्मक कार्य, पेंटिंग, चित्रकारी, सत्संग, समाजसेवाके कार्योंमें भाग लेना आदि। व्यस्त रहनेसे और शारीरिक श्रमसे आपको अच्छी भूख लगेगी, निद्रा भी ठीक रहेगी और अनावश्यक चिन्ताओंसे मुक्ति भी मिलेगी; क्योंकि खाली दिमाग रहनेसे चिन्ताएँ होने लगती हैं।

यदि लोहा भी एक ही स्थानपर पड़ा रहे तो उसमें जंग लग जायगी और कमजोर हो जायगा। इसी प्रकार यदि मनुष्य भी निष्क्रिय रहेगा तो वह भी अनेक रोगोंसे ग्रस्त हो जायगा। उचित यही है कि शरीरको सक्रिय रखा जाय, शरीरके सभी अंगोंका व्यायाम होता रहे तो शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा। जीवनका नाम ही गति है। निष्क्रियताको मृत्युके समान कहा गया है।

आयुर्वेदके महान् आचार्य वाग्भटसे अश्विनीकुमारोंने पूछा—निरोगी कौन ? उत्तरमें कहा गया—हितभुक्-मितभुक् अर्थात् जो हितकारी उपयोगी पदार्थ ग्रहण करता है और कम खाता है—वही निरोगी होता है।

आस्ट्रेलियाके सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ० हर्नने कहा है कि लोग जितना खाते हैं, उसका एक तिहाई भी पचा नहीं पाते। सर विलियम टेम्पिलने अपनी किताब लांग लाइफमें भी मिताहारपर बहुत जोर दिया है और कहा है—यदि अधिक जीना हो तो अपनी खुराकको घटाकर उतनी ही रखें, जितनेसे पेटको बराबर हल्कापन महसूस होता रहे। मिताहारको हर युगमें श्रेष्ठ कहा गया है।

वृद्धावस्थामें शारीरिक कष्टोंसे अधिक मानसिक कष्ट दुःखदायी होते हैं। शारीरिक व्याधियों-कष्टोंकी चिकित्सा मिल भी सकती है, परंतु मानसिक कष्टोंकी औषधि किसी चिकित्सकके पास मिलना असम्भव है। अतः शरीर भले ही बूढ़ा हो जाय, परंतु मन जवानोंकी तरह जोशीला और उत्साही रखना चाहिये। निराशाका भाव, क्रोध, चिन्ता, शोक-सन्ताप और अशान्ति उत्पन्न करनेवाले विचारोंसे दूर रहना ही हितकर है।

प्रायः मानसिक अशान्तिका एक कारण अपेक्षा होता है। बेटों-बहुओंसे अनेक प्रकारकी अपेक्षाएँ होना स्वाभाविक तो है, परंतु उचित यही होगा कि हम अपेक्षा न करें, उनसे किसी प्रकारकी चाहना न करें; क्योंकि चाहनाकी पूर्ति न होनेपर ही तो मानसिक क्लेश होगा। चाहना छोड़कर यह विश्वास रखना चाहिये कि प्रारब्धमें जो होगा—वह मिलेगा ही।

वृद्धजनोंको समय और परिस्थितिके अनुसार अपनी सोचको बदलना चाहिये। पूर्वाग्रहको छोड़ना ही श्रेष्ठ है। जिन परिवारोंमें बुजुर्ग समयके अनुसार अपनी विचारधारामें परिवर्तन कर लेते हैं, वहाँ वृद्धजनोंको पर्याप्त सम्मान मिलता है।

यथासम्भव माया, मोह, ममतासे मुक्त रहकर चिन्तामुक्त जीवन व्यतीत करें। चिन्ताके समान कोई व्याधि नहीं, चिन्तासे मनमें अशान्ति और बेचैनी रहेगी। चिन्तासे बचनेके लिये अपने-आपको सदैव व्यस्त रखना ही बुद्धिमत्ता है।

मित्र बनें और मित्रता करें—इस सूत्रका पालन करें। जीवनमें सच्चे मित्रका होना अत्यन्त आवश्यक है। सुख-दुःखकी चर्चा मित्रसे ही की जा सकती है। मित्रसे खुलकर बातें करनेसे तनाव दूर होता है, मनको शान्ति मिलती है।

सदैव प्रसन्न रहें। खूब हँसें और दूसरोंको भी हँसाएँ—इसमें आपका कुछ भी तो खर्च नहीं होता। आपको मानसिक शान्ति मिलेगी। तनाव दूर होगा। आपके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यमें भी आश्चर्यजनक सुधार होगा।

इच्छाओंको कम करना तो प्रत्येक व्यक्तिके लिये अच्छा होता है। सन्तोष धारण करना चाहिये। सन्तोषी व्यक्ति सदैव सुखी रहता है।

यदि आप परिवारके साथ रहते हैं तो आप अपनेको भाग्यशाली समझें। केवल एक बातका ध्यान रखें—बेटों-बहुओंकी आलोचना-निन्दा बिलकुल न करें। बच्चोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक रहनेका सुख कम नहीं होता। पारिवारिक कार्योंमें सहायक बनें। हाँ, एक बातका और ध्यान रखें—क्रोध कभी न करें और सहनशील बनें। कमाऊ व्यक्तिका क्रोध परिवारके सदस्य सहन भी कर लेते हैं, परंतु अब आप कमाऊ नहीं हैं, इसलिये आपका क्रोध कोई क्यों सहन करेगा ? क्रोध करना तो किसी प्रकार भी उचित नहीं माना जाता।

अवसर विशेषपर यदि परिवारके सदस्य आपको कोई उपहार देते हैं अथवा किसी प्रकारकी सहायता करनेके लिये कहते हैं तो उसे निःसंकोच स्वीकार कीजिये, इससे देनेवालेको आनन्दकी अनुभूति होगी।

अतीतकी अप्रिय घटनाओं अथवा दुःखद क्षणोंको भूलना प्रत्येक व्यक्तिके लिये अच्छा होता है। बीती हुई दुःखद बातोंको मनमें गाँठ बाँधकर रखना स्वास्थ्यके लिये घातक हो सकता है। कहा गया है—***बीती ताहि बिसारि***

दे, आगे की सुधि लेय।

यदि बेटा-बहू महत्त्वपूर्ण समस्याओंपर निर्णय लेते समय आपसे परामर्श लेनेकी आवश्यकता न समझें तो आप बुरा न मानें। हो सकता है वे आपको चिन्तामें न डालना चाह रहे हों। यदि वे मन्दिर, पार्क आदि स्थानोंपर जाते समय आपको साथ चलनेके लिये नहीं भी कहते हैं तो भी बुरा न मानें। यदि महत्त्वपूर्ण पर्वों, अवसरोंपर वे आपके चरणस्पर्श करने एवं आशीर्वाद लेनेमें भूल करते हों तो भी आप बुरा न मानें। यदि कभी आपको अप्रिय, कटु एवं व्यंग्यात्मक वाणी भी सुननेको मिले तो उसपर भी ध्यान न दीजिये, बल्कि उस स्थानको छोड़ एकान्तमें जाकर प्रभुका जप करें। यदि आपको समयपर जलपान उपलब्ध न हो सके अथवा भोजन भी आपकी रुचि और स्वास्थ्यके प्रतिकूल हो तो भी कुछ न कहिये, उसे प्रभुका प्रसाद समझकर प्रसन्नताके साथ ग्रहण कीजिये। उक्त अवसरोंपर अपनी सहनशीलताकी शक्तिका परिचय दीजिये। उक्त सभी सुझावोंपर ध्यान देना उचित ही होगा।

वृद्धावस्थामें अकेले रहनेकी गलती न कीजियेगा। अकेला रहनेवाला व्यक्ति तनावपूर्ण जीवन जीता है, वह अनेक बीमारियोंका शिकार बन जाता है, सुरक्षाकी दृष्टिसे भी अकेला रहना ठीक नहीं है।

अन्तमें परमात्माकी शरणमें जाना ही सर्वोत्तम होता है। ईश्वर जो कुछ करता है, वह आपके कल्याणके लिये ही होता है। हमेशा यही सोचना चाहिये कि जो कुछ घटित हुआ है अथवा हो रहा है उसमें ईश्वरका विधान है, ऐसा माननेसे मन चिन्ता, तनाव और असन्तोषसे मुक्त रहेगा। भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं कहा है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८।६६)

अर्थात् समस्त प्रकारके धर्मों और कर्तव्योंको मुझमें त्यागकर मेरी शरणमें आओ। मैं समस्त पापोंसे तुम्हारा उद्धार कर दूँगा। डरो मत। ईश्वरकी शरणमें जानेसे वे स्वयं ही रक्षा करेंगे।

गोपियोंका उलाहना

(श्रीसनातनकुमारजी वाजपेयी 'सनातन')

क्यों वेध रहे मनमोहन, नयनों के तीर चलाकर।
क्यों खेल रचाते हम से, दधि, माखन, क्षीर चुराकर॥
अलकनि की लटक तुम्हारी, ये सुघर कपोल तुम्हारे।
पैजनि की रुनझुन-रुनझुन, अमृत से बोल तुम्हारे॥
बिनु मोल बिकानी मोहन, हम सारी पीर भुलाकर।
बैरिन वंशी प्रिय तुमको, ले उसको रास रचाते॥
मोहित करते हो मन को, मिलने की आस जगाते।
फिर लुका-छिपी करते हो, जमुना के तीर बुलाकर॥
हम मारी मारी फिरतीं, कंकड़ काँटों युत वन में।
तुम इतने निष्ठुर मोहन, सकुचाते तनिक न मन में॥
हम तुमको टेर लगातीं, नयनों में नीर सजाकर।
यह लुका-छिपी अब छोड़ो, आओ हम रास रचायें॥
अधरामृत तनिक पिला दो, हम जिय की प्यास बुझायें।
जी सकतीं क्षणिक न तुम बिनु, व्याकुल हैं धीर गँवाकर॥
हम दासी शरण तुम्हारी, चरणों में हमें सँभालो।
हम त्याग चुकीं इस जग को, मत मन से हमें निकालो॥
उद्धार 'सनातन' कर दो, सारी भव-भीर मिटाकर॥

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवान्‌में सब कुछ मौजूद है

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपने लिखा, कुछ साल पहले हम कामान्ध हो गये थे, उससे शरीर बहुत क्षीण हो गया है और स्मृति बिलकुल नष्ट हो गयी है ....आदि। यह कटु अनुभव आपको प्रत्यक्ष हुआ, जिसके लिये शास्त्र युगोंसे सावधान करते आ रहे हैं। पर इतने कटु अनुभवके बाद भी आपका मन विषय-चिन्तनकी ओरसे हटना नहीं चाहता, एकाग्र नहीं होता—यही है कामकी दुर्जय शक्ति और यही है भुवनमोहिनी मायाकी विचित्र लीला। आजसे हजारों वर्ष पूर्व महाराज ययातिने भी ऐसा ही अनुभव प्राप्त किया था। वे विषयभोगसे विषय-तृष्णाका दमन करना चाहते थे। जीवनमें यह प्रयोग करके उन्होंने देखा, किंतु अन्तमें निराशा ही हाथ लगी। वे इस परिणामपर पहुँचे कि विषयोंका उपभोग विषयेच्छारूपी अग्निको प्रज्वलित करनेमें घीका काम करता है। इस अनुभवके बाद वे उधरसे हट गये। शेष जीवन उन्होंने भगवान्‌की आराधनामें बिताया। इससे वे परम कल्याणके भागी हुए। आपको भी मैं यही सलाह दूँगा। भगवान्‌के प्रति अपने मनमें आकर्षण पैदा कीजिये। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द—ये सभी विषय अनन्त और दिव्यातिदिव्य रूपमें भगवान्‌में मौजूद हैं। आप अपने मनसे कहिये, वह भगवान्‌की ओर लगे, उन्हींका चिन्तन करे। वहाँ एक ही जगह उसे सब कुछ मिल जायगा। सब कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी। आजकलका समय देखते हुए तो यही मार्ग निरापद जान पड़ता है।

आप चाहते हैं वीर्यकी ऊर्ध्वगति हो, आपके मनमें ऊर्ध्वरेता बननेकी साध है; किंतु आप समयपर चूक गये हैं। योगसाधनका सबसे बड़ा सहारा है—ब्रह्मचर्य—वीर्यका संरक्षण। किंतु उसीपर आपने तुषारपात कर दिया है। पता नहीं, आपकी अवस्था अब क्या है और आपने जीवनका कितना समय कामान्धतामें बर्बाद किया है। यह जाननेपर ही कोई उपयोगी सलाह दी जा सकती थी। ऊपर जो परामर्श दिया गया है, वह सबके लिये सभी अवस्थाओंमें परम मंगलदायक है। भगवान् कहते हैं, पहलेका कितना ही दुराचारी क्यों न हो, जो अनन्यभाक् होकर भजन करता है, वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि उसने उत्तम निश्चय कर लिया है। अब उसके राहपर आनेमें—धर्मात्मा बननेमें देर नहीं है—

'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा।'

योगविद्या और कुण्डलिनी-शक्तिको जगानेकी विधि मुझे मालूम नहीं है। न मैं किसी अनुभवी योगी अथवा प्रामाणिक योगाश्रमका ही पता जानता हूँ। अतः इस विषयमें आपको कोई राय नहीं दे सकता। आप संसारमें रहकर निवृत्तिमय जीवन बिताना चाहते हैं तो भगवान्‌की शरण ग्रहण कीजिये। यही मंगलमय और निष्कण्टक मार्ग है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

अवतार-रहस्य

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। कृपा-पत्र मिला। आपके प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार हैं—

जो अवतारवादको नहीं मानते, वे यह दलील देते हैं कि शरीर धारण करनेसे ईश्वर एकदेशीय हो जाता है। पर वस्तुतः यह कथन ठीक नहीं है। एकदेशित्वकी कल्पना जड़ देहमें होती है। भगवान्‌का स्वरूप चिन्मय है। वे ज्ञानमय प्रकाशके पुंज हैं। उनका शरीर, उनके आयुध-आभूषण सभी दिव्य एवं चिन्मय हैं। वे साकार होकर भी निराकार हैं और निराकार होकर भी साकार हैं। अतएव वे एक देशमें दिखायी देते हुए भी सर्वदेशी तथा सर्वव्यापी हैं। यही भगवान्‌की विशेषता है कि उनमें सब प्रकारके विरोधी गुणोंका तथा भावोंका समन्वय होता है।

यद्यपि भगवान्‌के सदृश व्यापक दूसरी कोई वस्तु

नहीं, जिसका दृष्टान्त उपस्थित किया जाय तथापि अवतारवादको कुछ हदतक समझनेके लिये अग्निका दृष्टान्त दिया जाता है। अग्नि परमाणुरूपसे सर्वत्र व्यापक है। काष्ठ आदि सभी वस्तुओंमें उसकी सत्ता है। इस प्रकारसे निराकार रूपसे सर्वत्र व्याप्त अग्नितत्त्व एक ही है तो भी वह दियासलाई आदिकी सहायतासे अनेक स्थानोंपर या एक स्थानपर साकाररूपमें प्रकट होता है। इस प्रकार एक देशमें प्रकट होकर भी वह अन्यत्र नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार भगवान् भी एक देशमें साकाररूपसे प्रकट होकर भी निराकाररूपसे अन्यत्र सब स्थानोंमें विद्यमान हैं। अग्निकी दो शक्तियाँ हैं—दाहिका शक्ति और प्रकाशिका शक्ति। अग्निका प्राकट्य जहाँ कहीं भी होता है, वहाँ ये दोनों शक्तियाँ पूर्णरूपसे विद्यमान रहती हैं। इसी प्रकार भगवान् सर्वव्यापी परमात्मा जहाँ भी प्रकट होते हैं, अपनी सम्पूर्ण शक्ति साथ लेकर ही प्रकट होते हैं। अतः भगवान्‌के अवतार-विग्रहमें एकदेशीय या अल्पशक्ति होनेका दोष नहीं आ सकता। जैसे प्रकट अग्नि और अप्रकट अग्नि एक ही है, उसी प्रकार साकार और निराकार एक ही तत्त्व है, इसमें कोई पार्थक्य नहीं है, अतएव साकार विग्रह भी सर्वव्यापी ही है।

ईश्वर सर्वत्र है, अतः वह अपने लिये ऐसा नियम कभी नहीं बनाता, जिसे कभी तोड़नेकी आवश्यकता पड़े। वह आविर्भाव और तिरोभावकी शक्तिसे युक्त है, अतः अवतार-ग्रहण उसके लिये नियमविरुद्ध नहीं है। वेदोंमें भी कहा है—

स एव जातः स जनिष्यमाणः।

वह प्रकट है और वह भविष्यमें भी प्रकट होगा। गीता कहती है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

(४।६)

मैं अजन्मा, अविनाशी और समस्त प्राणियोंका ईश्वर होकर भी अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ। यही तो ईश्वरकी सर्वशक्तिमत्ता है। शेष भगवत्कृपा!

(३)

माता-पिताका अपमान

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला, धन्यवाद। आपने पूछा है, माता-पिताको कटु शब्द कहनेवालेका तथा माता-पिताका अनादर करने और उन्हें गंदी गालियाँ देनेवालेका कौन-सा प्रायश्चित्त करनेसे पाप धुल सकता है? प्रश्न पढ़कर प्रसन्नता भी हुई और खेद भी। प्रसन्नता इसलिये कि आज भी ऐसे लोग मौजूद हैं, जो पिता-माताके महत्त्वको समझकर उनके प्रति अपने द्वारा होनेवाले अपराधोंका प्रायश्चित्त करना चाहते हैं। खेदकी बात यह है कि अब ऐसा बुरा समय आ गया कि लोग पिता-माताके प्रति भी कटु शब्द कहते समय संकोच नहीं करते। उन्हें गालियाँ देते समय उनकी वाणी कुण्ठित नहीं होती और उनका अपमान करके भी वे पश्चात्तापकी आगमें जल नहीं जाते।

एक समय वह था, जब पिताकी आज्ञा दूसरेके मुखसे सुनकर भी भारतीय युवक बड़े-से-बड़े साम्राज्यको भी लात मारकर जंगलमें निकल जाते थे। माता-पिताको कन्धोंपर बिठाकर तीर्थ कराते और उनको भगवान् समझकर नित्य-निरन्तर उनकी सेवा, उनकी आराधनामें संलग्न रहते थे। पुराणोंमें कथा आती है, इस देशके चाण्डाल और व्याध आदि भी केवल माता-पिताकी सेवा करके उस उत्तम सिद्धिको प्राप्त हो गये हैं, जिसे आजीवन कठोर तपस्या करके भी प्राप्त करना कठिन है।

शास्त्रोंमें माता-पिताको उपाध्याय और आचार्यसे भी ऊँचा स्थान दिया गया है। भगवान् मनु कहते हैं—पिता प्रजापतिका स्वरूप है तथा माता पृथ्वीकी प्रतिमूर्ति है। मनुष्य कष्टमें पड़नेपर भी कभी इनका अपमान न करे। माता और पिता पुत्रजन्मके लिये जो क्लेश उठाते हैं, उसके पालन-पोषणमें जो कष्ट सहन करते हैं, उसका बदला वह सैकड़ों वर्षोंतक उनकी सेवा करके भी नहीं चुका सकता। जिसने माता-पिता और आचार्यको प्रसन्न

कर लिया, उसकी सम्पूर्ण तपस्या पूरी हो गयी। उनकी सेवा ही सबसे बड़ी तपस्या है। उनकी अनुमतिके बिना कितने ही बड़े दूसरे धर्मका अनुष्ठान क्यों न किया जाय, वह सफल नहीं होता। माताकी भक्तिसे इहलोकको, पिताकी भक्तिके मध्यम लोकको और गुरुभक्तिसे ब्रह्मलोकको मनुष्य जीत लेता है। जिसने इनका आदर किया, उसके द्वारा सब धर्मोंका आदर हो गया। जिसने इनको अपमानित किया, उसके समस्त शुभ कर्म निष्फल हो जाते हैं। पुत्रके लिये माता-पिताकी सेवा ही परम धर्म है और सभी धर्म उसके लिये उपधर्म हैं। जो गुरुजनोंको हुंकार, त्वंकार आदिके द्वारा अर्थात् उनको डाँट-डपटकर 'रे-तू' आदि कहकर अपमानित करता है, वह निर्जन वनमें प्रेत होता है।

इस प्रकार शास्त्रोंमें माता-पिताकी महिमा गायी गयी है, उनकी सेवाका माहात्म्य बताया गया है और उनके तिरस्कारसे घोर पापकी प्राप्ति दर्शायी गयी है। यह तो हुई शास्त्रकी बात, लोकदृष्टिसे विचार किया जाय तो मनुष्यके लिये माता-पितासे बढ़कर उपकारी और हितैषी कौन हो सकता है? उनका अपमान करनेपर किस अभागे पुत्रको ग्लानि नहीं होती होगी?

आप इसका प्रायश्चित्त जानना चाहते हैं, किंतु क्या बताया जाय! माता-पिताके उपकारोंसे मनुष्यका रोम-रोम दबा हुआ है। उनके विपरीत आचरण करना भारी कृतघ्नता और विश्वासघात है। कृतघ्न और विश्वासघातीके लिये कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है। वह इतना भयंकर पाप है कि प्रायश्चित्तसे शान्त नहीं होता। इस पापके प्रतीकारके दो ही उपाय हैं—अपनी भूलोंके लिये सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप हो और माता-पिताकी ओरसे क्षमा मिल जाय। क्षमा जबरदस्ती नहीं, उन्हें सेवासे प्रसन्न करके प्राप्त की जा सकती है। जब पुत्र पिता-माताकी इतनी सेवा-शुश्रूषा करे, जिससे उनका रोम-रोम उसके लिये आशीर्वाद दे और उनके अन्तःकरणमें पुत्रके लिये स्वभावतः ही मंगलकामना होती रहे तो उस पुत्रका जन्म सार्थक मानना चाहिये। यों तो माता-पिता स्वभावसे ही पुत्रकी भलाई चाहते, करते और विचारते हैं; परंतु पुत्र तभी उनके ऋणसे मुक्त होता है, जब सेवा और आज्ञा-पालनसे उन्हें निरन्तर सन्तुष्ट रखे। शास्त्रोंका वचन है—

जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्।
गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता॥

पिताके जीते-जी उनकी प्रत्येक आज्ञा पालन करे, उनकी मृत्यु हो जानेपर प्रतिवर्ष मृत्युतिथिपर एकोद्दिष्ट करके ब्राह्मणोंको पूर्णतया भोजनसे तृप्त करे और गयामें पिण्डदान दे—इन तीन बातोंसे पुत्रका पुत्रत्व सार्थक होता है।

किसी भी पापके लिये पश्चात्तापकी आगमें जलना उत्तम प्रायश्चित्त है। कियेपर पछतावा हो, आगे वैसा कर्म न करनेका दृढ़ संकल्प हो और भगवान्की प्रार्थना की जाय, उनकी शरणमें जाकर उन्हींकी प्रसन्नताके लिये सत्कर्मका अनुष्ठान किया जाय तो सभी पाप भस्म होते हैं। भगवान्के नामका जप पापोंका अमोघ प्रायश्चित्त है।

मनुजीने एक जगह लिखा है—

हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारं च गरीयसः।
स्नात्वाऽनश्नन्नहः शेषमभिवाद्य प्रसादयेत्॥

(मनुस्मृति ११। २०४)

अर्थात् जो ब्राह्मणको डाँट बताये, गुरुजनोंको 'तू' कहकर अपमानित करे, उसके लिये यह प्रायश्चित्त है, वह स्नान करके उस दिन उपवास करे और उन गुरुजनोंके चरणोंमें पड़कर अपने अपराधके लिये उनसे क्षमा माँगे।

माता-पिताको गाली देना तो इससे बड़ा अपराध है। अतः इसके लिये भी यही उचित है कि अपराधके अनुसार दो-एक दिन उपवास किया जाय। माता-पिताके चरणोंपर पड़कर किये हुए अपराधके लिये क्षमा माँगी जाय और भविष्यमें फिर कभी ऐसी धृष्टता न करनेका दृढ़ संकल्प लेकर सदा अपनी सेवाओंसे माता-पिताको सन्तुष्ट रखा जाय। साथ ही भगवन्नाम-जप और भगवत्प्रार्थना भी चलती रहे। शेष भगवत्कृपा!

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६७, शक १९३२, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रात: ७। १८ बजेतक	मंगल	श्रावण दिनमें ११। ७ बजेतक	२७ जुलाई	कुम्भराशि रात्रिमें १२। २४ बजेसे, **अशून्यशयनव्रत चन्द्रोदय** रात्रिमें ७। २९ बजे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें १२। २४ बजेसे।
द्वितीया दिनमें ९। १२ बजेतक	बुध	धनिष्ठा ,, १। ४० बजेतक	२८ ,,	भद्रा रात्रिमें १०। १३ बजेसे।
तृतीया ,, ११। १५ बजेतक	गुरु	शतभिषा सायं ४। १८ बजेतक	२९ ,,	भद्रा दिनमें ११। १५ बजेतक, **श्रीगणेशचतुर्थीव्रत चन्द्रोदय** ८। ३१ बजे।
चतुर्थी ,, १। १३ बजेतक	शुक्र	पूर्वाभाद्रपद ,, ६। ५० बजेतक	३० ,,	मीनराशि दिनमें १२। १२ बजेसे।
पंचमी ,, २। ५८ बजेतक	शनि	उत्तराभाद्रपद रात्रिमें ९। ८ बजेतक	३१ ,,	**नागपंचमी (बंगाल)**, मूल रात्रिमें ९। ८ बजेसे।
षष्ठी सायं ४। २२ बजेतक	रवि	रेवती ,, ११। ४ बजेतक	१ अगस्त	भद्रा सायं ४। २२ बजेसे रात्रिशेष ४। ५० बजेतक, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ११। ४ बजे, मेषराशि रात्रिमें ११। ४ बजे।
सप्तमी ,, ५। २० बजेतक	सोम	अश्विनी ,, १२। ३५ बजेतक	२ ,,	**श्रीशीतलासप्तमी (उड़ीसा)**, मूल समाप्त रात्रिमें १२। ३५ बजे, **श्रावण सोमवारव्रत।**
अष्टमी ,, ५। ४९ बजेतक	मंगल	भरणी ,, १। ३४ बजेतक	३ ,,	**श्लेषा नक्षत्रमें सूर्य** रात्रिमें ८। २६ बजे।
नवमी ,, ५। ४६ बजेतक	बुध	कृत्तिका ,, २। २ बजेतक	४ ,,	वृषराशि प्रात: ७। ४२ बजे।
दशमी ,, ५। १३ बजेतक	गुरु	रोहिणी ,, २। २ बजेतक	५ ,,	भद्रा प्रात: ५। ३० बजेसे सायं ५। १३ बजेतक।
एकादशी ,, ४। १२ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा ,, १। ३५ बजेतक	६ ,,	मिथुनराशि दिनमें १। ४९ बजेसे, **कामदा एकादशीव्रत (सबका)**
द्वादशी दिनमें २। ४५ बजेतक	शनि	आर्द्रा ,, १२। ४७ बजेतक	७ ,,	**शनिप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, १२। ५९ बजेतक	रवि	पुनर्वसु ,, ११। ३९ बजेतक	८ ,,	भद्रा दिनमें १२। ५९ बजे रात्रिसे ११। ५६ बजेतक, **कर्कराशि** सायं ५। ५६ बजे, **मासशिवरात्रिव्रत।**
चतुर्दशी ,, १०। ५५ बजेतक	सोम	पुष्य ,, १०। १५ बजेतक	९ ,,	**श्रावण सोमवारव्रत, श्राद्धकी अमावस्या,** मूल रात्रिमें १०। १५ बजेसे।
अमावस्या ,, ८। ३८ बजेतक	मंगल	श्लेषा ,, ८। ४१ बजेतक	१० ,,	सिंहराशि रात्रिमें ८। ४१ बजेसे, **स्नान-दानादिकी भौमवती अमावस्या।**

सं० २०६७, शक १९३२, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रात: ६। १४ बजेतक द्वितीया रात्रिशेष ३। ४४ बजेतक	बुध	मघा रात्रिमें ७। २ बजेतक	११ अगस्त	**चन्द्रदर्शन, धर्मसम्राट् स्वामी करपात्रि जयन्ती,** मूल समाप्त रात्रिमें ७। २ बजे।
तृतीया रात्रिमें १। १८ बजेतक	गुरु	पूर्वा फाल्गुनी सायं ५। २२ बजेतक	१२ ,,	कन्याराशि रात्रिमें १०। ५८ बजेसे, **स्वर्णगौरीव्रत, मधुश्रवा** (मिथिला-गुजरात)।
चतुर्थी ,, १०। ५८ बजेतक	शुक्र	उत्तरा फाल्गुनी दिनमें ३। ४६ बजेतक	१३ ,,	भद्रा दिनमें १२। ९ बजेसे रात्रिमें १०। ५८ बजेतक, **श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, ८। ४९ बजेतक	शनि	हस्त ,, २। २१ बजेतक	१४ ,,	तुलाराशि रात्रिमें १। ४४ बजेसे, **नागपंचमी, तक्षकपूजा।**
षष्ठी सायं ६। ५४ बजेतक	रवि	चित्रा ,, १। ८ बजेतक	१५ ,,	**स्वतंत्रतादिवस।**
सप्तमी ,, ५। २० बजेतक	सोम	स्वाती ,, १२। १७ बजेतक	१६ ,,	**श्रावण सोमवारव्रत, गोस्वामी तुलसीदास जयन्ती,** भद्रा सायं ४। ५५ से रात्रि ४। ३२ बजेतक।
अष्टमी ,, ४। १० बजेतक	मंगल	विशाखा ,, ११। ४५ बजेतक	१७ ,,	वृश्चिकराशि प्रात: ५। ५३ बजेसे, **संक्रान्ति मघा एवं सिंहमें सूर्य** रात्रि ७। १४ बजे।
नवमी दिनमें ३। २५ बजेतक	बुध	अनुराधा ,, ११। ३९ बजेतक	१८ ,,	**सौरभाद्रपदमासारम्भ,** मूल दिनमें ११। ३९ बजेसे।
दशमी ,, ३। १० बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा ,, १२। १ बजेतक	१९ ,,	भद्रा रात्रिमें ३। १७ बजेसे, धनुराशि दिनमें १२। २ बजेसे।
एकादशी ,, ३। २६ बजेतक	शुक्र	मूल ,, १२। ५६ बजेतक	२० ,,	भद्रा दिनमें ३। २६ बजेतक, **पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका) झूलन यात्रा प्रारम्भ,** मूल दिनमें १२। ५६ बजेतक।
द्वादशी सायं ४। १४ बजेतक	शनि	पूर्वाषाढ़ ,, २। १९ बजेतक	२१ ,,	मकरराशि रात्रिमें ८। ४६ बजेसे, **शनि प्रदोषव्रत, श्रीविष्णुपवित्रारोपण।**
त्रयोदशी ,, ५। २९ बजेतक	रवि	उत्तराषाढ़ सायं ४। ११ बजेतक	२२ ,,	**शिवपवित्रारोपण।**
चतुर्दशी रात्रिमें ७। ७ बजेतक	सोम	श्रवण ,, ६। २४ बजेतक	२३ ,,	भद्रा रात्रिमें ७। ७ बजेसे, **श्रावण सोमवारव्रत।**
पूर्णिमा ,, ९। २ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा रात्रिमें ८। ५४ बजेतक	२४ ,,	भद्रा दिनमें ८। ५ बजेतक, **कुम्भराशि** प्रात: ७। ३९ बजेसे, **पंचकारम्भ** प्रात: ७। ३९ बजेसे, **झूलनयात्रा समाप्त, स्नान-दान-व्रतादिकी पूर्णिमा, रक्षाबन्धन, संस्कृत दिवस, ऋग्वेदियोंका उपाकर्म श्रावणीकर्म (यज्ञोपवीतपूजन)।**

कृपानुभूति

हनुमान्‌जीकी कृपा

मेरे इष्टदेव, मेरे पूज्य हनुमान्‌जी मेरे कुलदेवता हैं। उनकी कृपाकी अनेक अनुभूतियोंके बीच प्रस्तुत दो घटनाएँ तो कभी मस्तिष्क-पटलसे उतरती ही नहीं और बरबस शब्द निकलते हैं *'तुम सन तात उरिन मैं नाहीं।'* घटनाएँ इस प्रकार हैं—

(१)

प्रथम घटना सन् १९७५ ई० के अगस्त माहकी है। उस समय मैं आयुध निर्माणी, देहरादूनमें सेवारत था। मेरा पुत्र नालन्दा एकेडमी नामक विद्यालयमें नर्सरीमें पढ़ता था। उसके रास्तेमें रिसपना नामक पहाड़ी नदी पड़ती थी। मेरे फैक्टरी जानेके बाद पत्नी उसे नदी पार स्कूलमें छोड़ आती थी और छुट्टी होनेपर लिवा लाती। बरसातमें नदीमें पानी आ जाता है और पहाड़से आनेके कारण उसका वेग अति भयानक हो जाता है। एक दिन पत्नी बच्चेको सुबह स्कूल छोड़ आयी, किंतु जब वापस लेकर आने लगी तो रास्तेमें तेज वर्षा होने लगी, नदीका बढ़ा हुआ जलस्तर और वेग देखकर वह घबरा गयी। आस-पास कोई नहीं, अन्य कोई रास्ता नहीं। नदी पार कुछ ग्वाले रहते थे, जो हमारे परिचित थे। सो बच्चेने 'भवानी दादा-भवानी दादा' आवाज देनी चालू की, किंतु बच्चेकी आवाज तेज बारिश एवं पथरीली नदीके दहला देनेवाले शोरमें गुम हो गयी। जलस्तर देखते-देखते बढ़ रहा था। पत्नीने निराश होकर हनुमान्‌जीसे प्रार्थना की और वह बच्चेको पकड़कर साहस बटोरकर धीरे-धीरे नदीमें पैर बढ़ाने लगी। अभी दस-बारह कदम ही चली होंगी कि तेज धारमें दोनों गिर गये। रिसपनाने कभी किसीको लड़खड़ा जानेके बाद जीवित नहीं छोड़ा। हर बरसातमें दस-बीस जानें जानी ही हैं। फिर पत्नीने जोरसे पुकारा 'हे हनुमान्‌जी! रक्षा करो।' अचानक नदीके बहावकी दिशासे एक लम्बे-से श्वेत वस्त्रधारी वृद्धने, जो स्वयं भी कृशगात थे, आकर हाथ पकड़ लिया और बोले—'अरे बेटी! सम्हलके, घबराना नहीं' कहते हुए दोनोंकी बाँह थाम ली और धीरे-धीरे नदी पार करा दी। पत्नीने उन्हें धन्यवाद दिया और बच्चेसे पैर छुआकर उनसे घर चलनेका अति विनम्र आग्रह किया तो वे एक मर्म वाक्य बोले, 'बेटी! मेरा काम हो गया, अब फिर जब कभी बुलाओगी, तब आऊँगा।' उस समय पत्नीने इस मर्मको नहीं समझा। आशीर्वाद देकर परमपुरुष विपरीत दिशामें नदीकी ओर चल पड़े। चन्द पलों बाद पत्नीके पुनः पीछे मुड़कर देखनेतक वे अदृश्य हो चुके थे। आजतक उनका मर्म वाक्य बार-बार बुलानेको, बुलाते रहनेको प्रेरित करता रहता है। हर पल हर कठिनाईमें उनकी कृपाकी अनुभूति होती है।

(२)

दूसरी घटना २० अक्टूबर सन् २००० ई० की है। मैंने अपनी पुत्रवधूको प्रसव-पीड़ा होनेपर प्रातः ५ बजे कानपुरके आनन्दपुरी स्थित एक नर्सिंग होममें भर्ती कराया। डॉक्टरने जाँच करनेके बाद तमाम सारी दवाएँ, काटन-कपड़ा, सिरिंज, ग्लूकोज आदि अपने ही मेडिकल स्टोरसे मुझसे मँगवाया और थोड़ी देर प्रतीक्षा करनेको कहकर वे चली गयीं। थोड़ी देर बाद आकर बोलीं—बच्चा उलटा है, ऑपरेशन करना पड़ेगा, दस हजार रुपये और खूनका बन्दोबस्त करो। मेरे एवं मेरी पत्नीके तो मानो प्राण सूख गये। मेरी बहू काफी कमजोर थी। वह भी रोने लगी 'हाय मम्मीजी! मैं ऑपरेशन नहीं करवाऊँगी, मुझे बचा लो।' अभीतक उसका दर्द भी बन्द हो गया था। दिनभर थोड़ी-थोड़ी देरमें डॉक्टर बोलती 'पैसा लाये, फिर गड़बड़ हो जाय तो मेरी कोई जिम्मेदारी नहीं' आदि। इस बीच बहूको कोई भी औषधि या दर्दका इंजेक्शन कुछ भी नहीं दिया। इधर हम दोनों पति-पत्नी बहूकी स्थिति देख बेचैनीसे गैलरीमें इधर-से-उधर घूम रहे थे, बार-बार पत्नी बहूको देख आतीं। इस बीच हम दोनों पति-पत्नी मन-ही-मन हनुमान्‌जीका ध्यान करके हनुमान-चालीसाका पाठ करते रहे तथा हनुमान्‌जीसे अपने मनकी व्यथा कहते रहे। शाम ५ बजे डॉक्टरने फाइनल बोल दिया कि पैसा जमा करो या बहूको मारना है क्या? उसके शब्द तीरकी भाँति चुभे। मरता क्या न करता, मैं घर आया पैसा एवं अन्य सामान लेकर बेमनसे चल तो पड़ा, लेकिन मनमें पक्का निश्चय कर लिया कि यदि बहू अभी ऑपरेशनके लिये नहीं गयी होगी तो छुट्टी करवाकर अन्यत्र ले जाऊँगा।

इधर प्रभुकी गदा घूमी, कार्यवाही चालू। अचानक नर्सिंग होमकी नर्स जिसे डिलीवरी करवानी थी, बाहर आयी और इशारेसे मेरी पत्नीको गैलरीमें बुलाकर बोली—आन्टी, यह डॉक्टर बदमाशी कर रही है, आपका केस बिलकुल नार्मल है, ये पैसेके चक्करमें ऑपरेशनकी जिद कर रही है। आप तुरंत छुट्टी करा लो और साकेत-नगरमें स्थित नर्सिंग होममें ले जाओ; मेरा भाई वहाँ है, मैं उसे फोन कर दूँगी, वह सारी व्यवस्था कर देगा। इधर बहूका बड़ा भाई भी पहुँच गया और मेरे पहुँचनेके पहले ही पत्नीने छुट्टी करवा ली। मेरे पहुँचते ही उसे लेकर हम नर्सके बताये नर्सिंग होम पहुँच गये। नर्सका भाई प्रतीक्षा कर रहा था, उसने सारी व्यवस्था कर दी। जाँच करके डॉक्टरने बताया—कोई घबरानेकी बात नहीं, नार्मल केस है—डेढ़-दो घण्टेमें डिलीवरी हो जायगी और वही हुआ। रातके ११ बजे बहूने एक सुन्दर-से पुत्रको जन्म दिया। दोनों पूर्णतया स्वस्थ थे। सब प्रसन्न थे किंतु मेरी तथा मेरी पत्नीकी आँखें अपने इष्टदेवकी कृपाका अनुभवकर कृतज्ञताके आँसू गिराये जा रही थीं कि— *'तुम सन तात उरिन मैं नाहीं।'*—गिरिजाशंकर दीक्षित 'शील'

पढ़ो, समझो और करो

(१)

अपरिचित महिलाकी परदुःखकातरता

मैं अपने मित्रके साथ भतीजीकी शादीके लिये पूना गया था। शादी पूनामें करनी थी, इसलिये वहाँ ४-५ दिनका मुकाम था। जगह तय करना, मण्डप, डेकोरेटर, खाना वगैरह सभी चीजोंकी तैयारी करनी थी। पूनामें सारसबागके गणेशजी बहुत प्रसिद्ध हैं, सोचा गणेशजीके दर्शनकर कामकी शुरुआत की जाय। पर हम काममें इतने व्यस्त थे कि दर्शन करने न जा सके। मेरे मित्रके चिरंजीव जो पूनामें पढ़ते हैं, हम उनके छात्रावास पहुँचे। वहाँ पूछताछ करनेपर पता चला कि छुट्टियोंमें विवाह आदिके आयोजनके लिये वे लोग जगह देते हैं। सौभाग्यसे उस दिन वहाँ एक शादी थी, हमलोग वहीं रुककर प्रधानाचार्यजीके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे। कुछ देरमें ही प्रधानाचार्यजी आ गये। हमने उनसे मिलकर विवाहके स्थानके लिये बात की। उन्होंने अगले दिन आनेके लिये कहा। हमलोग वहाँसे विवाह-सम्बन्धी अन्य कार्यके लिये चल पड़े। थोड़ी देर पश्चात् बिजली चली गयी। उस समय इतना अँधेरा हो गया कि एक कदम भी बढ़ाना मुश्किल था। किसी प्रकार हम दोनों ऑटो रिक्शामें बैठे। एकाएक मेरा मित्र चिल्लाया—'हे भगवान्! ये क्या हो गया। मेरी जेबमें जो ५० हजार रुपये थे, वे नहीं हैं।' हमने तुरंत ऑटो रिक्शावालेसे वापस छात्रावास चलनेको कहा और मन-ही-मन गणेशभगवान्से प्रार्थना करने लगे कि हे भगवान्! किसी भी प्रकार वह रुपया मिल जाय, नहीं तो विवाह किस प्रकार होगा? रुपयेके मिल जानेपर मैं सर्वप्रथम आपके दर्शन करूँगा। इतनेमें हम छात्रावास पहुँच गये, वहाँ विवाहका जमघट लगा था, उस स्थितिको देखकर रुपये मिलनेकी आशा जाती रही; पर गणेशजीकी हमपर कृपा हो गयी। हुआ यों कि वहाँ पहुँचनेपर हमलोग इधर-उधर देख रहे थे कि कहींसे वह रुपया दिख जाय, पर कुछ नजर नहीं आया। इतनेमें एक देवीजी जिनका नाम सौ० गांधी था, उन्होंने मुझसे पूछा कि आप क्या ढूँढ़ रहे हो? मैंने कहा मेरे कुछ रुपये गुम हो गये हैं, उनको ढूँढ़ रहा हूँ। उस बहनने पूछा कितने रुपये थे। मुझे कहनेमें झिझक हो रही थी कि इतने रुपये कैसे बतायें। उन्होंने पूछा बताओ वे कितने रुपये थे? मैंने एकाएक कह दिया ५० हजार थे। वे मेरी ओर देखती रह गयीं। फिर हमारे दुःख और परेशानीको देखकर वे कहने लगीं—रुपये आपके मिल जायँगे, पर एक वादा करो। तब मुझे लगा वह बहनजी कहेंगी कि कुछ रुपये दान दो या और कुछ खर्च करो। मैंने कहा आप जो चाहती हैं, वह हम करेंगे। उस देवीने कहा—मेरे यहाँ शादी है और आपको भोजन करना होगा। भोजनोपरान्त ही आपके पैसे आपको लौटायेंगे। मैंने मित्रको आवाज लगायी और कहा—गणेशजीकी कृपा हो गयी है, हमारे रुपये मिल गये हैं। तदनन्तर उन बहनजीने हमें बिठाकर खाना खिलाया। खाना खानेके बाद हमें हमारे पूरे पैसे लौटा दिये और पूछा कुछ कमी तो नहीं है, देख लो। फिर उन्होंने हमसे अपनी कहानी सुनायी। उन्होंने बताया कि मेरे भतीजेकी शादी है, मैं एक होटलमें ठहरी हूँ। मेरे रूमकी चाभी यहीं कहीं खो गयी है, सबेरेसे उसे ढूँढ़ रही हूँ, मिली नहीं। आप तकदीरवाले हैं कि आपके रुपये गुम होकर मिल गये हैं। उन अपरिचित देवीने हमारी आवभगतमें कुछ भी कसर नहीं छोड़ी, हम तो यही मानते हैं कि सारसबागके गणेशजीने ही हमें देवीरूपमें दर्शन दिये। इसके बाद तुरन्त ही हमलोग गणेश-दर्शनहेतु सारसबाग गये और भगवान्के दर्शनकर उन्हें एक छोटी-सी भेंट चढ़ायी। धन्य है प्रभुकी लीला, जो आज भी सौ० गांधी-जैसी ईमानदार और परदुःखकातर महिलाएँ हमारे बीच हैं, जो स्वयं परेशानीमें रहते हुए भी दूसरेके कष्ट-निवारणको प्राथमिकता देती हैं। धन्य हैं सौ० गांधी और धन्य है उनकी परदुःखकातरता।—**वृजेश धून**

(२)

दयानिधि! तेरी गति लखि न परै

घटना इस प्रकार है। भगवान् श्रीकृष्णकी जन्म तथा लीलाभूमि—मथुरा, वृन्दावन देखनेकी लालसा मेरे मनमें कई दिनोंसे जग रही थी। प्रभुकृपासे सन् १९७२ ई० के भाद्रपदमें यह अवसर मिल गया और मैंने झाँसीसे मथुरा-वृन्दावनके लिये प्रस्थान कर दिया। मेरी यात्रा आनन्दोत्साहपूर्वक रही। मथुरा पहुँचकर मैंने श्रीकृष्णका जन्मस्थान देखा तथा निकटमें श्रीकेशवदेवजीके मन्दिरमें भगवान्के दर्शन किये। तत्पश्चात् बसद्वारा वृन्दावन-धाम गया। मैं यहाँ प्रथम बार ही गया था, इसलिये मेरे लिये सब कुछ नया-नया ही था। बससे उतरकर सर्वप्रथम बाँकेबिहारीजीके मन्दिरमें जा करके दर्शनोंकी इच्छा हुई; किंतु मैं वहाँके दर्शनीय स्थानोंसे अनभिज्ञ था और सोच

रहा था कि किस रास्तेसे जाऊँ? इतनेमें एक यात्री बससे उतरे। अवस्था करीब ६० वर्षके लगभग रही होगी। वे मुझसे पूर्ण अपरिचित थे। न जाने वे किस प्रकार मेरा मन्तव्य जानकर बोले—'चलो, बाँकेबिहारी चलें। मैं भी चल रहा हूँ। मैं भी आपहीकी तरह पहली बार ही आया हूँ।'

यद्यपि वे वृद्ध व्यक्ति पहली बार वृन्दावन आये थे, फिर भी वे मेरे आगे-आगे चलकर रास्ता बता रहे थे। रास्तेमें मैं किसी पथिकसे बाँकेबिहारीजीके मन्दिरका रास्ता पूछता था तो मेरे अग्रगामी बुड्ढे बाबा कहते—'चले आओ, मेरे पीछे-पीछे; इधर ही रास्ता है।' इस प्रकार हम साथ-साथ बाँकेबिहारीजीके मन्दिरमें पहुँच गये और दर्शन किये तथा भोग-प्रसाद लेकर मैं उन्हीं बुड्ढे बाबाके पीछे-पीछे मन्दिरसे बाहर आया। हम दोनोंका केवल दस कदमका ही अन्तर रहा होगा। बाहर आकर देखा तो उन वृद्ध सज्जनका कहीं कोई पता ही न था। काफी ढूँढ़ा, लोगोंसे पूछा; किंतु कोई पता न चला, हारकर शान्त रह गया। मैं आश्चर्यचकित था। मनमें सहसा प्रश्न उठा और अब भी मनमें प्रश्न उठता रहता है कि 'वे बुड्ढे बाबा कौन थे?' क्या मेरी दर्शनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये, मन्दिरका रास्ता दिखानेके लिये स्वयं वृन्दावनबिहारी—श्रीबाँकेबिहारीजी ही कहीं दयापरवश होकर उन वृद्धके रूपमें तो नहीं पधारे थे! उन लीलाधारीके लिये यह असम्भव ही क्या है? उन दयानिधिकी लीलाको कौन जान सकता है? सच ही कहा है—*'दयानिधि! तेरी गति लखि न परै।'*—**वैद्य दाऊलालजी 'व्यास'**

(३)

ईमानदारीकी मिसाल

घटना १८ मार्च, सन् २०१० ई० की है। हमने कस्बेके त्रिवेणी क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकमें कुछ रकम जमा करनेके लिये भेजी। यह रकम हमारे संस्थानके विधिक परामर्शी महोदय लेकर गये। उन्होंने जमा पर्ची भरी, पर्चीके पीछे नोटोंकी संख्या लिखी, पर धोखेसे ५० हजार रकम बिना जमा पर्चीमें भरे कैशियरको दे दी। कैशियरने रकमको जमा कर लिया। रकम कम जमा हुई या पासबुकमें कम चढ़ी—इसका ध्यान न तो हमें रहा और न विधिक परामर्शी महोदयको।

शाम ७ बजे जब बैंकमें खातों और रकमका मिलान किया जा रहा था, उस समय कैशियरको अहसास हुआ कि ५० हजार रुपयेकी रकम बढ़ रही है। उन्होंने हमें मोबाइलपर कॉल किया और पूछा कि डॉ० साहब! आपने रकम कितनी भेजी थी? मैंने कहा—क्यों? उन्होंने कहा कि रकम बढ़ रही है। मैंने कहा— कितनी? उन्होंने कहा कि अब आप बतायें।

मैंने कहा कितनी बढ़ रही है, क्या पाँच सौ या एक हजार? उन्होंने कहा कि नहीं पचास हजार। यह सुनते ही हमारे होश उड़ गये। जल्दबाजीमें और इस परिस्थितिमें हम भी निश्चयात्मक रूपसे उत्तर नहीं दे पा रहे थे कि ये पचास हजार रुपये हमारे ही थे।

तभी जमाकर्ता महोदय भी आ गये, हमने उन्हें मोबाइल पकड़ा दिया। उन्होंने कहा कि हाँ! पचास हजारकी रकमकी इण्ट्री करना मैं जमा पर्चीके पीछे भूल गया था।

बात स्पष्ट हो जानेपर कैशियरने उक्त रकमको खातेमें जमा कर लिया। यदि कैशियर महोदय इस रकमको खातेमें न जमा करते या न बताते तो हमारे पास तो उन्हें पचास हजार रुपये देनेका कोई रिकार्ड ही नहीं था। इस घटनासे लगा कि आज भी दुनियामें ईमानदारी है। मैं और मेरा संस्थान कैशियर महोदयकी इस ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठाको सदा याद करता रहेगा।—**डॉ० मदनगोपाल वाजपेयी**

(४)

प्रभु-प्रार्थनासे गायका मन-परिवर्तन

वैसे भगवान्की कृपा हमारे जीवनमें कई बार प्रतीत हुई है, लेकिन कम श्रद्धाके कारण वह समयपर मालूम नहीं पड़ती।

घटना उस समयकी है जब हम सपरिवार मध्यप्रदेशके पन्ना जिलेके अन्तर्गत ग्राम फरस्वाहा (त० अजयगढ़)-में रहते थे। उस समय मेरी आयु लगभग १३ से १५ सालकी थी। गाँवमें श्रीसिद्धनाथजीका एक प्राचीन मन्दिर है, जो कि गाँवसे कुछ दूरीपर स्थित सिद्धनके नामसे जाना जाता है। गाँवमें एक ब्राह्मण थे, जो कि एक गाय पाले हुए थे। गायका नाम दशराज था।

एक बार दशराजको बच्चा होनेवाला था। रात्रिका समय था, वह खुले मैदानमें थी। उसी समय उसने एक बछड़ेको जन्म दिया। बछड़ेके जन्म लेते ही एक कुत्ता उसे चाटने लगा, ऐसा देखकर दशराजने बछड़ेको नहीं चाटा बल्कि वह उससे घृणा भी करने लगी और जब वह उस बछड़ेको देखती तो उसे सींगोंसे मारनेके लिये दौड़ पड़ती थी। अकेले होनेके कारण ब्राह्मणदेवने गायकी देख-रेखका जिम्मा हमपर छोड़ दिया था, परंतु जब बछड़ेको सींगसे मारनेवाली बातका उनको पता लगा तो वे बहुत चिन्तित हुए; क्योंकि बछड़ेका बिना दूधके पालन करना कठिन था। गायके थनोंमें दूधकी भी कमी थी। ऐसी स्थितिमें उन्होंने

उस स्थानके देवता श्रीसिद्धनाथजीके मन्दिरमें जानेका निश्चय किया। मन्दिरके पहले एक नाला पड़ता था। इस नालेको पार करनेके लिये बछड़ेको मैं गर्दनपर डाले ले जा रहा था। नाला पार करते ही दशराजने बछड़ेको चाटना प्रारम्भ किया और कुछ ही क्षणोंमें दशराज मुझे मारनेके लिये दौड़ी। मैंने बछड़ेको जमीनपर छोड़ दिया और दूर भाग खड़ा हुआ। गाय सामान्य रूपसे स्वस्थ होकर बछड़ेको दूध पिलाने लगी। ब्राह्मणदेव कुछ समय मन्दिरमें मन्त्र जपते रहे। यह देखकर उन्हें खुशीका ठिकाना न रहा। मैं भी श्रीसिद्धनाथजीके चमत्कारको देखता रहा। तबसे मुझे सिद्धनाथजी महाराजके ऊपर बहुत श्रद्धा बढ़ गयी। विद्यार्थी जीवनमें उनकी मेरे ऊपर बहुत कृपा रही। **प्रेषक—एस० दर्मा सिंह**

(५)

रिक्शाचालकका उदात्त व्यवहार

मैं अक्टूबर १९७६ ई० में दिल्ली अपने बड़े भाईके यहाँ गया था। वहाँसे हरिद्वार-ऋषिकेश जानेके लिये निकला। मेरे पास बटुयेमें लगभग एक सौ पचास रुपये थे। बसमें टिकट लेनेके पश्चात् पर्स मैंने पैन्टकी जेबमें रख लिया। हरिद्वार उतरकर मैंने एक साइकिल-रिक्शावालेको बुलाया और 'हरि-निवास' होटलमें ले चलनेको कहा। होटल पहुँचनेके पश्चात् मैंने उसे रोक रखा; क्योंकि होटलमें कमरा लेकर सामान रखकर मुझे पुनः बस-स्टैण्ड लौटना था। उस समय दिनके लगभग २ बजे थे और ढाई बजे 'हरिद्वार-सिटी-बस' हरिद्वारके दर्शनीय स्थलोंके दर्शन करानेहेतु बस-स्टैण्डसे छूटती थी। मैंने कमरा ले लिया और रिक्शावालेको अग्रिम भाड़ा देनेके लिये जेबमें हाथ डाला तो पर्स नहीं मिला। मैंने होटलवालेको अपनी परिस्थिति बतायी। उसने कमरेका भाड़ा कुछ कम कर देनेका वचन दिया। अब तो हाथ रोककर पैसा खर्च करना था। अभी ऋषिकेश भी जाना शेष था। मैंने बस-स्टैण्ड पैदल जानेका विचार किया। बाहर आकर मैंने रिक्शेवालेको यहाँतक ले आनेका किराया देते हुए रिक्शेद्वारा जानेमें अपनी असमर्थता बता दी।

रिक्शेवालेके हृदयमें न जाने क्या आया कि उसने तुरंत ही अपनी जेबसे तीस रुपये निकाले और मुझे देते हुए कहा— 'साहब! लीजिये ये रुपये और बैठ जाइये मेरे रिक्शेपर। मैं आपको बस-स्टैण्ड छोड़ देता हूँ। मनुष्य मनुष्यके काम नहीं आयेगा तो कौन आयेगा? और फिर आप तो परदेशी हैं, इसलिये भी मेरा यह कर्तव्य है।' मैं उससे पैसे लेना नहीं चाहता था, परंतु वह नहीं माना। अन्तमें मुझे रुपये लेने पड़े। तत्पश्चात् मैं ऋषिकेश गया और वहाँसे दिल्ली पहुँचकर मैंने उसे ५१ रु० (तीस रुपये उधार लिये वे और इक्कीस रुपये पुरस्कार)-का मनीआर्डर किया। परंतु कुछ दिनों पश्चात् मुझे आश्चर्यमें डालते हुए २१ रुपयेका मनीआर्डर मेरे पास वापस लौट आया। कूपनमें लिखा था 'साहब! आपके पुरस्कारके लिये धन्यवाद। बिना परिश्रमका पैसा मैं नहीं लेता हूँ। उस समय आपकी मदद करना तो मेरा कर्तव्य था।' यह भी एक रिक्शा-ड्राइवर था। (अखण्ड आनन्द) **—नरेन्द्र नर्मदाशंकर दवे**

(६)

माताकी कृपा

बात मार्च, सन् २००२ ई० की है, तब मैं नई दिल्लीके ओखला रेलवे स्टेशनपर स्टेशन-मास्टर था। ओखला स्टेशनसे थोड़ी ही दूरपर द्वापरकालीन शक्तिपीठ माता कालकाजीका मन्दिर है, जिसके समीपवर्ती क्षेत्रको 'आस्थाकुंज' का नाम दिया गया है। नौ दिनतक चलनेवाले नवरात्रि-महोत्सवमें यहाँ अपार भीड़ देखी जाती है, जो स्टेशनसे ही शुरू हो जाती है।

मेरे ऑफिसमें एक चिड़िया दम्पतीने घोंसला बनाया हुआ था। घोंसलाहेतु उन दोनोंके घासका तिनका चोंचमें दबाये बारी-बारीसे आने तथा कर्णप्रिय कलरव करनेसे सहज ही अनुमान लगता था कि इस दम्पतीमें कितना प्रेम है। ऑफिसमें मेरी कुर्सीके सम्मुख ही जगज्जननी माता भगवतीकी शेरपर बैठी, वरमुद्रा धारण की हुई छोटी-सी तस्वीर दीवारपर टँगी हुई थी। नवरात्रिके एक दिन दोपहरके समय चिरौटा अचानक चलते पंखेसे टकराया और सीधे मेरी मेजपर गिरा। चोंचसे खून निकला और वह निष्प्राण-सा हो गया। मैंने तुरंत पंखा बन्द किया। चीं-चींकी आवाजमें पति-विक्षोभकी वेदनासे तड़पकर चिड़िया क्रन्दन करने लगी, तब मेरा अन्तर्मन भी मानो फट-सा गया।

मैंने माताकी ओर देखकर करबद्ध और कातरभावसे याचना की कि 'हे सर्वमयी परमेश्वरी माँ! नवरात्रिमें अपनी शक्तिका एहसास कराओ··· इस चिरौटेमें प्राण वापस कर दो।' ऐसा कह मैंने एक जलकी बूँद उसकी चोंचपर डाली। कुछ ही देरमें चिरौटेने पलक झपकायी और मुझे देख डरकर उठ बैठा और फुर्रसे चिड़ियाके साथ बाहर उड़ गया।

तबसे इस विस्मयकारी घटनासे माताके प्रति मेरी श्रद्धा और आस्था अधिक बलवती हुई है तथा मन-ही-मन मैं **'या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता·····'** का जप करता रहता हूँ। **—चन्दनसिंह कुशवाहा**

मनन करने योग्य

[बारह आने]

सायंकालका समय था। आकाश अभी भी बादलोंसे घिरा था। वर्षा हो चुकी थी। बादलोंके पटल चीरकर सान्ध्यसूर्यकी किरणें भीगी सृष्टिपर छा गयी थीं। ठंडी हवाके झकोरोंके साथ ही वृक्षलताओंकी भीगी डालें सिहर उठती थीं। मानो कोई भीगा पंछी पंख फड़फड़ाकर पानी झाड़ देता हो।

ऐसे सुहावने मौसममें दो-चार मित्रोंको साथ लिये मैं सैर करने निकला था। इधर-उधरकी गप्पें लड़ाते हमलोग आगे बढ़ते जा रहे थे कि अकस्मात् मेरा ध्यान सड़ककी एक ओर पगडंडीपर पड़ी एक मानवदेहकी ओर गया। मनकी मानवता जाग उठी। लपककर हम सभी वहाँ पहुँच गये।

वह एक स्त्री थी। उसका वस्त्र पूरा भीग चुका था और शायद किसी पीड़ासे आकुल सुध-बुध खोकर वह वहाँ अचेत पड़ी थी।

ऐ, बाई! हमने उसे जगानेका प्रयास प्रारम्भ किया, वह टस-से-मस न हुई। एक भीषण कल्पना मेरे मनको छू गयी। कहीं इसे चिरनिद्रा तो नहीं आ गयी? उस कल्पनामात्रसे मन काँप उठा और तुरंत मैंने उसकी बाँहका स्पर्श किया, लेकिन मेरा हाथ उसी दम पीछे आ गया, मानो मैंने कोई बिजलीका तार छू लिया हो। जी हाँ, उसका बदन जल रहा था। क्या ही विचित्र बात थी। वर्षासे लथपथ बदनमें तेज ज्वर!!

आखिर हमारा प्रयास सफल हुआ। वह चेती। कराहते हुए उसने आँखें खोलीं। मैंने पूछा—'यहाँ कैसे पड़ी हो बाई? तुम्हें तो तेज बुखार हो आया है।'

'हाँ भैया!' उसने जैसे-तैसे उठते हुए कहा।

'इधर कहाँ गयी थी?' मेरे एक मित्रने पूछा।

'तालाबपर काम करने गयी थी, भैया!' उसका क्षीण उत्तर!

'रहती कहाँ हो?' दूसरे मित्रका प्रश्न।

'राजा-मुहल्लेमें।'

'ओफ! तो इतनी दूर कैसे जाओगी?' मेरी व्याकुलता; क्योंकि उस स्थानसे राजा-मोहल्ला लगभग पाँच मील दूर था।

'चली जाऊँगी भैया!' एक बार उठनेका असफल प्रयास करती हुई वह बोली।

अबतक इर्द-गिर्दके बहुत-से लोग इकट्ठे हो गये थे—सभी दर्शक! मैं कुछ विचारमग्न था। ····मजदूरी करनेवाली स्त्री ····यह इतने तेज बुखारमें होशहवाश खोये न जाने ····हम तो कैसे पड़ रहते ····किंतु वह जानेको खड़ी हो गयी थी ····लड़खड़ाती ····काँपती हुई!!

'रिक्शा कर लो बाई! राजा-मोहल्ला बहुत दूर है। दर्शकोंमेंसे किसीने अपनी मानवतापूर्ण सहानुभूति प्रकट की थी।

'नहीं भैया! रिक्शावालेको पैसे कहाँसे दूँगी? मेरे पास कौड़ी नहीं है।' इच्छा न होते हुए भी उसे सत्य कहना पड़ा था।

'घर पहुँचनेपर दे देना।' किसी दूसरे दर्शकने समस्याको सुलझाना चाहा।

'नहीं, नहीं!' उसने क्षीण-सी हँसी हँसते हुए डगमगाते कदम आगे बढ़ाये।

उस एक क्षीण हास्यमें कितना सूचक अर्थ भरा था। इन बाबुओंकी बुद्धिपर मानो उसे तरस आया था। रिक्शावालेको देनेके लिये घरमें पैसे होते तो वह यहाँ इस प्रकार क्यों पड़ रहती ····पाँच-पाँच मील दूरीपर काम करने क्यों आती···· अपनी कमजोरीके कारण इतनी भीड़ क्यों इकट्ठी कर लेती····? पैसा! मानो उसके लिये वह एक देवदुर्लभ चीज थी, नियतिका कैसा व्यंग्य था।

केवल सैर करनेके लिये निकले थे हम! फिर भी हमारे पास खाने-पीनेमें उड़ानेके लिये रुपये थे ····और वह ····मुझसे यह विरोध न सहा गया। भीड़ देखकर वहाँ आये एक रिक्शावालेसे मैंने कहा—'क्या लोगे भाई! राजा-मोहल्लेका?'

'एक रुपया देना बाबूजी!'

'बारह आने देंगे।' व्यवहारने वहाँ भी सौदा करना चाहा।

'अच्छा चलिये! कितनी सवारी?'

'एक!'

'बैठियेजी!'

'मैं नहीं, वह बाई जा रही है न?' उसे ले जाओ!' दो-चार डग भरकर ही हम उसके पास पहुँचे। 'बैठ जाओ बाई रिक्शामें। पैसोंकी चिन्ता न करना।' मैंने उससे कहा और तुरंत रिक्शावालेके हाथमें बारह आने रख दिये।

'बाबूजी!' उसकी आँखोंसे कृतज्ञता साकार हो उठी! मैंने सहारा देकर उसे रिक्शामें बिठा दिया। रिक्शावालेसे उसे ठीक पतेपर पहुँचानेको कहकर मैंने उसे विदा किया।

दर्शक कबके चले गये थे। रिक्शा दूर-दूर जा रहा था। मैं एकाग्र होकर उसकी ओर देख रहा था। राजा-मोहल्लेके ये कंगाल! वह उपहास मेरे मनमें जा चुभा! 'चलो भाई चलें!' साथियोंने मुझे संकेत किया और हमलोग चल दिये।

प्राय: दो माह बादकी बात है, तालाबके पास रहनेवाले मेरे एक मित्र मेरे यहाँ आये। गाँवकी सभी हलचलोंका इन्हें पता रहता था। अत: हमारी मित्रमण्डलीमें इन्हें 'नारद महाराज' कहा जाता था। इधर-उधरके समाचार सुननेके बाद यों ही मैंने पूछा—'और क्या नयी-पुरानी खबर है नारदजी?'

'अजी हाँ, भाई साहब! आजकल हमारे घरके पासके चौराहेपर एक औरत बैठी रहती है। एकाएक किसी विस्मृत बातकी यादकर उन्होंने कहा।

'औरत? अच्छा, तो फिर?'

'फिर क्या? सफेद धोती और फीके पीले रंगका कुर्ता पहने कोई यदि उस चौराहेसे निकलता है तो वह लपककर उसके पास पहुँच जाती है, उसका हाथ पकड़कर उसको सरसे पाँवतक निहारती है और कुछ निराश होकर फिर अपने स्थानपर जा बैठती है।'

'अच्छा जी! तो क्या वह दिनभर बैठी रहती है?' नारदजीने मेरी उत्सुकताको बराबर बढ़ा दिया था।

'नहीं, नहीं। वह तो मजदूरनी प्रतीत होती है। शामके पाँच बजेसे दीया-बत्ती लगनेतक वह वहाँ बैठी रहती है। फिर न जाने कहाँ चली जाती है। लोग उसे पगली कहते हैं।'

अकस्मात् मेरे मनका पटल दूर हो गया और दो माह पूर्वकी उस घटनाका मुझे स्मरण हुआ। हो न हो, वह वही औरत होनी चाहिये—जिसे मैंने रिक्शेमें विदा किया था—राजा-मोहल्लेकी कंगाल। बस, मैं चल पड़ा तालाबकी ओर। नारदजीने भी विदा ली।

फिर वही सायंकालका समय था। प्राकृतिक सौन्दर्यकी ओर मेरा ध्यान न था। तालाब-मोहल्लेके चौराहेपर पहुँचकर मैंने देखा कि मेरा अनुमान सही है।

'बाबूजी!' चिल्लाती हुई वह मेरे पास दौड़ती आ गयी, वह वही थी। तुरंत उसने आनन्दविभोर होकर मेरा हाथ पकड़ा और मेरे हाथमें एक छोटी-सी पुड़िया थमाकर उसने मेरी मुट्ठी बंद कर दी। फिर गद्‌गद होकर बोली—'बाबूजी! आज मेरी मंशा पूरी हो गयी। आज चार दिन हो गये, मैं आपको ढूँढ़ रही हूँ। आज आप मिल गये। इस पुड़ियामें आपके बारह आने हैं बाबूजी! मैं गरीब हूँ, लेकिन किसीका उपकार रखना नहीं चाहती। दो माह मजदूरीकर मैंने ये बारह आने बचाये हैं। उस समय भगवान्‌की तरह आपने मेरी मदद की थी। भगवान् सदा आपका भला करे।

'अरी सुन तो! मुझे नहीं चाहिये ये पैसे।' मैंने कहा, लेकिन वह भाग खड़ी हुई। मैं अवाक् रह गया। वह चली गयी! मुझे खुदपर ही क्रोध आ गया। उसके स्वास्थ्यकी पूछताछतक मैं कर न सका। अपने आपको कोसता हुआ बारह आनोंकी वह पुड़िया जेबमें डालकर मुँह लटकाये मंदगतिसे मैं घरकी ओर लौट गया।

मनमें विचारोंका तूफान खड़ा था कि वह राजामोहल्लेकी कंगाल नहीं, हम ही मानवताके कंगाल हैं। मुझे बारह आने वापसकर उसने मानवताकी अमीरीका परिचय दिया।

वे बारह आने अभीतक मैंने खर्च नहीं किये हैं और न उन्हें खर्च करनेकी मेरी इच्छा ही है। आज भी उसी मटमैली पुड़ियामें वे मेरी टेबिलके सामनेके आलेमें सुरक्षित हैं। जीवनकी एक संस्मरणीय घटना और उससे मिले अविस्मरणीय पाठका वह एक प्रतीक है। उस पुड़ियाको देखते ही आज भी मेरे मनमें प्रश्न खड़ा हो जाता है कि मैंने उसे बारह आने दिये, वह मानवता थी या दो माहतक पसीना बहाकर, पेट काटकर उसने वे बारह आने वापस कर दिये, यह मानवता है।

(श्रीमोरेश्वर तपस्वी 'अथक')

कल्याण

याद रखो—जगत्‌की सम्पत्ति जितनी ही बढ़ेगी, उतनी ही अभावकी वृद्धि होगी। जिसके पास दस-बीस रुपये हैं, उसको सौ-पचासकी चाह होती है, परंतु जिसके पास लाखों हैं, वह करोड़ोंकी चाह करता है। इसलिये सम्पत्ति बढ़ानेकी चाह करना प्रकारान्तरसे अभाव बढ़ानेकी चाह करना है। अधिक पानेसे सुख नहीं होगा, वरं झंझट, कष्ट तथा दुःख ही बढ़ेंगे। आप अभिमानमें भले ही सोचें कि मेरे इतने गाँव और इतने महल हैं, परंतु अपने बैठनेका स्थान उतना ही काममें आयेगा, जितनेमें शरीर रह सकता है। खायेंगे भी उतना ही, जितना सदा खाते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि अधिक सुविधा होनेपर कुछ बढ़िया चीजें खायेंगे, परंतु मेहनत न करनेके कारण उन्हें पचा न सकेंगे, जिससे कुछ समयके बाद उतना भी खानेयोग्य न रह जायँगे।

याद रखो—यश, कीर्ति और सम्मान आदि अधिक बढ़ेंगे तो यह भय भी सदा जलाया करेगा कि कहीं अयश, अकीर्ति और अपमान न हो जाय। जितना बड़प्पन होगा, उतना ही गिरनेमें अधिक कष्ट होगा, जितने ऊँचे होंगे, नीचे गिरनेपर उतनी ही चोट अधिक लगेगी, इसलिये धन, मान, यश आदिके बढ़ानेकी चिन्ता छोड़कर भगवान्‌की चिन्ता करें, जिससे आपका यथार्थ कल्याण हो। आप खूब समझ लें और इस बातपर विश्वास करें कि धनी, मानी, अधिकारारूढ़ और विषयोंसे अधिक सम्पन्न लोग सुखी नहीं हैं, उनके चित्तमें शान्ति नहीं है। उनकी परिस्थिति और भयानक है; क्योंकि उनके अभाव भी उतने ही अधिक बढ़े हुए हैं। यह निश्चय है कि जहाँ अभाव है, वहीं अशान्ति है और जहाँ अशान्ति है, वहीं दुःख है।

संसारके हानि-लाभकी परवा न करे। जो काम सामने आ जाय, यदि अन्तरात्मा उस कामको अच्छा बताये तो अपनी जैसी बुद्धि हो, उसीके अनुसार शुद्धभावसे सबका कल्याण देखकर उसे करें, परंतु यह कभी न भूलें कि यह सब खेल है। अनन्त महासागरकी लहरें हैं। आप अपनेको सदा इनसे ऊँचेपर रखें। कार्य करें, परंतु फँसकर नहीं, उसमें राग-द्वेष करके नहीं। आ गया सो कर लिया। फिर उससे कुछ भी मतलब नहीं। न आता तो भी कोई आवश्यकता न थी।

आप अपनेको सदा आनन्दमें डुबाये रखें—दुःखकी कल्पना ही दुःख देती है। मान लें, एक आदमी गाली देता है, आप समझते हैं कि मुझको गाली देता है, इसलिये दुःखी होते हैं, उसे बुरा समझते हैं, उसपर द्वेष करते और उससे बदला लेना चाहते हैं। परंतु सोचें तो सही, वह आपको गालियाँ देता है या किसी जड़पिण्डको लक्ष्य करके किसी कल्पित नामसे गालियाँ देता है। क्या आप नाम और शरीर हैं, जो गालियाँ सुनकर रोष करते हैं? आपको कोई गाली दे ही नहीं सकता। आपका अपमान कभी हो ही नहीं सकता।

याद रखो—आप सदा शान्त रहें, निर्विकार रहें, सम रहनेकी चेष्टा करें। जगत्‌के खेलसे अपनेको प्रभावित न होने दें। खेलको खेल ही समझें। आप सदा सुखी रहेंगे। फिर न कुछ बढ़ानेकी इच्छा होगी और न घटनेपर दुःख होगा।

जो कुछ है, उसीमें सन्तुष्ट रहें और असली लक्ष्य श्रीपरमात्माको कभी न भूलें। याद रखें—यहाँकी बनने-बिगड़नेकी लीलासे आपका वास्तवमें कुछ भी नहीं बनता-बिगड़ता। फिर आप विशेष बनाने जाकर व्यर्थ ही क्यों संकट मोल लेते हैं। साधनात्मक सादा जीवन जीयें। **'शिव'**

मनुष्य-जीवनका अमूल्य समय

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्य-जीवनका समय अमूल्य है। समयकी कीमत न जाननेके कारण ही लोगोंका बहुत-सा समय व्यर्थ ही चला जाता है, इसीलिये आत्मकल्याणमें विलम्ब होता है। कहा जा सकता है कि कानून-पेशावाले वकील, बैरिस्टर प्रभृति तो समयका सदुपयोग करते हैं, क्योंकि वे अपने समयके प्रत्येक मिनटका पैसा ले लेते हैं; किंतु पैसोंसे मनुष्य-जीवनका वास्तविक ध्येय सिद्ध नहीं होता। जो मनुष्य अपने अनमोल समयको पैसोंके बदले बेच डालते हैं, पैसोंसे होनेवाले भावी दुष्परिणामको नहीं समझनेके कारण पैसे इकट्ठे करते चले जाते हैं और जीवित कालमें उनसे कुछ भौतिक सुखकी प्राप्ति करते हैं, वे वस्तुतः कल्याण-मार्गमें कुछ भी अग्रसर नहीं होते। (फिर उनका समय सार्थक कैसे हुआ?)

मरनेके समय उन्हें एकत्र किया हुआ सारा धन यहीं छोड़ जाना पड़ता है, उससे भी उन्हें कोई लाभ नहीं होता, प्रत्युत वह शोक और चिन्ताका बढ़ानेवाला ही होता है। अतएव जो धन, मान आदिके मोलपर अपने अमूल्य समयको बेच डालते हैं, वे अपनी समझसे बुद्धिमान् होनेपर भी वास्तवमें बुद्धिमान् नहीं हैं। बुद्धिमान् तो वे ही कहे जा सकते हैं, जो जीवनके अमूल्य समयको अमूल्य कार्योंमें ही लगाते हैं। अमूल्य कार्य भी उसीको समझना चाहिये, जिससे अमूल्य वस्तुकी प्राप्ति हो। वह अमूल्य वस्तु है— परमात्माके तत्त्व-ज्ञानसे होनेवाली आत्मोन्नतिकी चरम सीमा—परमेश्वरके स्वरूपकी प्राप्ति। इसीको दूसरे शब्दोंमें परम पदकी प्राप्ति अथवा मुक्ति भी कहते हैं।

चिन्त्य बात है कि बहुतसे भाई तो ऐसे हैं, जो अपने समयको चौपड़, ताश, शतरंज आदि खेलनेमें, सांसारिक भोगोंमें एवं निद्रा, आलस्य और प्रमादमें व्यर्थ ही बिता देते हैं। बहुतसे ऐसे मूढ़ हैं, जो जीवनके अमूल्य समयको चोरी, जारी, झूठ-कपट आदि कुकर्मोंमें बिताकर इस लोक और परलोक दोनोंसे भ्रष्ट होकर दुःखके भाजन बनते हैं और कितने ऐसे हैं, जो सुल्फा, गाँजा, कोकिन और मदिरा आदि मादक द्रव्योंके सेवनमें समय नष्ट करके नरकके भागी बनते हैं। यह समयका अत्यन्त ही दुरुपयोग है।

उचित तो यह है कि हमारा प्रत्येक श्वास श्रीभगवान्के स्मरणमें ही बीते। एक क्षण भी व्यर्थ न जाय। फिर पाप और प्रमादमें समय बिताना तो अत्यन्त ही मूर्खता है। असलमें बात यह है कि हमलोगोंने समयकी उपयोगिताको अभी समझा ही नहीं। जैसे पैसेकी उपयोगिता समझी हुई है, वैसे ही यदि समयकी उपयोगिता समझी जाती तो भूलकर भी हमारा एक क्षणका समय ईश्वर-स्मरण बिना नहीं बीत सकता। हम किरायेकी मोटरपर सवार होकर कहीं जाते हैं और रास्तेमें किसी सज्जनसे बातें करनेके लिये मोटरको रोकना पड़ता है तो उस समय हम उनसे अच्छी तरह बात नहीं करना चाहते, क्योंकि हमारी नजर तो प्रति मिनट कुछ पैसे चार्ज करनेवाले मीटरपर लगी रहती है। यह पैसेकी उपयोगिता समझनेका नमूना है। प्रति मिनटके कुछ पैसेसे भी अधिक हम समयकी उपयोगिताको नहीं समझते। हमारे लिये उचित तो यह है कि जैसे मोटरमें बैठे किसीसे बात करते समय हमारा मन पैसोंमें लगा रहता है, इसी प्रकार संसारका प्रत्येक कार्य करते समय अमूल्य जीवनका एक-एक क्षण मुख्यरूपसे श्रद्धा और प्रेमके साथ परम प्रेमास्पद परमात्माके चिन्तनमें ही लगा रहे।

इस प्रकार चिन्तन करते-करते भगवान्की दयासे किसी भी क्षण हमें भगवत्प्राप्ति हो सकती है। जिस क्षणमें भगवत्प्राप्ति होती है, उस क्षणका जीवन अत्यन्त अमूल्य है। उस समयकी तुलना किसीसे भी नहीं की जा सकती। परंतु वैसा समय श्रद्धा और प्रेमपूर्वक चिन्तन करनेसे ही प्राप्त हो सकता है। इसलिये हमें श्रद्धा और प्रेमपूर्वक सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् परमेश्वरके स्वरूपका सदा-सर्वदा चिन्तन करनेका अभ्यास करना चाहिये। ऐसा करनेपर हमारा सम्पूर्ण समय अमूल्य समझा जायगा। यदि प्रेम और श्रद्धाकी कमीके कारण जीवनभरमें भगवत्प्राप्ति न भी हुई तो भी कोई चिन्ता नहीं; क्योंकि

अभ्यासके बलसे अन्त समयमें भगवान्‌के स्वरूपका चिन्तन अवश्य होगा। (गीता ८।५)-में भगवान् स्वयं कहते हैं कि जो अन्त-समय मेरा चिन्तन करता हुआ देह त्यागकर परलोक जाता है, वह निश्चय ही मुझको प्राप्त होता है, इसमें कोई भी संशय नहीं है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

किंतु चिन्त्य है कि हमलोग ईश्वर-भजनकी कीमत कौड़ियोंके बराबर भी नहीं समझते। मान लीजिये एक पुरुष सालभरमें आठ हजार एक सौ रुपये कमाता है। ऐसा व्यक्ति भी यदि रोजगार छोड़कर* भजन करे तो उसका भी वह भजन कौड़ियोंसे सस्ता ही हो जाता है। जैसे वार्षिक ८१०० रुपयेके हिसाबसे एक महीनेके ६७५ रुपये, एक दिनके २२१/२ रुपये, एक घण्टेका ६० पैसा (पुराना) एवं एक मिनटका एक पैसा होता है। एक पैसेकी अधिक-से-अधिक साठ कौड़ियाँ समझी जायँ और ईश्वरका नाम-स्मरण एक मिनटमें कम-से-कम एक सौ बीस बार किया जाय यानी एक सेकेण्डमें दो नाम लिये जायँ तो भी वह कौड़ियोंसे मन्दा पड़ता है। जब ८१०० रुपये सालाना कमानेवालेसे भजनका परता कौड़ियोंसे मन्दा पड़ता है तब हजार-पाँच सौ रुपये सालाना कमानेवालेकी तो गिनती ही क्या है? (फलतः भजनमें लाभ है।)

कंचन-कामिनी, मान-बड़ाई और प्रतिष्ठाकी आसक्तिमें फँसकर जो लोग अपने अमूल्य समयको बिताते हैं, उनका यह समय और परिश्रम तो व्यर्थ जाता ही है, इसके अतिरिक्त उनकी आत्माका अधःपतन भी हो जाता है।

धनकी आसक्तिमें फँसा हुआ लोभी मनुष्य अनेक प्रकारके अनर्थ करके धन कमाता है। धनके कमाने और उसकी रक्षा करनेमें बड़ा भारी क्लेश और परिश्रम होता है। उसके खर्च करनेमें भी कम दुःख नहीं होता और फिर धनको त्यागकर जानेके समय तो किसी-किसीको प्राण-वियोगसे भी बढ़कर दुःख होता है। जैसे निर्धन आदमी धन-उपार्जनकी चिन्ता करता है और ऋणी ऋण चुकानेके लिये व्याकुल रहता है, वैसे ही धनी आदमी धनकी रक्षाके लिये व्याकुल रहता है।

वस्तुतः धन कमानेकी लालसा आत्माका अधःपतन करनेवाली है, इसी प्रकार स्त्री-संगकी इच्छा उससे भी बढ़कर आत्माका पतन करती है। पर-स्त्री-गमनकी तो बात ही क्या है, वह तो अत्यन्त ही निन्दनीय और घोर नरकमें ले जानेवाला कर्म है; परंतु अपनी विवाहिता स्त्रीका सहवास भी शास्त्रविपरीत हो तो कम हानिकारक नहीं है। आसक्तिके कारण शास्त्रविपरीत आचरण करना मामूली बात है। जब साधन करनेवाले बुद्धिमान् पुरुषकी इन्द्रियाँ भी बलात् मनको विषयोंमें लगा देती हैं तो फिर साधनरहित विषयासक्त पामर मूर्खोंका पतन होना कौन बड़ी बात है?

जैसे मूर्ख रोगी स्वादके वश हुआ कुपथ्य करके मर जाता है, वैसे ही कामी पुरुष स्त्रीका अनुचित सेवन करके अपना नाश कर डालता है। विलासिताकी बुद्धिसे स्त्रीका सेवन करनेसे कामोद्दीपन होता है और कामका वेग बढ़नेसे बुद्धिका नाश हो जाता है, कामसे मोहित हुआ नष्टबुद्धि पुरुष चाहे जैसा विपरीत आचरण भी कर बैठता है, जिससे उसका सर्वथा अधःपतन हो जाता है। कामोपभोगसे अधःपतन होना—अनेकोंने अनुभव किया है। अतः उससे बचना चाहिये।

स्त्रीके सेवनसे बुद्धि, वीर्य, तेज, उत्साह, स्मृति और सद्गुणोंका नाश हो जाता है एवं शरीरमें अनेक प्रकारके रोगोंकी वृद्धि होकर मनुष्य मृत्युके समीप पहुँच जाता है। वह इस लोकके सुख, कीर्ति और धर्मको खोकर नरकमें गिर पड़ता है। यही आत्माका पतन है। इसलिये साधुजन कंचन और कामिनीका भीतर और बाहरसे सर्वथा त्याग कर देते हैं। वास्तवमें भीतरका त्याग ही असली त्याग है; क्योंकि ममता, अभिमान और आसक्तिसे रहित हुआ गृही मनुष्य न्याययुक्त कंचन और कामिनीके साथ सम्बन्ध रखनेपर भी त्यागी माना गया है। **[क्रमशः]**

* वास्तवमें रोजगारको स्वरूपसे छुड़ानेका हमारा अभिप्राय नहीं है, केवल भजनकी महिमा दिखानेके लिये लिखा गया है। उत्तम बात तो यह है कि मुख्य वृत्तिसे परमात्माको याद रखता हुआ गौणी वृत्तिसे व्यवहार करे।

जीवनको सार्थक बनानेमें सदाचार और शिष्टाचारका योगदान

(श्रीरामानन्दप्रसादजी)

मानवजीवनका प्रथम उद्देश्य आदर्श कर्तव्य और आचरणको समझना और जानना है, जिसे धर्मशास्त्रकी भाषामें चर्या कहते हैं। चर्याका ज्ञान होनेपर ही हमें दैनिक चर्या एवं जीवनचर्याका बोध होता है। धर्मशास्त्रके पवित्र वचन हमें हमारे दैनिक कर्तव्यों एवं जीवनचर्याका भलीभाँति ज्ञान कराते हैं, जैसे—श्रीमद्भगवद्गीताके अध्याय अठारह श्लोक इकसठसे हमें यह ज्ञान होता है कि ईश्वर हमारे और सभी प्राणियोंके अन्तःकरणमें है, अतः हमारे जीवनका उद्देश्य ईश्वरसे निरन्तर जुड़े रहना है अर्थात् उनसे निरन्तर प्रेम करना है। जब मनुष्य कामना, ममता और अहंकारको छोड़ता है, तभी उसका अन्तःकरण निर्मल तथा सुसंस्कारित बनता है। दैनिक चर्या तथा जीवनचर्याद्वारा अन्तःकरण पवित्र होनेपर ही हम ईश्वर तथा उनके प्रेमभावके स्वरूपका अनुभव करते हैं। अन्तःकरणकी मलिनताको दूर करना ही हमारा लक्ष्य है। इसके लिये धर्मशास्त्रोंमें शिष्टाचार तथा सदाचारके भावको भलीभाँति समझाया गया है। सभी ऋषियोंने कहा है—आत्माके कल्याणार्थ आचार ही परम धर्म है। आचारके दो पक्ष हैं—१. विचार पक्ष तथा २. व्यवहार पक्ष। व्यवहार पक्ष विचार पक्षसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसी भावसे तुलसीदासजीने कहा है—

पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

आदर्श जीवनचर्यामें विचार तथा आचारमें एकता होनी चाहिये। रावण विद्वान् था और सब कुछ भलीभाँति जानता था, लेकिन वह केवल उपदेश देना जानता था और जीवनमें उपदेशके अनुसार धर्माचरण कभी नहीं करता था। मनुष्य चाहे कितना भी ज्ञानी क्यों न हो, लेकिन जबतक ज्ञानके अनुसार उसका आचरण नहीं होता है तो उसके ज्ञानका कोई मूल्य नहीं है। आचरणके अभावमें उसका ज्ञान विषके समान ही सिद्ध होता है। कोई भी मनुष्य धर्माचरणके द्वारा ही प्रतिष्ठित होता है। भगवत्प्रेममें धर्माचरण ही प्रधान है और धर्माचरणके लिये शिष्टाचार तथा सदाचारका अनुपालन अत्यन्त आवश्यक है।

शिष्टाचार लौकिक धर्म है और सदाचार भागवत धर्म है। लौकिक धर्मसे भागवत धर्म निश्चय ही श्रेष्ठ है। भागवत धर्ममें भगवद्भक्तिकी प्रधानता रहती है, लेकिन लौकिक धर्ममें लोकके विचारकी प्रधानता रहती है। सदाचार भगवान्‌की भावनापर आधारित रहता है और सदा सत्‌की भावनासे परिपुष्ट रहता है। शिष्टाचार और सदाचार समझानेके उद्देश्यसे ही भगवान्‌ने गीता (२।१६)-में कहा है—

'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।'

असत्—शरीरकी सत्ता सदैव नहीं रहती है और सत्—आत्माका अभाव कभी नहीं होता है। शरीर-भावमें शिष्टाचार होता है और आत्मभावमें सदाचार होता है। भगवान्‌की लीलामें शिष्टाचार और सदाचार दोनोंकी शिक्षा है। शिष्टाचार और सदाचार दोनों भगवत्प्रेमके लिये होने चाहिये। धर्मशास्त्रोंमें दोनोंका महत्व बताया गया है।

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामके दिव्य चरित्रद्वारा शिष्टाचार तथा सदाचारमय जीवनचर्यापर विशेष प्रकाश डाला गया है, उदाहरणके लिये भगवान् श्रीराम राजा होते हुए भी प्रजाजनोंसे कहते हैं—

जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥

(रा०च०मा० ७।४३।६)

वास्तवमें श्रीरामचरितमानस मानव-कल्याणके लिये आदर्श आचारसंहिता है। आचार-सम्बन्धी सारे नियमोंका उसमें प्रतिपादन है। उपर्युक्त पंक्तियोंमें भगवान् श्रीरामके आदर्श शिष्टाचार तथा सदाचारका गुण दर्शाकर हर मनुष्यको अनुसरण करनेकी प्रेरणा दी गयी है। मनुष्यकी जीवनचर्याद्वारा ही उसके चरित्रकी महिमा दर्शायी जाती है। भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णकी आदर्श जीवनचर्याओंद्वारा भक्तिकी साधना करनेकी प्रेरणा है। समस्त प्राणियोंकी आत्मा तथा भगवान्‌के अवतारमें कोई भेद नहीं समझना चाहिये। इसी दृष्टिसे भक्तोंकी भगवद्भावनाका दिग्दर्शन

श्रीमद्भागवतमें किया गया है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

(११।२।४५)

श्रीमद्भगवद्गीतामें भी भगवत्प्रेमके अन्तर्गत शिष्टाचार तथा सदाचारका महत्त्व दिखायी देता है। भक्तराज अर्जुनके दिव्य चरित्रमें शिष्टाचार और सदाचारके गुण दर्शाकर उनका अनुसरण करनेकी शिक्षा दी गयी है। शिष्टाचारयुक्त अर्जुनकी विनम्रवाणी द्रष्टव्य है—

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

(गीता २।७)

विनम्रता तथा प्रपन्नता भगवत्प्रेमकी मुख्य विशेषताएँ हैं। भगवत्प्रेम भागवतधर्म है। भागवतधर्ममें भगवान् स्वयं ही निवास करते हैं। उनकी दिव्यवाणी द्रष्टव्य है—

'ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥'

(गीता ९।२९)

भगवान्‌के प्रति अनुराग ही भगवत्प्रेम है। भगवत्प्रेमके लिये अनेक प्रकारकी साधनाएँ हैं। उन सभी साधनाओंमें भगवान्‌के नामकी साधना सर्वश्रेष्ठ है। श्रीरामचरितमानसमें नामकी महिमाका अद्भुत वर्णन है—

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल॥

(रा०च०मा० ७।१२४ (क))

अर्थात् भगवान्‌का नाम शारीरिक, मानसिक तथा जन्म-मरणके रोगको भी दूर कर देता है। इस प्रकार यह समस्त रोगोंको दूर करनेकी अद्भुत औषधि है। भगवान्‌का नाम लेना ही भजन कहलाता है। समस्त जीवनचर्याओंमें इसे प्रधान समझना चाहिये। मनुष्यका शरीर अनित्य और क्षणभंगुर है—यह सोचते हुए इस नश्वर शरीरका सदुपयोग भजनद्वारा करना महान् कौशल है। भजन जीवनका दिव्य धन है और इसे प्रधान भागवत धर्म समझना चाहिये।

वर्तमान समयमें समाजकी दुर्दशा देखते हुए भजन-साधना करनेकी प्रेरणा देनी चाहिये। इसी उद्देश्यसे तुलसीदासजीने कहा है—

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥

(रा० च० मा० ७।१२२ (क))

भगवान् श्रीकृष्णने गीता (१०।१०)-में भी भजन करनेपर बल देते हुए कहा है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

नाम-साधना या भजनद्वारा मनुष्यमें ज्ञान तथा वैराग्यके गुण स्वतः ही आते हैं। यह नाम-साधना साधन तथा साध्य दोनों है। ज्ञान प्राप्त करनेपर भी ज्ञानी नामकी साधना नहीं छोड़ते हैं। तुलसीदासजीने भी कहा है—

चहू चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

(रा०च०मा० १।२२।७-८)

महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा॥
निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं। निगम सेष सिव पार न पावहिं॥

(रा०च०मा० ७।९१।३-४)

भगवान्‌का ज्ञान प्राप्त होते ही जीवनके सारे कर्म भजन हो जाते हैं। भक्त सारे संसारमें भगवान्‌को देखकर सबकी सेवा करते हैं। भक्तकी अनुभूतिका वर्णन करते हुए तुलसीदासजीने कहा है—

'सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।'

(रा० च० मा० ७।११९ (क))

भगवत्प्रेममें भगवान्‌का ज्ञान होते ही दिव्य भावसे कर्म होते हैं। भक्त अपने हृदयमें तथा दूसरोंके हृदयमें सदा भगवान्‌का ही दर्शन करते हैं। जबतक हृदयमें भगवान्‌की अनुभूति नहीं होती है, तबतक किसी भी मनुष्यमें दृढ़ भक्ति नहीं होती है।

जबतक सांसारिक विषय-वासना आदि अपवित्र कामना मनुष्यमें रहती है, तबतक भगवत्प्रेमकी स्थापना हृदयमें नहीं होती है, इसलिये कामना-त्यागका सन्देश सर्वत्र है। इसी भावसे तुलसीदासजीने कहा है—

'राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा।'

(रा०च०मा० ७।९०।२)

गीता (३।४३)-में भगवान्‌ने भी कहा है—

'जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥'

भगवान् सबमें प्रेमस्वरूप हैं। प्रेम करनेपर ही वे प्रकट होते हैं। भगवत्प्रेमके अन्तर्गत शिष्टाचार तथा सदाचारका

वर्णन है। शिष्टाचार भगवद्भक्तिका प्रथम सोपान है और सदाचार अन्तिम सोपान है। जैसे सकामभक्ति आगे चलकर शुद्ध निष्काम भक्ति बन जाती है, वैसे ही शिष्टाचार क्रमिक विकासके रूपमें सदाचार बन जाता है। वास्तवमें शिष्टाचार तथा सदाचार भगवद्भक्तिके ही अंग हैं।

आध्यात्मिक जीवनशैली ही वास्तविक भक्तिमय जीवनचर्या है। अन्तःकरणकी मलिनताके कारण हम भगवान् तथा भक्ति-भावनाको नहीं समझ पाते हैं। भगवान्का नाम-जप करना सर्वश्रेष्ठ संस्कार है। इसे सात्त्विक संस्कार भी कहते हैं। सात्त्विक संस्कारमें ही आत्मा या भगवान्में विश्वास बढ़ता है। आत्मा या भगवान्की भावनाको ही भक्ति कहते हैं। जैसे-जैसे नामजप और सत्संग बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे आत्मविश्वास तथा भगवान्में विश्वास एवं प्रेम बढ़ते जाते हैं। भगवान् पास ही हैं, लेकिन उनका ज्ञान नहीं रहनेके कारण हम व्यर्थ ही दुःखी होते हैं। भगवान् हमारे भीतर तथा चारों तरफ हैं, लेकिन ज्ञानके अभावमें हम उन्हें नहीं जानते हैं।

शरीरका चिन्तन और अपने स्वरूपका ज्ञान न रहना ही कुसंस्कार है। आत्मा और परमात्माका बोध होना सुसंस्कार है। सुसंस्कारमें ही भक्ति होती है। जीवका पारमार्थिक स्वरूप आत्मा है। सर्वत्र आत्मा या भगवान्को देखना ही भक्तिका संस्कार है। जबतक संसारके विषय-वासनारूपी कुसंस्कार रहते हैं, तबतक आत्मप्रेम या भगवद्भक्तिकी बात समझमें नहीं आती है। जब अपने स्वरूप आत्मा तथा भगवान्का पूर्ण विश्वास हो जाता है तो यह मानवजीवन सफल बन जाता है और जन्म-मरणके बन्धनसे हम छूट जाते हैं। तुलसीदासजीने आत्मप्रेमको मणि बताकर भगवद्भक्तिकी महिमा गायी है, उनकी वाणी द्रष्टव्य है—

चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भटभेरे॥

(रा०च०मा० ७। १२०। १०—१२)

इस प्रकार भारतीय हिन्दू सनातन संस्कृतिकी जीवनचर्यामें भगवद्भक्तिका संस्कार सर्वश्रेष्ठ है। इसे विश्वधर्मकी संस्कृति कहकर गौरवान्वित किया जाता है। इसमें मानव-कल्याणकी अवधारणा अतिव्यापक है। सनातन हिन्दूधर्मकी जीवनचर्याका यही मंगलमय उद्देश्य है। इसमें सारे भारतीय ऋषियोंका अनुभव ही प्रधान है। भगवत्प्रेम ही सच्चा मानवजीवन है। हमारी सारी जीवनचर्यामें भगवत्प्रेम हो। जीवनचर्याका लक्ष्य भगवत्प्रेम ही होना चाहिये। भगवत्प्रेमकी संस्कृतिसे ही विश्वका कल्याण होना सम्भव है। हमारी सनातन हिन्दूसंस्कृति भगवत्प्रेमके लिये ही सारे विश्वमें विख्यात है। इसके गौरवकी रक्षा हम सभी भारतीय अवश्य करें। भगवान् ही हमारे हिन्दूधर्मके रक्षक तथा पालक हैं। हम भगवान्को एक क्षण भी न भूलें। वे ही हमारे साथ हैं, ऐसा विश्वास करें, यही हमारा धर्म है। वे ही हमारे जीवनमें सब कुछ हैं। उनका प्रकाश ही हमारे मन, बुद्धि आदिमें सर्वत्र है। भगवान्ने गीता (१५। १५)-में स्पष्ट ही कहा है—

'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।'

भगवान् अपनेमें हैं और अपने हैं, अतः उनसे स्वाभाविक प्रेम होना हमारे जीवनका लक्ष्य है। अज्ञानमें हम उन्हें नहीं समझते हैं। दैनिक चर्या और जीवनचर्याद्वारा हमें उनसे ही प्रेम करना है। वे ही हमें आनन्द और शान्ति देते हैं। भगवान्ने मानवजीवनका उद्देश्य बताते हुए कहा है—

'निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥'

(गीता २। ७१)

अतः श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार हमारी जीवनचर्या होनी चाहिये। जीवनचर्या धर्मानुकूल हो। वही मनुष्य है, जिसकी जीवनचर्या धर्मानुकूल, आदर्श और पवित्र होती है। धर्म मनुष्यका कल्याण करता है। जहाँ धर्म है, वहीं भगवान् निवास करते हैं। मनुष्य भी धर्मरत होकर भगवान्में लीन हो जाता है। भगवत्प्राप्तिकी दृष्टिसे मानवजीवनकी अद्भुत महिमा है।

कष्ट और दुःखसे मुक्त होनेकी कला

[सच्चा प्रेम त्यागमें है]

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क संख्या ८ पृ० सं० ८०३ से आगे]

देवी कुन्तीने श्रीकृष्णसे कहलवाया कि क्षत्राणियाँ इसलिये बच्चोंको नहीं पैदा करतीं कि ये भीख माँगते फिरें और अपना हक न लें। तुम पाँचों युद्धमें मर जाओ या विजय प्राप्त करो। जब महाभारतयुद्ध समाप्त हो गया और पाण्डवोंको राज्य मिल गया तब देवी कुन्ती अपने जेठ-जेठानीके साथ वनको चली गयीं। यह क्या चीज है? जब वे वन जाने लगीं तब भीमने कहा—माँ! यह क्या कर रही हो? हमलोगोंको सन्देश भेजा था युद्ध करनेके लिये और विजय प्राप्त करनेके बाद तुम वन जा रही हो। अब तो तुम्हारे सुख भोगनेके दिन हैं। कुन्तीने कहा—मैंने सुख भोगनेके लिये सन्देश नहीं भेजा था। मैं तो क्षत्राणी हूँ। तुमलोग अपने कर्तव्यसे चूक रहे थे। मेरा सन्देश कर्तव्य करनेके लिये था, राज्यके लिये और सुखके लिये नहीं था। ऐसी थीं देवी कुन्ती।

जहाँ हमारे मनमें अमुक वस्तु अनुकूल होती है, वह चाहे मृत्यु ही क्यों न हो, उसमें सुख होता है। पीड़ाकी तो बात ही क्या, लोग मरणका वरण कर लेते हैं आनन्दपूर्वक—सुखपूर्वक और चाहते हैं कि रणमें हमारी मृत्यु हो जाय। यह उत्साहपूर्वक क्यों चाहते हैं? इसलिये कि उस मरणमें उनके मनमें गौरवबुद्धि है। जब अभिमन्युकी मृत्यु हुई तो सुभद्रा रोने लगीं। भगवान् श्रीकृष्णकी बहन थीं सुभद्रा। श्रीकृष्णके पास आकर सुभद्रा विलाप करने लगीं और बोलीं—भैया! तुम्हारे रहते हुए अभिमन्यु मारा गया। भगवान् रोये नहीं बल्कि सुभद्राको समझाया। बोले—बहन! यह गौरवकी मृत्यु है और तुम रो रही हो? मैं तो चाहता हूँ कि ऐसी मृत्यु हम सबको मिले। इस गौरवपूर्ण मृत्युसे अभिमन्यु अमर हो गया, मरा नहीं। सात-सात महारथियोंसे जूझता हुआ, उनको परास्त करता हुआ, उनको मूर्च्छित करता हुआ अभिमन्यु वीरगतिको प्राप्त हुआ है। मानव-जीवनमें और क्या करना है? यही तो करना है।

जहाँ मनुष्यके मनमें किसी वस्तुमें, किसी परिस्थितिमें अनुकूलता होती है; वहाँ पीड़ा नहीं होती है। पीड़ा मिट जाती है। बल्कि पीड़ाका वरण होता है। एक बँगला पुस्तक जो एक भक्तकी लिखी हुई है, उसमें एक गाथा लिखी है। उसमें लिखा है कि श्रीगोपांगनाओंमें बड़ा प्रेम था। श्रीकृष्ण किसी एक गोपीसे प्रेम करते थे। उसके प्रति इनके मनमें सद्भाव था। परंतु उसके मनमें द्वेष था श्रीराधासे। उसके मनमें आया कि राधा यदि श्रीकृष्णकी प्रेमपात्र हैं तो मैं श्रीकृष्णके प्रेमको ठुकरा दूँगी। राधाने उसके पास दूतसे सन्देश भेजा। उसमें श्रीराधाने कहा कि यदि श्रीकृष्ण मेरे कारणसे इससे वंचित रहते हैं। यदि यह गोपी मेरे कारणसे श्रीकृष्णसे प्रेम नहीं करती है तो मैं हमेशाके लिये श्रीकृष्णको छोड़ देती हूँ। उनको छोड़नेमें मुझे बड़ा दुःख है, चूँकि प्रियतमको सुख होगा इसलिये मुझे अपने सुखकी कोई परवाह नहीं है।

भीष्मजीने क्या किया था दूसरेके सुखके लिये? उनका पहलेका नाम देवव्रत था। संसारमें प्राणियोंके लिये दो चीजें बड़ी ही प्रिय होती हैं। एक राज्य और दूसरी स्त्री। इन दोनोंको संसारके मनुष्य चाहते हैं। उन्होंने कहा—दाशराज, मैं राजगद्दीपर नहीं बैठूँगा। उसने कहा—तुम नहीं बैठोगे तो तुम्हारे बच्चे बैठ जायँगे। भीष्मजीने कहा—मैं विवाह ही नहीं करूँगा। जहाँपर प्रेम होता है, वहींपर स्वाभाविक त्याग होता है और उस त्यागकी पीड़ामें यदि अनुकूलताका बोध होता है तो वह पीड़ा सुखदायिनी हो जाती है, दुःखदायी नहीं होती है। श्रीकृष्णका परित्याग करना राधाके लिये बड़े दुःखकी चीज है। इससे बड़ा कोई दुःख है नहीं राधाके लिये, परंतु यदि श्रीकृष्णको उसमें सुख है तो यह बड़ी प्रतिकूलता राधाके लिये सुखकी चीज है। क्यों? इसलिये कि श्रीकृष्णको सुख है। जहाँ मनमें अनुकूलता होती है, वहाँ बड़ी-से-बड़ी विपत्ति भी

दुःखदायी नहीं होती है।

हमलोग जो भक्त नरसीका भामरा सुनते हैं बड़े प्रेमसे, यह केवल कामनाकी नहीं है। इस भामरेमें तो कुछ गड़बड़ की है इसके लेखकने। उन्होंने नरसीजीको बहुत नीचे उतार दिया। हमलोग सुनते हैं परंतु ऊँचा भाव नहीं है। लेकिन नरसीजीका भाव क्या है? नरसीजीके नौजवान एकमात्र लड़केकी मृत्यु हो गयी। उसके मरनेपर नरसीजीके मनमें अनुकूलता आती है। बेटा मरनेसे सुख नहीं है। बेटा बड़ा प्रिय था। बेटेका मरना चाहते नहीं थे, परंतु मर गया। लड़केके मरनेके बाद उनका चित्त बदला। चित्तमें अनुकूलता आयी। चित्तने कहा—बड़ा अच्छा हुआ। पुत्रमें ममता थी, पुत्रमें स्नेह था, पुत्रमें आसक्ति थी। यह भगवान्‌के भजनमें बाधक है। उन्होंने कहा—

'भले छयों भागी जंजाल, सुखे भजी श्रीगोपाल'

बड़ा अच्छा हुआ, जंजाल मिट गया। अब सुखसे भगवान्‌का भजन करूँगा। पीड़ा तो नष्ट हो ही जायगी और शारीरिक पीड़ा भी जितनी अधिक प्रतीत होती थी, उतनी नहीं होगी। परंतु यह छिपा है मनुष्यके मनमें।

भगवत्प्रेममें भी, प्रेमके क्षेत्रमें भी मनुष्यके मनमें एक छिपी हुई वासना मनमें रहती है, जो भगवान्‌को अपने अनुकूल बनाना चाहती है। भगवान्‌के अनुकूल बननेमें बड़ा हिचकती है। वह छिपी चीज रहती है। वह कभी-कभी भगवान्‌पर भी नाराज हो जाती है कि भगवान्‌ने ऐसा क्यों किया? ऐसा क्यों नहीं किया? अरे, यही तो तुम्हारे लिये एक कसौटी है। भगवान्‌ने जो किया, वह ठीक किया। बाध्यतामूलक जो वृत्ति है, वह ठीक नहीं कि क्या करें और क्या नहीं। जहाँ भगवान्‌से किसी प्रकारके फल प्राप्त होनेपर जो हम कह देते हैं कि क्या करें, उनके आगे झुकना पड़ता है। भगवान्‌के आगे तो अपना जोर है नहीं। हुआ तो बहुत बुरा, परंतु भगवान्‌के सामने अपना कोई वश नहीं है। वे जो करें सो करें। अब क्या करें? सन्तोष करना है।

यह सन्तोष नहीं है, यह तो मजबूरी है। हम अगर कर पाते तो दूसरी चीज करते। चूँकि कर नहीं पाते हैं, इसलिये मजबूरीका सन्तोष है। यह ठीक नहीं है। यह हो कि भगवान्‌ने जो यह किया, इसीमें हमारा मंगल है। बड़ा अच्छा हुआ। यह विश्वास है, परंतु यह भी प्रेम नहीं है। प्रेम तो वह कि मंगल-अमंगल कुछ नहीं। मंगल होगा या अमंगल होगा, इसकी कल्पना ही नहीं है। हमारे प्रियतम प्रसन्न रहें, बस। उनकी प्रसन्नताके लिये सुख भोगना स्वीकार। उनकी प्रसन्नताके लिये दुःख भोगना स्वीकार। उनकी प्रसन्नताके लिये उनका वियोग स्वीकार। उनकी प्रसन्नताके लिये उनका संयोग स्वीकार। उनकी प्रसन्नताके लिये नरकमें जाना स्वीकार। उनकी प्रसन्नताके लिये नित्य उनके पास वैकुण्ठमें रहना स्वीकार। हमें जीवनमें चाहिये केवल उनकी प्रसन्नता। यहाँ प्रतिकूलता आयी ही नहीं। यहाँ प्रतिकूलताका सर्वथा नाश हो गया। प्रतिकूलता नहीं, असन्तोष नहीं। केवल सुख है। केवल आनन्द है और वह आनन्द है केवल इसी बातको लेकर कि हमारे प्रेमास्पद—प्रियतम सुखी हों।

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

(श्रीमद्भा० १।८।२५)

कुन्तीजी भगवान्‌से प्रार्थना करती हैं—हे जगद्गुरो! हमपर जहाँ-तहाँ सदा विपत्तियाँ ही आती रहें; क्योंकि विपत्तियोंमें ही आपके दर्शन होते हैं और आपके दर्शन होनेपर फिर इस संसारके दर्शन नहीं होते अर्थात् जन्म-मृत्युसे छुटकारा मिल जाता है।

श्रीकृष्ण जो सुखके समुद्र हैं, उनसे मुँहमाँगा वरदान देनेकी बात सुनकर देवी कुन्तीने माँगी विपत्ति—पीड़ा, कि तुम सब जगह हमें पीड़ा-ही-पीड़ा देते रहो। यह भी कोई वरदान माँगना है? पीड़ासे क्या होगा? पीड़ामें श्रीकृष्ण तुम्हारा दर्शन होगा—**'भवतो दर्शनं यत्'** जो पीड़ा तुम्हारा दर्शन करा दे, संसारका दुःख भगवान्‌को मिला दे और हमारा जो दुःख भगवान्‌को हँसा दे, हमारी जो पीड़ा भगवान्‌के मुखपर मुसकुराहट ला दे—वह पीड़ा, वह दुःख तो हमारे लिये स्वागतकी वस्तु है। नित्य ग्रहण किये रखनेकी वस्तु है; क्योंकि प्रियतम श्रीकृष्ण, परमात्मा, प्रेमास्पद, हमारे भगवान् उससे प्रसन्न हैं। इसलिये यह प्रयोग करके देखिये। जब किसी कारणवश पीड़ा हो रही

हो, उस समय यह प्रयोग करिये। द्रष्टा बन जाइये अथवा भगवान्‌के सामने दीन बन जाइये। तुरंत देखियेगा कि मानस-क्लेशका नाश तो हो ही गया।

जब मैं बम्बईमें रहता था, उस समयकी एक सच्ची घटना है। मेरे एक मित्र थे। वे बड़े भारी वेदान्ती थे। वे कहते थे कि जगत् है ही नहीं। वे अजातवादी थे। एक बार उनके पेटमें बड़ा दर्द हुआ। बड़ी वेदना थी। वे छटपटा रहे थे। मैं भी उनके पास मिलने गया। वहाँपर डॉक्टर बैठे थे। मैंने उनका नाम लेकर कहा—भाई! तुम तो कहा करते थे कि जगत् है ही नहीं। जब उन आरामके क्षणोंमें जगत् नहीं था तब क्या आज इस समय जगत् है? मैंने गम्भीरतापूर्वक कहा। वे इसे सुनकर गम्भीर हो गये। बोले—फिर कहो। मैंने पुनः कहा—जगत् है क्या? अगर जगत् नहीं है फिर दर्द कहाँ है? वे बोले—आप ठीक कह रहे हैं। जगत् नहीं है। मुझे पीड़ा नहीं है। मैंने आश्चर्यसे देखा वे शान्त थे। वहाँपर डॉक्टर भी थे। उन्होंने कहा—मुझे पीड़ा नहीं है। वहाँ कुछ बदला नहीं था। पीड़ा ज्यों-की-त्यों थी, परंतु बोले—पीड़ा नहीं है। अब जो जँचे सो करो। उनका जो मानस-क्लेश था, वह मिट गया। मन जहाँ जिसकी सत्तामें विश्वास करता है, वहाँपर मन उस चीजको बढ़ाता रहता है और मनने जहाँ सत्ताको अस्वीकार किया, इनकार किया वहाँ वह वृत्तिसे मिटने लगता है। आप दुःखोंको अस्वीकार कर दीजिये तो आपके पास दुःख नहीं आयेंगे।

किसीने मुझे गाली दी। बोले—यह हनुमान बड़ा नालायक है। सुनते ही गुस्सा आ जायगा। फिर पूछा—क्या मुझे कह रहे हो? वह बोला—नहीं, वह जो हनुमान जा रहा है, उसको कह रहा हूँ। फिर भाव आयेगा, अच्छा उसको कहा है तब कोई बात नहीं है। अभी-अभी क्रोध आ गया था, लड़नेको तैयार हो गया था और तुरंत हँसने लगा। क्यों? गाली उसने ले ली थी और फिर वापस कर दी। गाली लेनेसे लगती है। आप गाली लेनेसे इनकार कर दीजिये। अपमानको इनकार कर दीजिये। अपमान आपका कुछ नहीं बिगाड़ेगा और अपमानको स्वीकार करिये, निन्दाको स्वीकार करिये, गालीको स्वीकार करिये तो आप यदि असमर्थ हैं तो रोने लगेंगे और यदि आप समर्थ हैं तो लड़ने लगेंगे, उसे मारने दौड़ेंगे। लेकिन यदि आपने इनकार कर दिया तो आपका कुछ नहीं बिगड़ेगा। [क्रमशः]

'प्रेम-पात्र हृदय है खाली'

(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)

प्रेम-पात्र हृदय है खाली, इसमें बूँदें बस दो-चार।
प्रेम-सुधा से भर दो इसको, जिससे छलके बारम्बार॥
प्रेम-अश्रु से निर्मल होकर, नयन-युगल लें छवि निहार।
प्रेम-भरी वाणी में गाऊँ, तुम्हें पुकारूँ बारम्बार॥
प्रेम-पराग रिसे रोमों से, अंतरमन के धुलें विकार।
प्रेम बढ़े बढ़ता ही जाये, रात-दिवस होवे संचार॥
प्रेम-सरोवर के तट बैठूँ, जब चाहूँ डुबकी लूँ मार।
प्रेम-सरित में संग-संग तैरूँ, श्याम-सखा तुमको ले साथ॥
प्रेम-बाढ़ ऐसी इक आये, बहें लोभ, क्रोध अरु काम।
प्रेम बढ़े निन्दा-रस त्यागूँ, रसना काबू में हो श्याम॥
प्रेम-ध्वनि तेरी वंशी की, कानों में गूँजे घनश्याम।
प्रेम-मधुरमय छवि निहारूँ, लीला देखूँ गाऊँ नाम॥

मुरलीमनोहरकी मुरली

(श्रीरमेशजी गणेशजी दुसाने)

श्रीकृष्णकी प्यारी मुरलीको जैसे वंशी, बाँसुरी, वेणु, पावा, मुरली आदि नामोंसे पुकारा जाता है, वैसे ही इस मुरलीको धारण करनेवाले श्रीकृष्णको भी मुरलीधर, मुरलीमनोहर, वंशीधर, वेणुगोपालके नामसे जाना जाता है। यह बाँसुरी श्रीकृष्णके साथ-साथ हमेशा उनके अधरोंपर या कटिबन्धके महावस्त्रमें खोयी होनेके नाते उन कन्हैयाकी लाडली ही मानी जाती है। मुरलीमनोहर जब मुरलीद्वारा मधुर-मधुर स्वर छेड़ते हैं, तब बिखरी हुई सभी गायें और उनके बछड़े आवाजकी ओर दौड़ने लगते हैं। निर्जीव पेड़-पौधे, नाचने-झूमने लगते हैं। जंगलके सभी प्राणी, पशु-पक्षी वेणुनादसे मन्त्रमुग्ध होकर रुक जाते हैं। कन्हैयाके सभी बाल-गोपाल मित्र और गोप-गोपी मधुर बाँसुरी-श्रवणसे अपने-आपको भूल जाते हैं। गोपियाँ भी प्रेमसे गाने लगती हैं। तभी यह मुरली सभीकी मनमोहिनी बन गयी।

ऐसी इस सभीका मन बहलानेवाली, भुलानेवाली मनमोहिनी वेणुके बारेमें सभी गोपियाँ आपसमें आश्चर्य और ईर्ष्यासे बातें—चर्चा करती हैं कि 'इस वेणुने पूर्वजन्ममें ऐसा कौन-सा जप-तप तथा पुण्य किया था कि उस पुण्यसे यह श्यामसुन्दरके अधरामृतका नियमितरूपसे अकेले ही पान करती आ रही है? इतना ही नहीं, यह वेणुगोपाल भी एक पलभरके लिये भी उसे भूल नहीं सकता। हम गोप-गोपी ही क्या, यह सारा ब्रह्माण्ड इस बाँसुरीका मधुर-स्वर सुनकर तल्लीन हो जाता है। विश्वके सभी पशु-पक्षी अपने कानोंसे वेणुनादका अमृतपानकर तृप्त हो जाते हैं। धन्य है यह मुरली और धन्य हैं उससे मधुर-स्वर छेड़नेवाले श्रीकृष्ण कन्हैया।

जैसे वेणु श्रीकृष्णको प्रिय है, वैसे ही राधा भी श्रीकृष्णकी प्रिय भक्त हैं। इस मुरलीको देखकर प्रिय राधाके सामने एक बड़ा प्रश्न खड़ा होता है कि श्रीकृष्ण कन्हैया वेणुसे इतना क्यों प्यार करते हैं कि एक पलभरके लिये उसे छोड़ नहीं सकते? या वंशीने ऐसा क्या जादू किया है कि उसने श्रीकृष्णको पूरा अपना बना लिया है। इसके पीछे क्या रहस्य है? यह जाननेके लिये राधाने एक दिन श्रीकृष्णकी अनुपस्थितिमें—एकान्तमें बाँसुरीसे पूछा—'हे महद्भाग्यशालिनि वेणु! आपने पूर्वजन्ममें ऐसा कौन-सा महत्पुण्य या तपश्चरण किया कि आप भगवान् श्रीकृष्णकी इतनी निस्सीम लाडली और प्यारी बन गयी हो कि भगवान् भी एक पलके लिये आपको भूल नहीं पाते? आपको वे सतत अपने साथ अधरोंपर रखकर मधुर-स्वर छेड़ते हैं और आप भी भगवान्के अधरामृतका अहर्निश पान करती हैं?' इस सवालपर वेणुने उत्तर दिया—'राधे! पूर्वजन्ममें मैंने क्या पुण्य किया, यह तो मैं नहीं जानती, लेकिन मैं बाँसके जंगलमें जन्मी और नौ छेद बनायी हुई एक पोली बाँस हूँ। राधे! तू मेरे अन्दर ठीकसे झाँककर तो देख, अन्दर क्या कुछ नजरमें आता है?' राधाने अन्दर सूक्ष्मतासे देखा और बोली—'अन्दर तो कुछ भी नहीं, सब शून्य है। इतना ही नहीं, यह तो आरपार खाली है।' तब मुरली बोली—'जब मुझमें कुछ भी नहीं, तो तू निश्चित समझना कि मैं कुछ भी नहीं हूँ। मेरेसे जो राग-रागिनीका मधुर स्वर निकलता है, वह सब भगवान्के मुखसे स्फुरित होकर निकलता है, उनकी प्रेरणाके बिना मैं शुष्क बाँसकी जड़ शून्य नली क्या कर सकती हूँ? और इसलिये मुझसे निकलनेवाले सुस्वर संगीतका मुझे झूठा अहंकार करनेका क्या अधिकार है? मैं पूर्णतः अहंशून्य हूँ, इसीलिये भगवान्का मुझपर अमृततुल्य निस्सीम और अभेद प्रेम है, यह अहंकारशून्य दिव्य भक्ति-रहस्य सुनकर राधा अतिशय प्रसन्न हुईं। उनकी शंकाका निरसन—समाधान होकर उनको सच्चाईकी ज्ञान-दृष्टि प्राप्त हुई।

श्रीकृष्ण भगवान्की मुरली भी आज हम-जैसे मानवको यह शिक्षा देती है कि यह मानव देह हड्डी-मांसका बना हुआ एक खाली-सा ढाँचा है। इसके भीतर प्रभु परमेश्वरका अंश आत्मारूपसे हृदय-सिंहासनपर अधिष्ठित होकर अपने नाक, मुँहसे निकलनेवाले श्वासोच्छ्वासरूपी फुंकारके माध्यमसे गाता है, बोलता है, सुनता है, देखता है, चलता है इत्यादि सब कुछ कार्य करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि देहरूपी मुरलीसे निकलनेवाले स्वर, बोल या कोई कार्य उसीकी प्रेरणासे होता है। सब कुछ मैं करता हूँ—यह झूठा अहंकार छोड़कर अपना मनरूपी अन्तःस्थ हृदय खाली करके अपना सर्वस्व प्रभु-चरणोंमें अर्पितकर प्रार्थना करना कि '**नाहं कर्ता हरिः कर्ता हरिः कर्ता हि केवलम्।**' यानी मैं कुछ नहीं सब तू ही है। मुरलीके समान अपना मन अहंशून्य करनेके पश्चात् ही मनुष्य भगवान्की असीम कृपाका अनुभव कर सकता है।

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

सबसे सुगम साधन है—शरणागति। वास्तवमें शरणागत होना नहीं है, हम सदासे भगवान्‌के शरणमें हैं। परंतु हमने संसारका आश्रय ले लिया—यह गलती की। मेंहदीके पत्तेमें लालीकी तरह परमात्मा सबमें रहते हुए भी देखनेमें नहीं आते। शरीर-संसार अनित्य हैं, जीव-परमात्मा नित्य हैं। शरीर-संसार एक हैं, पर गलतीसे दोनोंको अलग मान लिया। ऐसे ही जीव-परमात्मा एक हैं, पर गलतीसे दोनोंको अलग मान लिया। शरीरको संसारकी सेवामें अर्पित कर दें। शरीर संसारके अर्पित होगा, संसार शरीरके अर्पित नहीं होगा। छोटा ही बड़ेके पास जाता है।

× × × ×

मनुष्यमें करनेकी शक्ति, जाननेकी शक्ति और पानेकी इच्छा है। सेवा करनी है, स्वयंको जानना है और परमात्माको प्राप्त करना है। प्राप्त करनेके लिये परमात्माको मानना है। संसारसे मिली वस्तुको संसारके ही भेंट कर देना चाहिये।

सबमें परमात्माको देखना बड़ी भारी पूजा है। जैसे मूर्तिमें परमात्माका पूजन करते हैं, ऐसे ही सबमें भगवान्‌का पूजन करें।

पहले संसारसे जो लिया है, उसे चुकाये बिना और लोगे तो कर्जदार हो जाओगे। कर्जदारकी मुक्ति नहीं होती।

नित्यप्राप्तकी प्राप्तिके बिना कोई प्राप्त-प्राप्तव्य नहीं हो सकता।

मनुष्ययोनि उन लोगोंके लिये 'कर्मयोनि' है, जिनको भटकना है। जिनको भटकना नहीं है, उनके लिये यह 'साधनयोनि' है। अनुकूल-प्रतिकूल दोनों परिस्थितियाँ साधन-सामग्री हैं।

वृक्ष लगाना धर्मशाला बनवानेसे भी उत्तम है। वृक्षसे पक्षियोंको रहनेकी जगह भी मिलती है और खानेकी सामग्री भी। धर्मशालासे तो बहुत जगह रुकती है, पर वृक्षसे ज्यादा जगह भी नहीं रुकती।

× × × ×

हमारे पास सबसे मूल्यवान् वस्तु है—समय। एक-एक क्षण समझ-समझकर खर्च करें। निरर्थक समय नष्ट न करें। समय देकर आप भगवान्‌की प्राप्ति कर सकते हैं, जीवन्मुक्त हो सकते हैं। मनुष्यजन्म दुर्लभ है, पर मिला हुआ होनेसे उसकी दुर्लभताका पता नहीं लगता। साठ वर्षोंमें कमाये हुए धनसे साठ मिनट भी नहीं मिल सकते। पिछले जन्मोंकी तरह इस जन्मके कुटुम्बी, मकान आदि यादतक नहीं रहेंगे; समयको व्यर्थ नष्ट करना बड़ी भारी हानि है। घड़ी तभीतक चलती है, जबतक चाभी भरी हुई है। धन-प्राप्तिमें सब स्वतन्त्र नहीं हैं, पर भगवत्प्राप्तिमें सब स्वतन्त्र हैं।

भगवान्‌के प्रत्येक विधानमें प्रसन्न रहनेवालेके भगवान् वशमें हो जाते हैं।

भगवान्‌की स्मृति समस्त विपत्तियोंका नाश करनेवाली है—**'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्'** (श्रीमद्भा० ८। १०। ५५)। अतः प्रत्येक कार्यके समय भगवान्‌का स्मरण करो।

× × × ×

जिन परमात्माको प्राप्त करना है, वह सबको नित्यप्राप्त हैं। जिस संसारसे हटना है, वह स्वतः ही हट रहा है। शरीर-संसारके साथ न आप रह सकते हैं, न वे आपके साथ रह सकते हैं या तो संसारसे उपराम हो जायँ या परमात्माके सम्मुख हो जायँ।

सभी अवस्थाएँ (जाग्रत् आदि) संसारकी हैं। जिन अंगोंसे हम संसारको देखते हैं, वे भी संसारके ही हैं।

घरमें स्वयं सुख न लेकर दूसरोंको सुख, आदर देना शुरू कर दें। आने-जानेवाली चीजोंसे अपनेको बड़ा मानना गलती है। आप छोटोंकी रक्षा नहीं करते, तो फिर अपनेसे बड़ोंसे रक्षा चाहना गलती है। लेनेकी इच्छा छोड़कर सबकी सेवा करें। देनेसे वस्तु बढ़ती है। दूसरोंको सुख देनेसे अपना सुख बढ़ता है।

× × × ×

गीतामें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों योगोंका वर्णन आया है। अपनी मान्यता और बुद्धिकी प्रधानता रहनेके कारण टीकाकारोंमें मतभेद रहता है। तत्त्वप्राप्तिमें सब एक हो जाते हैं। अतः साधन-मार्गोंकी भिन्नता दोषी नहीं है। दूसरेका खण्डन करना दोष है। दूसरेका खण्डन करनेवाला वास्तवमें अपना ही खण्डन

करता है। सभीका प्रापणीय तत्त्व एक ही है। भूख और तृप्ति सबकी एक होती है, पर रुचि दोकी भी समान नहीं होती।

हम अपनी बुद्धिसे गीताको नहीं समझ सकते। अत: गीताकी शरण हो जाना चाहिये। गीतामें भगवान्‌ने समग्ररूपका वर्णन विशेषतासे किया है। भगवान्‌के सभी रूप (निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार) समग्रके अन्तर्गत आ जाते हैं। आपने भगवान्‌का जैसा स्वरूप पढ़ा, सुना या समझा हो, उसी रूपका ध्यान और नामजप करें। भगवान् कैसे हैं—यह भगवान् भी नहीं जानते कि मैं कैसा हूँ! वहाँ कैसा-वैसा नहीं चलता। जैसा आप मानें, भगवान् वैसे ही हैं—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४। ११)। बुद्धि प्रकृतिको भी नहीं पकड़ सकती, फिर भगवान्‌को कैसे पकड़ सकती है? पर भगवान् चाहें तो हमारी बुद्धिमें आ सकते हैं। हम भगवान्‌को जान तो नहीं सकते, पर उन्हें अपना मान सकते हैं। जैसे माँको अपना मानें तो माँ पूरी-की-पूरी अपनी है, ऐसे ही भगवान्‌को अपना मानें तो भगवान् पूरे-के-पूरे अपने हैं। अपनेको भगवान्‌से अलग मान लेना और शरीरको संसारसे अलग मान लेना गलती है।

भगवान्‌को अपना माननेकी जिम्मेवारी हमारी ही है। भगवान्‌ने तो हमें अपना मान ही रखा है।

× × × ×

राग-द्वेष स्थूल हैं, रसबुद्धि सूक्ष्म है। रसबुद्धिसे संसारकी चीज अच्छी लगती है। रागपूर्वक ग्रहण करना और द्वेषपूर्वक त्याग करना—दोनों ही बाँधनेवाले हैं। **'रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्'** (गीता २। ६४)-का तात्पर्य है— शास्त्रको सामने रखे, राग-द्वेषको सामने न रखे। ग्रहण और त्यागका इतना दोष नहीं है, जितना रागपूर्वक ग्रहण और द्वेषपूर्वक त्यागका दोष है।

वस्तुएँ दोषी नहीं हैं, उनमें महत्त्वबुद्धि दोषी है। मल-मूत्रका त्याग 'मैं' का त्याग है और धनका त्याग **'मेरा'** का त्याग है। परंतु मलके त्यागका अभिमान नहीं आता, धनके त्यागका अभिमान आता है। कारण कि धनमें महत्त्वबुद्धि है, मल-मूत्रमें निकृष्टबुद्धि है।

साधक या तो सुखसे भी सुखी हो जाय और दु:खसे भी सुखी हो जाय अथवा सुखसे भी दु:खी हो जाय और दु:खसे भी दु:खी हो जाय।

अगर आप जल्दी उद्धार चाहते हैं तो किसीके गुण-दोषोंको न देखकर, उसे वासुदेव समझकर मनसे दण्डवत् प्रणाम करो। स्वरूपसे सब निर्दोष हैं। गुण-दोष तो साबुनकी तरह ऊपरसे चिपकाये हुए हैं।

× × × ×

सबसे पहले ओंकारका उच्चारण हुआ है। उससे फिर त्रिपदा गायत्री हुई। जीव भी त्रिपाद है—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। तुरीयावस्था अमात्र है—मात्रासे अतीत है। अहंसे रहित स्वरूप अमात्र है। जिसके आधारपर सृष्टि रची जाती है, वह तुरीय (चौथी) अवस्था है। ध्यान-धारणा सूक्ष्म-शरीरकी और समाधि कारणशरीरकी होती है। तुरीय सबका आधार और प्रकाशक है। उस तत्त्वकी प्राप्तिके लिये ही हम यहाँ इकट्ठे हुए हैं। उसकी प्राप्तिमें अहंता (मैं-पन) और ममता (मेरा-पन) बाधक हैं। अहंता-ममताके त्यागसे परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है। वह परमात्मतत्त्व अवस्थातीत, निरपेक्ष, गुणातीत तत्त्व है।

रावण और हिरण्यकशिपुके राज्यमें भी गर्भपात-जैसा महापाप नहीं हुआ था! आज यह महापाप घर-घर हो रहा है। माँ ही अपनी सन्तानका नाश कर दे तो फिर किससे रक्षाकी आशा करें? बड़े दु:खकी बात है कि ऋषियोंकी सन्तान होकर आज लोग राक्षसोंसे भी नीचे चले गये! अगर संयम रखें तो नसबन्दी, गर्भपात आदि पाप क्यों करने पड़ें।

मेरा जनसंख्या बढ़ाने या घटानेका उद्देश्य नहीं है, प्रत्युत मुक्तिका उद्देश्य है।

× × × ×

राग ही जन्म-मरणका कारण है। राग मिटेगा जीवनका एक उद्देश्य बननेसे, आजकल पढ़ाईका उद्देश्य क्या है—इसका भी मुझे अभीतक ठीक उत्तर मिला नहीं! उद्देश्य बने बिना भटकना मिटेगा नहीं। बचपनमें खेल-कूद अच्छा लगता था। बड़े होनेपर रुपयोंका उद्देश्य हो गया तो सब खेल-कूद छूट गये। ऐसे भगवान्‌का उद्देश्य हो जाय तो कितना लाभ है!

भगवान्‌को अपना मान लो तो सब काम ठीक हो जायगा। भगवान्‌के सिवाय अपना कोई था नहीं, है नहीं, होगा नहीं, हो सकता नहीं। अन्य भावोंकी अपेक्षा मित्रभावमें विलक्षणता है कि अपनेसे छोटे, समान तथा

बड़े सबसे मित्रता हो सकती है। भगवान्ने सिद्ध (निषादराज), साधक (विभीषण) और संसारी (सुग्रीव)—तीनोंको अपना मित्र बनाया। निषादराजने पहले भगवान्से कहा कि हमारे घर पधारो, विभीषणने बादमें कहा और सुग्रीवने कहा ही नहीं! अतः आप कैसे ही हों भगवान्के मित्र बन सकते हैं। परंतु साधक बनकर मित्रता करो, संसारी (भोगी) बनकर नहीं। भगवान्में तो मित्र, माता, पिता, गुरु, बेटा आदि सबकी भूख है! भरतजीमें दास्यभाव भी था, मित्रभाव भी था। खास बात है—***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।'*** सबकी सेवा करो, पर किसीसे कुछ चाहो मत। भगवान्से भी आशा मत रखो।

× × × ×

परमात्माका ज्ञान परमात्मासे अभिन्न होनेपर ही होता है और संसारका ज्ञान संसारसे अलग होनेपर ही होता है—यह बात आप याद कर लें।

संसारको सत्ता-महत्ता देते हुए राग-द्वेष मिटेंगे नहीं और राग-द्वेष मिटे बिना **'वासुदेवः सर्वम्'** का अनुभव होगा नहीं। जिसके भीतर राग नहीं है, वैराग्य है, वही **'वासुदेवः सर्वम्'** को जान सकता है। वैराग्यकी आवश्यकता प्रत्येक साधकको है।

'हमने रुपयोंका त्याग कर दिया है'—यह भाव भी रुपयोंका महत्त्व है। त्याज्य वस्तुका महत्त्व होनेसे ही त्यागका अभिमान आता है। अगर संसारके त्यागका अभिमान हो तो वास्तवमें संसारका तत्त्व जाना नहीं।

श्रोता—वैराग्य कैसे हो?

स्वामीजी—वैराग्य होता है—वैराग्यवान् सन्तका संग करनेसे अथवा उनकी बातें सुननेसे, उनकी पुस्तकें पढ़नेसे। भगवान्में प्रेम हो जाय तो संसारसे वैराग्य हो जायगा।

× × × ×

संसारकी कोई भी वस्तु सुखबुद्धिसे न लें। भोजन करें तो औषधरूपसे करें। किसीसे बात भी करें तो उसमें सुख न लें। सुख लेनेसे परमात्मप्राप्तिकी लगन नहीं होती, संसारमें खर्च हो जाती है। लगनवालेको भगवान्की ओरसे सब चीज मिलती है। अतः लगन बढ़ायें। नामजप और प्रार्थना करें। कोई काम सुखबुद्धिसे न करें।

× × × ×

जैसे आपके मनमें स्वतः-स्वाभाविक यह भाव है कि हम यहाँ स्थायी रहनेवाले नहीं हैं, सत्संगके लिये आये हैं और चले जायँगे। ऐसे ही घरमें रहते हुए यह मान लें कि हम यहाँ आये हैं और चले जायँगे। यहाँ कोई रहनेवाला नहीं है, सब जानेवाले हैं। जितना स्थायीभाव होता है, उतना ही अन्याय होता है।

नहीं सोचो तो शामकी भी मत सोचो और सोचो तो जन्मके बादकी भी सोचो।

शरीरका पता नहीं, जो करना हो जल्दी कर लेना चाहिये।

× × × ×

जैसे शरीरमें हृदय-देश मुख्य है, ऐसे भारत भूमण्डलका हृदय-देश है। इसमें मनुष्य अपनी बहुत जल्दी उन्नति कर सकते हैं। कलियुगमें तो बहुत जल्दी अपना कल्याण कर सकते हैं। भारतमें भी गंगा-यमुनाके बीचका देश विशेष पुण्यकारक है। इसमें पुण्यका फल भी बढ़िया होता है और पापका फल भी!

सन्तवाणी

(साधुवेशमें एक पथिक)

—सब कुछ प्रकृतिमें हो रहा है लेकिन लगता है कि हम कर रहे हैं। यही अशान्तिका कारण है। अन्तमें कहीं भी अपना अधिकार नहीं रहता। सब कुछ छूट जाता है, लोभ, मोह आदि विकार साथ रहते हैं, वे ही दूसरे जन्ममें, जन्मसे जाग्रत् होने लगते हैं। हृदयमें आनन्द हो, बाहर सभीके प्रति प्रेमभाव हो, सबके प्रति मंगलकामना हो तब जीवन सार्थक होता है।

—अवसर मिले तब शान्त, प्रसन्न होकर, मौन होकर द्रष्टा बनो। कुछ न चाहो, अपितु देखो कि परम प्रभुने कितना दिया है। जिसका अभीतक ठीक-ठीक, पूरा-पूरा उपयोग नहीं हो रहा है। जो भी आये उसे स्वीकार कर लो, भले ही प्रतिकूल हो; क्योंकि प्रभुके विधानसे आया है। जो भी आये उसे अपना न मानो, जो नहीं मिला है, उसकी कामना न करो। पुण्य करो, स्वतः वही मिलेगा जो तुम चाहोगे।

जीनेकी अभिलाषा

(पं० श्रीदादूरामजी शर्मा, एम०ए०, 'संस्कृत-हिन्दी')

कालके झंझावातसे पँखुड़ियाँ वृक्षोंसे टूटकर गिर जाती हैं, फूल धूलमें मिल जाते हैं, अधपके फल झड़ पड़ते हैं। चारों ओर मृत्युकी विभीषिका, विनाशका ताण्डव, अस्थिरताका साम्राज्य और उनके बीच मुस्कुराता हुआ उन्नतग्रीव मानव—अपनी अप्रतिम शक्ति और अपराजेय मनोबलके साथ प्रकृतिकी विनाशक लीलाको चुनौती देता हुआ उसे पराभूतकर पता नहीं कबसे उसके साथ संघर्ष करता चला आ रहा है। कितने ही मनुष्य महामारीके शिकार हुए, ज्वालामुखीके भयावह विस्फोटने उनका सर्वस्व भूगर्भमें विलीन कर दिया, बाढ़ उनका सब कुछ बहा ले गयी! पारस्परिक संघर्षने भी मानवजातिका कम विनाश नहीं किया है।

मानव अनादिकालसे संसारकी क्षणभंगुरताको देख रहा है। शास्त्र एवं सन्तोंने भी संसारको मिथ्या बतलाया। बतलायें क्यों न? हँसते-बोलते चेहरे क्षणभरमें न जाने कहाँ चले जाते हैं? हमारा सुनहला संसार, हरा-भरा जीवनोद्यान हमेशाके लिये उजड़ जाता है। बौद्ध-दर्शनने सांसारिक दुःखोंको शाश्वत बतलाया और उनसे बचनेके लिये संसारको त्यागकर भिक्षु-जीवन व्यतीत करनेका सुझाव दिया। सभी धर्मोंने संसारसे असंगताकी—उसके सम्बन्धोंमें आसक्त न होनेकी शिक्षा दी है। यह सब होते हुए भी मानवके भीतर पता नहीं, ऐसी कौन-सी प्रबल इच्छाशक्ति है, जिसने उसे जीवनके प्रति उदासीन नहीं होने दिया; संसारके प्रति उसके हृदयमें प्रवाहित होनेवाले प्रेमके स्रोतको सूखने नहीं दिया।

मानवकी यह अदम्य इच्छाशक्ति ही 'जिजीविषा' या जीनेकी अभिलाषा कहलाती है, जिससे अनुप्राणित होकर वह जीना चाहता है—अपराजेय मृत्युके भयको जीतकर, अपरिहार्य विनाशको चुनौती देकर संसारके रागात्मक सम्बन्धोंकी समाप्तिसे भग्न हृदयको जोड़कर! इसी जिजीविषाका सशक्त और कभी मन्द न पड़नेवाला गम्भीर उद्घोष ऋषिके कण्ठसे भी फूट पड़ा था—**'मृत्योर्माऽमृतं गमय'**—'प्रभो! मुझे मृत्युसे अमरताकी ओर ले चलो।' कालकी अनन्ततामें औसतन पचास-साठ या अधिकतम सौ-सवा सौ साल जीनेवाले अल्पायु मानवकी यह अमरताकी कामना सामान्यतः कुछ उपहासास्पद-सी लगती है। पर वह अमरता क्या है, जिसकी ऋषिने कामना की थी? उसने अमरता किसे माना है?

सभीमें जीनेकी उत्कट इच्छा होती है। सभी संसारमें बने रहना चाहते हैं। कोई मरना नहीं चाहता। सभी ओरसे निराश, प्रताड़ित और घसीटते हुए जीवन-पथपर चलनेवाला मनुष्य भी थोड़ा और जी लेना चाहता है। वह अचानक उत्पन्न होनेवाले मृत्युके कारणोंसे संघर्ष करता है। लम्बी बीमारीसे आक्रान्त रोगी अथवा मृत्युशय्यापर पड़े हुए वृद्धसे भी, जो शायद ही आनेवाली उषाको देख सके, कहा जाय—'अच्छा हो, अब ईश्वर आपको जल्दी खींच लें, ताकि इस असह्य वेदनासे आपको छुटकारा मिले' तो उसकी मुख-मुद्रामें निश्चय ही अन्तर आ जायगा, भले ही वह इस बातका स्पष्ट विरोध न कर सके। हम कितने ही आत्मीय जनोंकी शवयात्रामें गये हैं। जाते समय हमारे मनपर विषादका जो गम्भीर भाव रहता है, वह श्मशानसे लौटते समय काफी कम हो जाता है। जिस परम आत्मीय जनकी मृत्युपर हमारा जीवन भी हमें भार-स्वरूप लग रहा था, हम सोच रहे थे कि उसके बिना हम कैसे जी सकेंगे? उसके चिर-वियोगजनित सन्तापको भी कुछ दिनों बाद भूलकर संसारके नानाविध कार्योंमें उलझ जाते हैं। मृत्युकी घटनाओंको लगातार देखते-देखते तो हमारे मनपर उनका हल्का और क्षणिक असर ही हो पाता है। दूसरोंकी मृत्युके तीक्ष्ण शर हमारी जिजीविषाके दुर्भेद्य कवचको नहीं भेद पाते। तभी तो महाभारतकारने कहा है कि 'प्रतिदिन प्राणी मौतके मुँहमें जा रहे हैं, फिर भी दूसरे संसारमें बने रहना चाहते हैं, इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या हो सकता है।'

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

(महाभारत, वनपर्व ३१३। ११६)

और विदुरने धृतराष्ट्रसे कहा था—

अहो महीयसी जन्तोर्जीविताशा यया भवान्।
भीमापवर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत्॥

(श्रीमद्भा० १।१३।२२)

यौवन और सौन्दर्यसे समन्वित इस भौतिक पिण्ड (शरीर)-की विभिन्न आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये धनका संग्रह करना, उसके लिये अधिकाधिक सुख-भोगके साधन जुटाना अर्थात् जीवनको आनन्दपूर्वक जीनेकी इच्छा—जिजीविषाका दूसरा भौतिकवादी स्वरूप है। भौतिकवाद निरीश्वरवादी है; क्योंकि वह सृष्टिको स्वतः निर्मित, विकसित और संचालित मानता है। वह व्यक्तिको ही कर्ता और भोक्ता मानता है।

इस भौतिकवादके भी दो भेद होते हैं—१-व्यक्तिवादी भौतिकवाद और २-समाजवादी भौतिकवाद। व्यक्तिवादी भौतिकवाद व्यक्तिको साध्य मानता है और समाजको साधन। इसका झुकाव प्रकृतिवादकी ओर है। यह मानवके भीतर स्थित कामकी बलवती मूल प्रवृत्तिको संयत रखनेके नहीं, अपितु उसकी येन-केन-प्रकारेण पूर्ति करनेके पक्षमें है। धर्मका वह कट्टर विरोधी है और समाजके बन्धनोंको वह बलपूर्वक तोड़ डालना चाहता है। अधिकारका भाव उसमें प्रबल है और कर्तव्य-भावनाकी पूर्णतः उपेक्षा! व्यक्तियोंकी स्वार्थसमन्वित जिजीविषाका टकराव ही समाजमें हो रहे वर्तमान संघर्षका कारण है; क्योंकि उससे प्रेरित होकर मनुष्य अपनी व्यक्तिगत क्षमताओंका प्रयोग समाजके शोषणद्वारा अपने लिये सुखके साधन जुटानेमें करता है। वर्तमान महाजनी सभ्यता या वणिग्वृत्तिका मूलाधार यही है।

समाजवादी भौतिकवादमें मनुष्य अपनी शक्तिको समाज-निर्माणमें लगा देता है और उसकी योग्यता उसके साथ-साथ समाजका भी हित-साधन करती है। यह अनाध्यात्मिक समाजवादी दर्शन भी अधूरा ही है; क्योंकि जब हम समाजकी बात करते हैं तो हमारे मस्तिष्कमें किसी देश-विशेष, प्रान्त-विशेष अथवा वर्ग-विशेषका खाका खिंच जाता है। **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** या विश्वबन्धुत्व (World Brotherhood)-तक हमारी संकीर्ण विचारधाराकी पहुँच नहीं हो पाती। भौतिकवादका अर्थ है—स्वार्थलिप्सा, अर्थात् दूसरोंकी जिजीविषाको कुचलकर अपनी जिजीविषाकी पूर्तिकी चेष्टा करना।

इस भौतिकवादी जिजीविषाका लक्ष्य है—अपने वर्तमानको सँवारना। यह भूतकी उपेक्षा करके और भविष्यके प्रति निश्चिन्त रहकर अनिश्चित किंवा भ्रामक भावी स्वर्गसुखकी प्राप्तिके लिये अपने वर्तमान लौकिक सुखोंकी अवहेलना करनेवालोंका उपहास करती है। उसने हमारे अधिकाधिक उच्छृंखल इन्द्रिय-सुख-भोगोंमें व्यवधान पैदा करनेवाले अथवा आवश्यक अंकुश लगानेवाले धर्माचरण—त्याग, इन्द्रिय-संयम आदिके प्रति विद्रोहका स्वर ऊँचा किया है, किंतु यह बाहरसे जितना आकर्षक है, भीतरसे उतना ही खोखला भी है। इसीने विज्ञानको विनाशकी दिशामें प्रेरित करके विश्वयुद्धोंका भयावह दृश्य दिखलाया है, मानवकी प्रसुप्त पशुताको जगाया है और आज तीसरे विश्वयुद्धकी सर्वविध्वंसकारी सम्भावनाने मानव-जातिको चिन्तातुर कर दिया है।

'लोक-हितके लिये जीवन-धारण करनेकी इच्छा'—जिजीविषाका तीसरा प्रकार है। लोकरंजक महात्मा पुरुष लोकहितके आगे स्वर्ग-अपवर्ग—सबको तुच्छ मानता है। रन्तिदेवने कहा ही था—

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परा-
मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥

(श्रीमद्भा० ९।२१।१२)

'न तो मैं ईश्वरसे मोक्ष चाहता हूँ और न सांसारिक वैभव; अपितु चाहता हूँ कि सभी प्राणियोंका दुःख मुझमें आ जाय, जिससे वे सभी सुखी हो जायँ।' महात्माओंके हृदयमें सभी प्राणियोंके प्रति करुणाका सहज उन्मेष ही इस जिजीविषाका जनक है। ऐसा महापुरुष जीयेगा तो परोपकारके लिये और मरेगा तो परोपकारके लिये ही। ऐसी जिजीविषा लोक-कल्याणकारिणी मनुष्यताकी जननी है।

दिलीपके देखते-देखते सिंहने नन्दिनी गौको धर दबोचा। राजाने अपने तरकससे सिंहको मारनेके लिये बाण निकालना चाहा; किंतु यह क्या? उनका हाथ वहीं अटक गया! उनकी सारी चेष्टाएँ व्यर्थ, सभी प्रयत्न निष्फल!! उन्हें एक तरकीब सूझी। उन्होंने सिंहसे कहा—'भैया सिंह! तुम अपनी भूख ही तो मिटाना चाहते हो; तो लो, मैं अपने

शरीरको इसके बदले तुम्हारे आहारके लिये देता हूँ। इसका नवजात बछड़ा कितनी आतुरतासे रँभाते हुए इस सन्ध्याकालमें इसकी प्रतीक्षा करता होगा, इसलिये इसे छोड़ दो—

स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं
देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद।
दिनावसानोत्सुकबालवत्सा
विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः॥

(रघुवंश २।४५)

सिंहको हँसी आ गयी। उसने कहा—'राजन्! तुम कितने मूर्ख हो, जो इस तुच्छ गायके लिये एकछत्र साम्राज्य, नवयौवन और सुन्दर शरीर सब कुछ त्यागनेको तैयार हो'—

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं
नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्
विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्॥

(रघुवंश २।४७)

राजाने उत्तर दिया—'सिंह! तुम ठीक ही कहते हो! धन, यौवन और सुन्दरता—ये तीन ही तो सांसारिक सुखके मापदण्ड हैं, किंतु क्या ये स्थायी हैं? क्या दुर्भाग्य हमें धनसे वंचित नहीं कर देता? क्या बुढ़ापा हमारे यौवन और सौन्दर्यको हमेशाके लिये नहीं छीन लेता? ये सब भौतिक उपलब्धियाँ हैं, जिनका विनाश अवश्यम्भावी है। मेरे-जैसे मनीषी तो अमर यशःशरीर चाहते हैं। इसलिये तुम इस नश्वर भौतिक पिण्डको खाकर मेरे अमर यशःशरीरकी रक्षा करो—

किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहं
यशःशरीरे भव मे दयालुः।
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां
पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु॥

(रघुवंश २।५७)

और सिंहकी भौतिकवादी पशुता दिलीपकी प्राणिमात्रकी रक्षा करनेवाली उदात्त मानवताके आगे नतमस्तक हो गयी। यही पशुतापर मानवताकी विजय है।

यह लोकोपकारी शाश्वत यशःशरीर पा लेना ही अमरता है। मानवकी इस जिजीविषाको बड़े-बड़े प्राकृतिक और मनुष्यकृत विप्लव न मिटा सके, मृत्युका कराल चक्र उसे न पीस सका और अनन्त शून्यमें उसने मानवकी अमरताकी अमिट लकीर खींच दी। इसी अप्रतिम शक्तिकी ऋषिने प्रभुसे कामना की थी और सचमुच इस जिजीविषाकी सिद्धिकर वह अमर हो गया। सरस्वतीके कण्ठहारके कभी न मुरझानेवाले काव्य-कुसुमोंसे अपने व्यक्तित्वको सुरभित बना देनेवाले कालिदास आदि कविगण भी इन्हीं कारणोंसे अमर हो गये।

अब जिजीविषाके कारणोंपर भी विचार कर लेना समीचीन होगा। जिजीविषाका मूल तत्त्व 'प्रेम' है, जो तीन रूपोंमें दिखायी देता है—१-अनुराग, २-मोह और ३-करुणा। माता-पिता और स्त्री-पुत्रादि स्वजनोंके प्रति जो सहज प्रेम होता है, उसे 'अनुराग' कहा जाता है। अनुराग निश्छल, निःस्वार्थ पारस्परिक प्रेमको कहा जाता है, जिसमें कर्तव्योंकी प्रधानता होती है, अधिकारोंका द्वन्द्व नहीं। यही अनुराग मनुष्यकी जीवन-यात्राका सबसे बड़ा पाथेय है, सम्बल है। इसीसे वह कर्मकी प्रेरणा और स्फूर्ति पाता है, कठिनाइयोंसे जूझकर उनपर विजय पानेका उत्साह और शक्ति पाता है। जिस दिन इस अनुरागरूपी मूलका उच्छेद हुआ तो समझिये कि उसी दिन जिजीविषाका यह लहलहाता हुआ वृक्ष भहराकर गिर पड़ेगा या अपनी सारी सरसता खोकर सूख जायगा। सर्वभौतिकसाधनसम्पन्न पाश्चात्य देशोंमें आत्महत्याओंकी निरन्तर चिन्ताजनक वृद्धिका रहस्य यही है। अनुरागमें, अनुरागी व्यक्तिमें विवेक और उदारताका भाव बराबर बना रहता है। यदि मैं अपने पुत्रपर अनुराग रखता हूँ तो उसे सत्कार्योंके लिये तो प्रोत्साहित

करूँगा, किंतु उसमें दुष्प्रवृत्तियोंको पनपने नहीं दूँगा और यदि उनके उन्मूलनके लिये आवश्यक हुआ तो मैं कठोरता भी धारण कर लूँगा। जैसे अपने शरीरके फोड़ेको निर्ममतासे चीरकर उसका मवाद बहा देना ही हमारे लिये हितकर होता है, उसी तरह यदि मैं अपने पुत्रसे सच्चा स्नेह या अनुराग रखता हूँ तो सभी बच्चोंके प्रति मेरे मनमें स्नेहका भाव रहेगा। जो अपनी माँसे सच्चा अनुराग रखता है, वह दूसरेकी माँका तिरस्कार कैसे कर सकता है?

प्रेमका दूसरा रूप है—मोह। अपने शरीर, पुत्र-कलत्र आदि सांसारिक वस्तुओंके प्रति विवेकहीन या अन्धकार और अन्योंके प्रति अनुदारतापूर्ण व्यवहार ही 'मोह' कहलाता है। मिथ्या आशा और अहंकारमिश्रित जड़ बुद्धि ही मोहका कारण है। गीताके १६वें अध्यायमें ऐसे लोगोंको 'असुर' कहा है, जो आशाके सैकड़ों पाशोंमें जकड़े हैं, काम-क्रोध-परायण हैं और शिश्नोदरकी पूर्तिके लिये अन्यायपूर्वक अर्थोपार्जनमें लगे हैं—

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्॥

(गीता १६। १२)

तथा—

जो '**ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी**' का भाव रखते हैं अथवा '***मैं अरु मोर तोर तैं***' की भेदबुद्धि या जड़ता (माया)-से ग्रस्त हैं। मोहमूल या जडतामयी जिजीविषा आत्मकल्याण और लोक-कल्याण दोनोंके लिये विघातक है। समाजमें पतनोन्मुख प्रवृत्तियों—जैसे अर्थसंग्रह, परस्पर वैर, स्वार्थ-लिप्सा आदिका कारण यही है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

लोकः स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टि-
र्योऽर्थान् समीहेत निकामकामः।
अन्योऽन्यवैरः सुखलेशहेतो-
रनन्तदुःखं च न वेद मूढः॥

(५।५।१६)

'सांसारिक भोगोंकी प्राप्तिमें अनवरत प्रयत्नशील जनसमुदायने आत्म-कल्याणकी दृष्टि खो दी है। वह मोहके अन्धकारमें भटक रहा है। थोड़ेसे सुखके लिये परस्पर वैर बढ़ रहा है, किंतु वह मोहग्रस्त प्राणी संसारके अनन्त या शाश्वत दुःखोंको नहीं जानता।'

महापुरुषोंके हृदयमें प्राणिमात्रके लिये जो सहज दया और उपकारसे मिश्रित प्रेमका भाव रहता है, उसे 'करुणा' कहते हैं। परलोक-कल्याण उससे भी बढ़कर है। श्रीराम कहते हैं—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

(उत्तररामचरित)

'लोककल्याणके लिये अपना स्वाभाविक स्नेह, दया या करुणा, सुख और सीताको भी त्यागनेमें मुझे कोई व्यथा न होगी।'

इस प्रेममूला जिजीविषासे उत्पन्न वृक्ष है—आस्था। इसकी दो शाखाएँ हैं—१-श्रद्धा और २-विश्वास और इसका फल है—सामाजिक अभ्युदय। यदि हम वैयक्तिक पोषणके लिये सामाजिक अभ्युदयके मधुर फलको पाना चाहते हैं तो हमें जिजीविषाके पेड़की दोनों जड़ों—अनुराग और करुणाको सींचकर पुष्ट करना होगा और मोहका मूलोच्छेद करना होगा; क्योंकि मोहमूलक जिजीविषावाले भौतिक-साधन-सम्पन्न व्यक्तिको क्षणिक सुख-भोगके बाद मिलनेवाला अवकाशका समय मानो काटनेके लिये दौड़ता है। वह एक क्षण भी एकान्तमें अथवा अपनी संगतिमें नहीं रहना चाहता। उसकी सारी वृत्तियाँ, सारी चेष्टाएँ बहिर्मुखी हो जाती हैं। वह अपनेसे, अपने एकान्तसे भयभीत होकर पलायनवादका सहारा लेता है। आज कर्तव्योंकी प्रायः पूर्णतः उपेक्षा और अधिकारोंका बीभत्स संघर्ष भी इसी जिजीविषाका परिणाम है। मनुष्यका अपने उदात्त मानवीय गुणोंकी उपेक्षा तथा अमरताके सर्वोत्कृष्ट लक्ष्यका विस्मरण करके अपनी विराट्ताको क्षुद्रतामें बदल देनेवाला यह स्वार्थ-संकीर्ण व्यवहार क्या आत्मावसादन या आत्महनन नहीं है?

आज निर्धनको उसकी विपन्नता निगले जा रही है और सम्पन्नको उसकी अतृप्त वासना! सन्तोष जो वास्तविक सुखका मूल है, मानो इस दुनियासे सदाके लिये चल बसा! चारों ओर अनास्था, अविश्वास, असन्तोष और संघर्षकी घुटनसे भरा विक्षुब्ध वातावरण और उनके बीच पड़ी आधुनिक मानवकी रुग्ण जिजीविषा!! क्या हम आशा करें कि हमारी मानवजाति विषय-सेवनके कुपथ्यको त्यागकर अध्यात्मकी ओषधिसे उसे पुनः स्वस्थ करनेकी चेष्टा करेगी?

अतिशय भौतिकवादसे ऊबकर अध्यात्मकी ओर लौटनेवाले पाश्चात्य-समाजने हमारे हृदयमें आशाकी ज्योति तो जला दी है, अब हमें चेतना है।

आध्यात्मिक जीवन

(श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज)

यह आध्यात्मिक जीवनका सत्संग है। आध्यात्मिक जीवनका तात्पर्य या प्रयोजन यही है कि अपनी आत्माके अन्दर जीनेका रास्ता मिल जाय। अपनी आत्मामें ऐसे जीवन चला जाय कि जिससे वह बिखरा हुआ बाहरका मन अन्दर एकत्रित हो जाय अर्थात् संसारसे बिछुड़कर केवल अपने-आपमें एकाग्र हो जाय। जैसे नींदमें मन एकाग्र हो जाता है तो मनुष्यको बहुत सुख और शान्ति प्राप्त होती है। कारण कि उस समय मनके अन्दर संसारकी कोई भी उलझन नहीं होती है और मन संसारको ठुकराकर ही नींदमें आता है। नींदमें सोये हुएको इतना आनन्द होता है कि यदि कोई उसको नींदसे जगा दे तो वह नींदसे उठनेपर दुःख मानता है; क्योंकि नींदसे उठनेपर उसका सुख बिगड़ता है। नींदके समय किसी प्रकारकी कोई शंका, भय एवं बन्धन नहीं होता है और श्वास भी बड़े आरामसे चलता है। इसी प्रकार जाग्रतावस्थामें भी अपने मनको सारे संसारसे अलग करके अपनी आत्मामें अर्थात् अपने-आपमें एकत्रित करना है। तब जैसे निद्रामें सुखका अनुभव होता है, इसी प्रकार जागतेमें भी वह सुख हमारे साथ बना रहेगा।

अपनी आत्माका यही सुख जो अन्तमें सदा बना रहनेवाला है, कल्याणरूपसे हमारे अनुभवमें आता रहेगा। परंतु जागते-जागते ऐसा सुख अनुभव करनेके लिये सारे संसारसे मनको मुक्त करना पड़ेगा अर्थात् मनको संसारके सकल बन्धनोंके जालसे छुड़ाना होगा। यही बन्धनोंसे छूटनारूप मुक्ति है और ऐसी मुक्ति होनेपर यही नित्य सनातन सुख, सदा बना रहनेवालेके रूपमें हमें प्राप्त होगा।

श्रद्धा रख करके, किसी दूसरेसे सुन करके या पुस्तकोंमें पढ़ करके अपने जीवनको देखे कि इसका अन्त कहाँ है और हमारा हित किसमें है? आध्यात्मिक जीवनकी परख करके इसकी पहचान करे और नियमोंका पालन करे। ऐसा करनेके लिये अपने आँख, कान एवं रसना (जिह्वा)-को भी रोके और खाने-पीनेकी आदतरूप शक्तिपर भी संयम (काबू) करे। दूसरोंके सुखको देखकर अपने मनमें चिढ़े नहीं अर्थात् जले नहीं अपितु दूसरोंको दुःखी देखकर उनके प्रति दयाभाव रखे, दूसरोंके गुणोंको तो पहचाने तथा उनकी प्रशंसा भी करे और अवगुण किसीके भी न देखे अर्थात् दूसरोंके अवगुणों और पापोंकी ओर ध्यान ही न दे। थोड़ा अपने-आप दुःख सहन कर ले, परंतु बाहर संसारमें किसीका भी बुरा करनेकी न सोचे, न करे। इस प्रकार यह सब अपना आत्म-संयम है।

मनुष्य उद्वेग (जोश)-में केवल दूसरेका बुरा करनेकी सोचता है। दूसरेका अहित तो होगा या नहीं होगा, इसके बारेमें अभी कुछ भी नहीं पता, परंतु उसका अपना अहित इस प्रकारकी सोचसे अवश्य हो जायगा। हिंसा, उग्रता या कोई मिथ्या (खोटे) काम करनेवाला मनुष्य अपने जीवन-कालमें सुखी नहीं हो पाता और न ही मर करके सुखी होता है।

जन्मसे मनुष्यको जो जीवन मिलता है वह भौतिक जीवन है, जिसमें बाहरसे संसारमें ही जीनेका रास्ता है। संसारमें जबसे बालक (बच्चा) उत्पन्न होता है तो उसका जीवन बाहर संसारका ही है अर्थात् बाहर संसारमें ही बहता रहता है; क्योंकि उसकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, जिह्वा (रसना) और त्वचा (चमड़ी) बाहरकी तरफ खुली हुई होती हैं। इन इन्द्रियोंसे वह बाहर ही सबको पहचानता, देखता और सुनता है।

इसलिये बाहरके प्राणी एवं पदार्थोंको तो सब जानते हैं, परंतु उनको अन्दरके बारेमें कुछ भी पता नहीं है अर्थात् मनुष्यके अन्दर जो आत्माका सुख अज्ञानके पर्देमें रहता है अर्थात् छुपा रहता है, कारण कि इन्द्रियाँ बाहरकी ओर खुली हुई हैं। इसीके कारणसे रोग, शोक एवं व्याधियाँ आती हैं।

संसारमें जीव बेचारा बचपनसे ही बाहर बह रहा है। इस संसारमें ही थोड़ा सुख एवं अपनी भलाई समझ करके वह बाहरकी तरफ इतना संलग्न हो जाता है कि उन तुच्छ (सारहीन एवं थोड़े) सुखोंको पानेके लिये वह अपने प्राणतक भी त्यागनेको तैयार हो जाता है। उसके मनमें कभी यह विचार आता ही नहीं कि जिस संसारकी ओर मैं लग रहा हूँ, उसका अन्तिम फल क्या होगा? इस संसारके सुखमें कितनी मिठास है और यह सदा बनी

रहनेवाली भी है या नहीं और अन्तमें इसकी समाप्ति कहाँ है?

इसका तात्पर्य है कि उसके मनमें अविद्याका पता पड़ा हुआ है। जीव इस अविद्याके इतने चक्कर (घेरे)-में पड़ गया है कि अब उधरसे वापस भी नहीं आ सकता; क्योंकि प्रकृति (अविद्या)-ने शक्तिरूपसे उसको जकड़ रखा है और जीव भी उसीमें घूमता रहता है। उस अविद्याका बन्धन इतना बढ़ गया है कि उसको छोड़नेमें भी डर लगता है कि यदि मैं इस बन्धनसे किसी प्रकार छूट भी गया, तो पता नहीं कि मेरा क्या हो जायगा? वह जीवनभर इसी सोचमें पड़ा रहता है। वह अपने बच्चोंके लिये भी चिन्ता करता रहता है और अपने व्यापार-धन्धोंको चलानेके बारेमें भी सोचमें पड़ा रहता है। वह अपने स्वास्थ्यके लिये भी सोचता रहता है। अत: इस प्रकार हर समयकी सोचसे मनकी भटकी हुई शक्ति मस्तिष्कके रोग ही पैदा करेगी एवं दिलका दौरा बन्द करेगी। जिस समय ये बीमारियाँ हो गयीं तो ऐसी अवस्थामें चाहे आपके पास करोड़ों-अरबों रुपये हैं, वे आपके लिये किसी भी काममें आनेवाले नहीं। इस प्रकार सारी आयुके जमा किये हुए रुपये-पैसे (धन-दौलत) अन्तमें उसे कोई सुख नहीं दे पाते हैं और शरीर छूटनेसे पहले ही उसका साथ छोड़ देते हैं।

आँखें बन्द होनेपर मनुष्यको कोई पता नहीं चलता कि संसारमें रूप-रंग भी होते हैं। जब कान बन्द हो गये तो बाहरकी आवाजोंके बारेमें कुछ भी पता नहीं रहता कि आवाजें भी कुछ सुननेके लिये होती हैं। इस प्रकार देखने एवं सुननेसे होनेवाली शंका एवं भय भी नहीं रहते। बाहरके सुगन्ध एवं दुर्गन्ध लेनेके लिये नाक भी कुछ काम नहीं करती। उस समय नींदमें जिह्वाका भी कुछ काम नहीं रहता और चमड़ी भी स्पर्श करना (छूना) बन्द कर देती है। यदि यही अवस्था ध्यानमें जागते-जागते हो जाय और बाहर बिखरी हुई शक्तिका प्रवाह अपने अन्दर बहुत नजदीकसे हो जाय अर्थात् जागते-जागते प्राण-शक्ति (जीवनी-शक्ति) अपने अन्दर एकत्रित (इकट्ठी) हो जाय तो उस मनुष्यको अपनी आत्मामें बहुत सुख (आनन्द) मिलता है। ऐसा सुख प्राप्त होनेकी अवस्थामें वह मन-ही-मनमें कहता है कि 'हे भगवन्! यह मेरा आनन्द कहीं मेरेसे बिछुड़ नहीं जाय' अर्थात् छूट नहीं जाय। इसे मोक्षकी अवस्था कहते हैं।

इस मोक्षकी अवस्थाको पानेके लिये मनुष्य थोड़ा ध्यानमें बैठकर विचार जगाये। विचार जगानेके लिये अपने दिनभरके किये गये कर्मोंको देखने लग जाय कि 'मैं क्या कर्म करता हूँ एवं मुझे कैसे कर्म करने चाहिये, मैं किस प्रकारसे संसारमें अपना जीवन व्यतीत कर रहा हूँ, मैं कितना भोजन खाता हूँ एवं कितना भोजन मुझे खाना चाहिये, कितना सोता हूँ एवं कितना मुझे सोना चाहिये आदि-आदि।' यह भी अपने विचारमें लाये कि थोड़ा आदतके अनुसार मेरेसे क्या कर्म बन गया है और वह जो आदतसे कर्म हो गया है, क्या वह अच्छा हुआ है या बुरा हुआ है? यदि आदतसे बुरा कर्म हुआ है, तो अपने मनमें संकल्प करे कि भविष्यमें मुझे उस बुरे कर्मसे बचना है और अवसर आनेपर स्मृति ठिकाने रखते हुए उससे बचनेका यत्न भी करना है।

केवल मनमें संकल्प करनेसे ही आदतोंके रास्तेसे नहीं टला जा सकता। इसके लिये स्मृति रखते हुए हिम्मतको भी अपनाना पड़ता है, ताकि मौका आनेपर आदतसे होते हुए बुरे कर्मोंसे बचा जा सके तथा उस समय सही कर्म भी बन पाये। श्रद्धासे अपनाया गया थोड़ा धर्मका रास्ता यही है कि अपने जीवनको परखना शुरू करे कि मेरे जीवनकी गाड़ी किस लाइनपर चल रही है? अन्दर नजर खुलनेसे अन्दरके सत्योंको पहचाननेवाली बुद्धि जाग जायगी और यही बुद्धि अविद्याको समाप्त करेगी, जिस अविद्याने अपनी आत्माके सुखको छिपा रखा है। अन्दर निगाह खुलनेपर वह विचार करने लगेगा कि मैं बाहर दूसरोंके साथ किस प्रकार बोलता हूँ और मुझे कैसे बोलना चाहिये? भविष्यमें कुछ अच्छे आचरणके बारेमें भी सीख ले कि कैसे चलना चाहिये। थोड़ा अपने-आपको समझाना शुरू करे, अपने कर्तव्यको पहचानना शुरू करे और फिर उसके अनुसार भली प्रकारसे संसारमें चलनेकी शिक्षा भी ग्रहण कर ले। यदि आपने चलना शुरू कर दिया तो समझो आध्यात्मिक जीवनका बीज तो आपके अन्दर पड़ गया है। अपनी आत्मामें जीनेका रास्ता तो खुल गया है और यह रास्ता चलते-चलते वहाँतक आपको ले जायगा, जहाँ पहुँचनेपर परमपदकी प्राप्ति होती है।

भौतिक-जीवनकी जितनी भी व्याधियाँ और दुःख हैं, चाहे वे देह, मन या आत्माके हों, उन सबको शान्त करनेके लिये अन्दरका अपना एक उपाय है और इन बीमारियोंका उपचार बाहरकी कोई भी दूसरी दवा नहीं कर सकती। इन सब दुःखोंको दूर करनेके लिये बस एक ही चिकित्सा (इलाज) है कि जो वस्तु जहाँ है, वहींपर उसको पटक दे और पटक करके अपने मनसे उसको उतार करके ऐसे भूल जाय कि जैसे हम कभी उस वस्तुको जानते ही नहीं थे। जब वह वस्तु मनसे उतर गयी तो मन उसको भूलकर अपने अन्दर ही लौटना शुरू कर देगा और जो प्राण-शक्तिके बाहर बहाव एवं भटकनेसे दुःख हो रहा था, वह दुःख मनके अन्दर एकत्रित होनेसे सुखमें बदल जायगा। दुःखकी जड़ ही बाहर भटका हुआ मन है। मनके बाहर भटकनेसे वह अन्दरसे इतना खोखला हो जायगा कि उसकी देहके अंग भी ठीक कार्य नहीं करेंगे।

देहके अंग शक्ति चाहेंगे, जो कि प्राणके ठीक चलनेसे ही प्राप्त होती है। मनमें सोच एवं चिन्ता होनेसे श्वास रुक जायगा एवं पूरा श्वास शरीरमें नहीं चल पायेगा। सारकी सोचों एवं चक्करोंमें पड़े हुए प्राणीका श्वास हमेशा घुट-घुटकर ही चलता है अर्थात् सुखपूर्वक नहीं चलता। वही मनुष्य जब नींदमें होता है तो बड़े लम्बे-लम्बे खर्राटे मारता है, कारण कि वहाँपर ज्ञानदेव बाहरसे स्वतन्त्र होकर रोम-रोमतक श्वास खींच रहा होता है। इसीलिये वह प्रातःकाल ताजा होकर उठता है। नींदमें उस प्राण-शक्तिका प्रवाह संसारसे हट करके अपने मनके अन्दर हो जानेसे उसका आनन्द आने लगता है। यदि चिन्ता (फिक्र)-से नींद ही आनी बन्द हो जाय तो नींद ताजगी एवं सुख कैसे और कहाँतक देगी? फिर आप सुख पानेके लिये क्या करोगे?

जैसे कि कहीं एक धनी व्यक्ति था। उसको अपने धन आदिकी चिन्ता (फिक्र)-में नींद आनी भी बन्द हो गयी। उसने आसपास और दूरतक भी जनतामें प्रकट रूपसे इस बातको फैला दिया कि जो मेरे रोगकी चिकित्सा कर देगा, जिससे मुझको नींद आनी शुरू हो जाय तो मैं उसे मुँह-माँगा धन दूँगा। डॉक्टर-पर-डॉक्टर आने लगे, परंतु किसीसे भी इलाज नहीं हो पाया। फिर किसी एक व्यक्तिने बताया कि आप अपनी सारी सम्पत्तिका प्रबन्ध दूसरोंको अर्पण (सौंप) करके उसके बारेमें विचारतक भी मत करो। तब ऐसा करनेपर आपको नींद अवश्य आ जायगी। आप इस संसारके जालसे पीछे हट करके 'हरिहर' की भक्ति करो। संस्कृतमें 'हरिहर' शब्दका अर्थ यह है कि सब संसारसे अपने-आपको हर लेना अर्थात् संसारसे निवृत्त हो जाना या संसारसे विरक्त हो जाना (वैराग्यवान् हो जाना)। इसलिये इस हरके द्वारपर पहले पहुँचनेका यत्न करो। यदि यह आप कर सको, तो आप बच जाओगे।

पहले तो उस धनी व्यक्तिको उस व्यक्तिके कथनसे दुःख हुआ कि व्यक्ति मेरे जीवन-भरमें कमाये हुए सुखके साधनरूप धनको छोड़नेके लिये कह रहा है। परंतु फिर उसने अपने मनमें विचार किया कि यदि मुझे इसी तरहसे दुःखी होना एवं मरना ही है तो यह पैसा फिर क्या करेगा अर्थात् यह धन-सम्पत्ति सब मेरे लिये व्यर्थका बोझा ही है। इस प्रकार विचार करनेपर उसके मनमें ज्ञान उत्पन्न हुआ और उसने अपनी सारी सम्पत्ति अपने बच्चोंके नाम करवा दी। वे सब उस सम्पत्ति (जायदाद)-के ट्रस्टी बना दिये गये और वह स्वयं आजाद हो गया। ऐसा होनेपर उसको नींद भी आने लग गयी और अन्तमें उसका स्वास्थ्य भी ठीक हो गया और कई वर्षोंतक जीवित भी रहा।

इस ऊपर कहे हुए दृष्टान्तका तात्पर्य यही है कि बाहर भटके हुए मनको नींद तो शान्त कर देगी, परंतु अन्तमें यदि यह नींद ही आनी बन्द हो गयी तो फिर क्या होगा? ऐसी अवस्थामें फिर मृत्युकी ही शरण लेनी पड़ेगी और ऐसे दुःखी मनुष्य जहर खाकर ही मरना चाहेंगे। इस दुःखसे बचनेके लिये एकान्तमें बैठ करके थोड़ा ध्यान करना कि जिस धन आदिके लिये हमने चिन्ता (फिक्र)-की और संसारमें इतने उलझे रहे, वह हमारा कितना भला (कल्याण) करनेवाला है? फिर ध्यानमें पता लगेगा कि लाभ तो वह क्या करेगा, अन्तमें हाय-हाय करके दुःख दिखा-दिखा कर ही मारेगा। अविद्याके कारण मनुष्यको इस सत्यका पता ही नहीं लग पाता। इस जीवनके सत्यको पानेके लिये ध्यान करे और ध्यानमें जिधर मन जा रहा है, जिन-जिन वस्तुओंकी कामना (इच्छा) कर रहा है, उन सबको ही पहचाने। जैसे-जैसे मन बाँध रहा है एवं देहके रोग उत्पन्न कर रहा है; उन सारे रोगोंको पहले अपने अन्दर समझ करके इनकी जड़ काटनेका यत्न करे। सब

रोगोंकी जड़ ये दस बन्धन ही हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—दृष्टि, संशय, शीलव्रतपरामर्श, राग, द्वेष, रूपराग, अरूपराग, मान, मोह एवं अविद्या।

उदाहरणके लिये रातके समय आप भोजन आदि करके आरामसे बैठे हैं। उस समय आपके मनमें एक नजर बन गयी कि वह मनुष्य मेरेको सुखसे जीने नहीं देगा। उस मनुष्यकी अपने मनमें ऐसी दृष्टि बनते ही इस दृष्टिने झटपट अपनी सृष्टि रच दी। दृष्टिने ही मनके अन्दर उसके बारेमें द्वेषकी आग जला दी, क्रोध आ गया, मान भड़क गया एवं सोचमें पड़ गया। अब सोचमें पड़े हुएको कोई पता नहीं है कि पास (नजदीक)-में रेडियो भी बज रहा है और क्या-क्या हो रहा है। वह तो एक अपनी धुनमें खोये जा रहा है। उसको यह भी पता नहीं कि उसकी नींदके घण्टे निकलते जा रहे हैं। वह लेटना भी चाहता है, परंतु क्या करे? नींद ही नहीं आती। ऐसी अवस्थामें यदि वह अपना हित चाहता है तो धर्मात्मा बन जाय, अपने अन्दर विचार जगाये एवं द्वेषको छोड़े। अपने मनको समझा-समझाकर प्रेरित करे कि किस कारणसे तू उसको वैरी समझ रहा है? हे मन! तू भी तो कुछ उसके सामने बना होगा; तेरे कारणसे ही कुछ उसका बर्ताव भी ऐसा हो गया है। अब उसके बर्तावकी जब तेरे अन्दर आग लगानेवाली मिथ्या दृष्टि बनती है; अर्थात् उसकी नजर बनती है तो तब तेरे अन्दर आग लगती है। तू क्यों मिथ्या अहंकार करता है। यह विचार ही उपाय है। दूसरा कोई उपाय इस दृष्टि-बन्धन एवं द्वेषकी आगसे बचनेका नहीं है।

डॉक्टर किसी भी रोगीको कह तो देते हैं कि सोचना बन्द करो, चिन्ता मत किया करो, परंतु कर सकना उसके वश (काबू)-की बात नहीं है, कारण कि वह प्रकृति (आदतों)-की शक्तिद्वारा ही चलाया जा रहा है।

ऐसा करना उसके लिये तो सम्भव हो सकता है जो मनुष्य आध्यात्मिक जीवनपर चले, थोड़ी श्रद्धा रखे, थोड़ा त्यागी होवे, थोड़ा दुःख भी सहन करे और एकान्तमें ध्यानमें बैठकर अपने अन्दर ज्ञान उपजाये। यही रास्ता है। इसी सारेका नाम आध्यात्मिक जीवन है, जो कि भौतिक जीवनके विपरीत है, कारण कि भौतिक जीवन बाहर संसारमें ही बहते रहनेका है, जिसे बहिर्मुख जीवन भी कह सकते हैं और आध्यात्मिक जीवन बाहरसे मुख मोड़कर अपने अन्दर जीनेका है, जिसे अन्तर्मुख जीवन भी कह सकते हैं। **[प्रेषक—श्रीज्ञानचन्दजी गर्ग]**

दिनचर्याके सूत्र

(साधक श्रीसत्यनारायणजी मालू)

हर मानवको प्रतिदिन अपनी दिनचर्या बनाकर उसके अनुसार उसे पूर्ण करनेका प्रयास करना चाहिये।

—पिछले दिनका अगर कोई कार्य बाकी रह गया हो तो उसे अगले दिन पूर्ण करना चाहिये।

—मानसिक शान्ति कायम रखनी चाहिये और संतोष धारणकर निद्रा लेनी चाहिये। आलस्य (प्रमाद)-में सोना बन्द करें। जागनेपर तुरंत उठकर दैनिक कार्योंसे निवृत्त होकर नित्य प्रभु-स्मरण करके अपने जीविकोपार्जन-कार्यका शुभारम्भ करना चाहिये।

—स्वयंके शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक कर्तव्योंका बोधकर उनके पालनमें रही कमीका ज्ञानकर उनकी पूर्तिहेतु समय निकालनेकी व्यवस्था करनी चाहिये।

—सामाजिक कार्य जो सहजमें किया जा सकता है उसे करनेका प्रयास करना चाहिये एवं धीरे-धीरे दायरा बढ़ाना चाहिये।

—पारिवारिक सम्बन्धोंको निभाने-हेतु समय देना चाहिये।

—आगन्तुकोंकी शंकाका समाधान कर उनके सुख-शान्तिकी कामना रखते हुए उनके चाहनेपर सुझाव भी देना चाहिये।

—सोनेसे पूर्व दिनचर्या अनुसार कार्य पूर्ति हुई या नहीं इसपर मनन करना चाहिये तथा अधूरे कार्योंकी पूर्ति-हेतु सजग होकर कार्यमें जुटना चाहिये।

—समयके दुरुपयोगसे बचना चाहिये। यदि समयका दुरुपयोग हुआ हो तो प्रायश्चित्त करना चाहिये।

—मृत्यु निश्चित है, इसका ध्यान रखते हुए प्राकृतिक एवं भौतिक साधनोंका उपयोग सीमित रखनेका प्रयास रखना चाहिये। 'जीयो और जीने दो' की भावना हर वक्त कायम रखनी चाहिये। **[प्रेषक—श्रीकृष्णचन्द्र टवाणी]**

आजकी आवश्यकता—गोरक्षा एवं गोसंवर्धन

(मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)

[कुछ दिनोंपूर्व पथमेड़ा गोधाममें परम श्रद्धेय संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके द्वारा गोरक्षा एवं गोसंवर्धनके सम्बन्धमें एक प्रेरणास्पद प्रवचन दिया गया था, जिसके कुछ अंश यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं—सं०]

गायके तत्त्वको समझनेके लिये जैसी पावनता, निर्मलता, विचारोंकी गहनता, सूक्ष्मता होनी चाहिये, वैसी भावना उन भक्तोंमें आ सकती है, जिनका तन-मन-प्राण गोभक्तिसे अनुप्राणित हो।

जिनका अन्त:करण अतिशय पवित्र हो जाता है, वे गोतत्त्वको समझ सकते हैं। अत्यन्त पवित्रका तात्पर्य है त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम)-रहित चित्त और बुद्धि गुणातीत हो जाय तो गोपदार्थकी महत्ताको जाना जा सकता है।

सनातनधर्म क्या है? इसके सम्बन्धमें वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डमें पर्वतश्रेष्ठ मैनाक श्रीहनुमान्जीको सनातनधर्मका रहस्य समझाते हुए कहते हैं—'**कृते च प्रतिकर्तव्यं एष धर्मः सनातनः**' अर्थात् जिसने हमारे प्रति किंचित् भी उपकार किया है, उसके प्रति सदा कृतज्ञ रहना—यही सनातनधर्म है।

भगवान्की सृष्टिमें गायके जैसा कोई कृतज्ञ प्राणी नहीं है, प्रेमको स्वीकार करनेवाला तथा उपकारका ऐसा उत्तर देनेवाला गायके जैसा कोई प्राणी नहीं है। अड़सठ करोड़ तीर्थ एवं तैंतीस करोड़ देवताओंका चलता-फिरता विग्रह गाय है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर गायका जो उपकार है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। भगवान्के सम्बन्धमें यह बात कही जाती है कि शुक, सनकादि, शेष, शारदा भी प्रभुके गुणोंका सांगोपांग वर्णन करें, यह सम्भव नहीं। उन श्रीभगवान्के चरणोंमें कोई प्रार्थना करे कि प्रभु आप अपनी उपास्य देवता गोमाताके गुणोंका वर्णन करें, उनके उपकारोंको गिनायें तो सम्भवतया भगवान् भी गोमाताकी चरणरजको मस्तकपर चढ़ाकर, अश्रुपूरित नेत्रोंसे मूक रहकर ही गोमाताकी महिमाका वर्णन करेंगे; ऐसी गोमाताकी महिमा है।

श्रीछीतस्वामीजी महाराजका प्रसिद्ध पद है—

आगे गाय, पाछे गाय इत गाय उत गाय।
गायन में नन्दलाल बसिबौही भावै॥
गायन के संग धावे, गायन में सचु पावै।
और गायन की खुर रेणु अंग लपटावै॥
गायन तैं ब्रज छायो, बैकुण्ठऊँ बिसरायो।
गायन के हेतु कर गिरि लै उठावै॥
छीत स्वामी गिरधारी विट्ठलेश वपुधारी।
ग्वारिया कौ भेषधारि गायन में आवै॥

हम गायके प्रति जैसा होना चाहिये, वैसा कोई उपकार नहीं कर पा रहे हैं, गाय ही हमारे प्रति उपकार कर रही है। अपने तन-मन-प्राणसे, अपने रोम-रोमसे, अपने दूध, दही, घृत, मूत्र एवं गोमयके द्वारा केवल अपनी उपस्थितिसे अपने श्वास-प्रश्वासके द्वारा अपने खुरकी रजसे, गोवंशको छूकर प्रवाहित होनेवाली वायुसे, जो सम्पूर्ण जगत्का कल्याण करनेवाली है, ऐसी गायका कितना उपकार है समाजपर, जड़-चेतन सब जीवोंपर, उसे कहा नहीं जा सकता।

गायके प्रति हम कृतज्ञ हों, यही सनातनधर्म है। हमारी सामान्य सेवासे गाय कृतज्ञ होती है। यत्किंचित् गायकी सेवा बन जाय तो उससे गोमाता इतनी सन्तुष्ट होती है, इतनी कृपा करती है कि वह अपने सेवकके प्रति कृतज्ञ रहती है।

गाय धर्मका प्रतीक है; क्योंकि गायके जैसी कृतज्ञता मनुष्यमें भी नहीं है। गायके प्रति कृतज्ञ होना यही सनातनधर्म है। आज जितनी भयंकर-भयंकर समस्याएँ हैं, उन सबका मूल कारण है रजोगुण और तमोगुणकी वृद्धि। सात्त्विकता कहीं दिखायी नहीं पड़ती। भगवान्ने अपनी सृष्टिमें सर्वाधिक सत्त्वगुणको गायके भीतर प्रतिष्ठित किया है। गाय सात्त्विकताका आधार एवं पूज्य है। इसलिये गायकी रक्षासे, गायकी सेवासे, गायकी भक्तिसे और गव्य पदार्थोंके सेवनसे मनुष्यमें सात्त्विक विचार तथा सात्त्विकता

आती है।

सारी समस्याओंका समाधान गोरक्षा, गोसेवासे सम्भव है। बिना गोसेवा एवं गोरक्षाके विश्वमंगल सम्भव नहीं है। जिस दिन गायका एक बूँद रक्त भी धरतीपर नहीं गिरेगा, उस दिन सारी समस्याओंका उन्मूलन हो जायगा। सारे विश्वका कल्याण हो जायगा। यही समझानेकी और सिद्धान्तकी बात है। कहते हैं—

यत्र गावः प्रसन्नाः स्युः प्रसन्नास्तत्र सम्पदः।
यत्र गावो विषण्णाः स्युर्विषण्णास्तत्र सम्पदः॥

जहाँ गायें प्रसन्न रहती हैं, वहाँ समस्त सम्पदाएँ प्रसन्न होकर प्राप्त रहती हैं और जहाँ गायें दुःखी रहती हैं, वहाँ सम्पदाएँ दुःखी होकर लुप्त हो जाती हैं।

वास्तवमें हम गायके बारेमें विचार तो बहुत अधिक करते हैं। कोई हमें गायके बारेमें वक्तव्य देनेको कहे तो हम व्याख्यान दे सकते हैं, कोई बहुत बड़ा लेख व्यवस्थित रूपसे लिखनेको कहे तो लेख भी लिख सकते हैं, लेकिन ईमानदारीसे हमारे मनद्वारा गायकी भक्ति नहीं हो पाती। फिर हमारा जो कहा सुना है उसकी कुछ भी महिमा नहीं है, यह तो हम नहीं कह सकते, लेकिन यह एक तरहसे मिथ्याचार है। इसलिये हमारे परम पूज्य गुरुदेवने कहा था कि 'देखो पण्डितजी! जिस दिन एक भी गाय नहीं रखोगे, गायकी सेवा नहीं करोगे, उस दिन गायके बारेमें एक भी वाक्य बोलनेके अधिकारी नहीं रहोगे।' इसलिये गायके बारेमें बोलनेके अधिकारी बने रहें, इसके लिये चाहे किसी भी काममें कमी आ जाय लेकिन गोसेवामें कमी नहीं आनी चाहिये। चाहे जैसा संकट भी सहन करके गायकी सेवा करनी चाहिये।

पुराणोंमें गोमहिमा है, स्मृतियोंमें गोमहिमा है, संतोंकी वाणीमें गोमहिमा है, आवश्यकता है कि वेदसे लेकर पुराण, आगम, इतिहास, ग्रन्थ और सन्तोंकी वाणियाँ—इनका विस्तृत गहन अध्ययन हो और एक गम्भीर चिन्तन-विचारपूर्वक समस्त उद्धरणोंको एक जगह संकलित किया जाय, संग्रहीत किया जाय, उनकी व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की जायँ तो हम समझते हैं कि एक विशाल ग्रन्थ तैयार हो जायगा, इतनी गायकी महिमा है।

श्रीमद्भागवतमें भी गोकी महिमाका बहुत वर्णन किया गया है, उस समय गोवंश कितना समृद्ध था। इस बातकी भी चर्चा भागवतके कतिपय प्रसंगोंमें की गयी है। गोकर्णजीका प्राकट्य गोसे ही है और गायके उदरसे उत्पन्न गोकर्ण महात्मा इतने प्रभावशाली हुए कि भागवतके माहात्म्यमें इनकी उपमा श्रीरामजीसे की गयी। जैसे भगवान् श्रीरामने समस्त अवधवासियोंको अपने नित्य धामकी प्राप्ति करायी, उसी प्रकार महात्मा गोकर्णकी वाणीके प्रसादसे भगवान् श्रीकृष्णका अवतरण हुआ और भगवान्द्वारा भागवतके समस्त श्रोताओंको नित्य धामकी प्राप्ति करायी गयी। भागवतके प्रधान वक्ता श्रीशुकदेवजी महाराज भिक्षामें गोदुग्ध ग्रहण करते रहे—ऐसा श्रीमद्भागवत तथा अन्यान्य ग्रन्थोंमें वर्णित है।

श्रीमद्भागवतमें गायकी बहुत बड़ी महिमा वर्णित है। एक गोसेवक भक्तको केवल गोसेवासे भगवान्की गोचारणलीलाका दर्शन एवं नित्य लीलामें प्रवेश मिला।

जबतक हमारी बुद्धिमें यह बात बनी रहेगी कि गाय पशु है तबतक ठीकसे सेवा नहीं बन पायेगी। सेवा सदा सेव्यकी होती है, उपासना सदा उपास्यकी होती है और उपासना-सेवा तब सम्भव है, जब सेव्यके प्रति—उपास्यके प्रति हमारी यह बुद्धि बन जाय कि यह साक्षात् भगवान् है। गाय ही साक्षात् भगवान् है, यह बात हमारे ध्यानमें आ जाय और ऐसा ध्यान करके गोसेवा की जाय तो गोसेवासे भगवत्प्राप्ति हो जाय। लेकिन हमारे गायके प्रति अपराध बनते जाते हैं, इसका कारण है कि हमारी गायके प्रति पशुबुद्धि बनी रहती है। इसलिये सेवासे जैसा लाभ मिलना चाहिये, वह लाभ फिर नहीं मिल पाता।

भगवान्के अभिलषित पदार्थोंमें सबसे पहला पदार्थ है गाय। गायके बिना श्रीकृष्ण प्रसन्न नहीं होते। आप षोडशोपचार क्या, भले सैकड़ों उपचारोंसे भगवान्का पूजन कर लें, लेकिन गो-पदार्थ यदि सेवा-पूजामें नहीं हैं तो भगवान् सन्तुष्ट नहीं। बिना गायके गोविन्दका पूजन सम्भव नहीं। भगवान्का वांछित गाय है।

दूसरा भगवान्का वांछित पदार्थ है गोप। गायोंकी रक्षा करे और गायोंका पालन करे उसे कहते हैं गोप।

अर्थात् भगवान्‌की पहली इच्छा यह है कि मैं गायोंसे घिरा हुआ रहूँ दूसरी इच्छा है कि मैं गोपालकों, गोसेवकोंसे घिरा हुआ रहूँ और गोसेवामें सहयोग करनेवाली जो उन गोपगणोंकी गृहिणियाँ हैं, धर्मपत्नियाँ हैं, वे ही हैं गोपी। तो गायोंका जो रक्षण-पालन करे उसे गोप कहते हैं और गायोंका रक्षण-पालन करनेवाली जो हैं, उन्हें गोपी कहते हैं।

इसका मतलब है गोरक्षा, गोसेवामें जिसकी प्रवृत्ति है, वही मनुष्य गोप है तथा गोरक्षा, गोसेवामें जिसकी प्रवृत्ति है वही नारी गोपी है और गोप-गोपी श्रीकृष्णको प्रिय हैं। हम श्रीकृष्णके प्रिय पात्र बनें, इसके लिये आवश्यक है कि हम गोप और गोपी बन जायँ।

गाय, गोप और गोपी—इनके साथ निरन्तर खेलना भगवान्‌को प्रिय है। गोवंशके बीच रहकर ही ठाकुरजी आप्तकाम होते हैं और यह इच्छा भगवान्‌की व्रजमें आकर पूरी होती है—

कामास्तु वाञ्छितास्तस्य गावो गोपाश्च गोपिकाः।
नित्याः सर्वे विहाराद्यो आप्तकामस्ततस्त्वयम्॥

व्रजमें भगवान्‌की नित्य लीला होती है। अब उसका हमें अनुभव कैसे हो। शाण्डिल्य महर्षि कहते हैं कि व्रजकी सेवा करो अर्थात् यहाँकी नदी, नद, कुण्ड, सरोवर, वन और पर्वत इनकी सुरक्षा करते हुए गायकी सेवा करो। ये जो हैं, ये गायोंके उपासना-क्रीड़ास्थल ही हैं। ये सुरक्षित रहेंगे तो गायकी सेवा बन पायेगी। आज जो गोसेवामें समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं, उसका मूल कारण यही है कि गायोंके विचरनेका जो स्थान है, वह नष्ट हो गया। हमने अपने बाल्यकालमें देखा है कि लोगोंके यहाँ बहुत-सी गायें होती थीं और उन गायोंकी सेवा करनेमें उनको कोई कठिनाई नहीं होती थी; क्योंकि सबेरे गायको खोल दिया और गाय चरानेवाला ग्वारिया गाय चराने चला गया। नदी और तालाबके किनारे गायें खूब चरतीं-घूमतीं, नदी-सरोवरका पानी पीतीं और घूम-फिर करके शाम होते-होते वापस लौट आतीं। गाय इतनी सावधान होती है कि उसको पहुँचाने तथा ले आनेके लिये कुछ दिन ही जाना-आना पड़ता है, बादमें तो वे इतनी अभ्यस्त हो जाती हैं कि झुंड-के-झुंड अपने-आप ही गाँवके किनारेतक आकर फिर अपने-अपने घरमें अपने-आप पहुँच जाती हैं और कई तो जहाँ उनके बाँधनेका स्थान है, वहाँ जाकर खड़ी हो जाती हैं। अब दिनभर खूब खा-पीकर उछल-कूद करके आयी हैं; जंगलकी शुद्ध हवा, शुद्ध पानी पीकर आयी हैं, अब रातको थोड़ा-सा उनको घास डाल दिया, थोड़ा सबेरे चारा डाल दिया और सुबह-शाम दुह लिया। पहले कम खर्च था और अब खूँटेपर बाँधके चराना है। गायको चारा नहीं रहा, घूमनेका स्थान नहीं रहा, तो जैसी स्वस्थ गाय घूम-फिर करके रह सकती है, वैसी गाय एक जगह बँधे रहकर स्वस्थ नहीं रह सकती है। गायको घूमने-फिरनेका पर्याप्त स्थान होना चाहिये, तभी गाय स्वस्थ रह सकती है। गायकी सेवा अधिक खर्चीली नहीं थी। सहज साधारण रूपसे लोग गो-पालन कर लेते थे, इसका कारण यही था कि गोचारणके लिये गोचरभूमि और जंगल सुरक्षित थे। अब जहाँ-जहाँ जंगल सुरक्षित भी हैं, वहाँपर गायको चरनेकी अनुमति नहीं है। कितने दुर्भाग्यकी बात है कि जंगल गायके लिये ही है, पर वहाँ उसके प्रवेशपर प्रतिबन्ध है। जंगल तबतक हरे-भरे और शक्ति तथा ऊर्जासे सम्पन्न रह सकते हैं, जबतक उनमें स्वच्छन्द रूपसे गाय विचरण करें; क्योंकि गायें विचरण करती हुई औषधिका भक्षण करतीं तो वे दिव्य औषधीय गुण उसके दुग्धमें आते और फिर वह जो गोबर-गोमूत्र करतीं तो पृथ्वीका आहार ही गोबर और गोमूत्र है। पृथ्वी अपने आहारको प्राप्त करके पुष्ट होती, उसकी उर्वराशक्ति बढ़ती तो उसपर वृक्ष भी हरे-भरे होते।

अभी इस बार गोवर्धनके विषयमें एक महात्माजी कह रहे थे कि बड़े-बड़े पुराने वृक्ष सूख रहे हैं। इसके ऊपर अनुसन्धान किया गया तो यह बात सामने आयी कि उन वृक्षोंको खुराक नहीं मिल पा रही है। क्या खुराक? बोले—गोबर-गोमूत्रकी प्राप्ति नहीं हो पा रही है।

ईंधनके तमाम विकल्प आ चुके हैं, सौर ऊर्जा, बिजली, मिट्टीका तेल, गैस; लेकिन इसके बावजूद भी पर्वत मुण्डे हो गये, उनपर कोई वृक्ष नहीं हैं, जंगलोंमें पेड़ नहीं हैं, क्यों नहीं हैं? और आजके पहले ईंधनके विकल्प

नहीं थे तो जंगली लकड़ी और कंडोंसे ही सारा काम होता था तब भी वन सुरक्षित थे। ऐसा नहीं कि उस समय वनका कटान न होता हो, वन काटे जाते थे उस समय भी; लेकिन गोबर-गोमूत्रके कारण उस वन्यभूमिको, उन वृक्षोंको पोषण प्राप्त होता रहता था। नये-नये वृक्ष वहाँ उत्पन्न होते रहते थे लेकिन अब वह बात नहीं है। इसलिये पर्वत और वनको सुरक्षित करनेका उपाय भी यही है कि इन्हें गोवंशके चरनेके लिये उपयुक्त बनाया जाय। गो-अभयारण्य स्थापित किये जायँ, निर्भय होकर गायें घूमें। कोई नदीका इलाका हो और बड़े पैमानेपर गोचारण हो, तो आज भी पुनः समृद्धि लौटकर आ सकती है, धरती हरी-भरी हो सकती है।

चौरासी वैष्णव-वार्ता (वल्लभकुलकी भक्तमाल)-में एक चरित्र आता है। एक पटेल जातिका भक्त था, वह आ करके जतीपुरामें रह गया। श्रीगोसाईं विट्ठलनाथजी महाराजने उसे ब्रह्मसम्बन्ध प्रदान कर दिया और श्रीनाथजीकी गोसेवामें उसको लगा दिया। बरसातके मौसममें ऐसी वर्षा हुई कि दिन और रात पानीकी झड़ी लगी रही। गाय कहाँ खोलकर ले जायँ, इतनी तेज बारिशमें गायोंको गोशालाओंमें ही रखना पड़ा। गायें वहीं गोबर और गोमूत्र करतीं, वह भक्त गोशालाओंको साफ करता रहता। गायोंकी सेवा करता रहता। उस समय जतीपुरामें श्रीनाथजी विराजते थे और सेवकोंको मन्दिरसे प्रसाद मिलता था। उसे गोसाईं महाराजने कहा था कि जाकर प्रसाद ले लेना। सब ग्वारिया तो अपनी सेवा करके वहाँ पंगत करने चले जाते, लेकिन यह नहीं जाता। इसको सेवा करते-करते समय हो जाता और प्रसादके समय न पहुँचनेसे प्रसाद नहीं मिल पाता। स्थिति यह बनी कि जब भूखे ही गोसेवा करता रहा तब उसके ऊपर गोमाता सन्तुष्ट हुई और जब गोमाता सन्तुष्ट हुई तो ग्वारिया गोविन्द असन्तुष्ट कहाँसे रहते? ठाकुर श्रीनाथजी सन्तुष्ट हो गये और श्रीनाथजी अपना शयनभोग लेकर खुद पधारे। वह तो गोसेवा करता और ठाकुरजीकी ड्यूटी हो गयी प्रसाद पहुँचानेकी। प्रेमसे पा लेता। एक दिन ठाकुरजी अपना सोनेका थाल, झारी सब वहाँ छोड़के आ गये। खबर पड़ी कि श्रीनाथजीके शयनभोगका थाल, झारी सब कहाँ चला गया! जाकर देखा तो ग्वाल भक्तके यहाँ था। ग्वाल भक्तको गोसाईं श्रीविट्ठलनाथजीने बुलाकर पूछा तो बोला रातको तो आये थे, बोले—'तुम गोसेवा करते हो लो खाओ-पीओ मस्त रहो।' तब गोसाईंजीने कहा—ठाकुरजीको कष्ट होता है, तो कहा कि भेज दिया करेंगे तुम्हारे लिये प्रसाद। दूसरे किसी ग्वारियाके साथ प्रसाद भेज देते। प्रसाद ले जाकर रख देता और ठाकुरजी उसको बोले कि 'तुम गैया चराने हमारे संग चला करो।' वह दिनमें गैया चराने चला जाता तो कई दिनकी भोजनसामग्री प्रसाद इकट्ठी हो गयी तो उसने कहा—महाराज! वहाँ ले जाना तो बेकार है, वह तो खाता ही नहीं कई दिन हो गये।

फिर बुलाया उसको। बोले—क्यों नहीं खाता है? बोला—महाराज! सबेरे गोसेवा करता हूँ, शामको गोसेवा करता हूँ, रातमें भी जो बन जाता है सेवा करता हूँ और दिनमें ठाकुरजी कहते हैं हमारे साथ गैया चराने चलो, तो मैं गैया चराने चला जाता हूँ। बोले—गोचारण करके लौटके आओ तब लेना चाहिये। तब बोला तब खायें कैसे? वहाँ ठाकुरजीको गोपी बढ़िया-बढ़िया छाक दे आती हैं। ठाकुरजी अपने साथ ही बिठाकर खिलाते हैं, कहते हैं तुम भी खाओ, तो खा लेते हैं। वहाँ इतना पेट भर जाता है कि फिर यहाँ खानेकी इच्छा नहीं रहती। बड़ा आश्चर्य है इतनी गोसेवासे सन्तुष्ट हो गये उसके ऊपर कि ठाकुरजीकी गोचारणलीलाका भी उसको अनुभव होने लगा और अब प्रेम ऐसा बढ़ा, ऐसा बढ़ा कि ठाकुरजी इस ग्वारिया भगतके आसनपर ही कई बार सोने चले आते, अपने निज मन्दिरको छोड़कर। अब ग्वारियाका तो कैसा आसन होता होगा, पुरानी-सी गुदड़ी थी, रज लिपटी हुई ऐसे ही बेचारा भोला-भाला भगत था, बिना पढ़ा लिखा, उसकी गुदड़ीपर ही आकर ठाकुरजी सो जाते, तब गोसाईंजीने विचार किया कि ठाकुरजीको ही रातको पीड़ा होती है, क्यों न इस ग्वारियाको ही ठाकुरजीके पास कर दिया जाय तो उस ग्वारियासे कहा—'देखो, तुम्हें रातको तो कोई सेवा रहती नहीं है, तो रातको मन्दिरके द्वारपर तुम सो जाया करो। वहीं अपना कपड़ा ले आया करो, लठिया लेकर बैठो, जबतक इच्छा हो, नामजप करो और जब नींद आये तो सो जाया करो। बोला—जो आज्ञा महाराज। वहीं आकर सोने लगा। एक दिन सो रहा था, तो सोते-सोते उसे कुछ आवाज सुनायी पड़ी कि मन्दिरका द्वार खुला, तुरंत लठिया लेकर बैठ गया कि हमें तो द्वारपाल बनाया

गया है, यह कौन घुसा? किसने द्वार खोला? देखा तो पूरे आभूषणोंसे सुसज्जित श्रीनाथजी मन्दिरसे बाहर पधारे। देखता रहा भगत। ठाकुरजी गये, पीछेसे राधारानी गयीं और गोपियाँ गयीं तो वह विचार करने लगा कि अरे! गोसाईंजीने तो मन्दिरमें अकेले ठाकुरजीको पधार रखा है, इसमें इतनी लुगाई कहाँसे घुसी थीं? ऐसा वह मनमें सोचने लग गया और वह ठाकुरजीके पीछे हो लिया कि ये रातको कहाँ जा रहे हैं, देखूँ तो सही। शरत्पूर्णिमा थी, ठाकुरजी जतीपुरासे चलकर चन्द्रसरोवर पधारे। जहाँ सूरदासजीकी बैठक है वह महारासस्थली है, वहाँ ठाकुरजी आये और दिव्य वाद्य बजने लगे, महारास होने लगा। उस ग्वारिया भगतको महारासका दर्शन होने लगा, शंकरजीको जिस रासका दर्शन करनेके लिये गोपी बनना पड़ा, उसको बिना लहंगा फरिया पहने ही महारासका दर्शन हो गया। आजके रासमें विचित्र लीला यह हुई कि पहले तो ठाकुरजी अन्तर्धान होते थे, आजके रासमें श्रीजी अन्तर्धान हो गयीं और ठाकुरजीको श्रीजीका वियोग व्याप्त हो गया। राधे-राधे कहकर भगवान् विलाप करने लगे। अब कहीं मुरली गिर गयी, कहीं लकुट गिर गया, कहीं मोर-मुकुट गिर गया। अब तो ज्यों-ज्यों भगवान्के आभूषण श्रीअंगसे गिरते चले जायँ, वह ग्वाल भगत इकट्ठा करके पोटली बाँध ले। सबेरा हुआ। ठाकुरजीकी मंगला आरतीका समय हुआ, ठाकुरजी मन्दिरमें पधारे पीछेसे वह ग्वाल भगत भी आकर बैठ गया। गोसाईंजीने स्नान करके ज्यों ही भीतर प्रवेश किया तो देखा कि मन्दिरमें शयनके बाद उतारे हुए जितने आभूषण थे, सब गायब हैं। ग्वाल भगतको बुलाया, बोले, क्यों कहाँ गये थे? मन्दिरके सब आभूषण कहाँ चले गये? उसने कहा महाराज! सबके सामने नहीं बताऊँगा, अकेलेमें बताऊँगा। कहा बताओ, क्या बात है? तो बोला, अरे तुम इनको सीधा समझते हो, ये सीधे नहीं हैं, ये तो मन्दिरमें बहुत स्त्रियाँ घुसी हुई थीं, आधी रातको ये मन्दिरसे निकलकर गये तो हमने सोचा क्या पता जंगलमें रातको इनका कहीं कुछ बिगड़ न जाय, कहीं हिंसक जन्तु आक्रमण न कर दे तो हम लाठी लेकर पीछे-पीछे इनकी सुरक्षामें गये। वहाँ ऐसी-ऐसी लीला हुई। एक कोई बहुत सुन्दर-सुन्दर थी, वह जैसे ही कहीं जाकर छिप गयीं, वे रोने लगे उनका नाम लेकर, आभूषण गिरने लगे, अब जो-जो आभूषण गिरते चले गये, हम बटोरते चले गये, यह पीताम्बर है और ये आभूषण हैं।

गोसाईंजीने उसे हृदयसे लगा लिया और कहा कि केवल गोसेवासे भगवान्की लीलाके दर्शन और भगवान्की नित्यविहारकी लीलामें प्रवेश हो गया।

जबतक हमारी बुद्धिमें यह बात बनी रहेगी कि गाय पशु है तबतक ठीकसे सेवा नहीं बन पायेगी। श्रीमद्भागवतमहापुराणमें कहा गया है—

वेदादिर्वेदमाता च पौरुषं सूक्तमेव च।
त्रयी भागवतं चैव द्वादशाक्षर एव च॥

गायमें, वेदमें, ॐकारमें, द्वादशाक्षर मन्त्र (**'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**)-में, सूर्यमें, गायत्री, वेदत्रयीमें अन्तर नहीं है। ये सब साक्षात् भागवत्स्वरूप ही हैं। भागवतका श्रवण करना, भगवान्का चिन्तन करना, तुलसीकी पूजा करना, जल सींचना और गायकी सेवा करना, कहते हैं इसमें कोई अन्तर नहीं है।

हमारे महाराजजी तो कहते थे कि दो ठाकुर हैं हमारे, एक मौनी ठाकुर और एक बोलता-चालता ठाकुर। मन्दिरवाले ठाकुर मौनी ठाकुर। वे बोलते नहीं और गौमाता बोलता-चालता ठाकुर, गाय धार काढ़ने (दूधके समय)-के लिये भी आवाज लगाती है, लो भाई हमारा दूध काढ़ लो, पानीके लिये आवाज लगायेगी, चारेके लिये आवाज लगायेगी तो बोलता-चालता ठाकुर है गौमाता। (**क्रमशः**)

'शरण दो चरणनमें सरकार'

(श्रीकृष्णकुमारजी गोयल)

तुम-सा दीन दयाल जगत में और समर्थ दातार। ना कोई है ना होगो स्वामी तुम-सा तारन हार॥
शरण तिहारी आया ठाकुर सुनकर बारम्बार। नहीं लखोगे अवगुण मेरे कर दोगे भवपार॥
आँख मूँद हरि मम दोषन पर करुणा सिंधु अपार। जैसा हूँ तेरा हूँ स्वामी चरण-शरण सरकार॥

श्रीराधाकृष्णविवाहोत्सव

एक समयकी बात है, श्रीनन्दजी अपने नन्दन बालकृष्णको अंकमें लेकर गौएँ चराते हुए बहुत दूर निकल गये और धीरे-धीरे कालिन्दीके तटपर स्थित भाण्डीर-वन जा पहुँचे। थोड़ी ही देरमें श्रीकृष्णकी इच्छासे वायुका वेग अत्यन्त प्रखर हो उठा। आकाश मेघोंकी घटासे आच्छादित हो गया। तमाल और कदम्ब वृक्षोंके पल्लव टूट-टूटकर गिरने, उड़ने और अत्यन्त भयका उत्पादन करने लगे। उस समय महान् अन्धकार छा गया। नन्दनन्दन रोने लगे। वे पिताकी गोदमें बहुत भयभीत दिखायी देने लगे। नन्दको भी भय हो गया। वे शिशुको गोदमें लिये परमेश्वर श्रीहरिकी शरणमें गये।

उसी क्षण करोड़ों सूर्योंके समूहकी-सी दिव्य दीप्ति उदित हुई, जो सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त थी; वह क्रमशः निकट आती-सी जान पड़ी। उस दीप्तिराशिके भीतर नौ नन्दोंके राजाने वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाको देखा। वे करोड़ों चन्द्रमण्डलोंकी कान्ति धारण किये हुए थीं। उनके श्रीअंगोंपर आदिवर्ण नीले रंगके सुन्दर वस्त्र शोभा पा रहे थे। श्रीराधाके दिव्य तेजसे अभिभूत हो नन्दने तत्काल उनके सामने मस्तक झुकाया और हाथ जोड़कर कहा— राधे! ये साक्षात् पुरुषोत्तम हैं और तुम इनकी मुख्य प्राणवल्लभा हो, यह गुप्त रहस्य मैं गर्गजीके मुखसे सुनकर जानता हूँ। राधे! अपने प्राणनाथको मेरे अंकसे ले लो। ये बादलोंकी गर्जनासे डर गये हैं। इन्होंने लीलावश यहाँ प्रकृतिके गुणोंको स्वीकार किया है। इसीलिये इनके विषयमें इस प्रकार भयभीत होनेकी बात कही गयी है। देवि! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम इस भूतलपर मेरी यथेष्ट रक्षा करो। तुमने कृपा करके ही मुझे दर्शन दिया है, वास्तवमें तो तुम सब लोगोंके लिये दुर्लभ हो।

देवि! यदि वास्तवमें तुम मुझपर प्रसन्न हो तो तुम दोनों प्रिया-प्रियतमके चरणारविन्दोंमें मेरी सुदृढ़ भक्ति बनी रहे। साथ ही तुम्हारी भक्तिसे भरपूर साधु-संतोंका संग मुझे सदा मिलता रहे। प्रत्येक युगमें उन संत-महात्माओंके चरणोंमें मेरा प्रेम बना रहे।

'तथास्तु' कहकर श्रीराधाजीने नन्दजीकी गोदसे अपने प्राणनाथको दोनों हाथोंमें ले लिया। फिर जब नन्दरायजी उन्हें प्रणाम करके वहाँसे चले गये, तब श्रीराधिकाजी भाण्डीर-वनमें गयीं।

वहाँ एक सुन्दर सरोवर प्रकट हुआ, जहाँ सुवर्णमय सुन्दर सरोज खिले हुए थे और उन सरोजोंपर बैठी हुई मधुपावलियाँ उनके मधुर मकरन्दका पान कर रही थीं।

दिव्यधामकी शोभाका अवतरण होते ही साक्षात् पुरुषोत्तमोत्तम घनश्याम भगवान् श्रीकृष्ण किशोरावस्थाके अनुरूप दिव्य देह धारण करके श्रीराधाके सम्मुख खड़े हो गये। उनके श्रीअंगोंपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। कौस्तुभमणिसे विभूषित हो, हाथमें वंशी धारण किये वे नन्दनन्दन राशि-राशि मन्मथों (कामदेवों)-को मोहित करने लगे। उन्होंने हँसते हुए प्रियतमाका हाथ अपने हाथमें थाम लिया और उनके साथ विवाह-मण्डपमें प्रविष्ट हुए। उस मण्डपमें विवाहकी सब सामग्री संग्रह करके रखी गयी थी। मेखला, कुशा और जलसे भरे कलश आदि उस मण्डपकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहीं एक श्रेष्ठ सिंहासन प्रकट हुआ, जिसपर वे दोनों प्रिया-प्रियतम विराजित हो गये और अपनी दिव्य शोभाका प्रसार करने लगे। वे दोनों मेघ और विद्युत्की भाँति अपनी प्रभासे उद्दीप्त हो रहे थे। उसी समय देवताओंमें

श्रेष्ठ विधाता—भगवान् ब्रह्मा आकाशसे उतरकर परमात्मा श्रीकृष्णके सम्मुख आये और उन दोनोंके चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़कर कमनीय वाणीद्वारा चारों मुखोंसे मनोहर स्तुति करने लगे—प्रभो! आप सबके आदिकारण हैं, किंतु आपका कोई आदि-अन्त नहीं है। आप समस्त पुरुषोत्तमोंमें उत्तम हैं। अपने भक्तोंपर सदा वात्सल्यभाव रखनेवाले और 'श्रीकृष्ण' नामसे विख्यात हैं। अगणित ब्रह्माण्डोंके पालक-पति हैं। ऐसे आप परात्पर प्रभु राधा-प्राणवल्लभ श्रीकृष्णचन्द्रकी मैं शरण लेता हूँ। आप गोलोकधामके अधिनाथ हैं, आपकी लीलाओंका कहीं अन्त नहीं है।

आपके साथ ये लीलावती श्रीराधा अपने लोक (नित्यधाम)-में ललित लीलाएँ किया करती हैं। जब आप ही 'वैकुण्ठनाथ' के रूपमें विराजमान होते हैं, तब ये वृषभानुनन्दिनी ही 'लक्ष्मी' रूपसे आपके साथ सुशोभित होती हैं। जब आप 'श्रीरामचन्द्र' के रूपमें भूतलपर अवतीर्ण होते हैं, तब ये जनकनन्दिनी 'सीता' के रूपमें आपका सेवन करती हैं। आप 'श्रीविष्णु' हैं और ये कमलवनवासिनी 'कमला' हैं; जब आप 'यज्ञपुरुष' का अवतार धारण करते हैं, तब ये श्रीजी आपके साथ 'दक्षिणा' रूपमें निवास करती हैं। आप पतिशिरोमणि हैं तो ये पत्नियोंमें प्रधान हैं। आप 'नृसिंह' हैं तो ये आपके हृदयमें 'रमा' रूपसे निवास करती हैं। आप जब 'नर-नारायण' रूपसे रहकर तपस्या करते हैं, उस समय आपके साथ ये 'परम शान्ति' के रूपमें विराजमान होती हैं। आप जहाँ जिस रूपमें रहते हैं, वहाँ तदनुरूप देह धारण करके ये छायाकी भाँति आपके साथ रहती हैं। पुरुषोत्तमोत्तम! आपका ही श्याम और गौर—द्विविध तेज सर्वत्र विदित है। आप गोलोकधामके अधिपति परात्पर परमेश्वर हैं। मैं आपकी शरण लेता हूँ। यद्यपि आप दोनों नित्य-दम्पति हैं और परस्पर प्रीतिसे परिपूर्ण रहते हैं, परात्पर होते हुए भी एक-दूसरेके अनुरूप रूप धारण करके लीला-विलास करते हैं; तथापि मैं लोक-व्यवहारकी सिद्धि या लोकसंग्रहके लिये आप दोनोंकी वैवाहिक विधि सम्पन्न कराऊँगा—

यदा युवां प्रीतियुतौ च दम्पती
परात्परौ तावनुरूपरूपितौ।
तथापि लोकव्यवहारसंग्रहाद्
विधिं विवाहस्य तु कारयाम्यहम्॥

(गर्ग०, गोलोक० १६। २९)

इस प्रकार स्तुति करके ब्रह्माजीने उठकर कुण्डमें अग्नि प्रज्वलित की और अग्निदेवके सम्मुख बैठे हुए उन दोनों प्रिया-प्रियतमके पाणिग्रहण-संस्कारकी विधि वैदिक विधानसे पूरी की।*

यह सब करके ब्रह्माजीने खड़े होकर श्रीहरि और राधिकाजीसे अग्निदेवकी सात परिक्रमाएँ करवायीं। तदनन्तर उन दोनोंको प्रणाम करके वेदवेत्ता विधाताने उन दोनोंसे सात मन्त्र पढ़वाये। उसके बाद श्रीकृष्णके वक्ष:स्थलपर श्रीराधिकाका हाथ रखवाकर और श्रीकृष्णका हाथ श्रीराधिकाके पृष्ठदेशमें स्थापित करके विधाताने उनसे मन्त्रोंका उच्चस्वरसे पाठ करवाया। उन्होंने राधाके हाथोंसे श्रीकृष्णके कण्ठमें एक केसरयुक्त माला पहनवायी, जिसपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे। इसी तरह श्रीकृष्णके हाथोंसे भी वृषभानुनन्दिनीके गलेमें माला पहनवाकर वेदज्ञ ब्रह्माजीने उन दोनोंसे अग्निदेवको प्रणाम करवाया और सुन्दर सिंहासनपर उन अभिनव दम्पतिको बैठाया। वे दोनों हाथ जोड़े मौन रहे। पितामहने उन दोनोंसे पाँच मन्त्र पढ़वाये और जैसे पिता अपनी पुत्रीका सुयोग्य वरके हाथमें दान करता है, उसी प्रकार उन्होंने श्रीराधाको श्रीकृष्णके हाथमें सौंप दिया।

उस समय देवताओंने फूल बरसाये और विद्याधरियोंके के साथ देवांगनाओंने नृत्य किया। गन्धर्वों, विद्याधरों, चारणों और किन्नरोंने मधुर स्वरसे श्रीकृष्णके लिये सुमंगल-गान किया।

उस अवसरपर श्रीहरिने विधातासे कहा—ब्रह्मन्! आप अपनी इच्छाके अनुसार दक्षिणा बताइये। तब ब्रह्माजीने श्रीहरिसे इस प्रकार कहा—'प्रभो! मुझे अपने युगलचरणोंकी भक्ति ही दक्षिणाके रूपमें प्रदान कीजिये।' श्रीहरिने 'तथास्तु' कहकर उन्हें अभीष्ट वरदान दे दिया। तब ब्रह्माजीने श्रीराधिकाके मंगलमय युगल-चरणारविन्दोंको दोनों हाथों और मस्तकसे बारंबार प्रणाम करके अपने धामको प्रस्थान किया। उस समय प्रणाम करके जाते हुए ब्रह्माजीके मनमें अत्यन्त हर्षोल्लास छा रहा था।*

* विस्तारसे जाननेके लिये गर्गसंहिताका गोलोकखण्ड तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणका श्रीकृष्णजन्मखण्ड देखना चाहिये।

वृक्षारोपण-माहात्म्य

(श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, व्याकरण-पुराणेतिहासाचार्य, एम०ए०, साहित्यरत्न)

भारतीय संस्कृतिमें वृक्षारोपणका एक विशिष्ट स्थान है। हिन्दीभाषाके अतिरिक्त अन्य सभी भाषाओंमें भी वृक्षारोपणके लिये भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। इस सबका मूल स्रोत वेद, स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र तथा आयुर्वेदादि हैं। कोई भी ऐसा वृक्ष नहीं, जिसका उपयोग आयुर्वेद-शास्त्रमें वर्णित न हो। कोई भी पुराण वृक्ष-महिमामें संकुचित-हृदय नहीं प्रतीत होता।

वृक्ष जीव-मात्रके उपकारी हैं और सर्वपूज्य भी हैं। भारतीय संस्कृतिकी सर्वप्रथम पुस्तक ऋग्वेद है, जिसमें किसी भी मंगल-कृत्यके समय वृक्षोंके कोमल पत्तोंका स्मरण किया गया है, वह ऋचा निम्नलिखित है—

'काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि'।

(यजु० १३। २०)

इसी प्रकरणमें पीपलकी महिमा भी कही गयी है—

'अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।'

(ऋग्वेद १०। ९७। ५)

यजुर्वेदमें प्रजाके कल्याणके लिये वनस्पतिमात्रकी स्तुति की गयी है—

'शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः'।

(यजुर्वेद ११। ४५)

शमी वृक्ष समस्त अमंगलोंका नाशक माना गया है तथा दुःस्वप्नोंका नाशक भी—

अमङ्गलानां शमनी·····दुःस्वप्ननाशिनी।

(गोपथ-ब्राह्मण)

वेदोंमें वृक्षोंकी महिमा एवं उनका स्पर्श-माहात्म्य भी विशेषतः वर्णित है, परंतु स्मृतियोंमें न केवल वृक्ष लगानेका माहात्म्य है, अपितु वृक्ष नष्ट करनेवालेके लिये दण्ड-विधान भी लिखा है।

वृक्षोंको समूहरूपसे रक्षितकर बगीचोंका रूप देनेका पहला वर्णन स्मृतियोंमें ही मिलता है।

अठारह पुराण, छः शास्त्रोंमें वृक्षोंकी विभिन्न गाथाएँ उपलब्ध होती हैं।

वृक्षोंको भी जीव मानकर मानव-सृष्टिद्वारा उनकी उत्पत्तिका वर्णन पुराणोंकी प्रथम गवेषणा है। पुराणोंमें वृक्षोंको कश्यपजीकी संतान कहा है। यह कथानक इनकी रक्षा एवं इनके परमोपकृत शरीरके माहात्म्यका द्योतक है। धरतीमें इनका जो स्थान है, उससे भी बढ़कर देवताओंके धाममें भी है। नन्दनवन, पुष्पक, सर्वतोभद्र आदि वनोंको जिनमें देवतागण अपनी देवियोंके साथ आनन्दित होते हैं, इन्हींसे परिपूर्ण होनेके कारण ख्यातिप्राप्त हैं। भागवत-पुराणमें इनकी उत्पत्तिकी कथा निम्न प्रकार है—

दक्ष प्रजापतिकी साठमेंसे तेरह कन्याएँ कश्यपजीकी पत्नी बनीं। उनमें अदितिसे देवगण, दितिसे दैत्य, दनुसे दानव, सुरसासे सर्प तथा इलासे भूरुह (वृक्ष) पैदा हुए—

'इलाया भूरुहाः सर्वे' (श्रीमद्भा० ६। ६। २८)

अतः एक वृक्ष एक संतानके समान माना जाता है। मत्स्यपुराण (१५४। ५१२)-में लिखा है कि एक वृक्ष दस पुत्र उत्पन्न करनेके बराबर है—

दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः।

दस कूप-निर्माण करवानेका पुण्य एक वापीके बनवानेसे प्राप्त होता है तथा दस बावलियाँ बनवानेका पुण्य एक तालाबके बनवानेसे और एक पुत्रका जन्म दस तालाबोंके तुल्य तथा एक वृक्ष दस पुत्रोंके तुल्य है।

एक वृक्षसे न जाने कितने जीवोंका लाभ होता है। सम्भव है कि इसी परोपकार-भावनाको एवं परोपकारी जीवनकी श्रेष्ठताको व्यक्त करनेके लिये ही वृक्षोंका माहात्म्य पुत्रोंसे भी अधिक बतलाया गया है।

मनुजीका कथन है कि 'पुत्रवान्‌को स्वर्ग मिलता है।' **'पुत्रवान् लभते स्वर्गम्'** और अपुत्रको अशुभ गति (**'नापुत्रस्य गतिर्शुभा'**)। यह वाक्य पितरोंकी तृप्ति या मानव-जीवनकी सार्थकताके माहात्म्यका बोधक है। अतः सात संतानोंका उल्लेख प्राप्त होता है—

कूपस्तडागमुद्यानं मण्डपं च प्रपा तथा।
जलदानमन्नदानमश्वत्थारोपणं तथा॥

पुत्रश्चेति च संतानं सप्त वेदविदो विदुः।

(स्कन्दपुराण)

कुआँ, तालाब, बगीचा, आराम-भवन, प्याऊ, जल और अन्नदान तथा पीपलके वृक्षका लगाना—ये सात संतान कहलाती हैं।

पीपलका वृक्ष लगानेवाला हजारों वर्षतक तपोलोकमें निवास करता है—

अश्वत्थवृक्षमारोप्य प्रतिष्ठां च करोति यः।
स याति तपसो लोकं वर्षाणामयुतं परम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

सब वृक्षोंमें पीपल श्रेष्ठ है; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपने श्रीमुखसे उसको अपना रूप बताया है—

'**अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्।**' (गीता, विभूतियोग)

हे अर्जुन! वृक्षोंमें मैं पीपलका वृक्ष हूँ।

अतः पीपलके वृक्षका पूजन और पीपल वृक्षका आरोपण अनन्त पुण्यदायक है। इसी प्रकार स्कन्दपुराणमें आँवलेके वृक्षकी महिमा गायी गयी है। इस वृक्षके स्कन्धपर रुद्र भगवान्, शाखाओंमें नदी, प्रशाखाओंमें देवताओंका निवास बतलाया गया है—

सर्वदेवमयी ह्येषा धात्री वै कथिता मया।
तस्मात्पूज्यतमा ह्येषा विष्णुभक्तिपरायणैः॥

अतः इस वृक्षका लगानेवाला सर्वदेवपूजनके पुण्यका अधिकारी होता है। आँवलेकी छायामें पिण्डदान करनेवालेके पूर्वज स्वर्गमें निवास करते हैं। पुत्र-प्राप्तिके लिये आँवलेका पूजन अमोघ साधन है।

पुराणोंमें कितने ही राजाओंकी वृक्षारोपण-सम्बन्धी कथाएँ हैं। स्कन्दपुराणमें द्रविड देशके माल्यवान् नामक राजाकी कथा है—

१. अनेक उपाय करनेपर भी इसे संतान-सुख प्राप्त न हुआ। भाग्यसे इस राजाके समीप दुर्वासा पधारे और राजाकी मनोरथ-सिद्धिके लिये धात्रीपूजनका माहात्म्य वर्णित किया। इस उपायद्वारा राजाको एक पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ।

२. कान्यकुब्ज देशमें शृंगवान् नामक राजा राज्य करता था। इस राजाके राज्यके समय मनुष्योंकी धार्मिक वृत्ति कुछ कम हुई और उन्होंने उसका उपयोग पहले वृक्षोंके माध्यमसे किया। केवल घरोंमें वृक्षारोपण होते थे। उनमें भी वे वृक्ष लगाये जाते थे, जिनसे गृहस्थोपयोगी फल-फूल प्राप्त हों, फलतः हजारों कोशकी भूमि निर्वृक्ष हो गयी थी। कोई धर्मकृत्य मानकर मार्गमें, देवालय आदिमें वृक्ष नहीं लगाते थे। स्वयं शृंगवान्ने सर्वप्रथम लाखों वृक्ष भारतकी भूमिमें लगवाये एवं उनकी रक्षाका माहात्म्य प्रजाको समझाया। स्कन्दपुराणमें लिखा है कि इसने असंख्य वृक्ष देशमें लगवाये थे।

केवल इसी पुण्यकार्यके कारण इस राजाकी अक्षय कीर्ति अद्यापि विद्यमान है।

३. वीरभद्र राजाने सर्वलोकोपकारी वृक्ष लगवाये एवं तालाब आदि स्थानोंका जीर्णोद्धार करवाया था।

'**वृक्षाश्च रोपितास्तत्र सर्वलोकोपकारिणः॥**'

(बृहन्नारदीयपुराण अ० १२)

४. भगवान् श्रीकृष्णने इन वृक्षोंकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है और इन्हें सब प्राणियोंका उपजीव्य बताया है।

अतः वृक्षारोपण करना किसी भी तीर्थ, व्रत, उपवाससे कम नहीं। भारतीय संस्कृतिके इस आवश्यक अंग वृक्षोंकी वृद्धिके लिये अपने हाथों किसी भी स्थानपर एक वृक्ष लगाना धार्मिक कर्तव्य है।

वृक्षारोपण-काल

शुभमुहूर्तमें लगाया गया वृक्ष शुभ फलदायी होता है। वृक्ष लगानेके लिये हस्त, पुष्य, अश्विनी, विशाखा, मूल, उत्तरात्रय, चित्रा, अनुराधा, शतभिषा नक्षत्र श्रेष्ठ हैं। शुभ तिथि तथा वारका भी ध्यान रहे एवं विधिवत् पूजनकर निम्नमन्त्रसे वृक्षकी स्थापना करे—

ॐ वसुधेति च शीतेति पुण्यदेति धरेति च।
नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोऽयं त्वयि रोपते॥

स्मरण रहे कि शास्त्रोंके अनुसार जो पुण्य वृक्षोंके लगानेका है, उससे अधिक पाप वृक्षोंको व्यर्थ काटनेका है; क्योंकि शास्त्रोंमें इन्हें जीवकी संज्ञा दी है। स्मृतियोंका कथन है कि हरे-हरे वृक्षका स्वार्थवश नाश करना अपने कुलके नाश करनेके समान है। यदि भारतवासी शास्त्रोंके इन आदेशोंको ध्यानमें रखें तो यह देश फिर हरा-भरा हो जाय। इसके जो आर्थिक और व्यावहारिक लाभ हैं, वे तो सर्वविदित हैं ही।

भगवत्प्राप्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन—'अनन्य शरणागति'

(श्रीभँवरलालजी परिहार)

भगवत्प्राप्तिके सभी साधनोंमें भगवान्‌के चरणकमलोंकी अनन्य शरण ग्रहण करना सबसे श्रेष्ठ एवं सरल साधन है। इसमें भक्तिके सभी साधनोंका समावेश है। गीताका पर्यवसान एवं सार भी भगवान्‌की शरणागतिमें ही है। सभी साधन बतानेके बाद अन्तमें भगवान् अर्जुनको अपनी शरण ग्रहण करनेका ही आदेश देते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

भगवान्‌का यह कितना बड़ा आश्वासन है। इतनेपर भी यदि हम भगवान्‌की शरणमें न जायँ तो इससे बड़ी मूर्खता और दुर्भाग्य अन्य कुछ नहीं हो सकता। भगवान्‌की शरण ग्रहण करनेके बाद फिर कोई भी साधन शेष नहीं बचता, भक्तकी सम्पूर्ण जिम्मेदारी भगवान्‌पर आ जाती है। इसी कारण भगवान्‌ने शरणागतिको गुप्त रखनेयोग्य सम्पूर्ण साधनोंमें भी सबसे अधिक गुप्त रखनेयोग्य साधन बताया है। अर्जुन भगवान्‌के प्रिय मित्र तथा भक्त थे; अतः भगवान्‌ने अपने हृदयकी परम गुप्त बात उनको बता दी। यह हमारा परम सौभाग्य है कि अर्जुनके माध्यमसे हमें भी भगवान्‌के हृदयकी यह अत्यन्त गुप्त बात जाननेको मिल गयी। अतः इस साधनको छोड़ना नहीं चाहिये अर्थात् तत्परतापूर्वक इसपर आरूढ़ हो जाना चाहिये। फिर तो जीवनकी सफलतामें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है।

शरणागतिका तात्पर्य है अपने जीवनकी बागडोरको भगवान्‌के हाथोंमें सौंप देना। जैसे एक बालक अपनी माताकी गोदमें जाकर निर्भय और निश्चिन्त हो जाता है; वैसे ही हम अपने जीवनका, लोक-परलोकका सम्पूर्ण भार भगवान्‌के कन्धोंपर डालकर, उनकी शरणमें जाकर सदा-सदाके लिये निर्भय-निश्चिन्त बन जायँ। जिसके जीवनकी व्यवस्था स्वयं भगवान् अपने हाथोंसे करते हों—उससे बढ़कर सौभाग्यशाली और कौन हो सकता है? यह केवल कल्पनाकी बात अथवा शब्दाडम्बरमात्र नहीं है; बल्कि परम सत्य है। स्वयं भगवान्‌ने (गीता ९। २२)-में इसकी घोषणा की है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरका निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे मुझे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।

अब प्रश्न यह उठता है कि भगवान्‌की शरणमें जाना कैसे बनता है? इसका वास्तविक तात्पर्य तो बहुत गम्भीर है; किंतु मोटे रूपसे शरणागतिका तात्पर्य है अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर भगवान्‌की इच्छामें अपनी इच्छा मिला देना, उनके प्रत्येक विधानमें प्रसन्न रहना और भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार अपना जीवन बना लेना। श्रुति-स्मृति भगवान्‌की ही आज्ञा हैं; अतः श्रुति-स्मृति अर्थात् शास्त्रोंकी आज्ञाके अनुसार चलना भगवान्‌की आज्ञा मानना है। जो पुरुष शास्त्रकी बात नहीं मानता, वह भगवान्‌की भी बात नहीं मानता है; क्योंकि शास्त्र भगवान्‌की ही आज्ञा है—

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लंघ्य वर्तते।
आज्ञोच्छेदी मम द्रोही मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥

भगवान्‌की आज्ञाका उल्लंघन करनेवाला पुरुष न भगवान्‌का भक्त हो सकता है, न वैष्णव। गीता सर्वशास्त्रमयी है, क्योंकि इसमें सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार संगृहीत है। इसके अतिरिक्त गीतामें भगवान् स्वयं सीधे आदेश दे रहे हैं; अतः गीताकी बात मानना, गीताके अनुसार अपना जीवन बना लेना भगवान्‌की खास बात मानना है। विशेषरूपसे

गीताके सोलहवें अध्यायमें श्लोक-संख्या १ से ३ तकमें वर्णित दैवी सम्पदाके लक्षणों तथा बारहवें अध्यायमें श्लोक-संख्या १३ से १९ तकमें वर्णित भक्तके लक्षणोंके अनुसार अपना जीवन बनानेवाला साधक भगवान्‌का परमप्रिय बन जाता है।

भगवान्‌की शरणागति जब अनन्य हो जाती है तब साधकका जीवन बहुत ऊँचा उठ जाता है। उसके जीवनमें केवल भगवान् ही स्वच्छन्द क्रीड़ा करते हैं तथा वह भगवान्‌के हाथोंकी कठपुतली बन जाता है, उसका जीवन धन्य हो जाता है। देवर्षि नारदने अनन्यताका तात्पर्य इस प्रकार बताया है—

'अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता॥' (भक्तिसूत्र १०)

अर्थात् अपने प्रियतम भगवान्‌को छोड़कर दूसरे आश्रयोंके त्यागका नाम अनन्यता है। हमें माता-पिता, पत्नी-पुत्र, घर-परिवार, धन-सम्पत्ति, पद-अधिकार आदि सभीका आश्रय एवं सम्बन्ध छोड़कर केवल एक भगवान्‌को ही अपना मानना चाहिये एवं उन्हींपर सर्वतोभावेन निर्भर हो जाना चाहिये। उनसे किसी भी प्रकारकी माँग-फरियाद न कर वे जैसे रखें, जिस परिस्थितिमें रखें—उसी प्रकार प्रसन्नतापूर्वक रहना चाहिये तथा स्वेच्छा-परेच्छा-अनिच्छासे आनेवाली सभी अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भगवान्‌का ही मंगलमय कल्याणकारी हाथ समझकर सदा सन्तुष्ट रहनेका स्वभाव बनाना चाहिये।

शरणागत भक्त जितना ऊँचा उठता जाता है, उतना ही अधिक उसमें दैन्यका विकास होता जाता है। यद्यपि उसके जीवनमें भगवान्‌के महनीय गुण अवतरित होने लगते हैं, किंतु वह अपने जीवनमें किसी भी गुणका होना स्वीकार नहीं करता। वह तो रो-रोकर अपनी हीनदशाकी ओर ही प्रभुका ध्यान आकृष्ट करता है और उनसे बार-बार यही निवेदन करता है—

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो, ऐसो नमकहरामी॥
भरि-भरि उदर बिषयकों धायो जैसे सूकर-ग्रामी।
हरिजन छाँड़ि हरी बिमुखनकी निसि दिन करत गुलामी॥
पापी कौन बड़ो जग मोते सब पतितनमें नामी।
सूर पतितको ठौर कहाँ है, तुम बिनु श्रीपति स्वामी॥

भक्तका दैन्य भाव जितना अधिक बढ़ता जाता है, उतनी ही अधिक उसपर भगवान्‌की कृपा बरसने लगती है। भगवत्कृपा तो दीनोंकी ही सम्पत्ति है—**'कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते।'** जो साधक इस रहस्यको समझ जाता है, वह तो अभिमानको अपने पासमें भी फटकने नहीं देता।

साधकके मनमें इस बातका बड़ा भारी उत्साह एवं चाव होना चाहिये कि हम केवल भगवान्‌की अनन्य शरणमें ही रहें। इससे बढ़कर हमारा परम सौभाग्य और क्या हो सकता है कि हमारे जीवनमें वही हो, जो भगवान् चाहते हैं। इससे हमारा परम कल्याण निश्चित है। यहाँपर एक बात और ध्यान देनेकी है। यदि हम नहीं चाहेंगे तो भी होगा तो वही, जो भगवान् चाहते हैं। हम अपनी पूरी योग्यता, साधन, बल, शक्तिका उपयोग करके भी भगवान्‌के इच्छानुसार होनेवाली घटना, परिस्थितिको रोक नहीं सकते, उसको बदल नहीं सकते; भगवान्‌की इच्छा एवं विधानमें बाधा डालनेसे हमारा कल्याण नहीं होगा, बल्कि पतन ही होगा। अत: हमारा परम कल्याण इसीमें है कि हम भगवान्‌की इच्छामें अपनी इच्छा मिलाकर उनके विधानके अनुसार होनेवालेको निर्बाध होने दें, उसको बदलनेकी माँग भगवान्‌से न करें। सांसारिक परिस्थितियोंका तो महत्त्व ही क्या है? क्षण-क्षणमें बदलनेवाली इन परिस्थितियोंकी कामनामें फँसकर हम अपने अनन्त जन्म बिगाड़ते आये हैं। अत: कम-से-कम इस एक जन्ममें तो भगवान्‌की इच्छामें अपनी इच्छा मिलाकर इसका परम प्रभाव देख लें। दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये कि मर जाना स्वीकार है; किंतु कोई कामनाकर अपनी भक्तिमें कलंक नहीं लगायेंगे। अपने-आपको भगवान्‌के चरणकमलोंमें पूर्णत: समर्पित कर देना चाहिये। हम केवल भगवान्‌के ही हैं, अत: अपने ऊपर केवल भगवान्‌का ही निरंकुश अधिकार मानना चाहिये। अपनी वस्तुको भगवान् चाहे जैसे रखें—इसमें हमें क्यों आपत्ति होनी चाहिये? निश्चय ही ये भावोर्मियाँ साधनाकी बहुत ऊँची स्थितिकी सूचक

हैं; किंतु इनको आदर्श मानकर तदनुसार जीवन बनानेकी चेष्टा करनेसे साधक भगवान्‌की कृपासे बहुत शीघ्र भारी आध्यात्मिक लाभ उठा सकता है और भगवान्‌का प्रेम प्राप्त कर सकता है। भगवान्‌का आश्रय लेकर प्रयत्न करनेसे कुछ भी कठिन या असम्भव नहीं है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्॥

(गीता ७। २९)

जो मेरे शरण होकर जरा और मरणसे छूटनेके लिये प्रयत्न करते हैं, वे पुरुष उस ब्रह्मको, सम्पूर्ण अध्यात्मको, सम्पूर्ण कर्मको जान लेते हैं।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(गीता ९। ३२)

हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरे शरण होकर परमगतिको ही प्राप्त होते हैं।

अनन्य शरणागत भक्तका जीवन निर्भयता और निश्चिन्ततासे भरा हुआ होता है। इन्द्र, यम, कुबेर, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वरुण आदि सम्पूर्ण लोकपाल एवं देवता जिनके दास हैं एवं जिनकी आज्ञासे अपने-अपने कार्योंमें लगे रहते हैं, उन अखिल ब्रह्माण्डपति, सर्वलोकमहेश्वर भगवान्‌के अत्यधिक प्रिय शरणागत भक्तको किससे भय लग सकता है अथवा उसको कौन डरा सकता है? उसको किस बातकी चिन्ता रह सकती है? वह अपने शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली सांसारिक वस्तुओं और पारिवारिकजनोंकी चिन्तासे भी ऊपर उठ जाता है; क्योंकि वह उन सबको पहलेसे ही भगवान्‌के चरणकमलोंपर समर्पित कर चुका होता है। देवर्षि नारदने भी यही बात कही है—

'लोकहानौ चिन्ता न कार्या निवेदितात्मलोकवेदत्वात्॥'

(भक्तिसूत्र ६१)

शरणागत भक्तको केवल एक ही बातकी चिन्ता रहती है कि उसके मनसे अपने परम प्रियतम भगवान्‌का चिन्तन एक क्षणके लिये भी छूट न जाय। भगवान्‌के चिन्तनमें ही उसको परम आनन्द, परम सुखका अनुभव होता है। भगवान्‌के मधुर चिन्तनके बिना उसके मनको चैन नहीं मिलता। वह भगवत्प्रेमके अमृत-समुद्रमें क्रीड़ा करता है, संसारके तुच्छ, गन्दे भोगोंकी ओर तो उसकी स्वप्नमें भी दृष्टि नहीं जाती—

यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे।
विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः॥

(श्रीमद्भा० ६। १२। २२)

'जो पुरुष कल्याणके स्वामी भगवान् श्रीहरिकी भक्ति करता है, वह अमृतके समुद्रमें क्रीड़ा करता है। गड्ढेमें भरे हुए तुच्छ गन्दे जलके सदृश किसी भी भोगमें या स्वर्गादिमें उसका मन चलायमान नहीं होता।'

शरणागत भक्त जिस प्रकार किसी भी सांसारिक वस्तु और व्यक्तिको अपना या अपने लिये नहीं मानता, उसी प्रकार वह सांसारिक कार्यों तथा अपने कर्तव्यकर्मोंको भी अपना या अपने लिये नहीं मानता, अपितु उनको भगवान्‌के ही कार्य मानकर उनका उत्साहपूर्वक सम्पादन करता है। कार्य सफल या असफल होनेपर वह प्रसन्न या दुःखी नहीं होता; क्योंकि जब कार्य भगवान्‌का है तो उसकी सफलता-असफलतासे भगवान् ही सुखी-दुःखी हों, साधक नहीं। भगवान्‌के लिये कर्म करनेकी यह कला जिसके हाथ लग जाती है, उसके लोक-परलोक दोनों सुधर जाते हैं। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥

(गीता १८। ५६)

मेरे परायण हुआ कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मोंको सदा करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥

(गीता १२। १०)

यदि तू उपर्युक्त अभ्यासमें भी असमर्थ है तो केवल मेरे लिये कर्म करनेके ही परायण हो जा। इस प्रकार मेरे निमित्त कर्मोंको करता हुआ भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको ही प्राप्त होगा।

हम भगवान्‌के अंश हैं, अतः हमें केवल भगवान्‌की ही शरणमें रहना चाहिये और केवल उन्हींका आश्रय लेना

चाहिये—'**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।**' (गीता १५।७) संसारका आश्रय लेना और इसका विश्वास करना भारी मूर्खता और जड़ता है। गोस्वामीजीने विनय-पत्रिकामें लिखा है—

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरो जीव-जड़ताई॥

× × × × ×

या जगमें जहँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं॥

संसारका आश्रय न तो टिकेगा और न इससे किसी उद्देश्यकी सिद्धि ही होगी; बल्कि चौरासी लाखका चक्कर और अधिक लम्बा हो जायगा। जबकि भगवान्‌का आश्रय हमेशा-हमेशाके लिये टिकेगा, इससे हमारे सम्पूर्ण उद्देश्योंकी सिद्धि भी हो जायगी और चौरासी लाखका चक्कर भी समाप्त हो जायगा। अतः हमें तो विभीषणकी भाँति तत्काल भगवान्‌की शरणमें पहुँच जाना चाहिये—

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥

(रा०च०मा० ५।४५)

भगवान्‌का दरवाजा तो सुदुराचारी—बड़े-से-बड़े पापी व्यक्तिके लिये भी खुला है। संसारका सबसे बड़ा पापी भी यदि अपने पापकर्मोंको छोड़कर भगवान्‌की शरणमें चला जाय तो भगवान् उसका भी त्याग नहीं करते, बल्कि उसको अपनी शरणमें रख लेते हैं—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥

(रा०च०मा० ५।४४।१)

इतना ही नहीं, भगवान्‌का भजन करनेसे वह शीघ्र ही धर्मात्मा-महात्मा बन जाता है और शाश्वत शान्तिको प्राप्त कर लेता है। बिल्वमंगल तथा अजामिल आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। गीतामें तो भगवान्‌ने अपने इस परमोदार स्वभावकी स्पष्ट घोषणा कर रखी है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(९।३०-३१)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

भक्तिके मार्गपर चलते हुए हमें अपना हृदय टटोलकर यह जाननेकी नितान्त आवश्यकता है कि इसमें संसारका आकर्षण कितना है और भगवान्‌के प्रति आकर्षण कितना है; क्योंकि ज्ञान और भक्तिकी बड़ी-बड़ी बातें करना तो बहुत सरल काम है; किंतु शूरवीर वे पुरुष हैं जो इस मार्गपर सावधानीपूर्वक चलकर सफलता प्राप्त कर लेते हैं। जबतक संसारके प्रति लेशमात्र भी आकर्षण विद्यमान है, तबतक सावधान हो जानेकी आवश्यकता है। यथार्थमें संसारके प्रति भी आकर्षण हो और भगवान्‌के प्रति भी आकर्षण हो—यह कोई भक्ति नहीं है। यह भक्तिमें व्यभिचार है। भक्ति तो वह है, जिसमें हृदय भगवान्‌के प्रति पूर्णतः समर्पित हो जाय; हृदयमें भगवान्‌के अतिरिक्त अन्य किसीके लिये कुछ भी जगह न हो। ऐसी अनन्य भक्तिसे ही भगवान् प्रसन्न होते हैं।

एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥

(रा०च०मा० ३।१०।८)

संन्यासीका आदर्श

संन्यासी यदि स्वयं निर्लिप्त हो, जितेन्द्रिय हो, तो भी लोगोंके सामने आदर्श रखनेके लिये उसे कामिनी-कांचनका सर्वतोभावेन त्याग करना चाहिये। संन्यासीका सोलहों आना त्याग देखकर ही लोगोंको साहस होगा, तभी वे कामिनी-कांचनको त्यागनेका प्रयत्न करेंगे। भला, त्यागकी शिक्षा अगर संन्यासी न दे तो दे कौन?

—श्रीरामकृष्ण परमहंस

जीवनचर्या—श्रीरामचरितमानसमें

(श्रीदेवेन्द्रजी शर्मा)

[गतांक संख्या ८ पृ०-सं० ८२५ से आगे]

उत्तरकाण्ड

उत्तरकाण्डमें कलियुगके दोषों और लोगोंपर उनके प्रभावका विस्तारसे वर्णन है। कलियुगी जीवोंका कल्याण कैसे हो? इसके उत्तरमें श्रीगोस्वामीजी बड़ा सरल-सा समाधान प्रस्तुत करते हुए कलियुगमें मनुष्योंकी जीवनचर्या निर्धारित करते हैं—

कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि॥
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं॥

(रा०च०मा० ७।१०३।४—७)

अर्थात् सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापरयुगमें जो पुण्य कठिन योग-तप-यज्ञादि करनेसे मिलता है, वही पुण्य कलियुगमें केवल श्रीभगवान्‌के नामका स्मरण-कीर्तन करनेसे प्राप्त हो जाता है, बशर्ते कि यह श्रीभगवान्‌पर पूर्ण भरोसा करके और निर्मल मनसे किया जाय।

अतः मन-बुद्धिको निर्मल रखते हुए सदैव ही श्रीभगवान्‌के श्रीचरणकमलोंको हृदयमें धारण करके उनके पतितपावन नामका नित्य-निरन्तर स्मरण करते रहना ही कलियुगकी श्रेष्ठ जीवनचर्या है और उसमें ही कल्याण है।

श्रीरामचरितमानसमें गुरुके प्रति अपराधको अक्षम्य बताया गया है। श्रीकाकभुशुण्डिजीके प्रसंगमें उनके द्वारा गुरुके प्रति अपराध होनेसे भगवान् श्रीशंकर रुष्ट होकर उन्हें शाप देते हुए कहते हैं—

जे सठ गुर सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं॥
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा॥

(रा०च०मा० ७।१०७।५-६)

अर्थात् जो मूर्ख गुरुसे ईर्ष्या करते हैं, उन्हें करोड़ों युगोंतक रौरव नरक भोगना पड़ता है। फिर वहाँसे निकलकर वे तिर्यक् (पशु-पक्षी आदि) योनियोंमें शरीर धारण करते हैं और दस हजार जन्मोंतक दुःख पाते हैं।

कृपालु-दयालु गुरुजीकी प्रार्थनासे क्रोध शान्त होनेपर आशुतोष भगवान् श्रीशंकर काकभुशुण्डिजीको स्पष्ट आदेश करते हैं—

अब जनि करहि बिप्र अपमाना। जानेसु संत अनंत समाना॥

(रा०च०मा० ७।१०९।१२)

अब कभी भी ब्राह्मणका अपमान न करना और सन्तोंको सदा अनन्त श्रीभगवान्‌के ही समान जानना।

इस प्रकार ब्राह्मण और सन्तोंके सम्मान करनेका जीवन-सूत्र मानसके उत्तरकाण्डमें निरूपित किया गया है।

श्रीकाकभुशुण्डिजी और श्रीगरुड़जीके संवादमें श्रीगरुड़जीके सात प्रश्न और श्रीकाकभुशुण्डिजीके द्वारा उनके उत्तरके माध्यमसे मानस रोगों तथा उनके उपचारका वर्णन किया गया है। रोग गलत जीवनचर्याके परिणाम हैं, अतः गोस्वामीजीने उनसे बचनेके लिये सचेत किया है—

सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना॥
ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई॥
अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ॥
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी। त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी॥
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका॥

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥
नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥

(रा०च०मा० ७।१२१।२८—३७; ७।१२१(क, ख))

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति बियोगी॥
मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सब कें लखि बिरलेन्ह पाए॥
जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी॥
बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे॥

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संजोगा॥
सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥
जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई॥
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई॥
बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई॥

(रा०च०मा० ७।१२२।१—११)

हे गरुड़जी! अब आप मानस (मनके) रोगोंको सुनिये, जिनसे कि सब लोग दुःख पाया करते हैं—

मनके सब रोगोंकी जड़ मोह (अज्ञान) है। इस मोहरूपी जड़से फिर और बहुतसे शूल (व्याधियाँ) उत्पन्न होते हैं। काम वात-रोग है। लोभ कफ-रोग है और क्रोध पित्तका रोग है; जो सदा छाती जलाता रहता है। यदि कहीं ये तीनों भाई (वात, पित्त और कफ) प्रीति कर लें (आपसमें मिल जायँ) तो दुःखदायक सन्निपात रोग उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकारसे कठिनतासे पूर्ण होने वाले जो विषयोंके मनोरथ हैं, वे ही सब अपार शूल (कष्टदायक रोग) हैं।

ममता दादका रोग है। ईर्ष्या (डाह) खुजली-रोग है। हर्ष-विषाद गलेके (गलगंड, कण्ठमाला या घेघा आदि) बहुतायत रोग हैं। पराये सुखको देखकर जो जलन होती है, वही क्षय (टी० बी०)-का रोग है। दुष्टता और मनकी कुटिलता ही कोढ़का रोग है। अहंकार अत्यन्त दुःख देनेवाला डमरू (गाँठ)-का रोग है। दम्भ, कपट, मद और मान नहरुआ आदि (नसोंके) रोग हैं। तृष्णा बड़ा भारी उदरवृद्धि (जलोदर)-रोग है। पुत्र, धन और मानकी—तीन प्रकारकी प्रबल इच्छाएँ ही प्रबल तिजारी-रोग है। मत्सर और अविवेक—ये दो प्रकारके ज्वरके रोग हैं। हे गरुड़जी! कहाँतक कहूँ, इस प्रकार अनेक असाध्य (बुरे) रोग हैं, उन सबके नाम जानना भी एक कठिन कार्य है। ध्यान देनेयोग्य बात यह है कि एक ही रोगसे ग्रस्त होकर मनुष्य मर जाते हैं, फिर ये तो बहुतसे असाध्य रोग हैं, जो जीवको निरन्तर कष्ट देते रहते हैं, तो फिर ऐसी दशामें यह जीव समाधि-अवस्था (शान्ति)-को कैसे प्राप्त करे?

उपर्युक्त मानस रोगोंके माध्यमसे गोस्वामीजीने मनुष्यको गलत जीवनचर्या (ममता, ईर्ष्या, तृष्णा, अहंकार, कुटिलता आदि)-का त्याग करनेका सन्देश दिया है।

उपर्युक्त मानस (मनके) रोगोंके उपचारके लिये उचित जीवनचर्याका वर्णन उत्तरकाण्डमें इस प्रकार प्राप्त होता है—नियम, धर्म, आचार (उत्तम आचरण), तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान तथा और भी करोड़ों औषधियाँ हैं, परंतु हे गरुड़जी! इन औषधियों (उपचारों)-से भी ये भारी रोग नहीं जाते। इस प्रकार जगत्‌में समस्त जीव रोगी हैं, जो शोक, हर्ष, भय, प्रीति और वियोगके दुःखोंसे दुःखी हो रहे हैं। मैंने तो ये थोड़े-से मानस-रोग कहे हैं। ये हैं तो सबको ही परंतु कोई बिरला ही इन्हें अपनेमें जान (अनुभव कर) पाता है।

हे गरुड़जी! पहचान लिये जानेके बाद ये पापी महारोग कुछ क्षीण अवश्य हो जाते हैं, परंतु इनका नाश तो फिर भी नहीं होता। विषयरूपी कुपथ्य पाकर ये मानस (मनके) रोग मुनियोंके हृदयोंमें भी फिरसे अंकुरित हो उठते हैं, तब बेचारे साधारण मनुष्य तो इनके आगे चीज ही क्या हैं।

इन सब रोगोंके नष्ट होनेका एक ही उपाय है, यदि भगवान् श्रीरामजीकी कृपासे इस प्रकारका संयोग बन जाय कि सद्गुरुरूपी वैद्यके वचन (उपदेश)-में दृढ़ विश्वास हो और संयमरूपी परहेजद्वारा अनेक प्रकारके विषयोंकी आशाओंसे दूर रहा जाय। उपचारके लिये दवा भी एक ही है और वह है श्रीभगवान्‌की भक्तिरूपी संजीवनी जड़ी, जिसका अनुपान (सेवन) श्रद्धासे पूर्ण बुद्धिरूपी मधुके साथ किया जाये। तब तो भले ही ये महारोग नष्ट हो जायँ, नहीं तो करोड़ों प्रयत्नोंसे भी ये महारोग नहीं जाते हैं।

हे गरुड़जी! जब हृदयमें वैराग्यका बल बढ़ जाय, उत्तम बुद्धिरूपी भूख नित नयी बढ़ती रहे और विषयोंकी आशारूपी दुर्बलता मिट जाय तभी मनको नीरोग हुआ जानना चाहिये। इस प्रकार सब रोगोंसे छूटकर जब मनुष्य निर्मल ज्ञानरूपी जलमें स्नान कर लेता है, तब उसके हृदयमें भगवान् श्रीरामकी भक्ति छा जाती है। [**क्रमशः**]

साधनोपयोगी पत्र

(१)

सेवाधर्म

आपका कृपापत्र मिला था। बहुत बार मनुष्य दूसरेकी सेवा करने जाकर उसकी सेवा तो नहीं करता, वरं उसीको अपनी सेवामें लगा लेता है। सेवा तो वही है, जिसमें बदला पानेकी भावना न हो, जिसकी सेवा की गयी हो, उसका इसलिये कृतज्ञ हुआ जाय कि उसने हमारी सेवा स्वीकार की, भगवान्‌की दया मानी जाय कि उन्होंने सेवाके कार्यमें हमको नियुक्त किया। वस्तुतः जिसकी हमने सेवा की, उसकी सेवा तो होती ही; क्योंकि मनुष्यको जो कुछ भी भला-बुरा फल प्राप्त होता है, उसका कारण किसी-न-किसी रूपमें पहलेसे तैयार रहता है। कार्यके पहले कारण होना ही चाहिये। भगवान्‌ने किसीकी भलाईमें हमें निमित्त बनाया, यह उनकी कृपा है। यथार्थमें जिन वस्तुओंसे हमने किसीकी सेवा की, वे वस्तुएँ भी तो भगवान्‌की ही थीं, जिनकी सेवा की, वे भी तो भगवान्‌के स्वरूप हैं और जिस प्रेरणासे सेवा हुई, उस प्रेरणाके देनेवाले और सेवा करनेवाले हमारे इस स्वरूपको अनुप्राणित करनेवाले तथा आत्मरूप देकर इसे प्रकट करनेवाले भी तो भगवान् ही हैं। फिर हम किसीकी सेवा करनेका अलग अभिमान करनेवाले कौन? जो कुछ हुआ, सब श्रीभगवान्‌की लीला हुई। भगवान्‌ने ही कृपा करके, हमें शुद्ध प्रेरणा करके और सेवाके योग्य वस्तुएँ प्रदान करके सेवामें निमित्त बनाया। सेवा बातोंसे नहीं होती। सेवा तो मनकी चीज है। सेवाकी दूकान न खोलकर जो चुपचाप सच्चे मनसे सेवा करता है, वही वास्तविक सेवा है। सेवामें कृतज्ञता है, अहसान नहीं है; आत्मतृप्ति है, अभिमान नहीं है; आनन्द है, विषाद नहीं है; त्याग है, ग्रहण नहीं है; और प्रेम है, दिखावट नहीं है। जहाँ केवल सेवाका विज्ञापन है, सेवा करानेवालेपर अहसान है, अपने मनमें अभिमान है, बदलेमें कुछ पानेकी इच्छा या आकांक्षा है, वहाँ शुद्ध सेवा नहीं है।

याद रखिये—अन्तर्यामी भगवान् हमारे हृदयको देखते हैं, शब्दोंकी छटाको नहीं। इसलिये मनुष्यको बहुत बोलनेवाला न बनकर चुपचाप काम करनेवाला बनना चाहिये। वाणी और आचरण दोनोंमें सत्य होना चाहिये। जहाँ बातें अधिक होती हैं, वहाँ सत्य छिप जाता है। सत्यका प्रकाश निरन्तर रहना चाहिये। तभी सच्ची सेवा बन सकती है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

आनन्दका स्वरूप

आपने सदा आनन्दमें रहनेका उपाय पूछा, सो बड़ी अच्छी बात है। आनन्दमें रहनेका उपाय जाननेसे पहले आनन्दका कुछ स्वरूप जान लेना आवश्यक है। आनन्द भगवान्‌का स्वरूप है। किसी कामनाकी पूर्ति होनेपर क्षणभरके लिये जो आनन्द प्राप्त होता है, वह आनन्द नहीं है, वह तो आनन्दाभास है; क्योंकि वह विषयजन्य है। वह चित्तका एक विकारमात्र है, जो विषयके साथ इन्द्रियका संयोग होनेपर प्राप्त होता है। वह आनन्द नहीं है, उसे सुख कह सकते हैं। आनन्द सुख-दुःखसे अतीत है। आनन्द शुद्ध है, निरंजन है, नित्य है, सत् और स्वप्रकाश है; चेतन है, अखण्ड है, एकरस है, सम है, सर्वत्र है, सनातन है, अशब्द-अस्पर्श-अरूप और अव्यय है, बोधस्वरूप है, एक है; उस आनन्दमें न सजातीय-विजातीय भेद है, न स्वगत-भेद है, न किसी प्रकारका अंगांगिभाव या भोक्ता-भोग्यभाव है। वह केवल आनन्द है। एकमेवाद्वितीयम् है। उसमें न अशान्ति है और न विक्षेप है; वह नित्य शान्त, समाहित और स्निग्ध है। वह असीम है और अपार है; उसमें उदय और अस्त नहीं है—उत्पत्ति और विनाश नहीं है—वह सान्त नहीं है, अनन्त है। वह आनन्द निर्बाध है। उसमें तू-मैं और तेरे-मेरेका भेद नहीं है। उसमें आदि-मध्य-अन्त, सृष्टि-स्थिति-संहार, भूत-भविष्यत्-वर्तमान, दृश्य-द्रष्टा-दर्शन नहीं है, वही तू है, वही मैं है, वही सब कुछ है, साथ ही वह तू भी नहीं है, मैं भी नहीं है, वह कुछ भी नहीं है। है केवल आनन्द, परम आनन्द, अपार आनन्द, अमर आनन्द, महान् आनन्द, शान्त आनन्द, सत् आनन्द, चित् आनन्द, आनन्द-ही-आनन्द, आनन्द-ही-आनन्द।

उस आनन्दमें अस्ति-नास्तिका भेद नहीं है, दोनों ही उसमें हैं, दोनों ही उससे हैं, वही दोनों हैं और दोनोंसे ही परे हैं। प्रकाश-अन्धकार, ज्ञान-अज्ञान, विद्या-अविद्या, सगुण-अगुण, सुख-दुःख, लाभ-हानि आदि परस्परविरुद्ध सभी धर्मोंका वही आधार है। उसीमें और उसीसे इन सबका अस्तित्व व्यक्त होता है। ऐसा होनेपर भी उसकी महिमामें

उसकी निरंजनतामें कोई बाधा नहीं पहुँचती; वह सदा ही एकरस है। जिन परस्परविरुद्ध धर्मोंका व्यक्त होना कहा जाता है, वे भी वस्तुतः हैं नहीं; यह तो उसकी लीला है। है केवल वही और वही आनन्द है। वह आनन्द आप ही अपनेसे पूर्ण है, उसी नित्य सनातन आनन्दसे ही बाह्य सभी आनन्दोंका प्रकाश है। वही सबका हेतु है, सभी उसीसे जन्य हैं। परंतु वह स्वयं नित्य अहैतुक और अजन्य है। वह भूमा है, अल्प नहीं है। वह आनन्द ही आपका अपना स्वरूप है, उसी आनन्दसे आपका अस्तित्व है; आप उसी आनन्दसे आये हैं, उसी आनन्दमें हैं और उसी आनन्दमें प्रविष्ट होंगे। आप उस आनन्दसे कभी पृथक् हो ही नहीं सकते; क्योंकि वही आपका अपना स्वरूप है। फिर उसका वर्णन भी कौन करे और कैसे करे?

आप आनन्दकी खोजमें हैं, आनन्द चाहते हैं और आनन्दप्राप्तिका उपाय पूछते हैं, यह ठीक ही है। सभी जीव ऐसा ही चाहते हैं—भोगसे हो या त्यागसे, रोगसे हो या वैराग्यसे, सृजनसे हो या संहारसे, कैसे भी हो प्राप्त होना चाहिये आनन्द। जीवकी यही सहज आकांक्षा है। जीव अनादि कालसे इसी खोजमें लगा है; परंतु वह बाहर जितना ही खोजता है उतना ही उसे निराश होना पड़ता है, आनन्दके बदले विषाद ही मिलता है; क्योंकि आनन्द बाहर है नहीं, आनन्दका अटूट खजाना तो अन्दर है। बस, एक बार हिम्मत करके परदा हटा देना चाहिये, फिर आनन्द-ही-आनन्द है। परदा हटते ही अन्दरका वह अनन्त आनन्द समस्त जगत्में फैल जायगा। फिर दुःख-दैन्यका नाश हो जायगा। शोक-विषाद मर जायँगे। फिर दीखेगी सर्वत्र आनन्दकी छटा, सर्वत्र हँसी-खुशी, सर्वत्र सुख-शान्ति। सर्वत्र—अखिल विश्व आनन्दकी अनूप सुषमासे सुशोभित हो उठेगा। सब ओर आनन्दमयका आनन्द-ही-आनन्द दिखायी देगा। फिर जगत्में दिखायी देगा सभी सुन्दर, सभी मधुर, सभी स्निग्ध, सभी ज्योत्स्नामय; इस अनन्त असीम आनन्दकी अजस्र धारामें समस्त विश्व बह जायगा। भगवान्का बतलाया हुआ यह 'दुःखालय' और 'अशाश्वत' जगत् इस सच्चिदानन्दमयी आनन्दधारामें बहकर नित्य आनन्दमय हो जायगा।

इस आनन्दकी प्राप्तिका उपाय है—निरन्तर आनन्दका विचार, आनन्दका ध्यान। नित्य आनन्दपर जो अज्ञानका परदा पड़ा है ज्ञानरूपी तलवारसे उसे काट डालना। यह आनन्द कहींसे आयेगा नहीं। यह तो है ही। आनन्दकी नित्य सन्निधिमें रहनेपर भी, आनन्दकी ही सन्तान होकर भी जीव इस आनन्दसे वंचित है। यही तो मोह है। परंतु आनन्दसे निकला हुआ, आनन्दकी खोजमें लगा हुआ जीव तबतक तृप्त नहीं हो सकता, जबतक कि वह जीवत्वके परदेको फाड़कर अपने स्वरूप आनन्दमय ब्रह्मत्वको प्राप्त न कर ले। वह तो प्राप्त ही है; प्राप्तिमें जो अप्राप्तिका भ्रम है, सत्संग, वैराग्य, विचार, ध्यान और अटूट श्रद्धाके द्वारा उस भ्रमको मिटा देना है। फिर आनन्द-ही-आनन्द है; क्योंकि वही असलमें है। शेष भगवत्कृपा।

(३)

भोग-तृष्णामें दुःख

तुम्हारा पत्र मिला। भाई, दुःखोंसे घबड़ाओ मत। दुःख-कष्टोंके आघातसे यदि चेतना खो दोगे तो बड़ी हानि होगी। मनुष्यजीवन ही व्यर्थ हो जायगा। दुःख-दैन्य और आधि-व्याधि भी तो भगवान्की ही सृष्टि है; विश्वास रखो, हमारे मंगलके लिये भगवान्ने इनको रचा है। इसकी चोटमें भगवान्के कोमल करस्पर्शके सुखका अनुभव करो—चपत करारी है, परंतु है तो प्यारेके हाथकी। वह स्नेहसे ही मारता है; क्योंकि वह कभी स्नेहरहित, निर्दय हो ही नहीं सकता। हम दिन-रात विषय-चिन्तन करते हैं, विषयोंके पीछे पागल बने हुए हैं, विषयोंके नाश और विषय-भोगोंके अभावको ही दुःख-कष्ट समझते हैं; इसीसे सदा दुःखोंके तापसे तपते रहते हैं। यदि भगवच्चिन्तन करनेमें आनन्दमय भगवान्का ध्यान करने लगें, तो यह विषयोंका अभाव ही हमारे लिये सुखकर हो जायगा। फिर संसारका कोई भी दुःख आनन्दमयके ध्यानमें प्रशान्त हुए हमारे चित्तमें क्षोभ उत्पन्न नहीं कर सकेगा।

भाई, यह मनुष्य-जन्म धन कमाकर भोग भोगनेके लिये नहीं है; संसारमें तुम इसलिये मनुष्य बनाकर नहीं भेजे गये हो कि तुम दिन-रात केवल विषय-भोगोंके बटोरनेकी चिन्तामें लगे रहो, क्षण-क्षणमें विषयके नाशकी भावनासे दुःखी और विषयप्राप्तिके संकल्पसे सुखी होते रहो और अपने जीवनको इन कल्पित दुःख-सुखोंकी तरंगोंके आघातसे चूर-चूर करके अन्तमें हाथ मलते, पछताते, रोते मनुष्यजीवनसे हाथ धोकर चले जाओ। यह जीवन तो मिला है तुम्हें भगवान्को पानेके लिये। जगत्के सारे दुःख-सुखोंमें जीवनके इस उद्देश्यको कभी न भूलो। यहाँके दुःख वस्तुतः हैं ही क्या,

जिनसे तुम इतना घबड़ा रहे हो? जिसको तुम दुःख कहते हो, वह विषयोंका अभाव ही तो है, परमात्माको चाहनेवाले साधक तो हँसते-खेलते जान-बूझकर विषयोंका सर्वथा त्याग करके सुखी हुआ करते हैं। मान-सम्मानके मोहमें मत फँसो। धनियोंके भोगों, महलों और मोटरोंकी ओर देखकर दिल न ललचाओ, उनके-जैसे बनकर उनके बीच बैठनेकी इच्छा न करो। इसमें अपमान, असम्मान या लांछनकी कौन-सी बात है। याद रखो, संसारके मान-सम्मानसे मण्डित, पर भगवान्‌को भूले हुए विषयासक्त धनीकी अपेक्षा अपमानित और लांछित वह दरिद्र बहुत ही उत्तम है, जो सदा अपने चित्तको भगवान्‌में लगानेकी चेष्टा करता है और भगवान्‌का भजन करता है। याद रखो, वह विषयासक्त धनी नरकोंकी आगमें जलेगा और वह गरीब भगवान्‌रूपी स्नेहमयी जननीकी सुख-शान्तिभरी गोदका लाड़ला शिशु होगा। तुम इन दोनोंमें किस स्थितिको पसन्द करते हो? फिर क्यों दुःखी होते हो धनके अभावमें? क्यों अपनेको अपमानित समझते हो बहुत शानसे न रह सकनेमें? इस मोहको छोड़ दो। भगवान्‌ने तुमपर कृपा की है, जो धनमदसे तुम्हें मुक्त कर दिया है। अब निर्द्वन्द्व होकर सुखसे भगवान्‌का भजन करो, तुम्हारा मंगल होगा। विश्वास करो, भगवान्‌का मंगलमय हाथ सदा ही तुम्हारे मस्तकपर है। विश्वासके साथ भजन करते रहोगे तो कुछ दिनोंमें इसका स्वयं अनुभव करोगे।

धनी बनने, धनियोंका-सा खर्चीला जीवन बिताने और धनियोंके गिरोहमें बैठने-उठनेकी लालसाने ही असलमें तुम्हें दुःखी बना रखा है। नहीं तो रोटी मिलती ही है, कपड़े तन ढकनेको मिल ही जाते हैं, सोने-बैठनेको जमीन है ही। फिर और क्या चाहिये? धनी लोग क्या धन होनेके कारण आध पाव अन्नके बदले दो-चार सेर खाते हैं? अथवा क्या वे साढ़े तीन हाथकी जगह दस-बीस हाथ जमीनपर सोते हैं? क्या वे रुपयोंकी गठरी बाँधे साथ लिये फिरते हैं? खाते-पीते उतना ही हैं, सोते उतनी-सी जमीनपर ही हैं। शरीर भी उनके रुपयोंसे लदे नहीं होते। फिर तुम्हारी-उनकी स्थितिमें क्या अन्तर है? हाँ, इतना अवश्य है, उनमें धनका अभिमान है, अपनेसे बड़े धनियोंसे ईर्ष्या है और तुममें धनके अभावका विषाद है और तुम अपनेको दुःखी मानते हो। दुःखी तो वे भी हैं; क्योंकि वे भी अपनी स्थितिमें सन्तुष्ट नहीं हैं। भाई! यह मोह छोड़ दो—भजन करके जीवनको सार्थक करो। मोटा खाना, मोटा पहनना, गरीबीसे रहना, सन्तोष हो तो महान् सुखकर है और भगवान्‌की प्राप्तिमें बड़ा ही सहायक है।

भगवान्‌के लिये बड़े-बड़े राजाओंने संन्यास लिया था, तुमपर तो भगवान्‌की कृपा है, जो तुम्हारे विषय-भोग अपने-आप ही कम हो गये हैं। जीवन-निर्वाहकी चिन्ता विश्वम्भरपर छोड़ दो—जितना बने निर्दोष कर्म करते रहो—जीवन-निर्वाह हो ही जायगा। घबड़ाओ नहीं। भगवान्‌पर भरोसा रखनेवाले कभी इसकी चिन्ता नहीं करते। वे तो भगवच्चिन्तन ही करते हैं। उनके लौकिक-पारलौकिक योगक्षेमको भगवान् वहन करते हैं। गीता (९।२२)-के इस श्लोकको याद करो—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

भगवान् कहते हैं—जो अनन्य भक्त मुझको निरन्तर चिन्तन करते हुए मेरा भजन करते हैं, उन नित्य मुझमें लगे हुए भक्तोंका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।

उस सुखकी कभी इच्छा न करो, जो भगवान्‌को भुला दे और उस दुःखका स्वागत करो, जो भगवान्‌का स्मरण कराये—

सुखके माथे सिल पड़े जो नाम हृदैसे जाय।
बलिहारी वा दुःखकी जो छिन छिन राम रटाय॥

सच्ची बात तो यह है कि भगवान्‌को भुलाकर भोगोंसे कभी मनुष्य सुखी हो ही नहीं सकता। भोग तो दुःख ही पैदा करते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५।२२)

विषयोंके साथ इन्द्रियोंका संयोग होनेपर उत्पन्न होनेवाले जो ये भोग हैं वे निश्चय ही दुःखके हेतु और आदि-अन्तवाले हैं, हे अर्जुन! बुद्धिमान् पुरुष उनमें प्रीति नहीं करता।

सारा दुःख इन भोगोंकी तृष्णामें ही है; अतएव भाई! शान्तिपूर्वक विचार करो और भोगतृष्णाका नाश करके भगवान्‌का भजन करो। महाभारतमें कहा है—

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्॥

संसारमें जो भोग-सुख है और स्वर्गादिके महान् देव-सुख हैं, वे कोई-से भी तृष्णानाशके सुखके सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं हैं। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६७, शक १९३२, सन् २०१० ई०, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ११।६ बजेतक	बुध	शतभिषा रात्रिमें ११।३१ बजेतक	२५ अगस्त	× × × ×
द्वितीया ,, १।७ बजेतक	गुरु	पूर्वाभाद्रपद ,, २।५ बजेतक	२६ ,,	मीनराशि रात्रिमें ७। २७ बजेसे, **अशून्य शयनव्रत** चन्द्रोदय ७। ३ बजे।
तृतीया ,, २।५४ बजेतक	शुक्र	उत्तराभाद्रपद रात्रिशेष ४।२७ बजेतक	२७ ,,	भद्रा दिनमें २। ० बजेसे रात्रिमें २। ५४ बजेतक, **कज्जली तृतीया,** मूल रात्रिशेष ४। २७ बजेसे।
चतुर्थी रात्रिशेष ४। २२ बजेतक	शनि	रेवती अहोरात्र	२८ ,,	बहुलाव्रत, **श्रीगणेशचतुर्थीव्रत** चन्द्रोदय रात्रिमें ८। ४ बजे।
पंचमी ,, ५।२२ बजेतक	रवि	रेवती प्रात: ६। ३० बजेतक	२९ ,,	**पंचक समाप्त** प्रात: ६। ३० बजे, **मेषराशि** प्रात: ६। ३० बजेसे।
षष्ठी अहोरात्र	सोम	अश्विनी दिनमें ८।५ बजेतक	३० ,,	मूल दिनमें ८। ५ बजेतक, **चन्द्रषष्ठी, हलषष्ठी (ललहीछठ)-व्रत** चन्द्रोदय रात्रिमें ९। १७ बजे।
षष्ठी प्रात: ५।५५ बजेतक	मंगल	भरणी ,, ९।१२ बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** प्रात: ५। ५५ बजेसे सायं ५। ५५ बजेतक, **वृषराशि** दिनमें ३। २१ बजे, **पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्रमें सूर्य** दिनमें ३। ५६ बजे।
सप्तमी ,, ५।५६ बजेतक अष्टमी रात्रिशेष ५। २६ बजेतक	बुध	कृत्तिका ,, ९। ४९ बजेतक	१ सितम्बर	**श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत (स्मार्त्त), गोकुलाष्टमी।**
नवमी ,, ४। २७ बजेतक	गुरु	रोहिणी ,, ९।५६ बजेतक	२ ,,	**श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत (वैष्णव), मिथुनराशि** रात्रिमें ९। ४५ बजेसे।
दशमी रात्रिमें ३।३ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा ,, ९। ३५ बजेतक	३ ,,	भद्रा दिनमें ३। ४६ से रात्रिमें ३। ३ बजेतक।
एकादशी ,, १। १९ बजेतक	शनि	आर्द्रा ,, ८।५१ बजेतक	४ ,,	**कर्कराशि** रात्रिमें २। २ बजेसे, **जया एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी रात्रिमें ११।१७ बजेतक	रवि	पुनर्वसु प्रात: ७।४६ बजेतक	५ ,,	**अघोरद्वादशी।**
त्रयोदशी ,, ९।२ बजेतक	सोम	पुष्य ,, ६। २५ बजेतक श्लेषा रात्रिशेष ४।५३ बजेतक	६ ,,	मूल प्रात: ६। २५ बजेसे, **सिंहराशि** रात्रिशेष ४। ५३ बजेसे, **भद्रा** रात्रिमें ९। २ बजेसे, सोमप्रदोषव्रत।
चतुर्दशी रात्रि ६। ३८ बजेतक	मंगल	मघा रात्रिमें ३। १४ बजेतक	७ ,,	भद्रा प्रात: ७। ५० बजतेतक, **अघोरचतुर्दशी।**
अमावस्या सायं ४।१२ बजेतक	बुध	पूर्वा फाल्गुन रात्रिमें १। ३४ बजेतक	८ ,,	स्नान-दान-श्राद्धादिकी अमावस्या, **कुशोत्पाटिनी अमावस्या।**

सं० २०६७, शक १९३२, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-शरद-ऋतु, भाद्रपद शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १।४६ बजेतक	गुरु	उ० फा० रात्रिमें ११।५६ बजेतक	९ सितम्बर	**कन्याराशि** दिनमें ७। ९ बजेसे, चन्द्रदर्शन।
द्वितीया ,, ११। २८ बजेतक	शुक्र	हस्त रात्रिमें ११। २७ बजेतक	१० ,,	× × × ×
तृतीया दिनमें ९। १९ बजेतक	शनि	चित्रा ,, ९। ११ बजेतक	११ ,,	भद्रा रात्रिमें ८। २२ बजेसे, **तुलाराशि** दिनमें ९। ४९ बजेसे, **हरितालिका (तीज)-व्रत,** चन्द्रदर्शन निषिद्ध, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
चतुर्थी प्रात: ७।२६ बजेतक पंचमी रात्रिशेष ५।५१ बजेतक	रवि	स्वाती ,, १०। १४ बजेतक	१२ ,,	भद्रा प्रात: ७। २६ बजेतक **ऋषिपंचमीव्रत।**
षष्ठी ,, ४।४० बजेतक	सोम	विशाखा ,, ७। ३६ बजेतक	१३ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें १। ४६ बजेसे, **लोलार्कषष्ठीव्रत, कार्तिकेय दर्शन।**
सप्तमी रात्रिमें ३।५७ बजेतक	मंगल	अनुराधा ,, ७। २३ बजेतक	१४ ,,	मूल रात्रिमें ७।२३ बजेसे, **भद्रा** रात्रिमें ३।५७ बजेसे, **उत्तराफाल्गुनीमें सूर्य** दिनमें १०। ६ बजे, **सन्तानसप्तमी।**
अष्टमी ,, ३।४२ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा ,, ७।४० बजेतक	१५ ,,	भद्रा दिनमें ३।५० बजेतक, **धनूराशि** रात्रिमें ७।४० बजेसे, **राधाष्टमीव्रत।**
नवमी रात्रिशेष ४।१ बजेतक	गुरु	मूल ,, ८।२५ बजेतक	१६ ,,	मूल रात्रिमें ८। २५ बजेतक।
दशमी ,, ४। ४७ बजेतक	शुक्र	पूर्वाषाढ़ ,, ९।४३ बजेतक	१७ ,,	**मकरराशि** रात्रिशेष ४।८ बजेसे, **संक्रान्ति** कन्या राशिमें सूर्य रात्रिमें ८। १२ बजे, **श्रीविश्वकर्मापूजा, शरद-ऋतु प्रारम्भ।**
एकादशी अहोरात्र	शनि	उत्तराषाढ़ ,, ११।२६ बजेतक	१८ ,,	भद्रा सायं ५। २५ बजेसे, **सौर आश्विन मासारम्भ।**
एकादशी प्रात: ६।३ बजेतक	रवि	श्रवण ,, १। ३६ बजेतक	१९ ,,	भद्रा प्रात: ६। ०३ बजेतक, **पद्मा एकादशीव्रत (सबका) श्रीवामनद्वादशीव्रत, महारविवारव्रत।**
द्वादशी ,, ७।४१ बजेतक	सोम	धनिष्ठा रात्रिशेष ४।१ बजेतक	२० ,,	**कुम्भराशि** दिनमें २। ४८ बजेसे, **सोमप्रदोषव्रत, पंचकारम्भ** दिनमें २।४८ बजेसे।
त्रयोदशी दिनमें ९। ३८ बजेतक	मंगल	शतभिषा अहोरात्र	२१ ,,	**अनन्तचतुर्दशीव्रत।**
चतुर्दशी ,, ११।४२ बजेतक	बुध	शतभिषा प्रात: ६।३९ बजेतक	२२ ,,	भद्रा दिनमें ११।४२ बजेसे रात्रि १२।४३ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिमें २। ३५ बजेसे, **व्रत-पूर्णिमा।**
पूर्णिमा ,, १।४६ बजेतक	गुरु	पूर्वाभाद्रपद दिनमें ९।१४ बजेतक	२३ ,,	**पूर्णिमा, महालयारम्भ।**

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६७, शक १९३२, सन् २०१० ई०, सूर्य दक्षिणायन, शरद-ऋतु, आश्विन कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ३।३५ बजेतक	शुक्र	उत्तरा भाद्रपद दिनमें ११।३८ बजेतक	२४ सितम्बर	प्रतिपदाश्राद्ध, अशून्यशयनव्रत चन्द्रोदय रात्रिमें ६।१० बजे, मूल दिनमें ११।३८ बजेसे।
द्वितीया सायं ५।७ बजेतक	शनि	रेवती ,, १।४६ बजेतक	२५ ,,	भद्रा रात्रिशेष ५।३७ बजेसे, मेषराशि दिनमें १।४६ बजे, द्वितीयाश्राद्ध, पंचक समाप्त दिनमें १।४६ बजे।
तृतीया रात्रिमें ६।१० बजेतक	रवि	अश्विनी ,, ३।२८ बजेतक	२६ ,,	भद्रा रात्रिमें ६।१० बजेतक, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत चन्द्रोदय रात्रिमें ७।२२ बजे, तृतीयाश्राद्ध, मूल दिनमें ३।२८ बजेतक।
चतुर्थी ,, ६।४५ बजेतक	सोम	भरणी सायं ४।४३ बजेतक	२७ ,,	वृषराशि रात्रिमें १०।५४ बजेसे, हस्त नक्षत्रमें सूर्य रात्रिमें १।२९ बजे, चतुर्थीश्राद्ध, भरणी श्राद्ध।
पंचमी ,, ६।४८ बजेतक	मंगल	कृत्तिका ,, ५।२७ बजेतक	२८ ,,	पंचमीश्राद्ध, श्रीचन्द्रषष्ठी चन्द्रोदय रात्रिमें ८।५१ बजे।
षष्ठी ,, ६।२२ बजेतक	बुध	रोहिणी ,, ५।४१ बजेतक	२९ ,,	भद्रा रात्रिमें ६।२२ से रात्रिशेष ५।५४ बजेतक, मिथुनराशि रात्रिशेष ५।३४ बजेसे, षष्ठीश्राद्ध।
सप्तमी सायं ५।२६ बजेतक	गुरु	मृगशिरा ,, ५।२६ बजेतक	३० ,,	सप्तमीश्राद्ध, महालक्ष्मीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें १०।४१ बजे।
अष्टमी ,, ४।५ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा ,, ४।४७ बजेतक	१ अक्टूबर	जीवत्पुत्रिकाव्रत, अष्टमीश्राद्ध, अष्टकाश्राद्ध।
नवमी दिनमें २।२३ बजेतक	शनि	पुर्नवसु दिनमें ३।४८ बजेतक	२ ,,	भद्रा रात्रिमें १।२३ बजेसे, कर्कराशि दिनमें १०।३ बजेसे, मातृनवमी, अन्वष्टकाश्राद्ध, नवमीश्राद्ध, महात्मागांधी-जयन्ती।
दशमी ,, १२।२३ बजेतक	रवि	पुष्य ,, २।३२ बजेतक	३ ,,	भद्रा दिनमें १२।२३ बजेतक, दशमीश्राद्ध-एकादशीश्राद्ध, मूल दिनमें २।३२ बजेसे।
एकादशी ,, १०।११ बजेतक	सोम	आश्लेषा ,, १।३ बजेतक	४ ,,	सिंहराशि दिनमें १।३ बजेसे, इन्दिरा एकादशीव्रत (सबका), द्वादशीश्राद्ध।
द्वादशी प्रात: ७।४८ बजेतक	मंगल	मघा ,, ११।२५ बजेतक	५ ,,	भद्रा रात्रिशेष ५।२२ बजेसे, भौम प्रदोषव्रत, त्रयोदशीश्राद्ध, मघाश्राद्ध, मूल दिनमें ११।२५ बजेतक।
त्रयोदशी रात्रिशेष ५।२२ बजेतक				
चतुर्दशी रात्रिमें २।५८ बजेतक	बुध	पूर्वा फाल्गुन ,, ९।४४ बजेतक	६ ,,	भद्रा सायं ४।११ बजेतक, कन्याराशि दिनमें ३।१९ बजेसे, चर्तुदशीश्राद्ध।
अमावस्या ,, १२।४१ बजेतक	गुरु	उत्तरा फाल्गुन ८।६ बजेतक	७ ,,	अमावस्याश्राद्ध, पितृविसर्जन, महालया समाप्त।

सं० २०६७, शक १९३२, सन् २०१० ई०, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, आश्विन शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १०।३४ बजेतक	शुक्र	हस्त प्रात: ६।३५ बजेतक चित्रा रात्रिशेष ५।१५ बजेतक	८ अक्टूबर	तुलाराशि रात्रिमें ५।५६ बजेसे, शारदीय नवरात्रारम्भ, अभिजित्मुहूर्त्त दिनमें ११।३७ बजेसे १२।२४ बजेतक, महाराज अग्रसेन-जयन्ती।
द्वितीया ,, ८।४१ बजेतक	शनि	स्वाती ,, ४।१२ बजेतक	९ ,,	चन्द्रदर्शन।
तृतीया ,, ७।१० बजेतक	रवि	विशाखा रात्रिमें ३।३० बजेतक	१० ,,	वृश्चिकराशि रात्रिमें ९।४० बजेसे।
चतुर्थी ,, ६।१ बजेतक	सोम	अनुराधा ,, ३।११ बजेतक	११ ,,	भद्रा प्रात: ६।३६ बजेसे रात्रिमें ६।१ बजेतक, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल रात्रिमें ३।११ बजेसे, चित्रामें सूर्य दिनमें १।५८ बजेसे।
पंचमी सायं ५।२० बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा ,, ३।२१ बजेतक	१२ ,,	धनूराशि रात्रिमें ३।२१ बजेसे, उपांगललिताव्रत।
षष्ठी ,, ५।५ बजेतक	बुध	मूल रात्रिशेष ४।० बजेतक	१३ ,,	मूल रात्रिशेष ४।० बजेतक।
सप्तमी रात्रिमें ५।४८ बजेतक	गुरु	पूर्वाषाढ़ ,, ५।९ बजेतक	१४ ,,	भद्रा रात्रि ५।४८ से रात्रिशेष ५।४९ बजेतक, महानिशापूजा।
अष्टमी ,, ६।१५ बजेतक	शुक्र	उत्तराषाढ़ अहोरात्र	१५ ,,	मकरराशि दिनमें ११।३४ बजेसे, श्रीदुर्गामहाष्टमीव्रत।
नवमी ,, ७।३१ बजेतक	शनि	उत्तराषाढ़ प्रात: ६।४६ बजेतक	१६ ,,	महानवमीव्रत, शुक्रवार्द्धक्यारम्भ दिनमें ९।५१ बजेसे।
दशमी ,, ९।१३ बजेतक	रवि	श्रवण दिनमें ८।५१ बजेतक	१७ ,,	कुम्भराशि रात्रिमें १०।१ बजेतक, पंचकारम्भ रात्रिमें १०।१ बजेसे, विजयादशमी, अपराजितापूजन, शमीपूजन, नीलकंठदर्शन।
एकादशी रात्रिमें ११।१२ बजेतक	सोम	धनिष्ठा ,, ११।१३ बजेतक	१८ ,,	भद्रा दिनमें १०।१२ बजेसे रात्रिमें ११।१२ बजेतक, पापाङ्कुशा एकादशीव्रत (सबका), तुलासंक्रान्ति प्रात: ७।९ बजेसे।
द्वादशी ,, १।१८ बजेतक	मंगल	शतभिषा ,, १।४८ बजेतक	१९ ,,	पद्मनाभद्वादशीव्रत, शुक्रास्त पश्चिममें दिनमें ९।५३ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ३।२२ बजेतक	बुध	पूर्वाभाद्रपद सायं ४।२५ बजेतक	२० ,,	मीनराशि दिनमें ९।४५ बजेसे, प्रदोष त्रयोदशीव्रत।
चतुर्दशी रात्रिशेष ५।१३ बजेतक	गुरु	उत्तराभाद्रपद रात्रिमें ६।५४ बजेतक	२१ ,,	भद्रा रात्रिशेष ५।१३ बजेसे, मूल रात्रिमें ६।५४ बजेसे।
पूर्णिमा अहोरात्र	शुक्र	रेवती ,, ९।६ बजेतक	२२ ,,	पंचक समाप्त रात्रिमें ९।६ बजे, भद्रा सायं ६।१ बजेतक, मेषराशि रात्रि ९।६ बजेसे, व्रत-पूर्णिमा, शरद्-पूर्णिमा, महर्षि वाल्मीकि-जयन्ती।
पूर्णिमा प्रात: ६।४७ बजेतक	शनि	अश्विनी ,, १०।५४ बजेतक	२३ ,,	पूर्णिमा, कार्तिक व्रत-नियम-स्नानादि प्रारम्भ, मूल रात्रिमें १०।५४ बजेतक।

कृपानुभूति

'अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः'

बहुत दिनोंसे पत्र लिखनेको सोच रही थी, लेकिन समयाभावके कारण लिख नहीं पायी। आज ही मुझे कल्याणका अंक प्राप्त हुआ है। उन प्रभुप्रेमीका प्रश्नोत्तर पढ़कर बहुत हैरानगी हो रही है, जिसमें किसी भाईसाहबने लिखा है कि मैं दो-तीन वर्षसे **'अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः'** मन्त्रका जप कर रहा हूँ और मुझे कोई विशेष लाभ नहीं हो रहा है। लेकिन ऐसा कभी नहीं हो सकता। मुझे उन भाईसाहबकी निष्ठामें कोई कमी नहीं नजर आती, लेकिन दीनबन्धुकी दीनोंपर कृपा न बरसे, ऐसा मेरा दिल नहीं मानता। मेरा गोविन्द तो प्रणतकल्पतरु है, परंतु ऐसा नहीं कि हम जो भी ठीक या गलत वस्तु भगवान्से माँगते रहें, वे हमें मिलती रहें। गोपाल हमें वह वस्तु ही प्रदान करते हैं, जिस चीजसे हमारा भला हो। जैसे कोई भी आदमी यह माँग ले कि मैं करोड़पति हो जाऊँ, भगवान् भी जानते हैं कि पैसा आयेगा तो लाखों शत्रु पैदा हो जायँगे। इसीलिये तो जिस तरह हमारा भला हो, वही साधन जुटा देते हैं।

कल्याणका एक अंक मेरे भैयाने मुझे भैयादूजके अवसरपर दिया था। उसके बाद मेरे मायकेमें कल्याणके जितने गत वर्षोंके अंक थे, मैं सभी अपने घर ले आयी। किसी एक अंकमें उपर्युक्त मन्त्रके बारेमें मैंने भी पढ़ा था और इस बातमें सौ प्रतिशत सच्चाई है। इसीलिये मैं आपबीती लिख रही हूँ—

बात १६ दिसम्बर २००५ ई०की है। मैं बैंकमें कार्यरत हूँ। मैं बैंकमें अपने काममें व्यस्त थी, तभी घरसे मेरे पतिदेवका फोन आया कि दोपहरके खानेमें जो सब्जी लायी हो, उसे मत खाना; क्योंकि उस सब्जीको खानेके बाद मेरी तबियत खराब हो गयी है, शायद सब्जी जहरीली रही होगी। फोन बन्द होते ही मैं यह सोचकर बहुत चिन्तित हो गयी कि यदि छोटी-मोटी बात होती तो मेरे पति फोन नहीं करते, निश्चय ही चिन्ताजनक बात है! मैं जल्दीसे अपना कार्य निबटाकर दो बजे छुट्टी लेकर घर पहुँच गयी। तबतक बच्चे भी स्कूलसे आ चुके थे। बच्चोंने बताया कि पापाको पड़ोसके अंकलजी अपनी गाड़ीसे डॉक्टरके पास ले गये हैं। आधे घंटेमें ही दवाई आदि लेकर वे लोग वापस घर आ गये। सर्दीके दिन थे, बच्चोंको रातका खाना खिलाकर मैं पतिदेवके पास बैठी थी कि अचानक उन्हें जोर-जोरसे उल्टी आनी शुरू हो गयी। मैं पानी, नीबू आदि देती रही, परंतु तबियत ठीक होनेके बजाय और बिगड़ती ही जा रही थी। मैं बहुत घबरा गयी और सोचने लगी कि इतनी रातमें मैं अकेले क्या करूँ? असहाय होकर मैंने मन्त्रका जप करना प्रारम्भ कर दिया। बिस्तरपर बैठे-ही-बैठे मैंने लगभग पाँच-सात मालाका जप किया था कि तभी मुझे कल्याण पत्रिकामें पढ़ी वह बात याद आयी कि **'अच्युत, अनन्त, गोविन्द'** भगवान्के ये तीन नाम लेनेसे दुःख दूर होता है, सो मैंने उसी मालासे इस मन्त्रका जप प्रारम्भ कर दिया। थोड़ी ही देरमें मेरे पतिदेवको एक बार तेजीसे उल्टी आयी। वमनके पश्चात् उन्होंने कहा कि लगता है कि शायद उसी उल्टीमें जहरका अंश बाहर आ गया हो; क्योंकि मैं पहलेकी अपेक्षा बहुत बेहतर महसूस कर रहा हूँ। अब मैं सो जाता हूँ, तुम भी सो जाओ। अगली सुबह जब हम डॉक्टरके पास गये तो डॉक्टरने कहा कि केमिस्टने तो आपको दवाई ही गलत दे दी थी, इसीलिये शायद आपको दवाका असर नहीं हुआ। ऐसा उन्होंने इसलिये कहा कि रात में १०-११ बजेतक हम डॉक्टरके सम्पर्कमें थे।

बहरहाल जो भी हो, डॉक्टर अपनी बात कहें, परंतु अपने मनकी अनुभूतिको भला मैं कैसे भूल सकती हूँ कि भगवान्से प्रार्थनाके पश्चात् क्षणभरमें मेरे पति जैसे ठीक हुए वह और किसी कारणसे नहीं बल्कि संसारके सबसे बड़े डॉक्टरकी दवासे ही सम्भव हो सका है। यह सोचकर मेरी आँखोंसे आँसू बहने लगे। मैं सत्य कहती हूँ कि उन करुणासिन्धुपर पूर्ण आस्था एवं पूर्णरूपसे आश्रित होकर यदि अपने मनकी बात कही जाय तो निश्चितरूपसे दुःख दूर हो जायगा।—**कार्ष्णि सुनीता शर्मा**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

मौनका अर्थ समझो

सिद्ध एवं ब्रह्मनिष्ठ संत उड़िया बाबा समय-समयपर अपने उपदेशोंमें वाणीपर संयम रखनेकी प्रेरणा दिया करते थे। वे कहा करते थे—वाणीसे कभी भी निरर्थक शब्द नहीं निकालना चाहिये। कटु—कड़वा शब्द निकालकर किसीको प्रताड़ित कदापि नहीं करना चाहिये। शब्द ब्रह्म होता है। एक-एक शब्दका सदुपयोग करना चाहिये।

एक बार एक युवा साधुने उनके उपदेशसे प्रभावित होकर कहा—'बाबा! कुछ साधक मौन धारण करते हैं। क्या मौनसे लाभ होता है?' बाबाने कहा—'क्यों नहीं होता। मौनसे वाणीका दुरुपयोग नियन्त्रित होता है, उससे अनूठी शक्ति मिलती है।'

साधुने एक सप्ताहका मौन धारण करनेका संकल्प ले लिया। उड़िया बाबाके साथ वह गंगातट-स्थित कुटियामें रहने लगा।

एक दिन उड़िया बाबा कर्णवासमें गंगातटपर बैठे भगवच्चिन्तनमें लीन थे। अचानक उन्होंने देखा कि गंगामें स्नान करनेवाला एक व्यक्ति पैर फिसलनेसे डूबने लगा। बाबाने यह देखा तो मौन व्रती साधुको संकेतकर कहा—'अरे, शोर मचाओ; जिससे खेतमें काम करनेवाले केवट भागकर इस डूबतेकी रक्षा करें।' साधु मौन बैठा रहा। बाबा स्वयं खड़े हुए तथा शोर मचाया। एक नाविकने बह रहे व्यक्तिको गंगाजीमें कूदकर बचा लिया।

उड़िया बाबाने साधुको समझाया—'मौनव्रतका यह अर्थ नहीं है कि किसीके प्राण बचते हों तब भी जिह्वाका उपयोग नहीं करे। कोई चोरी करने आये तो मौनी बाबा बनकर चुप बैठा रहे। कोई अपराध हो रहा हो तो मूकदर्शक बना देखता रहे।'

बाबाने चंद शब्दोंमें ही मौनका महत्त्व बता दिया।

प्रेषक—शिवकुमार गोयल

(२)

जय बाबा केदारनाथ

सन् १९८५ ई० की घटना है जब हम परिवारसहित केदारनाथकी यात्रा करने जा रहे थे। यात्रा जानेके पूर्व इंजेक्शन लगवाना जरूरी रहता है, नहीं तो पहाड़का पानी होनेके कारण हैजा होनेकी सम्भावना रहती है। हमलोग ऋषिकेशतक अच्छेसे चले गये। ऋषिकेशमें २-३ दिन रुकनेके पश्चात् केदारनाथकी यात्राके लिये निकल पड़े, हमें बसमें रिजर्वेशन भी मिल गया। पचास-साठ मील यात्रा बड़े अच्छेसे हुई, वहाँके प्राकृतिक दृश्योंने हमारा मन मोह लिया। बच्चे बड़े आनन्दके साथ 'जय बाबा केदारनाथ' कहते हुए प्राकृतिक दृश्योंका आनन्द ले रहे थे, पर अधिक मोड़ होनेके कारण मेरा बड़ा पुत्र जो उस समय १३ वर्षका था, उसे अचानक उल्टियाँ शुरू हो गयीं। पहाड़ी इलाका होनेके कारण रास्ता भी वीरान था। एक तरफ खाईं तो दूसरी तरफ पहाड़। जैसे-तैसे हम गौरीकुण्डतक पहुँचे। वहाँतक जाते-जाते बच्चा बेहोशी हालतमें हो गया था, वहाँ तुरंत डॉक्टरको दिखाया। डॉक्टरने कहा बच्चेकी हालत बहुत खराब है, आप अपनी यात्रा स्थगित करके वापस लौट जाइये, इसीमें आपका भला है। जैसे ही डॉक्टरने लौटनेको कहा, मुझे बहुत रोना आया। मैंने कहा—हे बाबा केदारनाथ! इतने पास आकर भी हमें वापस लौटना पड़ेगा, बिना दर्शनके? बच्चेकी हालत देखकर हम सब वहाँ गौरीकुण्डके पास धर्मशालामें रहे। मेरे पतिने मुझे बहुत डाँटा कि बच्चेको कुछ हो गया तो तुम्हारी खैर नहीं; क्योंकि मैं ही जिद करके यात्रापर आयी थी। उस समयतक मेरा पुत्र बहुत बीमार हो गया था। डॉक्टरके इंजेक्शन एवं दवाइयाँ भी असर नहीं कर रहे थे। मैं बाबा केदारनाथकी ही रट लगा रही थी कि हे बाबा केदारनाथ! इतने पास आकर भी हम दर्शन नहीं कर पा रहे हैं। मैं बड़े आर्तभावसे यही कह रही थी कि हे बाबा केदारनाथ! जय बाबा केदारनाथ! इस बच्चेकी तबियत ठीक कर दो ताकि हम आपके दर्शन कर सकें, इतनेमें क्या हुआ? जब मैं बाबा केदारनाथको आर्तभावसे पुकार रही थी, तभी मैंने देखा कि एक पाँचवर्षीय बालक जो धारीदार कुर्ता-पायजामा पहने हुए था अचानक आया और कहने लगा कि हम भी आपके साथ दर्शन करने चलेंगे,

वह बालक ऐसे लगा जैसे हमारे पड़ोसका ही बच्चा है। मैंने कहा कि मेरा बच्चा इतना बीमार है फिर मैं तुझे कैसे ले जाऊँगी? उस बच्चेने कहा कि कुछ भी हो मैं तो आपके साथ चलूँगा। ऐसा कहते हुए उस बालकने मेरे बच्चेके सिरसे लेकर पैरतककी परिक्रमा की, इसके बाद वह जैसे ही नीचे उतरा वैसे ही मेरा बच्चा उठकर बैठ गया और कहने लगा कि मुझे जल्दीसे बाबा केदारनाथके दर्शन कराने ले चलो; फिर उसी समय हमने बच्चेको डॉक्टरको दिखाया तो डॉक्टरने कहा बच्चा बिलकुल स्वस्थ है; आप बाबा केदारनाथके दर्शन करने जा सकते हैं। गौरीकुण्डसे केदारनाथकी दूरी १५ किलोमीटर है। हमने बच्चेके लिये सवारीकी व्यवस्था की और बाकी सबने पैदल यात्रा की। हम सबने बाबा केदारनाथका दर्शन बड़े अच्छेसे किया। जय बाबा केदारनाथ! आपकी लीला बड़ी न्यारी है। हम परिवारसहित दर्शन करते हुए उनके चरणोंमें गिर पड़े और यही रट लगाते रहे जय बाबा केदारनाथ! जय बाबा केदारनाथ! आपने हमें दर्शन दिया पर हम समझ नहीं सके; हम सब दर्शन करके सकुशल वापस आ गये, बाबा केदारनाथकी कृपासे बच्चा एकदम स्वस्थ हो गया। आज भी वह घटना मेरे स्मृति-पटलपर चलचित्रकी भाँति दिखायी देती है और मैं यही कहूँगी कि जो सच्चे मनसे बाबा केदारनाथकी यात्रा करने जाता है, बाबा केदारनाथ हर पल उसके साथ रहते हैं। जय बाबा केदारनाथ! आपके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणाम, कोटि-कोटि प्रणाम!—**लक्ष्मी सोनी**

(३)

सहृदयता एवं निरहंकारिता

मैं २२ अप्रैल सन् २०१० को शिरडीसे दर्शन करके मनमाडस्टेशनपर आया था। मनमाडस्टेशनपर प्लेटफॉर्म नं० ६ से प्लेटफार्म नं० २ पर जाना था। रेलवेपुल बिलकुल सीधा तथा ऊँचा था।

दो बैग और एक थैला लेकर मैं पुलके ऊपर चढ़ रहा था। दूर एक सम्भ्रान्त व्यक्तिने मुझ वृद्धको देखकर मेरे पास आकर कहा कि आपको किस प्लेटफॉर्मपर जाना है? मैंने बताया मुझे प्लेटफार्म नं० २ से गाड़ी पकड़नी है। उन्होंने मुझसे मेरा सभी सामान लेकर कहा कि मेरे साथ आइये, मैं आपको पहुँचाकर आऊँगा। मैंने उनसे मना किया, आप कष्ट क्यों कर रहे हैं, मैं धीरे-धीरे चला जाऊँगा। फिर भी उन सज्जनने मेरा सामान लेकर मुझे प्लेटफॉर्म नं० २ पर पहुँचाया। मैंने उनको हार्दिक प्रसन्नतासे धन्यवाद दिया। मैं उनकी सहानुभूतिसे इतना भावविभोर हो गया कि उनका पता भी न पूछ सका। फिर भी उनका परिचय पूछा तो उन्होंने कहा कि मैं एस०एस०पी० उड़ीसा हूँ। आप शिरडीसे आ रहे हैं, उन्हीं बाबाने मुझे भेजा है। यह कहकर वे मेरी आँखोंके सामनेसे ओझल हो गये। मैं उन्हें धन्यवादतक न कर सका।

इस युगमें भी सम्भ्रान्त व्यक्तियोंमें सहृदयता एवं सहानुभूति होती है। वे प्रत्येक व्यक्तिमें भगवान्‌का दर्शन करते हैं। ***'सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥'*** गीतामें भी कहा गया है—**'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।'** (१८। ६१)।

उच्च पदपर प्रतिष्ठित होनेपर भी अहंभावको जो दूर रखे, वही महान् है; क्योंकि ***'जहाँ आया मान गरूर। उससे प्रभु भी हो जाते हैं दूर॥'***—**डी०डी० शर्मा**

(४)

शम्भू महाराजका प्याऊ

बात उस समयकी है, जब मैं मात्र छः वर्षका था। वैशाखका महीना था, पिताजी और छोटे भाईके साथ मैं दोपहरमें पठारीसे सेहराई हाटमें, जो सोमवारको लगती है; जा रहा था। धूप काफी तेज थी, रास्तेमें एक महुआका पेड़ पड़ता है। ५ किलोमीटरके रास्तेमें उस समय वही एक आश्रय था। हमलोग उसके नीचे रुके। अन्य राहगीर भी इसकी छायामें रुके थे। थोड़ी देरमें मेरे भाईने पानीकी फरमाइश की। यहाँ आस-पास पानीका कोई साधन नहीं था। पिताजीने सेहराई चलनेको कहा; लेकिन भाई वहीं पानीके लिये कहता रहा। उसने रोना प्रारम्भ कर दिया। पिताजीके साथ ठहरे राहगीरोंने समझाया, लेकिन उसने रोना बंद नहीं किया। पिताजीने गुस्सेमें मारा भी, लेकिन उसने रोना बन्द नहीं किया। अपनी जिदपर जमा रहा। इसी समय श्रीशम्भूदयाल विदुआ जो जंगलके ठेकेदार थे, साइकिलसे सेहराई जा रहे थे, वे भी वहीं रुके। उन्होंने भाईको समझाया तथा मिठाई खानेको पैसा भी दिया। वह रोना बन्दकर सेहराई

चला गया। पिताजीने हम दोनों भाइयोंके लिये कपड़े खरीदे तथा टेलरको सिलनेके लिये दे दिये।

अगले सोमवारको जब मैं कपड़े लेने गया और महुएके पेड़के नीचे रुका तो देखा कि पानीके मटके भरे गाँवकी ही एक महिला पानी पिला रही। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ, जब पूछा तो बताया कि जबतक बरसात न हो तबतक शम्भू महाराजने हमें पानी पिलानेको कहा है। यह प्याऊका क्रम १९४२ से १९७२ तक चलता रहा। प्रतिवर्ष शीतला अष्टमीसे जबतक बरसात न हो तबतक शम्भू महाराजका प्याऊ उस महुएके पेड़के नीचे चलता। इससे १५-२० गाँवके राहगीरोंको बड़ी शान्ति मिलती थी। जब पठारीमें पचमउआ वारनका कुआँ खुदा तबतक यह प्याऊ चलता रहा। उस समयका महुएका छोटा पेड़ अब भारी पेड़ बन गया है, वहाँ अब प्याऊ नहीं है, लेकिन वह स्थान प्याऊकी गुल्लियाके नामसे आज भी विख्यात है, जो शम्भू महाराजके उच्च मानवीय दृष्टिकोणका परिचायक है।

—मूगालाल मोदी

(५)

करुणासागरकी लीला

बात सन् १९८० ई० की है। मैं अपनी जन्मपत्री समय-समयपर पण्डितोंको दिखाता रहता हूँ, जिससे कि मैं आनेवाले खराब समयपर सचेत रहूँ। हमारे पूर्वजोंद्वारा बनवाया गया गुरुजीका मन्दिर जो कि श्रीगोपालमन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है, फराशखाना देहलीमें स्थित है। उस समय मैं अत्यन्त दयनीय स्थितिमें था तथा दिनमें दो बार (प्रातः-सायं) मन्दिरमें दर्शनार्थ जाता था।

इसी वर्ष स्वभावानुसार मैंने अपनी जन्मपत्री करीब ४-५ विद्वान् पण्डितोंको दिखायी। सबकी राय यह थी कि मेरा समय ठीक नहीं है। ग्रह ठीक स्थितिमें नहीं हैं। अतः इस वर्ष दुर्घटना हो सकती है। सभी पण्डितोंका यही एक मत था। मैं हमेशा मन मसोसकर घर वापस आ जाता।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा कि मैं दिनमें दो बार दर्शनार्थ अपने इष्ट श्रीकृष्णजीके दर्शन करने जाता था। मुझे उनकी कृपापर अटूट विश्वास था, अतः मैंने आर्त स्वरसे प्रभुसे प्रार्थना की—'हे प्रभो! हे मेरे गोपाल! आपकी प्रेरणा पाकर मैंने अपनी जन्मपत्री कई पण्डितोंको दिखायी तथा सबने यही कहा कि मेरे साथ दुर्घटना अवश्य होनी है। उनकी बात सुनकर बिना किसी वाद-विवादके मैं आपकी शरणमें आया हूँ। वे विद्वान् हैं तथा उनकी बातको उनके सामने अप्रमाणित करना मेरा अहंकार होगा। अतः मैं आपके कृपाचरणोंमें इस विश्वासके साथ कह रहा हूँ कि यदि मेरे साथ दुर्घटना होनी अवश्यम्भावी है तो निश्चय ही मेरा इस दुर्घटनासे कोई भी अहित नहीं होगा। अतः मैं इस भयसे निश्चिन्त हूँ। आगे आप जानें।'

एक दिन रविवारको हम आठ मित्रगण जिनमें कि चार पुरुष तथा चार स्त्रियाँ थीं, सड़क पार कर रहे थे। हममेंसे अन्य सबने तो सड़क पार कर ली, पर मैं पीछे रह गया था। जैसे ही मैं सड़क पार करने लगा तो न जाने कहाँसे एक तिपहिया स्कूटर जिसमें कि दो की बजाय पाँच सवारियाँ बैठी थीं, आ गया तथा मुझसे जोरसे टकराता हुआ आगेको निकल गया। मैं तीन-चार कलाबाजियाँ खाता हुआ दूर जा गिरा। मेरे गिरते ही कोलाहल मच गया। बाबू गिर गया, यह नहीं बचा होगा। अन्यथा अत्यन्त ही गम्भीर चोट आयी होगी—ये शब्द मेरे कानमें पड़े। इतनेमें मेरे मित्रगण भी मेरे पास आ गये थे। प्रभुकी लीला तथा करुणाने मेरा अत्यन्त साथ दिया। मैं तुरंत ही खड़ा हो गया। मैंने अपने कपड़ोंको झाड़ा, मुझे खरोंचतक नहीं आयी थी। सब यह देखकर अवाक् रह गये। मेरी पत्नी जो कि मेरे साथ थी—यह दुर्घटना देखकर सहम गयी थी। उन्हें तथा अन्य किसीको भी विश्वास ही नहीं था कि तीन-चार कलाबाजियाँ खाकर भी मैं कैसे बच सकता हूँ। हाँ, मेरे सफेद पैण्टपर एक छोटा-सा काला धब्बा जरूर लग गया था।

जब भी मैं उस दृश्यको याद करता हूँ तो प्रभुकी लीला तथा करुणाके आगे नतमस्तक हो जाता हूँ।

जहाँ मेरे गोपालने पण्डितों एवं ग्रहोंकी बात रखी, वहीं उन्होंने मेरी प्रार्थनाकी भी पूर्णतया लाज रखी।

प्रभुकी ऐसी करुणा देख-सुनकर मन बार-बार आह्लादित हो जाता है। आखिर प्रभु लीलामय नटवरनागर होनेके साथ करुणासागर भी तो हैं, मेरे प्रति उन प्रभुने अपने दोनों रूप दिखाये?—महेन्द्रकुमार खत्री

मनन करने योग्य

ईमानदारीकी रोटी

मेरे एक मित्रके यहाँ गृह-निर्माणका कार्य चल रहा था। उसमें फर्नीचरका काम शुरू करवाना था। इसलिये वे मुझे अपने साथ शहरके एक बड़े टिम्बर-स्टोरमें ले गये, जिससे दोनोंकी रायसे अच्छी लकड़ी खरीदी जाय। लगभग दो एकड़में फैले इस टिम्बर-स्टोरमें प्रत्येक किस्मकी लकड़ीको बहुत ही आकर्षक ढंगसे तरतीब देकर रखा गया था।

हमलोग दुकानके दफ्तरमें चले गये। दफ्तर उत्तम शैलीका बना हुआ था। दफ्तरमें लगभग चालीस वर्षका युवक बैठा हुआ था, जो स्वयं मालिक था। उसके साथ लकड़ीकी किस्म और मात्रापर बातचीत चली। अचानक मेरी दृष्टि उस मालिककी कुर्सीके पीछे दीवारपर लगी हुई एक नवयुवक डी०एस०पी० की भव्य तस्वीरपर जा पड़ी। मैंने उस मालिकसे पूछा कि यह तस्वीर किसकी है?

उस मालिकने हँसते हुए कहा, 'मेरी ही है।' 'क्या आपने नौकरी छोड़ दी है या····?—मैंने जिज्ञासासे पूछा।'

उस मालिकने खिलती धूपकी तरह हँसते हुए कहा—बात कुछ इस तरह है कि जो व्यक्ति जमीर मारकर जीते हैं, वे बढ़िया इन्सान नहीं होते, वे समाजको रास्ता नहीं दिखा पाते; गुलाम बनकर जीना कोई अच्छी बात नहीं होती। गलत हुक्मकी गुलामी मृत्युसे भी भयंकर होती है, जो लोग इस गुलामीको स्वीकार करके जीते हैं, समाजमें उनकी कोई इज्जत नहीं होती, ऐसे गलत बन्देसे लोग अवसरके अनुसार फायदा लेनेके लिये उसको सलाम करते हैं, परंतु हृदयसे उसका सत्कार नहीं करते। जिन्दगी कोई बहुत लम्बी नहीं, इसको खूबसूरतीके साथ जीना चाहिये। आदमी कम खा ले, सन्तोषमें रहे, परंतु रिश्वतखोर, बेईमान न बने। क्या मांस-शराबका सेवनकर या भ्रष्टाचारद्वारा दौलत इकट्ठीकर बन्दा हजार वर्ष जीयेगा, जीना तो ज्यादा-से-ज्यादा सौ वर्ष ही है। अपने घरमें बन्दा अचारसे रोटी खाकर भी बादशाह होता है। बेईमानीकी रोटी तो एक लानत है।

बहुत लम्बी-चौड़ी भूमिकाके बाद उसने हँसते हुए बताया कि 'मेरे पिताजी पुलिस आफिसर थे। मैं भी उच्च शिक्षा उत्तीर्ण करके पुलिसमें डी०एस०पी० भर्ती हो गया। ट्रेनिंग आदिके बाद छः माहकी मेरी सर्विस हुई थी। मेरे महकमेके उच्चाधिकारियोंने एक बलात्कार केसकी जाँच-पड़तालके लिये मेरी ड्यूटी लगा दी। मैं उस सारे केसकी जाँच-पड़तालके बाद इस निष्कर्षपर पहुँचा कि एक नेताके बिगड़े पुत्रने निर्धन लड़कीके साथ यह घिनौनी हरकत की है। मैंने सारी फाइल तैयार करके उस दोषीको रेड करके पकड़ लिया। जब मैंने उसे पकड़ा तो वह मुझसे जुर्रतसे बातें करने लगा। मैंने उससे कहा, 'तुम अपराधी हो, सारे सबूत मेरे पास हैं।' मैंने उसे गाड़ीमें बैठाया और चल पड़ा थानेकी ओर। उसने रास्तेमें मुझसे बड़ी-से-बड़ी रिश्वतकी पेशकश की, जब मैंने उसकी एक न मानी तो वह मुझे डराने-धमकाने लगा। उसने मुझसे बदमाशी एवं धमकीभरे लहजेमें कहा—'डी०एस०पी०! तू मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता, जहाँ जी चाहे ले चल, तू मुझे वापस यहीं छोड़कर जायगा।'

खैर! मैं पुलिस स्टेशन पहुँचा ही था कि एक उच्च पुलिस आफिसरका फोन आ गया, उसने मुझसे कहा, 'इस लड़केको तुरंत वहीं छोड़ आओ, जहाँसे लाये हो।'

मैंने फोनपर ही उस उच्चाधिकारीसे कहा—'सर! इस लड़केने जुर्म किया है, जिसके समस्त सबूत मेरे पास हैं। लड़की स्वयं गवाह है।' परंतु उस उच्चाधिकारीने मुझे सख्त भाषामें डाँटते हुए कहा—'मैं जो कुछ कहता हूँ करो बस, इसको तुरंत वहाँ छोड़कर आओ, नौकरी करनी है या नहीं?'

मेरे सामने खड़ा वह अपराधी लड़का नेताओं-जैसे हँस रहा था, जिसमें मेरी तौहीन शामिल थी। उस लड़केने नेतागीरीके अन्दाजमें कहा, 'मैंने कहा था न, तू मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता डी०एस०पी०!'

उसकी हँसीसे लगता था, जैसे मेरे जमीरके टुकड़े-टुकड़े हो गये हों। जैसे इस वर्दीकी तौहीन की जा रही हो। जैसे कानून अपाहिज हो गया हो। जैसे इन्सानियतके पेटमें खंजर घोंप दिया गया हो। मेरी आँखोंमें खून दौड़ने लगा, परंतु मैं मजबूर था। एक तरफ नौकरी, एक तरफ गलत हुक्म, एक तरफ मेरा खानदानी जमीर। मेरे दिमागमें अनेक प्रश्न-उत्तर उभरे, परंतु आखिर मैंने फैसला कर लिया कि मैं इस अपराधीको वापस छोड़ने नहीं जाऊँगा। मैंने दफ्तर जाकर इस्तीफा लिखा तथा अपने उच्चाधिकारीको देते हुए कहा, 'मैं उस अपराधीको किसी भी कीमतपर वापस छोड़ने नहीं जा सकता।' इस्तीफा देकर मैंने फोनपर अपने पिताजीको नहीं बल्कि अपने दादाजीको सारी बात बता दी। दादाजीने कहा, 'शाबास बेटा! तूने हमारी इज्जत रख ली, जीते रहो मेरे लाल, मेरी आयु भी तुझे लग जाय। आज तूने अपने खानदानकी शान बढ़ा दी है।'

दादाजीके शब्दोंने मुझे और बल दे दिया। पिताजी तथा सारे परिवारको इस बातका पता चल गया था। पिताजीने भी मुझे शाबासी दी। हमारा लकड़ीका पुश्तैनी कारोबार था। यह काम मैंने स्वयं सँभाल लिया। आधुनिक शैलीका बड़ा स्टोर बना लिया। आजकल मेरी लाखों रुपये प्रतिमाहकी आमदनी है। बस, ईमानदारीकी रोटी खा रहा हूँ। इसमें सन्तोष है।—**बलविन्द्र 'बालम'**

कल्याण

याद रखो—कर्म बन्धनकारक नहीं है, बन्धनकारक हैं—कर्मफलमें आसक्ति तथा कामना। मनमेंसे कर्मासक्ति और विषयासक्तिको निकाल दो और भगवान्‌के साथ चित्तका योग करके भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करो—भलीभाँति कर्म करो, फिर वे कर्म बन्धनकारक नहीं होंगे, न उनके अनुकूल और प्रतिकूल फलोंसे चित्तमें कोई हर्ष या उद्वेग ही होगा। वस्तुतः इस प्रकार तुम स्वतः योगयुक्त हो जाते हो।

भगवान् ही तुम्हारे अपने स्थान हैं, तुम्हारे परम आश्रयस्थल हैं। उन नित्य देवस्थानमें स्थित रहते ही सारे कर्मोंका आचरण करो। फिर चाहे तुम किसी देश, किसी ग्राम, किसी घरमें रहो, कोई आपत्तिकी बात नहीं—**'यथारण्यं तथा गृहम्।'**

तुम्हारी लौकिक परिस्थितियोंमें चाहे जैसा परिवर्तन हो, तुम्हारे कार्यक्षेत्र और कार्योंमें कुछ भी फेर-बदल हो, तुम भगवान्‌की गोदको कभी मत छोड़ो। यही तुम्हारा अपना घर है। वे **'गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्'** हैं—बस, यह ध्यान सदैव बना रहे।

याद रखो—जब तुम्हारे मन-इन्द्रियोंके सारे काम भगवान्‌की गोदमें बैठे हुए होंगे, तुम भगवान्‌के साथ योगस्थ होकर सभी काम करोगे, तब तुम्हारे समस्त काम स्वयमेव पवित्रसे पवित्रतर होते चले जायँगे। तुम्हारे कार्योंसे स्वतः ही लोककल्याण होगा; उनमें आनन्द, शान्ति, सामंजस्य और कल्याणरूपी फल फलेंगे। तुम जो कर्म अपने लिये आसक्ति और फलकामनाको लेकर करोगे, वह कर्म कभी पवित्र नहीं रह सकता; क्योंकि उसमें लोककल्याणकी और भगवत्पूजाकी दृष्टि ही नहीं है। तुच्छ स्वार्थका कामनापरक काम कल्याण-कर्मीके लिये उपयोगी नहीं होता।

जब तुम्हारे कर्म भगवत्पूजाके लिये होंगे, तब तुम्हारी सारी चिन्ताएँ मिट जायँगी; सारी कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी; सारी प्रतिकूल तथा बाधक परिस्थितियाँ हट जायँगी; सब ओर एक विलक्षण सामंजस्य, एक सरस समन्वय दिखायी देगा। तुम्हारे कार्यमें बाधा देनेवालोंकी संख्या क्रमशः घट जायगी और सभी ओरसे सहायताकी वर्षा होने लगेगी। (प्रभुकी अनुकूलतासे सबकी अनुकूलता हो जाती है।)

याद रखो—भगवान्‌का आश्रय, भगवान्‌की गोद ऐसी पवित्र, इतनी विशद, इतनी सार्वभौम, इतनी सुखदायिनी और इतनी कल्याणकारिणी है कि वैसा स्थान अन्यत्र कहीं नहीं है, न हो सकता है और न होगा। उसमें एक विलक्षणता और है कि एक बार जिसने उस गोदको पा लिया, वह कभी उस परम सुखद गोदसे उतरेगा नहीं। जो एक बार वहाँ पहुँच जाता है, वह वहींका हो रहता है। अतएव वह स्वयं नित्य सुख, नित्य शान्ति और नित्य आनन्दका नित्य-निकेतन बन जाता है।

याद रखो—भगवान्‌की गोदमें स्थान प्राप्त हो जानेके बाद तुम्हारे जीवनमें एक नियमितता आ जायगी। सभी इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि सब अपने-अपने स्थलोंमें समुचित क्रिया करेंगे, पर सबका स्वर एक होगा। जैसे कहीं तबले, सारंगी, सितार, हारमोनियम, झाँझ आदिके साथ नृत्य होता हो और सबके स्वर एवं नृत्य करनेवालोंका प्रत्येक पद ठीक तालपर ही पड़ता हो, वैसे ही तुम्हारा जीवन स्वरतालबद्ध—समन्वयात्मक मधुर संगीतमय हो जायगा। कहीं उसमें बेसुरापन नहीं होगा, न कहीं तालभंग ही होगा, न कहीं पैर ही उलटे-सीधे पड़ेंगे। बस, लक्ष्य रहेंगे भगवान्, क्रिया होगी भगवान्‌की प्रीतिके लिये और फलरूपमें प्राप्त होंगे भगवान्। तुम्हारा जीवन और जन्म परम सुखी होकर धन्य हो जायगा और तुम्हारी अनन्त जन्मोंकी साध भगवान्‌के चरणकमलोंको प्राप्त करके पूर्ण हो जायगी—**'शिव'**

मनुष्य-जीवनका अमूल्य समय

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

[गतांक सं० ९ पृ०-सं० ८४५ से आगे]

मान-बड़ाई और प्रतिष्ठाके जालमें तो अच्छे-अच्छे साधक भी फँस जाते हैं। मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाकी इच्छा साधन-पथमें भी दूरतक मनुष्यका पिण्ड नहीं छोड़ती। आरम्भमें तो यह अमृतके तुल्य प्रतीत होती है, परंतु परिणाममें विषसे भी बढ़कर है। अज्ञानवश यह बहुत-से अच्छे-अच्छे पुरुषोंके चित्तको डाँवाँडोल कर देती है।

साधक पुरुष भी मोहके कारण यह मान लेते हैं कि मेरी पूजा और प्रतिष्ठा करनेवाले पवित्र होते हैं। इससे मेरी कुछ भी हानि नहीं। परंतु ऐसा समझनेवालोंकी बुद्धि उन्हें धोखा देती है और वे मोह-जालमें फँसकर साधनपथसे गिर जाते हैं। बहुतसे पुरुष तो मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाकी इच्छाके लिये ही ईश्वर-भक्ति, सदाचार और लोक-सेवादि उत्तम कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। परंतु ये सब कार्य स्वयंमें महत्त्वपूर्ण हैं, मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा तो आनुषंगिक हैं।

दूसरे जो जिज्ञासु अपने आत्माके कल्याणके उद्देश्यसे ईश्वरभक्ति, सदाचार और लोक-सेवादि उत्तम कर्म करते हैं, वे भी मान-बड़ाई, प्रतिष्ठाको पाकर फिसल जाते हैं और उनके ध्येयका परिवर्तन हो जाता है। ध्येयके बदल जानेसे उनके सब काम मान-बड़ाई, प्रतिष्ठाके लिये होने लगते हैं और उनके हृदयमें झूठ, कपट, दम्भ और घमण्डको स्थान मिल जाता है, इससे उनका भी पतन हो जाता है।

दूसरे जो कुछ अच्छे साधक होते हैं, उनका ध्येय तो नहीं बदलता, परंतु वे भी स्वभावत: मनको प्रिय लगनेके कारण मान-बड़ाई और प्रतिष्ठाके जालमें फँसकर उत्तम मार्गमें जानेसे रुक जाते हैं। आजकल जो साधु, महात्मा, भक्त और ज्ञानी माने जाते हैं, उनमेंसे तो कोई बिरले ही ऐसे होंगे, जो इनके जालमें न फँसे हों।

पामर और विषयासक्त पुरुषोंको तो ये अमृतके तुल्य दीखते हैं, किंतु बुद्धिमान् साधक तत्त्वज्ञानी और विरक्त पुरुषोंके संगके प्रतापसे विचार-बुद्धिके द्वारा परिणाममें विषके सदृश समझकर इनको नहीं चाहते। यही उनके विवेक और तत्त्वज्ञानका प्रभाव होता है। इनमें भी जो मुलाहिजे (शील-संकोच)-में फँसकर या मनके धोखेसे इन्हें स्वीकार कर लेते हैं, वे भी प्राय: गिर जाते हैं।

जो उच्च श्रेणीके साधक हैं और जिन्हें इन सबमें वास्तविक वैराग्य उत्पन्न हो गया है, उन विरक्त पुरुषोंको इन सबसे प्रत्यक्ष घृणा हो जाती है। इसलिये वे इनसे उपरत हो जाते हैं। जैसे मद्य और मांस न खानेवालेके चित्तकी वृत्तियाँ मद्य-मांसकी ओर स्वाभाविक ही नहीं जातीं, वैसे ही उन विरक्त पुरुषोंके चित्तकी वृत्तियाँ मान-बड़ाई, प्रतिष्ठाकी ओर नहीं जातीं। बुद्धिमान् रोगी जैसे कुपथ्यसे डरते हैं, वैसे ही वे उनके संसर्ग और सेवनसे मृत्युके (भय)-सदृश डरते हैं। जहाँ मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा होती है, वहाँ प्रथम तो प्राय: वे लोग जाते ही नहीं, यदि जाते भी हैं तो उन सबको स्वीकार नहीं करते। कोई बलात् मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा कर देता है तो उनके दिलोंमें वे सब खटकते हैं।

जो ज्ञानवान् हैं, अर्थात् ईश्वरके तत्त्वज्ञानसे जिन्हें परम वैराग्य और परम उपरामता प्राप्त हो गयी है, उनके विषयमें तो कुछ लिखना बनता ही नहीं। वे तो समुद्रके सदृश गम्भीर, निर्भय और धीर होते हैं। मान-बड़ाई, प्रतिष्ठाको तो वे चाहते ही नहीं; यदि बलपूर्वक कोई कर देते हैं तो वे इतने उपराम होते हैं कि श्रीशुकदेवजीकी भाँति उनकी वांछा ही नहीं करते। (उनके लिये तो वे साधनकी बाधा हैं।)

जब उनकी दृष्टिमें परमात्माके अतिरिक्त संसार ही नहीं है तो फिर सांसारिक राग, वैराग्य, मान, अपमान, निन्दा-स्तुतिको स्थान ही कहाँ है? उन पुरुषोंको छोड़कर और कोई बिरला ही पुरुष होगा, जो मान-बड़ाई, प्रतिष्ठाको पाकर न गिर जाता हो। अतएव कंचन, कामिनी, मान-बड़ाई और प्रतिष्ठाके मोहमें फँसकर अपने मनुष्य-जीवनके अमूल्य समयको व्यर्थ गवाँकर आत्माका पतन नहीं करना चाहिये।

मनुष्य-जीवनका एक-एक श्वास ऐसा अमूल्य है कि जिसकी आशंसा नहीं की जा सकती; क्योंकि ईश्वर-कृपाके प्रभावसे उत्तम देश, काल और सत्संगको पाकर

यह मनुष्य एक क्षणमें भी परम पदको प्राप्त हो सकता है। किसी कविने भी कहा है—

ऐसे महँगे मोलका एक स्वास जो जाय।
तीन लोक नहिं पटतरे काहे धूरि मिलाय॥

मनुष्यके जीवनका समय बहुत ही अनमोल है। एक-एक श्वासपर सौ-सौ रुपये खर्च करनेसे भी एक श्वासका समय नहीं बढ़ सकता। रुपये खर्च करनेसे समय मिल जाता तो राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार—कोई नहीं मरते। इसीलिये रुपयोंसे बढ़कर समयका मूल्य है।

पैसोंसे ही नहीं, रत्नोंके मोलपर भी मनुष्य-जीवनका समय हमको नहीं मिल सकता। इसलिये ऐसे अमूल्य समयको जो व्यर्थ खोयेगा, उसको अवश्य ही पश्चात्ताप करना पड़ेगा। इस क्षणभंगुर परिवर्तनशील संसारके सभी पदार्थ जीर्ण और नाशको प्राप्त होते हुए क्षण-क्षणमें हमलोगोंको चेतावनी दे रहे हैं, परंतु हमलोग नहीं चेतते। समयकी कीमत नहीं समझते।

प्रति सेकेण्ड टिक-टिक करती हुई घड़ी हमें समय बतलाती है; परंतु हम ध्यान नहीं देते। हमारे शरीरके नख, रोम और अवस्थाओंका परिवर्तन, इन्द्रियोंका ह्रास तथा बीमारियोंकी उत्पत्ति हमको समय-समयपर मौतकी याद दिलाती है तो भी हम सावधान नहीं होते। इससे बढ़कर और आश्चर्य क्या होगा?

हमलोग मायारूपी मदिराको पीकर ऐसे मोहित हो गये हैं कि उसका नशा कभी उतरता ही नहीं। सन्त कवियोंने भी हमें कम चेतावनी नहीं दी है; परंतु हम किसीकी परवा ही नहीं करते, फिर हमारा कल्याण कैसे हो?

नारायण स्वामीजी कहते हैं—

दो बातनको भूल मत जो चाहत कल्यान।
नारायण इक मौतको दूजे श्रीभगवान्॥

श्रीकबीरदासजीके वचन तो चेतावनीसे भरे हुए हैं—

कबीर नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखी आय॥
आज कालकी पाँच दिन जंगल होना बास।
ऊपर ऊपर हल फिरैं ढोर चरैंगे घास॥
मरहुगे मरि जाओगे कोई न लेगा नाम।
ऊजड़ जाय बसाओगे छाँड़ि बसंता गाम॥
हाड़ जलै ज्यों लाकड़ी केस जलै ज्यों घास।
सब जग जलता देखकर भया कबीर उदास॥
कबिरा सूता क्या करै जागो जपो मुरारि।
एक दिना है सोवना लंबे पाँव पसारि॥

जब कबीर-सदृश सन्तकी चेतावनी सुनकर भी हमारी अज्ञाननिद्रा भंग नहीं होती तो दूसरोंकी तो हम सुनें ही क्या?

कर्तव्यको भूलकर भोग, प्रमाद, आलस्य और सांसारिक स्वार्थ-सिद्धिमें मोहित होकर तल्लीन हो जाना ही निद्रा है।

चराचर भूत-प्राणी ईश्वरका अंश होनेके कारण ईश्वरके स्वरूप ही हैं। इस प्रकार समझकर उनके हितमें रत होकर उनकी सेवा करना और सर्वव्यापी विज्ञानानन्दघन परमात्माके तत्त्वको जानकर उनको कभी नहीं भूलना, यही जागना है।

श्रुति भी इसी बातको लक्ष्य कराती हुई डंकेकी चोटपर हमें जगा रही है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

(केन० २।५)

'यदि इस मनुष्य-शरीरमें ही उस परमात्म-तत्त्वको जान लिया तो सत्य है यानी उत्तम है, यदि इस जन्ममें उसको नहीं जाना तो महान् हानि है। धीर पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें परमात्माका चिन्तनकर, परमात्माको समझकर इस देहको छोड़ अमृतको प्राप्त होते हैं अर्थात् इस देहसे प्राणोंके निकल जानेपर वे अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।'

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

(कठ० १।३।१४)

'उठो; जागो और महापुरुषोंके समीप जाकर तत्त्वज्ञानके रहस्यको समझो' ऐसे उद्बोधनपर भी हम लोग नहीं चेतेंगे तो फिर हम लोगोंका उसी दशाको प्राप्त होना अनिवार्य है, जैसा कि तुलसीदासजीने कहा है—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

(रा०च०मा० ७।४४)

[समाप्त]

सुखी जीवनका रहस्य

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती)

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाऽप्रियम्।
यथाप्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः॥

इस जगत्की रचना ही त्रिगुणात्मक है, इसलिये इसमें सर्वत्र विषमता रहेगी ही और यह विषमता ही कभी सुखरूपसे भासित होती है तो कभी दुःखरूपसे। सुख और दुःख एक ही सिक्केकी दो दिशाएँ हैं। एक ओरसे देखो तो सुख दीखता है और दूसरी ओरसे देखो तो दुःख।

एक समय एक परिस्थिति अनुकूल दीख पड़ती है तो दूसरे समय वही अनुकूलता प्रतिकूल दीखने लगती है; और इस कल्पित अनुकूलता एवं प्रतिकूलताको ही प्रिय और अप्रिय नाम देकर मनुष्य सुखी-दुःखी होता है।

इसी कारण श्लोकमें कहा गया है कि यदि सुखरूप जीवन व्यतीत करना हो तो '**यथाप्राप्तमुपासीत**' यानी जिस समय जो भोग आ जाय उसे सहर्ष सिर चढ़ा लो; क्योंकि वह तुम्हारे पूर्वकृत कर्मोंके पुरस्कारस्वरूप ईश्वरकी ओरसे तुम्हारे ही हितके लिये तुमको मिला है। कैसे सिरपर चढ़ायें, यह समझाते हुए कहते हैं—'**हृदयेन अपराजितः**' यानी हृदयको आघात न पहुँचाते हुए, हृदयपर बल न पड़े इस प्रकारसे। हृदयको मजबूत रखकर लाभालाभको शान्तिपूर्वक सहन करते रहना ही सुखी जीवनकी कुंजी है।

सभी प्राणी जबसे जन्मते हैं, तभीसे सुखकी खोजमें लगे दीखते हैं। ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य पालन करते हैं और तपस्वी तप करते हैं, वे भी सुखकी प्राप्तिके लिये ही। बालक खेलते हैं, विद्यार्थी विद्याभ्यास करते हैं, गृहस्थ गृहस्थाश्रम चलाते हैं और वानप्रस्थ तथा संन्यासी अपना-अपना धर्म पालन करते हैं, सब सुखकी प्राप्तिके लिये ही। राजा राज्य करता है और प्रजा अपने धर्मका पालन करती है सुखकी ही आशासे। परंतु इनमेंसे किसी भाग्यशालीको ही सुख मिलता है। इसका कारण यह है कि सुख क्या है और कहाँ मिलेगा, इसका ज्ञान प्राप्त करनेके बदले सभी लोग सीधे ही सुखकी खोजमें लग जाते हैं। अन्नके बाजारमें जाकर पुस्तक खोजें या लोहेकी दूकानपर जाकर ओषधि खोजें तो वह कहाँसे मिल सकेगी? यानी जो वस्तु जहाँ नहीं है, उस वस्तुके लिये वहाँ मनुष्य कल्पभर खोजता रहे तो भी वह उसे कदापि नहीं मिल सकती और जिस वस्तुकी खोज करते हैं, जबतक उसके स्वरूपको न जान लें, तबतक वह कहाँ मिलेगी, इसका निश्चय कैसे कर सकते हैं? इस प्रकार जैसे एक अन्धा खोयी हुई वस्तुको ढूँढ़नेके लिये व्यर्थ प्रयत्न करता है, पर वह हाथ नहीं लगती, वैसे ही सुख भी किसीको हाथ नहीं लगता। अतः यदि सुखकी खोज करनी हो तो सुख क्या वस्तु है अर्थात् उसका स्वरूप क्या है, यह पहले जानना चाहिये। उसके बाद यह निश्चय करना चाहिये कि वह कहाँ मिलेगा। इन दोनों बातोंका निश्चय करनेके बाद यदि सुखकी खोज की जायगी तो उचित कीमत देनेपर वह अवश्य ही मिल जायगा।

अतएव पहले—सुख क्या है और इसका स्वरूप क्या है, इसका विचार करना है। एक छोटे शिशुका सुख गलीमें खेलनेवाले लड़केके सुखसे पृथक् होता है। एक विद्यार्थीका सुख गलीमें खेलनेवाले लड़केके सुखकी अपेक्षा विलक्षण होता है। स्त्रीका सुख पुरुषके सुखसे अलग होता है। गृहस्थका सुख संन्यासीके सुखके विरुद्ध होता है। त्यागी पुरुष शरीरको कष्ट देकर सुखका अनुभव करता है और भोगी सारे भोग प्राप्त करके भी दुःखी दीख पड़ता है। इस प्रकार सुख प्रत्येक व्यक्तिके लिये अलग-अलग दिखलायी देता है। अतएव सुखकी परिभाषाका एक सामान्य नियम खोजना चाहिये।

बुद्धिके आधारपर प्राणिमात्रको दो विभागोंमें बाँटें तो एक ओर मनुष्य होंगे और दूसरी ओर अन्य सारे प्राणी। इन सारे प्राणियोंमें एक ही अहंकारवृत्ति काम करती है, अतः उनके सुखका आदर्श एक ही होता है। उनके अहंकारका अर्थ है—'मैं हूँ और मुझे जीना है।' यही कारण है कि उनका सारा व्यवहार देहके निर्वाहके लिये ही होता है और तदात्मक प्रवृत्तिमें ही केन्द्रित हो जाता है। यानी (१) जीनेके लिये आहार प्राप्त करना, (२) थकनेपर आराम करना, (३) शरीरके नाशका भय दिखलायी पड़े तब उसका सामना करना और (४) कामवासनाके वश होकर संतान उत्पन्न करना। इन चार बातोंके सिवा दूसरा कोई भी विचार मनुष्येतर प्राणियोंको नहीं होता और इन चारों बातोंका निर्वाह बिना अड़चनके हो, यही इन प्राणियोंका सुख है। अतएव इन सभी प्राणियोंके सुखका आदर्श एक ही है।

परंतु मनुष्यको पूर्ण विकसित अन्तःकरण मिला है, इससे उसके शरीरमें अहंकारके अतिरिक्त मन, बुद्धि, चित्त—

ये तीन वृत्तियाँ और रहती हैं। प्रत्येक अन्तःकरणकी वृत्तियोंके संस्कार विभिन्न होनेके कारण प्रत्येक मनुष्यके सुखके आदर्शमें भी विभिन्नताका होना स्वाभाविक है, तथापि समर्थ चिन्तकोंने इन सारे आदर्शोंको विवेकसे समझनेके लिये सुख-दुःखकी परिभाषा इस प्रकार की है—**(१) अनुकूलवेदनीयं सुखम्, (२) प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्।** यानी (१) जिस परिस्थितिसे अनुकूलताका बोध हो, वह सुख है और (२) जिससे प्रतिकूलताका बोध हो, वह दुःख है।

अब यदि इस कसौटीपर सुख-दुःखको कसें तो प्रत्येक व्यक्तिकी दृष्टिमें अनुकूलता और प्रतिकूलता विभिन्न दीख पड़ेगी; क्योंकि प्रतिकूलता और अनुकूलताका भान होना चित्तके संस्कारोंपर अवलम्बित है। उदाहरणके लिये बीड़ी पीनेवालेके लिये बीड़ी पीना अनुकूल जान पड़ता है और जिसको इसकी टेव नहीं, उस मनुष्यको बीड़ीका धुआँ भी प्रतिकूल जान पड़ता है। इस प्रकार एक ही वस्तु एक मनुष्यको सुखरूप दीख पड़ती है और वही उससे पृथक् संस्कारवालेको दुःखरूप लगती है। इसी प्रकार मधुर रस एक आदमीको सुखरूप लगता है और दूसरेको नहीं लगता। अफीमचीको अफीम मिलनेपर आनन्दका पार नहीं रहता और उसीको खानेसे, वह आदमी जिसको अफीम खानेकी आदत नहीं है, मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इससे सहज ही समझा जा सकता है कि सुख-दुःख उत्पन्न करनेकी शक्ति किसी भी पदार्थमें नहीं है। बल्कि वह चित्तके संस्कारपर अवलम्बित है।

अब इसके बाद यह देखना है कि प्राणिमात्र सुखकी खोजमें क्यों लगे हैं? इसके लिये प्राणियोंमें जो जीव नामक चेतन अंश है, उसके स्वरूपको देखना चाहिये। सत्-चित्-आनन्दघन परमात्मा स्वयं ही अपनी मायाका परदा ओढ़कर ईश्वर बनता है और सृष्टिकी रचना करके उसका संचालन करता है तथा वही परमात्मा अविद्याका परदा डालकर जीवरूप बन जाता है और संसारमें सुख-दुःखके व्यवहारमें फँस जाता है। जीव शुद्धस्वरूपसे तो आनन्दस्वरूप यानी सुखरूप ही है; परंतु अविद्याके आवरणके कारण उसका सुखस्वरूप ढक गया है, अतएव भ्रान्तके समान अपने ढके हुए सुखको अपनेमें न खोजकर बाहरके पदार्थोंमें खोजता है और अपने ही अन्दरके निरतिशय और अक्षय सुखका स्वयं अनुभव किया हुआ होनेके कारण विषयोंके संगसे प्राप्त होनेवाले क्षणिक सुखसे उसको तृप्ति नहीं होती। इसलिये वह निरतिशय और अक्षय सुख पानेके लिये जोर मारा करता है। मनुष्यके शरीरकी रचना ही ऐसी है कि इन्द्रियाँ बहिर्मुख हैं। बहिर्मुख इन्द्रियोंके कारण प्रत्येक जीव अनादि कालसे अनेक योनियोंमें भटकता, बाहरके पदार्थोंमें यानी संसारके विषयोंमें ही सुखकी खोज करता आ रहा है, पर सच्चा सुख मिलता नहीं; क्योंकि विषयोंमें सुख है ही नहीं, यह हम पहले ही देख चुके हैं।

विषयोंमें तो सुखकी भ्रान्ति ही होती है और लोग उसको सच्चा सुख मानकर भोगते हैं, पर प्राप्त होता है सुखके बदले दुःख। यह भ्रान्ति क्यों होती है, इसका विचार करना चाहिये। एक कुत्ता जब सूखे हाड़का टुकड़ा मुँहमें डालकर जोरसे चबाता है, तब वह कड़ा हाड़ उसके जबड़ेसे घिसता है और उससे खून निकल आता है। उस लहूका स्वाद कुत्तेको मिलता है और वह स्वाद हाड़मेंसे आ रहा है, ऐसा समझकर कुत्ता उसे बार-बार चबाता है, जिससे उसका अपना ही जबड़ा अधिक छिलता जाता है और खून भी अधिक निकलता है। उसके स्वादको कुत्ता सूखे हाड़का स्वाद मानता है। इसी प्रकारकी भ्रान्ति जीवको भी होती है और इससे जीव भी मान लेता है कि उसको विषयोंमेंसे ही सुख मिलता है। यह कैसे होता है, यह समझनेके लिये सहज ही विशेष विचारकी आवश्यकता प्रतीत होती है।

एक आदमीको मिठाई खानेकी तीव्र इच्छा हुई। इच्छा होते ही उसका चित्त व्यग्र हो गया और उन्मत्तके समान वह मिठाई पानेके लिये चेष्टा करने लगा। प्रारब्धवश मिठाई मिल गयी, वह शान्त और प्रसन्न हो गया। चित्त शान्त और प्रसन्न होते ही उसमें सुखस्वरूप आत्माका प्रतिबिम्ब पड़ा और इससे उसको अनुभूति हुई। मिठाई खा लेनेके बाद चित्तमें कोई दूसरी इच्छा जाग्रत् हुई और इच्छाके जाग्रत् होते ही उसके स्वभावके अनुसार चित्त फिर व्यग्र हो गया तथा पूर्वप्राप्त सुखकी अनुभूति भी नष्ट हो गयी। अब यदि मनुष्य 'सुख कहाँसे आया' इस स्थिरबुद्धिसे विचार करे तो उसकी समझमें आ जायगा कि मिठाई मिलने या किसी इच्छित पदार्थके मिलनेपर चित्त शान्त हुआ और उसके कारण ही सुखका अनुभव हुआ। अतएव सुखका कारण मिठाईका मिलना नहीं है, बल्कि मिठाईद्वारा प्राप्त शान्तिके द्वारा ही उसकी अनुभूति हुई। इसके बदले मनुष्य भ्रमवश यह मान लेता है कि मिठाईसे सुख मिला और इसी कारण वह सुखके लिये विषयोंमें दौड़ा करता है। इस बातको और भी स्पष्ट

करके कहें तो कह सकते हैं कि (१) मिठाईकी इच्छा होनेसे चित्त चंचल हुआ, (२) मिठाई पानेसे चित्तकी चंचलता मिटकर शान्ति मिली, (३) चित्त शान्त होनेपर इसमें आत्माका प्रतिबिम्ब पड़ा और सुखका अनुभव हुआ।

चित्त शान्त होनेपर उसमें आत्माका प्रतिबिम्ब पड़नेपर सुख हुआ। इस मुख्य बातको भूलकर जीव इस भ्रमका सेवन करता है कि मिठाईसे सुख मिला। इसी प्रकार वह विषयोंका सेवन तो करता है सुख मिलनेकी आशासे, पर सुख नहीं मिलता। इसका समर्थन करते हुए श्रीविद्यारण्यजी कहते हैं—

यत्सुखाय भवेत्तत्तद् ब्रह्मैव प्रतिबिम्बनात्।
वृत्तिष्वन्तर्मुखास्वस्य निर्विघ्नं प्रतिबिम्बनम्॥

(पंचदशी)

अर्थात् जिस पदार्थके प्राप्त होनेसे सुख मिलता है, उसका कारण वह पदार्थ नहीं; बल्कि इच्छित पदार्थकी प्राप्तिसे चित्त शान्त होता है और उसमें आत्माका प्रतिबिम्ब निर्विघ्न पड़ता है, जिससे सुखकी अनुभूति होती है। इससे यह सारांश निकला कि चित्तका स्थिर होना ही सुखप्राप्तिका उपाय है।

इस प्रकार चित्तका शान्त रहना यानी भगवत्स्वरूपमें लगे रहना ही सच्चा सुख है। सुखका कोई दूसरा स्वरूप नहीं है। अब यह देखना है कि सुखकी प्राप्तिके लिये चित्तकी शान्ति कैसे मिले? सुख-दुःखकी परिभाषा करते हुए श्रीमनुजीने कहा है—

'सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।'

अर्थात् जिसकी प्राप्ति करनेमें अपनेको दूसरोंके ऊपर आश्रित रहना पड़ता है, वह दुःखरूप है और जिसकी प्राप्तिके लिये अपने अतिरिक्त दूसरेका अवलम्बन नहीं लेना पड़ता, वह सुख है।

हमें अपने सिवा यानी अपनी आत्माके अतिरिक्त मन, बुद्धि या इन्द्रियोंके ऊपर अवलम्बन करना पड़ता है, इसे परवशता कहते हैं। यानी भोग्य-पदार्थोंके साथ इन्द्रियोंके संयोगके द्वारा जो सुखका अनुभव होता दीख पड़ता है, उसमें परवशता है। इसलिये वहाँ दुःखमें ही सुखकी भ्रान्ति होती है—ऐसा समझना चाहिये। भोगपदार्थोंकी प्राप्ति प्रारब्धके अधीन है। इसलिये उनकी प्राप्तिमें भी परवशता है और पदार्थोंके साथ इन्द्रियोंका संयोग होना मनके अधीन है। इसलिये उसमें भी परवशता है और यह भी कोई नियम नहीं कि संयोग होनेसे सुखका ही अनुभव होगा; क्योंकि एक ही वस्तुसे मन कभी सुखका अनुभव करता है तो कभी दुःखका। अतएव सुखका अनुभव होनेमें भी परवशता है। सबका सारांश यह है कि आत्मानुभवके सिवा जो दूसरे सुखका अनुभव होता है, वह वास्तविक सुख नहीं; बल्कि सुखकी भ्रान्ति ही है।

इस बातको भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें बहुत सरल रीतिसे समझाया है—

'सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।'

अर्थात्—

'यद् आत्यन्तिकं सुखमस्ति तद् अतीन्द्रियमस्ति। अतएव तद् बुद्धिग्राह्यमस्ति।'

यानी जिसे आत्यन्तिक सुख कहते हैं, वह निरतिशय और अक्षय सुख है, उसका अनुभव इन्द्रियोंद्वारा नहीं हो सकता। इसलिये उसका अनुभव बुद्धिके द्वारा यानी सूक्ष्म-बुद्धिके द्वारा ही हो सकता है। 'बुद्धिके द्वारा आत्यन्तिक सुखका अनुभव होता है।' इसका अर्थ इतना ही है कि जीव जब विशुद्ध हुई सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा अपने यथार्थ स्वरूपको समझता है। यानी 'मैं आनन्दस्वरूप आत्मा हूँ, इसलिये सुख-दुःखसे परे होनेके कारण सुखकी प्राप्तिके लिये मुझे कुछ भी यत्न करना नहीं है। चीनीकी डलीको मिठास प्राप्त करनेमें जैसे परिश्रम नहीं करना पड़ता, उसी प्रकार मुझ आनन्दस्वरूप आत्माको सुख पानेके लिये परिश्रम करना पड़ता ही नहीं'—ऐसा अनुभव होनेपर अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है।

प्रारम्भमें हमने देखा था कि मनुष्यमात्र सुखकी खोज करते हैं, पर सुखका स्वरूप क्या है—यह न जाननेके कारण उन्हें यह भी पता नहीं कि उसे कहाँ खोजना है? इसलिये असंख्य प्रयत्न करनेपर भी उन्हें सुख नहीं मिलता। अतएव चित्तकी शान्ति ही सुखका सच्चा स्वरूप है और वह प्राप्त होती है अपने स्वरूपके ज्ञानके द्वारा और इसके लिये जो मूल्य चुकाना पड़ता है, वह है इच्छामात्रका त्याग।

साधनचतुष्टयसम्पन्न होकर शास्त्राभ्यासके द्वारा बुद्धिको निर्मल करे और फिर उस विशुद्ध बुद्धिकी सहायतासे अपने स्वरूपका यथार्थ दर्शन कर ले। यानी मैं आनन्दस्वरूप आत्मा हूँ और इस कारण सुखकी प्राप्तिके लिये मुझे कुछ नहीं करना है। इस ज्ञानके दृढ़ होनेपर इच्छामात्रका त्याग अपने-आप हो जाता है और इच्छाका नाश होते ही चित्त अविचल शान्तिवाला बन जाता है। ऐसा होनेपर मनुष्यको निरतिशय सुख प्राप्त होगा और वह स्थिर रहेगा। यही है जीवनको सुखमय बनानेकी कला।

कष्ट और दुःखसे मुक्त होनेकी कला

[सच्चा प्रेम त्यागमें है]

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

(गतांक सं० ९ पृ०-सं० ८५१ से आगे)

भगवान् बुद्धके पास एक व्यक्ति आया। उसने उन्हें सैकड़ों गालियाँ दीं। वे सुनते रहे, हँसते रहे। अन्ततः जब वह गाली देते-देते थक गया, तब भगवान् बुद्धने पूछा—महाराज! और कुछ कहना है? वह बोला—और क्या, कुछ नहीं कहना है। बुद्धने कहा—अच्छा, एक बात आपसे पूछता हूँ। आप किसीको कोई चीज दें और यदि वह न ले तब आप क्या करेंगे? उसने कहा—इसमें पूछनेकी क्या बात है? वह चीज मेरे पास रही। बुद्धने कहा—आपने गाली दी, परंतु मैंने ली नहीं तो वह आपहीके पास रह गयी न! भगवान्ने कहा है—

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।

(गीता १४। २५)

मान और अपमानमें सम रहे और मित्र तथा वैरीके पक्षमें सम रहे। यह है क्या चीज? वह शत्रु तो अपनी जानमें शत्रु रहता ही है। अपमानके शब्द तो उसने कहे ही, परंतु यदि उसे ग्रहण कर लिया तो लग गयी और यदि नहीं ग्रहण किया तो उसके पास रह गयी।

एक बार इलाहाबादमें एक अंग्रेज प्रोफेसर आये। वे अंग्रेजी जानते थे; हिन्दी जानते ही नहीं थे। कुछ लड़कोंने उन्हें बेवकूफ बनाया। उन सबने प्रोफेसर साहबको हिन्दीकी कुछ गन्दी गालियाँ सिखा दीं और कहा कि ये बड़े अच्छे शब्द हैं, सम्मानसूचक शब्द हैं। उन्होंने सीख लिया। एक दिन एक पार्टीका आयोजन था। उस पार्टीमें प्रोफेसर साहब भी गये। वे जिसके सामने जायँ तो वही शब्द कहें, गालियाँ दें। यह सुनकर लोग भड़क उठे। लोगोंने कहा—प्रोफेसर! यह क्या कह रहे हैं? उन्होंने कहा—मैं तो सम्मान कर रहा हूँ, स्वागत कर रहा हूँ। तब लोगोंने उन्हें बताया कि यह गाली है। उन्होंने आश्चर्यपूर्वक कहा—यह गाली है? मुझे तो उन बच्चोंने बताया है। अब उनको महान् दुःख हो गया। कोई अंग्रेजीमें हमें गाली दे और हम न समझें तो दुःख होगा क्या? नहीं, क्योंकि हमने उसे लिया नहीं। उसने तो गाली दी ही परंतु हमें लगी नहीं; क्योंकि हमने उसे लिया नहीं। यदि ले लेते तो लग जाती।

जिस प्रकार हम शब्दोंको इनकार करके सुखी हो सकते हैं, जैसे हम भावोंको इनकार करके सुखी हो सकते हैं, उसी प्रकार शारीरिक पीड़ाको भी इनकार किया जा सकता है। बस, समर्थ मन होना चाहिये। मनमें विशेष ताकत हो तो शारीरिक क्लेश टाला जा सकता है। इसे मैंने देखा है। मेरे एक मित्र थे—जमनालालजी। एक दुर्घटनामें वे घायल हो गये। उनका चार इंच लम्बा, तीन इंच चौड़ा और तीन इंच गहरा ऑपरेशन हुआ; बिना क्लोरोफार्मके। उन्होंने धीरजके साथ अपनी टाँग सामने कर दी आपरेशनके लिये, आध्यात्मिकतासे नहीं किया। यह मेरी आँखों-देखी बात है। धैर्यवान् पुरुष भी इस प्रकार आनन्दपूर्वक सह सकते हैं। उनकी सहनशक्ति ही थी कि उन्होंने दर्द सहन कर लिया, अन्यथा वे कराहते रहते। इसलिये जितना-जितना हम जिस-जिस विषयमें अनुकूलताका अनुभव करेंगे, उतना-उतना हमारे अन्दर सुख होगा, दुःख जाता रहेगा और जहाँ-जहाँ प्रतिकूलताका अनुभव होगा, वहाँ सुख भी दुःख प्रतीत होगा।

कलकत्तामें मुझसे एक बड़े व्यक्ति एक कार्यालयमें मिले। वे मुझको दूर अलग ले जाकर बोले—भाईजी! मेरे समान संसारमें कोई दुःखी है ही नहीं, मैं बहुत दुःखी हूँ। उनके पास मोटरें हैं, कारखाने हैं, सैकड़ों नौकर हैं, परिवार है और उन्होंने कहा कि मैं बहुत दुःखी हूँ; मैंने पूछा—क्या दुःख है? उन्होंने कहा—मेरे दुःखका पार ही नहीं है। उनका दुःख क्या है? उन्होंने अपने मनमें प्रतिकूलताकी कई कल्पनाएँ कर रखी हैं। यह प्रतिकूल-वह प्रतिकूल, वह प्रतिकूल। अब इससे इन्हें दुःख-ही-दुःख है। एक दूसरी बात देखें, एक व्यक्तिने एक अवधूतसे पूछा—तुम बड़े अच्छे मुस्टन्डे बने हो, इसका रहस्य क्या है? उसने उत्तर दिया—भैया! मैं हमेशा सुखी रहता हूँ। कभी कुछ खानेको मिल जाता है, कभी भूखा रह जाता हूँ। कभी मखमलके गद्देपर सोता हूँ तो कभी कंकड़ोंमें पड़ा रहता हूँ। मुझे कोई दुःख नहीं होता है। मैं बहुत सुखी हूँ। अब दोनों बातोंको देखिये। भोगोंमें या पदार्थोंमें सुख होता है क्या? 'सुख अनुकूलतामें है और दुःख प्रतिकूलतामें है'—यह नियम है।

जो सचमुच भगवत्प्रेमी लोग हैं, उनकी प्रतिकूलता मर जाती है। वे तो प्रत्येक जगह, प्रत्येक समय, प्रत्येक अवस्थामें भगवान्के मुसकुराते हुए मुखको देखना चाहते हैं। उनका

मुसकुराता हुआ मुख दीख पड़ा, फिर चाहे महाप्रलय होता हो, फिर भी वे हँसते हुए दीखेंगे। यह कल्पना नहीं है। थोड़ा-थोड़ा आप सभी करके देखिये। कुछ-कुछ अनुमान होगा। जो चीज होती है वह कहीं थोड़ी भी हो सकती है और पूरी भी हो सकती है। इसलिये करके देखिये। जहाँ-जहाँ विपत्ति आये, उस विपत्तिमें वहाँ-वहाँ भगवान्‌की प्रसन्नताका अनुभव करके प्रसन्न होइये। आपका मन पलट जायेगा। रणमें जाकर मरनेवालेका क्या है ? उसका मन ही तो पलटता है। सती स्त्री पतिके साथ जल जाती है। उसका मन ही तो पलटा न। देशके लिये बलिदान होनेवालेका मन ही तो पलटता है। मरना तो हुआ ही, परंतु मन पलटा तो प्रसन्नता हो गयी। यदि मन नहीं पलटा, तब प्रतिकूलता दीखी और डरकर भाग गये। [**क्रमशः**]

मानव-जीवनकी सिद्धि

(श्रीघनश्यामदासजी मोदानी)

मेरे मन! समझ और आज अभीसे सावधान हो जा; क्योंकि मानव-शरीर निश्चित अवधि और निश्चित उद्देश्य अर्थात् परमानन्द-प्राप्तिके लिये भगवत्कृपाके फलस्वरूप प्राप्त हुआ है। यह निश्चित अवधि, जो कि अमूल्य तो है ही साथ ही प्रतिक्षण नाशकी ओर जा रही है। इस अमूल्य समयका अज्ञानवश हम आजतक भोग भोगने और संग्रहकी चाहके कारण दुरुपयोग करते आ रहे हैं। समयने भोगोंको स्वतः निवृत्तिके कगारपर लाकर खड़ा कर दिया है; क्योंकि हर प्रवृत्तिकी निवृत्ति स्वतः होना प्रकृतिका नियम है और हम वर्तमानमें केवल भूतकालकी यादोंको सँजोये भविष्यको नष्ट करनेमें समय जाया कर रहे हैं। इतना ही नहीं, बल्कि आजतक हमारी चाहने हमें दर-दरकी ठोकरें खिलाकर रुलाया है और चाहकी पूर्तिके लिये दयनीय ललचायी आँखें बनाये दर-दरका भिखारी बनाकर संसार-सागरमें चक्कर लगवाये हैं। अब हमें भगवत्कृपासे इस सत्यका ज्ञान हो गया कि केवल वही चाह पूर्ण होती है, जो हमें मिलनी है अन्यथा सारा संसार मिलकर भी हमारी एक चाहकी भी सन्तुष्टि नहीं कर सकता है। अतः हमें अचाह होना है। अब जब भगवान् श्रीहरि, उनके भक्तों और शास्त्रोंके द्वारा मानव-शरीरकी प्राप्तिके उद्देश्यका ज्ञान हो गया तो हमें होशमें आना चाहिये और आज अभीसे एक-एक पलका सदुपयोग ईश्वर-भक्ति और दूसरोंके हितमें करना चाहिये। इन सर्वजनहिताय कार्योंको करनेसे हम चौरासी लाख योनियोंमें जानेसे बच सकते हैं। समय ज्यादा नहीं है, कहने या सुननेका समय ज्यादा नहीं बचा है, हम सभीको साधनामें लग जाना चाहिये; क्योंकि पता नहीं इस क्षणभंगुर शरीरसे प्राण-पखेरू कब, कहाँ और किस पल उड़ जायँ। मनुष्यको अहंका त्याग करनेके लिये भगवान्‌ने कृपाकर समस्त संसारको साधनके रूपमें बनाया है। शास्त्रोंकी दृष्टिसे अहंकी निवृत्तिके लिये ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग तीन प्रमुख साधन माने गये हैं। बुद्धिजीवी साधकोंके लिये त्याग और वैराग्यसे अहंको जानकर इसका त्याग करना ज्ञानयोग है। इसमें त्याग करनेवाले तत्त्वको पहले जानकर फिर उसका त्याग किया जाता है, किंतु जो है 'नहीं' केवल भासता है, उसको नहीं रूपसे जानना अति कठिन कार्य है। ज्ञानयोगमें फलरूपसे निजानन्दकी प्राप्ति होती है। दूसरा साधन कर्मयोग है, इसमें भगवत्कृपासे प्राप्त इस शरीर और सामानसे संसारकी सेवा करनी है; क्योंकि सारा संसार भगवान्‌का ही स्वरूप है। इस शरीर और सामानको सर्वजनहिताय कार्योंमें लगानेसे अहंका नाश स्वतः हो जाता है; क्योंकि अहंकी पुष्टिके लिये उसे खुराक मिलना बन्द हो जाती है। तीसरा साधन भक्तियोग है; यह सरल है, इसको करनेमें सभी सक्षम हैं, भक्ति हर परिस्थितिमें, हर समय, हर जगह और मानवके अन्तिम क्षणतक केवल इच्छामात्रसे की जा सकती है। इसमें संसारको भगवान्‌का रूप मानना है। फिर धीरे-धीरे यह जाननेमें आ जायेगा; क्योंकि सत्य भी यही है, केवल हमारे अज्ञानके कारण यह सत्य अनुभवमें नहीं आ रहा है। इसलिये हमें भगवत्-शरणागतिकी स्वीकृति करनी है, फिर भगवत्कृपा जीवका जीवन बनकर उसके कल्याणका मनोरथ पूर्ण करा देगी अर्थात् सत्यका ज्ञान करा देगी। भक्तियोगमें श्रद्धा एवं विश्वासका विशेष महत्त्व है। जीवकी परमात्माके प्रति जैसे-जैसे श्रद्धा दृढ़ होगी, वैसे-वैसे विश्वास दृढ़ होगा और जैसे-जैसे विश्वासमें दृढ़ता होगी, वैसे-वैसे श्रद्धा दृढ़ होगी। दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं। श्रद्धा एवं विश्वासको बढ़ानेके लिये अनन्यताका होना आवश्यक है, इसलिये हमें सिद्धिके लिये एक ठाकुर, एक तीर्थ, एक स्थान, एक समय, एक आसन, एक पोथी, एक मन्त्र, एक माला, एक चिन्तन आदि नित्य करना चाहिये, जिससे भगवत्कृपा हमें अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँचना सुलभ करा देगी और मानव-जीवन कृतकृत्य होकर धन्य हो जायगा।

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

मेरे मनकी हो जाय—इसका नाम कामना है। हम सभीसे अपनी मनचाही चाहते हैं—यह बाधक है। हमारा भाव यह होना चाहिये कि दूसरोंकी मनचाही हो जाय। यदि भगवान् और सन्तकी हाँ-में-हाँ मिला दें तो जीवन्मुक्त हो जायँ।

संसारका सम्बन्ध तो मनमें पड़ा है, पर समझते हैं बाहर।

भगवत्सम्बन्धी बातसे लाभ होता ही है और संसार-सम्बन्धी बातसे नुकसान होता ही है।

किसीको बुरा समझना अपने लिये और उसके लिये—दोनोंके लिये हानिकारक है।

× × ×

कल्याण गंगाजीमें नहीं पड़ा है, आपके भावमें पड़ा है—***'जेहि जिव उर नहचो धरै, तेहि ढिग परगट होय'*** (जीव जहाँ निश्चय करता है, भगवान् वहीं प्रकट हो जाते हैं)। गंगास्नान, नाम-जप आदि करके निश्चिन्तता आ जानी चाहिये कि अब हमारा कल्याण होगा ही, इसमें कोई सन्देह नहीं। निश्चिन्तता असली होनी चाहिये, नकली नहीं। ***'सबै भूमि गोपाल की, तिसमें अटक कहा। जिसके मनमें अटक है, सोई अटक रहा॥'*** वास्तवमें कल्याण स्वतः सिद्ध है, पर जीवने अपनी मान्यतासे बन्धन कर रखा है। बन्धन, दुःख, दरिद्रता आपकी बनायी हुई है।

हे नाथ! मैं आपका हूँ, अब कुछ करना-जानना-पाना नहीं, कोई भय-चिन्ता नहीं—यह इसी क्षण स्वीकार कर लें।

भगवान् किसी जीवसे अलग हो जायँ—यह भगवान्की सामर्थ्यके बाहरकी बात है। भगवान्के बिना नरककी भी सत्ता नहीं है। भगवान् जैसे वैकुण्ठमें हैं, वैसे-के-वैसे ही नरकोंमें भी हैं। जो कहीं हो, कहीं न हो, वह भगवान् नहीं हो सकता। जो किसीका हो, किसीका न हो, वह भी भगवान् नहीं हो सकता। भगवान्का कहीं भी अभाव कैसे हो सकता है? आप पाप करते हो तो भगवान् नरकमें उसकी सजा देते हैं। उस सजामें भी मजा है! उससे जीवके पाप कटते हैं और वह शुद्ध होता है। भगवान्के प्रसादमें करेला भी होता है, रसगुल्ला भी। शुद्ध-से-शुद्ध जगहमें और गन्दी-से-गन्दी जगहमें भी भगवान् वैसे-के-वैसे ही हैं। गन्दापना अनित्य है, भगवान् नित्य हैं। अच्छी-गन्दी आपकी भावना है। यह हमारी बनायी हुई है, भगवान् बनाये हुए नहीं हैं।

'जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं' (मानस, कि० १०।२)—यह आपकी धारणाके कारण है। वास्तवमें भगवान् 'जतन' के अधीन नहीं हैं। आप उन्हें स्वीकार कर लें तो वे आ जायँगे। भगवान् सब जगह हैं, पर आप उनको स्वीकार नहीं करते—यही बाधा है। यदि आपसे स्वीकार नहीं होता तो रोकर भगवान्से कहो। आपमें बेचैनी आनी चाहिये। व्याकुल हो जाओ तो समाधान हो जायगा। अगर व्याकुलता कम होती है तो देरी होगी, पर लाभ अवश्य होगा। आप देरी सहते हो, इसलिये देरी होती है। या तो मस्त, निर्भय, निश्चिन्त हो जाओ या व्याकुल हो जाओ। कोई एक पूरी बात हो। अधूरापन नहीं रहना चाहिये। जैसा आपका स्वभाव हो, वैसा हो जाओ।

× × ×

'मैं गृहस्थ हूँ'—यह अहंता रहेगी तो गृहस्थका काम तत्परतासे होगा, साधनका काम बारी निकालना होगा। अतः 'मैं साधक हूँ'—यह अहंता होनी बहुत आवश्यक है। ऐसी अहंता रहनेपर साधन-विरुद्ध काम नहीं होगा। अहंता (मैं-पन) बदलनेपर जीवन बदल जाता है।

अच्छा साधक भूलमें भी साधन-विरुद्ध काम नहीं करता। वह शरीरकी भी परवाह नहीं करता। शरीरका विशेष ख्याल रखेगा तो साधन ठीक नहीं होगा—***'जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि'*** (मानस, अयो० १४२।१), ***'राम भजन में देह गले तो गालिये'***।

× × ×

बेईमानीसे बन्धन है, ईमानदारीसे मुक्ति है। संसार-शरीरको अपना मानना बेईमानी है। विचार करें, शरीरपर अपना वश चलता है क्या? या तो इसपर अपना अधिकार जमा लो, या इसको अपना मानना छोड़ दो। शरीर किसी भी दृष्टिसे अपना नहीं है। शरीर संसारसे अलग नहीं हो सकता। शरीरको संसारकी सेवामें लगाना कर्मयोग है,

प्रकृतिका मानना ज्ञानयोग है और भगवान्‌का मानना भक्तियोग है। शरीरको अपना मानना जन्ममरणयोग है।

जिसकी चीज है, उसीको दे दी तो मुक्ति हो गयी। अपना माननेमें जोर आता है, छोड़नेमें क्या जोर? प्रबन्ध करो, पर अपना मत मानो, जो चीज मिली है और बिछुड़नेवाली है, वह वस्तु अपनी नहीं होती। अपनी वस्तु 'शोकशंकु' (शोकरूपी काँटा) है—

यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान्मनसः प्रियान्।
तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः॥

(विष्णुपुराण १।१७।६६)

'जीव अपने मनको प्रिय लगनेवाले जितने ही सम्बन्धोंको बढ़ाता जाता है, उतने ही उसके हृदयमें शोकरूपी काँटे गड़ते जाते हैं।'

श्रोता—निर्विकल्प बोध और उसकी प्राप्तिकी विधि क्या है?

स्वामी—बोध है—'है' और विधि है—'नहीं' का त्याग।

× × ×

जैसे विवाह होनेके बाद व्यक्ति आजीवन विवाहित ही रहता है, कुँआरा नहीं होता, ऐसे ही आप एक बार भगवान्‌के शरण होनेके बाद सदा शरणमें ही रहें। सन्तुष्ट हो जायँ कि अब अपने घर आ गये। अब भजन-स्मरण ही करना है। संसारकी अनुकूलता और प्रतिकूलतासे हमें कोई मतलब नहीं। अब हम भगवान्‌के हो गये। जैसे, अब हम विद्यालयमें भर्ती हो गये, अब हमें पढ़ाई करना है। यह सावधानी रखें कि समय व्यर्थ न जाय। किसी समय भगवान्‌का चिन्तन न हो तो यह घाटा है, नुकसान है। भगवत्प्राप्तिमें देरी आपके कारण हो रही है। आप देरीको सहन कर रहे हो। भगवत्प्राप्ति, तत्त्वज्ञान अथवा संसारका त्याग तत्काल होता है, धीरे-धीरे नहीं। क्या विवाह होनेमें, दान देनेमें कई दिन लगते हैं?

किसी गुरुमें श्रद्धा न रहे तो उनके दिये नामकी एक माला रोज जप ले और उनकी निन्दा न करे।

× × ×

व्यवहारमें तो संसार है—ऐसा दीखता है, पर विचार करें तो संसार निरन्तर अभावमें जा रहा है। संसारका अभाव ही सच्चा है, संसार सच्चा नहीं है। 'है' का विभाग परमात्मा है और 'नहीं' का विभाग संसार है। संसार बनावटी है। बनावटी चीज नकली होती है। जैसे मिट्टीके बर्तन बनावटी हैं, मिट्टी ही सत्य है, ऐसे ही संसार बनावटी है, परमात्मा ही सत्य हैं। संसारसे परमात्माको, मिट्टीके बर्तनोंसे मिट्टीको निकाल दो तो क्या शेष रहेगा? संसाररूपसे परमात्मा ही बने हुए हैं। अतः भाव, क्रिया, पदार्थसे सबको सुख पहुँचायें, किसीको कष्ट न पहुँचायें तो यह **'वासुदेवः सर्वम्'** हो जायगा।

जो संसारसे कुछ चाहता है, वह घाटे-ही-घाटेमें रहता है।

× × ×

जिसके भीतर भगवत्प्राप्तिकी भूख हो, उसके लिये **'वासुदेवः सर्वम्'** बहुत बढ़िया बात है। **'वासुदेवः सर्वम्'** का अनुभव करनेवाला दुर्लभ महात्मा बन जाता है। सब जगह भगवान्‌को देखनेवालेसे भगवान् कभी छिप नहीं सकते—यह रहस्यकी बात है। तू ही है—यह परमात्माकी उपासनाका एक तरीका है।

'वे' उसको कहते हैं, जो खास अपने हैं। 'वही', 'सोई' का भी यही तात्पर्य है—यह गुप्त बात है। रामायणमें कई जगह 'सोई' पद आया है।

सब जगह भगवान्‌को ही देखना उनको पकड़नेका उत्तम साधन है।

संसारका परिवर्तन कभी बन्द नहीं होता, निरन्तर चलता रहता है। संग्रह और सुखभोगके समय यह परिवर्तनशील नहीं दीखता, आँखें मिच जाती हैं। यदि साधककी दृष्टि संसारकी परिवर्तनशीलताकी तरफ निरन्तर बनी रहे तो भोग तथा संग्रहकी इच्छा नहीं रहेगी। भोग तथा संग्रहकी इच्छा मिटनेसे ही साधन बनता है, अन्यथा बेहोशी रहती है। शरीर-संसार जा रहे हैं—यह जागृति रहनी चाहिये। परिवर्तनशीलका ज्ञान होनेसे अपरिवर्तनशीलका ज्ञान स्वतः हो जाता है। संसारके परिवर्तनमें कभी विश्राम होता ही नहीं। संसारमें निरन्तर श्रम-ही-श्रम है। विश्राम केवल परमात्मामें ही है।

परिवर्तनको देखनेसे परिवर्तन मिट जायगा। अपरिवर्तनको देखनेसे अपरिवर्तनकी प्राप्ति हो जायगी। इन दोनोंका नाम योग है। संसारका सम्बन्ध विवेक-विरोधी है और परमात्माका सम्बन्ध विवेकसम्मत है। संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर संसारका अभाव हो जायगा।

सुख-दुःखका यथार्थ

(श्रीताराचन्दजी आहूजा)

मनुष्यका जीवन कभी एक समान नहीं रहता। उतार-चढ़ाव जीवनका नैसर्गिक स्वभाव है। जीवन तो नदीके जलकी तरह है, जो सदैव बहता रहता है। कभी पर्वतोंसे, कभी जंगलोंसे तो कभी मैदानी भू-भागसे। बस! बहना ही उसकी नियति है, मार्ग चाहे जैसा भी हो। इसी प्रकार मनुष्यकी परिस्थितियाँ अवश्य बदलती हैं, परंतु उसके जीवन-क्रमका चलना जारी रहता है। इन्हीं बदलती परिस्थितियोंको हम सुख-दुःख कहते हैं। वस्तुतः सुख-दुःख नदीके दोनों ओरके किनारे हैं, जिनकी सीमाके भीतर जीवनरूपी जल बहता रहता है। कभी वह जल एक किनारेसे टकराता है तो कभी दूसरे किनारेसे। टकराना तो रहेगा ही, उसे रोका नहीं जा सकता। अवरोध न होनेसे कभी जलका प्रवाह तीव्र हो जाता है तो कभी बाधा आनेसे प्रवाहकी गति मन्थर पड़ जाती है। सुख-दुःखकी भी यही दशा है, इसलिये यह भी परिस्थितियोंके अनुसार घटता-बढ़ता रहता है। हम चाहे कितने भी प्रयास क्यों न कर लें, सुख-दुःखपर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त नहीं कर सकते।

महापुरुषोंका कथन है कि सुख अथवा दुःख कोई भौतिक वस्तु नहीं है, जिसे प्राप्त किया जा सके या जिससे दूर रहा जा सके। यह तो हमारा मनोभाव है, जो किसी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थितिके संयोग अथवा वियोग होनेपर अनुभव किया जाता है। प्रकृतिमें अच्छा-बुरा, सुख-दुःख-जैसा कोई भाव नहीं होता। यह तो मात्र हमारे मनकी शब्दावली है। किसी परिजन या प्रियजनको देखकर हमारा मन प्रसन्नता अनुभव करने लगता है तो यही मन शत्रुको देखकर उद्विग्न हो जाता है। व्यक्ति वही होता है, लेकिन वह किसीको प्रिय तो किसीको अप्रिय लगता है। यह भी हो सकता है कि कुछ समय बाद उसके बारेमें हमारी धारणा ही बदल जाय। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारी मनःस्थिति ही इस परिवर्तनके लिये उत्तरदायी है। जो वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति हमारे मनको अच्छी लगती है, उसे हम सुख कह देते हैं और जो हमारे प्रतिकूल हो, उसे हम दुःखका नाम दे देते हैं।

एक व्यक्ति किसी परिस्थितिसे सुखी होता है, वहीं दूसरा व्यक्ति उसी परिस्थितिसे दुःखी हो जाता है। वर्षा आनेपर माली प्रसन्न होता है; क्योंकि उससे उसकी बगियामें बहार आ जाती है। दूसरी ओर वर्षाके कारण एक कुम्भकारके कार्यमें बाधा उत्पन्न होती है, अतः वह दुःखी हो जाता है। अब वर्षा तो आयेगी ही, चाहे अच्छी लगे या बुरी। देखा जाय तो सुख और दुःख—ये दोनों ही भाव एक ही भुवनमें एक साथ रहते हैं। एकके अदृश्य हो जानेपर दूसरा प्रकट हो जाता है। परिस्थितियोंका भेदमात्र अपना काम करता रहता है। एक व्यसनीको सबसे बड़ा सुख अपने व्यसनमें मिलता है, जबकि आगे जाकर वही व्यसन उसके दुःखका प्रमुख कारण भी बन जाता है। हम रोजमर्राके जीवनमें कई ऐसे शराबियों, जुआरियों तथा दुराचारियोंको देखते हैं, जिन्होंने अपने गलत खान-पान अथवा आचरणसे दुःखोंको निमन्त्रित कर लिया है। यही नहीं; हम किसी व्यक्ति, किसी घटना या परिस्थितिको देख लें, हमें उन सबमें सुख और दुःख एक साथ खड़े दिखायी देंगे। यहाँतक कि दुर्घटनाके दुःखमें भी जान बच जानेका सुख अनुभव किया जाता है।

अच्छे-बुरे या सुख-दुःख-जैसे भाव पैदा होनेका एक प्रमुख कारण हमारा कर्तापनका भाव होता है, जिसे हम अहंकार कहते हैं। इसीसे हमारे मनमें छोटा-बड़ा-जैसा भाव उत्पन्न होता है। अहंकारमें मनुष्य अकेला जीता है, केवल अपने लिये। परिणामस्वरूप वह अनेक प्रकारके सुखोंसे अपनेको वंचित कर लेता है। ईश्वरने हमें मनुष्य-जीवन दिया, कई स्वजन और परिजन दिये। सुखसे जीनेके अनेक अवसर दिये, परंतु अहंकारवश हम उसका लाभ नहीं उठा पाते; क्योंकि अहंकारकी दीवार आड़े आ जाती है। इसके लिये दोषी कोई और नहीं, हम स्वयं ही होते हैं। इसके विपरीत यदि हम जीवनको ईश्वरका प्रसाद मान लें, दूसरे लोगोंको भी ईश्वरका प्रसाद मान लें तो जीवन सुखमय हो सकता है। इसका सीधा-सा अर्थ यह हुआ कि व्यक्ति सुखी अथवा दुःखी अपनी सोचके कारण होता है। सकारात्मक और नकारात्मक विचारधारा ही हमारे सुख और दुःखका निर्धारण करती है। अतः सुखकी प्राप्तिके लिये यथार्थ दृष्टिको विकसित करना अनिवार्य है। ईर्ष्या-द्वेषके चलते आज बहुतेरे लोग अपने दुःखसे

इतने दु:खी नहीं हैं, जितने दूसरोंके सुखको देखकर दु:खी हैं। ऐसे लोगोंकी भी कमी नहीं है, जो दूसरोंको दु:ख देकर सुख प्राप्त करना चाहते हैं। यह नकारात्मक भाव है, जो व्यक्तिके स्वयंके लिये दु:खका कारण बनता है। जो दूसरोंके लिये गड्ढा खोदता है, सबसे पहले वह स्वयं उस गड्ढेमें गिरता है। धर्मशास्त्रोंमें कहा गया है कि दु:ख देनेसे दु:ख मिलता है और सुख देनेसे सुखकी प्राप्ति होती है। सुख-दु:ख हमारे अपने कर्मोंके फल ही हैं। श्रीमद्देवीभागवतका कथन है—

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥'

(६।९।६७)

अर्थात् मनुष्यको अपने पूर्वकृत कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है। सन्त तुलसी साहिबने भी कहा है—

चार वेद षट्शास्त्र में बात मिली हैं दोय।
दु:ख दीन्हें दु:ख होत है सुख दीन्हें सुख होय॥

मनुष्यके दु:खका दूसरा प्रमुख कारण है सुरसाके मुँहकी तरह बढ़ती उसकी इच्छाएँ, कामनाएँ, लालसाएँ एवं महत्त्वाकांक्षाएँ। कामनाओंसे भरा मन कभी सुखकी अनुभूति नहीं कर सकता। कामनाका स्वभाव ही दु:खमय होता है; क्योंकि वहाँ अतृप्ति है, असन्तोष है। जितनी अपेक्षाएँ अधिक होती हैं, उतना ही दु:ख अधिक होता है। हमें लगता है कि हमारा सुख सत्ता, सम्पत्ति, संतति, भोग-विलास आदि पदार्थोंमें है; किंतु यह सब मनकी भ्रान्तिमात्र है। यदि धन-वैभव और विषय-सेवनमें सुख होता तो सब धनी लोग सुखी होते। साधन-सम्पन्न लोग तो उलटे अधिक दु:खी दिखायी देते हैं। क्षणिक वैषयिक सुखमें आनन्दका सर्वथा अभाव है। गीतामें भगवान्ने कहा है—जिसे हम सुख समझते हैं, वह वास्तवमें दु:ख है। जिसे हम प्रसन्नता समझते हैं, वह वास्तवमें कष्ट है। **'ये हि संस्पर्शजा भोगा दु:खयोनय एव ते।'** (गीता ५।२२) अर्थात् जो ये इन्द्रियों तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं, तो भी वे दु:खके ही हेतु हैं।

आनन्द तो हमारे भीतरकी वस्तु है, उसे बाहरसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोरने एक बार कहा था—'मैं हर रोज सुखके घरका पता मालूम करता हूँ, लेकिन शामको फिर भूल जाता हूँ। सुबहमें सुखकी खोज शुरू करता हूँ, पर सायंकालतक अँधेरेके सिवाय कुछ प्राप्त नहीं होता।' हममेंसे अधिकतर लोग इस पीड़ासे त्रस्त हैं कि हम क्या करें? कहाँ जायँ, कौन-सा मार्ग अपनाएँ, जिससे सुखकी प्राप्ति हो जाय और दु:ख सदा-सर्वदाके लिये मिट जाय। इस सम्बन्धमें एक बोध-कथाका स्मरण आता है, जिसका यहाँपर उल्लेख करना समीचीन होगा।

एक राजा था। एक बार वह बीमार पड़ गया। सभी वैद्य, हकीम, डॉक्टर उपचारकर हार चुके, परंतु वह स्वस्थ नहीं हुआ। अन्तमें एक बुद्धिमान् व्यक्तिने सलाह दी कि यदि राजाको किसी सुखी व्यक्तिकी कमीज पहना दी जाय तो वह ठीक हो सकता है। अत: दरबारी किसी ऐसे आदमीकी खोजमें निकले, जो सुखी हो। उन्होंने बहुत खोजबीन की, लेकिन सब व्यर्थ। हरेकको किसी न किसी प्रकारका छोटा-मोटा दु:ख अवश्य था। किसीके पास धन नहीं था, तो किसीके पास अपना मकान या पत्नी नहीं थी। किसीके पास उसके बच्चे नहीं थे तो किसीके बच्चे दुराचारी थे। आखिरकार जब वे लौटने लगे तो उन्हें एक झोपड़ीमें एक व्यक्तिकी आवाज सुनायी दी, जो कह रहा था—'हे भगवन्! तेरी कृपासे मैं सुखी हूँ। मैंने आज अपना काम अच्छी प्रकारसे किया है, पेटभर भोजन किया है, अब मैं सोता हूँ। मुझे तेरी कृपासे अब किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है।' दरबारियोंने जब यह बात सुनी तो वे प्रसन्न होकर उस व्यक्तिके पास गये और सारी बात बतानेके बाद अपनी कमीज देनेके लिये कहा। लेकिन उन्हें यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि उस व्यक्तिके पास पहननेके लिये कमीज ही नहीं थी, पर फिर भी वह सुखी था। इससे सिद्ध होता है कि सुख न तो शरीरमें है और न ही बाह्य जगत्में; क्योंकि वहाँ प्राप्त सुखको भी शरीरके माध्यमसे ही आना होगा।

इस बोध-कथासे जो बात प्रमाणित होती है, वह यह है कि कामनाओंका अभाव ही हमारे सुखका मुख्य आधार है। जहाँ सुख हमारी नियति है, वहीं दु:ख हमारे स्वयंका निर्माण है। यदि व्यक्ति दु:खका निर्माण करना बन्द कर दे तो वह सहज ही सुखकी अनुभूति कर सकता है। बाहरका हर सुख भीतरके दु:खको अपने साथ लिये होता है। यदि भीतर सन्तोष हो, सम्यक् दृष्टिकोण हो तो सुखकी बयार स्वत: बहने लगेगी। इसलिये सन्त-महात्मा

कहते हैं कि सुख और आनन्द मनुष्यके भीतर हैं, कहीं बाहर नहीं। वस्तुतः सुख इच्छाओंकी प्राप्तिमें नहीं, अपितु स्वयंकी सन्तुष्टिमें निहित है। अध्यात्मवेत्ताओंका कथन है कि सुख तथा दुःख गाड़ीके पहियोंके समान एकके पीछे एक घूमते रहते हैं—

'चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।'

दुःखोंका एक बड़ा कारण होता है अतीतकी स्मृति। कुछ दुःख भविष्यकी यथार्थहीन कल्पनाओंसे पैदा होते हैं। व्यक्ति वर्तमानमें रहता तो है, किंतु जीता नहीं है। यही उसकी सबसे बड़ी त्रासदी है। वर्तमानको जीवनका प्रसाद माननेसे जहाँ प्रेम और सन्तुष्टिका भाव बढ़ता है, ऊर्जाका अपव्यय रुकता है, वहीं क्षमताका विकास होता है। यही सुखका स्रोत है। सुख-दुःखमें 'सु' और 'दु' अक्षर तो विशेषणमात्र हैं। मूल शब्द है 'ख' जिसका अर्थ होता है आकाश। व्यक्तिका हृदयाकाश यदि सुन्दर है तो सुख है और यदि दूषित है तो दुःख है।

जीवनमें सुख और दुःख मनकी परिकल्पना और परिपक्वतापर निर्भर करते हैं। विवेकशील दृष्टि सुख और दुःखको अलग नहीं देखती। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने सुखका बहुत सुन्दर सूत्र दिया है। वह सूत्र है समताका, समभावका जो व्यक्तिको तनावमुक्त रखता है। निन्दा सुनकर क्रोध न आये और प्रशंसासे मनमें अहंकार न बढ़े, तभी मन भी शान्त रहेगा। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियोंमें मनको समभावमें रखना ही वास्तवमें सुखका आभास कराता है। गीता कहती है कि कर्म करते हुए परिणामको समदृष्टिसे देखना ही सुखका मूल है। हमें सुख-दुःखके द्वैतको समझना होगा। यदि हम दुःखको जीवनसे बाहर करनेका प्रयत्न करेंगे तो सुख भी बाहर निकल जायगा। यदि हम घृणाको जीवनसे बाहर करेंगे तो प्रेम भी बाहर चला जायगा; क्योंकि जीवनके सारे द्वैत एक साथ रहते हैं। आवश्यकता है उनके स्वरूपको जान लेनेकी। एक ही पक्ष दूसरे पक्षमें बदलता है। दोनों अलग-अलग नहीं हैं। यथार्थ समझमें आते ही दोनों पक्ष मिल जाते हैं और पीछे केवल रह जाता है अद्वैत। यही शाश्वत सुखका मूल आधार है।

कठोरतापर नम्रताकी जीत

(श्रीमती रेखासिंहजी)

आधुनिक समाजमें अधिकांश लोग अपनेको श्रेष्ठ साबित करनेमें लगे हुए हैं। वे व्यक्ति प्रायः अपना प्रभाव एक-दूसरेपर बनाये रखना चाहते हैं। इसके लिये वे अपनी सम्पूर्ण शक्तिका प्रयोग करते हैं। इसके लिये तन, मन और धन सभी शक्तियोंको शामिल करते हैं तथा अपनी प्रशंसा स्वयं करते हैं। यहाँतक कि ऐसे लोग प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूपसे अपने वर्चस्व एवं अपनी श्रेष्ठताकी डींगें भी मारा करते हैं, पर इन लोगोंको शायद यह नहीं मालूम कि सामने उनकी भले ही कोई आलोचना न करे; लेकिन व्यक्ति या समाज उनको और उनकी प्रभुताको हृदयसे कभी स्वीकार नहीं करता। सामने भले ही हाँ-में-हाँ मिलाता रहे।

इसके विपरीत सहृदय व्यक्ति नम्र, मृदुभाषी हो तथा दूसरेके कामोंकी सराहना करता हो उसे अच्छी भाषा-शैली, व्याकरणका उचित ज्ञान न भी हो तो भी वह कुछ कहता है तो हर व्यक्ति स्वतः ही उसका हो जाता है, परोक्षमें भी लोग उसकी प्रशंसाकर उसकी बातोंपर मनन करते हैं।

पर्वत तना हुआ होता है, इसलिये सदा अकेला ही खड़ा रहता है। न तो चल सकता है, न हिल-डुल सकता है, लेकिन झुककर चलनेवाले व्यक्ति उसके ऊपर चढ़ जाते हैं।

यही स्थिति मानव-जीवनकी है, कठोर व्यक्ति अधोगति अवस्थामें होता है। अकड़को कायम रखनेवाले व्यक्तिको हर जगह तिरस्कार मिलता है, अपमानका सामना करना पड़ता है। उसकी कोई बात नहीं मानना चाहता है, भले ही वह अपनेको कितना भी बड़ा माने। दूसरी ओर नम्र व्यक्ति समाजमें कठोर व्यक्तिपर भारी पड़ता है। प्राचीनकालमें भी जिन शासकोंने तलवारके बलपर शासन एवं सत्ता सँभाली, शासन किया, समाजने उनको कभी माफ नहीं किया। इसके विपरीत जिन्होंने समाज एवं राष्ट्रका सेवक बनकर शासन सँभाला, उनको समाज एवं राष्ट्र उनके न रहनेपर आज भी याद करता है, जयन्ती मनाता है। अतः नम्र होना अच्छी बात है। झुकनेवाले वृक्ष आँधी-तूफानोंको सह लेते हैं, कड़े वृक्ष उखड़ जाते हैं, टूट जाते हैं। अतः हमें जीवनमें नम्र होकर, झुककर ही जीना चाहिये।

श्राद्धसंस्कारकी शास्त्रीय महत्ता एवं वैज्ञानिकता

(पं० श्रीकृष्णानन्दजी उपाध्याय 'किशन महाराज')

वर्तमान समयमें आधुनिक चकाचौंध एवं पाश्चात्यानुकरणकी अन्धी दौड़में संस्कार एवं दिनचर्याके समस्त क्रियाकलापोंसे होनेवाली सत्-शिक्षा और उसकी प्राप्तिका मार्ग सर्वथा अवरुद्ध हो गया है। आजका विद्यार्थी, युवा अथवा अर्थोपार्जनमें लगा व्यक्ति सोना, उठना, खाना, दौड़-धूप—इस चतु:सूत्री कार्यक्रममें ही सिमटता जा रहा है। वास्तविकता तो यह है कि आज तो लोग सोने, उठने, भोजन आदिके नियम भी नहीं जानते हैं। कब सोना, कहाँ सोना, क्या खाना, क्या नहीं खाना आदि? इसका परिणाम है कि आजका मानव बिना सींग-पूँछका पशु बनता जा रहा है—

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः। ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥ इसकी अच्छी-सी संगति महात्मा कबीरके इस निर्वचनसे स्पष्ट होती है—

तू ने हीरो सो जनम गँवायो भजन बिनु बावरे।
पच-पच मर्‍यो बैल की नाईं....
सोय रह्यो रे उठ धायो भजन बिनु बावरे॥

दिनचर्याके नामपर हमारे पास केवल संसारके विविध कार्योंकी लम्बी सूची है, किंतु इसमें मानवत्व, देवत्व एवं मुमुक्षुत्व—मोक्षतत्त्व या परम तत्त्वकी कोई उपलब्धि होती नहीं दिखायी देती है।

आजका हमारा मानवसमाज अपने जन्मदिवसपर अश्वत्थामा, व्यास, मार्कण्डेय आदि चिरंजीवियोंकी पूजा करना और उनसे आशीर्वाद लेना भूलता जा रहा है। उसके बदलेमें बर्थ डे केक, बर्थ डे पार्टियाँ आयोजित हो रही हैं। जन्मदिनके शुभ अवसरपर पुण्याहवाचन, देवाराधन, आयुष्यमन्त्र-जप आदि सदनुष्ठान होते थे, आज उनकी जगह पार्टियोंने ले ली है। इससे हमारे धन, धर्म एवं चरित्रका नाश होता है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरणगुप्तजीकी यह पंक्ति—

'हम क्या थे क्या हो गये' प्रासंगिक हो गयी है।

किंचित् विचार करें—श्राद्ध आदि पुण्यपर्वों एवं विविधोत्सवोंपर हमारे यहाँ विविध प्रकारके श्राद्धों—नान्दीमुखश्राद्ध, एकोद्दिष्ट, पार्वण तथा दर्श, पौर्णमासके अवसरोंपर श्राद्धोंका अनुष्ठान होता था, किंतु आज बड़े-बड़े शहरोंमें अथवा गाँवोंमें भी कहीं समयाभाव, तो कहीं पदार्थाभाव, कहीं कर्ताका उदासीनपना, तो कहीं करवानेवाले ब्राह्मणोंका नितरां अभाव हो जानेसे पितृपक्षमें श्राद्धकी बात तो दूर 'गौग्रास' तक निकालना प्राय: बन्द-सा होता जा रहा है। दु:खद स्थिति यह है कि आज शुद्ध संकल्पतक बोलनेवाले पुरोहितोंका, साथ ही क्रिया करानेवाले लोगोंमें भी श्रद्धाका अभाव हो गया है, वे भी पूजाकी सामग्रीमें वित्तशाठ्यका नमूना पेश करते हैं।

यही कारण है कि इस तरहकी वित्तशाठ्यता एवं पूजा-पाठमें अश्रद्धा, विवाह आदि संस्कारोंमें मद्यपान आदि कुकृत्य आजके अच्छे पुरोहितों, कर्मकाण्डियोंको इस वृत्तिसे दूर करते जा रहे हैं।

इस तरहकी यह दुर्व्यवस्था समाजको अन्धे गर्तकी ओर ले जा रही है, सावधानी यदि नहीं रखी गयी और संस्कारोंके प्रति सजगता, जागरूकता एवं धर्मशास्त्रीय परम्परा-विधिका अवलम्बन नहीं होगा तो मृत्युसमय दाहसंस्कारके पूर्वके ५ पिण्डोंको देना और कौन-सा पिण्ड कहाँ—मृत्युस्थान, द्वार, चत्वर (चौराहा), विश्राम-स्थल और चितापर देना है, इनकी भी इतिश्री हो जायगी?

आवश्यकता है कि संस्कारोंकी मीमांसा हमारी नयी पीढ़ी समझे, देखे और करे। आजका विद्यार्थी स्कूल, कॉलेज, हॉस्टलमें रहता है, उसे क्या मालूम कि पितृपक्ष किसे कहते हैं, श्राद्ध कैसे होता है। अपात्रक, सपात्रक पार्वणमें क्या भेद है, एकोद्दिष्ट श्राद्ध कब होता है, चट, आसन, अन्न, उदक, मधुका क्या प्रयोजन है? उदाहरणार्थ पिण्डदानको ही लें—

दस पिण्डदानसे शरीर-निर्माणकी अवधारणा एवं दशगात्रश्राद्धद्वारा शरीर (यातनादेह)-का निर्माण होता है—

प्रथम पिण्ड—शिर:पूरक।
द्वितीय पिण्ड—कर्णाक्षिनासिकापूरक।
तृतीय पिण्ड—गलांसवक्षभुजापूरक।
चतुर्थ पिण्ड—नाभिलिंगगुदापूरक।

पंचम पिण्ड—जानुजंघापादपूरक।

षष्ठ पिण्ड—सर्वमर्मपूरक।

सप्तम पिण्ड—सर्वनाड़ीपूरक।

अष्टम पिण्ड—दन्तलोमनखादिपूरक।

नवम पिण्ड—वीर्यपूरक।

दशम—क्षुधा, पिपासा, क्रिया तथा चेष्टापूरक।

पिण्डोंके सहयोगी द्रव्योंसे विविध अंगोपांगका निर्माण भी विचित्र विज्ञान एवं शोधपरक ही है। उदाहरणार्थ—आँवला वीर्यजीवनधारणशक्ति करता है, मंजीठसे रक्तनिर्माण एवं रक्तशोधन होता है, कमलगट्टासे षट् चक्रोंका निर्माण होता है। खससे नाड़ी एवं स्नायुतन्त्रका निर्माण होता है। हरिद्रासे चर्मकी पूर्ति एवं चर्मसम्बन्धी व्यवस्था होती है, भृंगराज-शतावरीसे शरीरनिर्माणके विविधपक्ष निर्मित होते हैं। इन पदार्थोंमें निहित वैज्ञानिक रहस्य ऋषियोंके दीर्घ त्याग, तपस्या एवं चिकित्साज्ञानकी दूरदर्शिताको इंगित करता है।

मृत्युप्राप्त शरीरका पुनर्निर्माण एवं जीवका पारलौकिक संस्कार अदृष्ट, किंतु सार्थक और प्रत्यक्ष फलदाता है। आत्मा, अनात्मा, जीव, ब्रह्म, भूत, प्रेत, देवता, परमेश्वर तथा ईश्वरपर प्रश्नचिह्न उठानेवाले एवं उनके अस्तित्वको नकारनेवाले जनोंको करबद्ध प्रार्थना, पिण्डदान, तर्पण एवं नंगे पावों गयाके विविध कष्टप्रद जंगम-स्थलोंमें सिर पटक-पटक करके मिन्नतें मनाते देखा जाता है।

एक नहीं हजारों-हजार, लाखों लोग धर्मारण्य, पिशाचमोचन आदि स्थलोंपर अतृप्त, अदृष्ट, असन्तुष्ट प्रेतात्माओंका श्राद्ध करते हैं, उनके सन्तुष्ट किंवा शान्त हो जानेपर सुख तथा वंशवृद्धिको प्राप्त करते हैं।

'देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब' तुलसीदासजीकी ये पंक्तियाँ पितरों एवं भूत-प्रेतोंकी सत्ताको बताती हैं तथा मानव-शरीरमें देवादिकोंका आवेश, भूतोपविष्ट अथवा प्रेतबाधा या देवताका आवेश देखा जाता है। अतः श्राद्धादि क्रियाएँ इनकी भी शान्तिका उपाय हैं, एलोपैथी इसमें असमर्थ है, इसमें धर्माधर्म एवं श्राद्ध-तर्पण और कर्मकाण्डकी क्रिया ही समर्थ है।

पुत्रकी पुत्रताको सार्थक करनेवाली ये पंक्तियाँ संस्मरणीय हैं—

जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्।
गयायां पिण्डदानेन त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता॥

आज दायभागके उत्तराधिकारियोंको हककी बात तो याद है, परंतु वे अपने कर्तव्यको भूल जाते हैं। दादाजीकी बरसी है, उन्हें याद नहीं है। बँटवारेकी कोर्टकी तारीख हो तो वह अवश्य याद रहती है। अश्रद्धा एवं उच्छृंखलता ही इसका कारण है।

पिण्डोंका स्वरूप शमीपत्रके प्रमाणसे लेकर बिल्वके प्रमाणतकका होता है। सपिण्डीकरणके दिन प्रेतवाला पिण्ड नारियलके समान होता है। इसीके तीन बराबर भागकर प्रेतपिण्डको पितरोंमें मिलाया जाता है। विविध श्राद्धोंमें आटा, जौ, चावल, खीर, मेवा आदि विविध पदार्थोंद्वारा निर्मित पिण्डोंका विधान केवल गायोंको खिला देना ही नहीं है बल्कि इनके द्वारा पिण्डदान-यज्ञसे पुत्रेष्टि-क्रिया भी सम्पन्न होती है। पिण्डांशको सूँघने अथवा प्रसादस्वरूपमें यजमानपत्नीको देनेसे मृतवत्सा, सन्ततिहीनता या सन्ततिप्रतिबन्धकता-जैसी दुःखद परिस्थितियोंसे ग्रस्त लोगोंका उद्धार सन्ततिलाभद्वारा होता है।

एतावता पिण्डद्रव्य केवल गायोंकी तृप्ति नहीं, अपितु पितरोंकी पुष्टि और सन्तुष्टिसे यजमानके बल, वीर्य, बुद्धि, प्राण एवं मनकी शुद्धि होती है।

श्राद्धके समय दी गयी पंचबलि **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** का प्रत्यक्ष रूप है। श्राद्धसे पूर्णरूपेण लोककल्याणकी भावना परिपुष्ट होती है। गौ, श्वान, काक, पिपीलिका, अतिथि आदिके लिये दी गयी भोज्यसामग्री—सभी प्राणियोंके लिये मैत्री, दया, करुणा, उदारता, सहिष्णुता एवं सद्गुणोंको सिखानेवाली ये क्रिया हिन्दूसमाजके दैनिक आचारका अंग है। इससे यह तथ्य पुष्ट होता है कि हिन्दू आचारपद्धति **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** के सिद्धान्तकी प्रतिपालिका, संरक्षिका एवं संवाहिका है। विश्व-मानव-समाजमें **'सर्वे सन्तु निरामयाः'** कहनेकी उदात्त भावना एकमात्र हिन्दू आचारों, आचार्यों एवं हिन्दू जनमानसमें ही व्याप्त है।

वेदशास्त्रप्रतिपादित वर्णाश्रम-व्यवस्थामूलक सदाचारके पालन करनेसे विश्वकल्याण सम्भव है। मनमाना पश्वाचार मनु आदि महर्षिगणोंने निन्द्य माना है। धर्मनियन्त्रित-शास्त्रप्रतिपादित आचार ही मनुष्यता है और इसीके परिपालनमें उसके जीवनचर्याका साफल्य है।

लोभ—दुःखोंका जन्मदाता

(कुँवर श्रीभुवनेन्द्रसिंहजी, एम० ए०, बी०एड०, संगीतप्रभाकर)

लोभ शब्दकी उत्पत्ति 'लुभ्' धातु तथा 'घञ्' प्रत्ययके योगसे हुई है। यदि हम लोभको परिभाषित करें तो हम कह सकते हैं कि लोभका अर्थ है लालच, लिप्सा और लालसा। यह एक ऐसी प्रबल इच्छा है, जिसकी पूर्ति हो जानेके बावजूद कभी हमें पूर्ण तृप्ति अथवा सन्तुष्टि नहीं मिलती। इसी सन्दर्भमें प्रस्तुत है एक कुण्डलिया—

लालच लिप्सा लालसा आकांक्षा अरु चाह।
परधन लुण्ठन वृत्ति में करता लोभ तबाह॥
करता लोभ तबाह कभी सन्तोष न देता।
लौकिक संग पारलौकिक के सुख हर लेता॥
अतः बन्धुओ शास्त्रविहित स्वीकारें यह सच।
करें स्वजीवन धन्य, त्याग कर लिप्सा लालच॥

हिन्दी-साहित्याकाशमें ऐसे बहुत-से कवि हुए हैं, जिनकी काव्यप्रभा निरन्तर मानव-पथको आलोकित करती रही है। युगद्रष्टा गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, कबीर, रहीम और घाघकी उक्तियाँ एवं सूक्तियाँ आज भी अपने अचूक अर्थप्रभावके कारण भारतीय जनमानसका कण्ठहार बनी हुई हैं। संसारकी असारताका तात्त्विक विश्लेषण करते हुए महात्मा कबीरने कहा है कि मनुष्य माया-मोह तथा लोभ-लालचकी चकाचौंधमें इस कदर डूब गया है कि उसे शाश्वत सत्यकी अनुभूति ही नहीं होती। देखिये कबीरके शब्दोंमें अस्थिर और सम्मोहक सांसारिक स्वरूपकी एक सुन्दर अभिव्यंजना—

ऐसा यह संसार है जैसे सेमर फूल।
दिन दस के व्यवहार में झूठे रंग न भूल॥

अफसोस कि संसार-सागरकी यात्रा करता हुआ मनुष्य दूसरेको देखकर कभी गर्वसे सिर ऊँचा करता है तो कभी दूसरोंपर हँसता है, किंतु उसे इस बातका ध्यान नहीं रहता कि उसकी भी नौका इसी संसार-सागरके मध्य निरन्तर चक्कर काट रही है, जो तीव्र वायुके झोंकेसे कब डूब जाय, कुछ कहा नहीं जा सकता। कबीरके ही शब्दोंमें—

कबिरा गर्व न कीजिए और न हँसिए कोय।
अजहूँ नाव समुद्र में ना जाने का होय॥

इस संसारमें लोभसे तुच्छ, असार और विनाशकारी और कुछ भी नहीं है। श्रीरामचरितमानसके सुन्दरकाण्डमें गोस्वामी तुलसीदासजीने भक्त विभीषणके मुखारविन्दसे दशाननके लिये कहलवाया है कि भले ही कोई व्यक्ति गुणोंका सागर क्यों न हो, किंतु यदि उसमें लेशमात्र भी लोभ है तो उसे कोई भला व्यक्ति कभी नहीं कह सकता। देखिये—

गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥
(रा०च०मा० ५। ३८। ८)

सुन्दरकाण्डमें मानसकारने काम, क्रोध और मदके साथ ही साथ लोभको भी नरकके मार्गके रूपमें अभिहित किया है—

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत॥
(रा०च०मा० ५। ३८)

हितोपदेशमें भी लोभको पापका कारण कहा गया है—'**लोभः पापस्य कारणम्।**' इस उक्तिके साथ एक कथा भी जुड़ी हुई है, जो निम्नवत् है—

एक वृद्ध सिंह था, जो शिकार करनेमें अक्षम हो गया था। वह तालाबके किनारे बैठकर रास्तेमें जानेवाले प्रत्येक व्यक्तिसे यही कहता था कि मैंने जीवनपर्यन्त बड़ा अपराध किया, जिससे विद्वानोंने मुझे यह उपदेश दिया है कि दानादि-जैसे धार्मिक कृत्य करके मैं अपने अपराधोंसे मुक्त हो सकता हूँ। अतः मैंने दान देनेका निश्चय किया है। मेरे पास सोनेका एक कंगन है। जो व्यक्ति इस तालाबमें स्नान करके मेरे निकट आयेगा, उसे मैं यह कंगन दे दूँगा। अन्ततः एक लोभी पथिक उसके वाग्जालमें फँस ही गया। जैसे ही वह स्नान करनेके लिये तालाबमें प्रविष्ट हुआ, तालाबके अति कीचड़में वह फँस गया और

फिर कीचड़से निकल नहीं सका। यह देखकर हँसता हुआ सिंह बोला कि अब मैं तुम्हें कीचड़से निकालता हूँ। इसके बाद वह सिंह धीरे-धीरे तालाबके किनारे गया और उस लोभी पथिकको खा गया।

इसी प्रकार एक अन्य कथामें प्रभु श्रीरामके नम्र निवेदनके बावजूद जब समुद्रने उनकी प्रार्थना नहीं सुनी तो श्रीरामको क्रोध आ गया और वे लक्ष्मणसे कहते हैं—

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती॥
ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥

अर्थात् मूर्खसे निवेदन करना तथा कुटिल (दुष्ट)-से प्रेम करना उचित नहीं है। कंजूसको नीतिका उपदेश देना (अर्थात् धनका संग्रह न कर उसे त्यागनेका उपदेश देना) निष्प्रभावी होता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति मायामें लिप्त है; उसपर ज्ञानकी कथाका कोई प्रभाव नहीं पड़ता तथा जो अत्यधिक लोभी है, उसे धनसे विरत (धनसे अलग) रहनेकी शिक्षा कभी पसन्द नहीं आती। अतः ऐसे व्यक्तिसे लोभसे विरत रहनेकी उम्मीद करना मूर्खता है।

काम, क्रोध तथा लोभ रजोगुणसे उत्पन्न होते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने इन्हें **'रजोगुणसमुद्भवः'** कहा है तथा गीतामें उन्होंने काम, क्रोध तथा लोभको विनाशकारी नरकके द्वारकी संज्ञा दी है। अतः इन तीनोंको त्यागना ही उचित है। यथा—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

(गीता १६।२१)

गोस्वामी तुलसीदासजीने भी एक स्थानपर यही कहा है—

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥

उक्त तीनों खल (दुष्ट) उत्पात मचानेमें कोई कसर नहीं छोड़ते। इसलिये इनसे मुक्ति तभी सम्भव है, जब हम वासनासे रहित हो जायँ।

महाभारतमें यक्ष-युधिष्ठिर-संवादके अन्तर्गत यक्षद्वारा पूछे गये प्रश्नोंके उत्तरमें भी लोभ शब्दका उल्लेख आया है। यक्षका प्रश्न है—

किं नु हित्वा प्रियो भवति किं नु हित्वा न शोचति।
किं नु हित्वार्थवान्भवति किं नु हित्वा सुखी भवेत्॥

अर्थात् मनुष्य क्या छोड़कर प्रिय बनता है? वह क्या छोड़कर दुःखी नहीं रहता? वह क्या छोड़कर धनवान् बन जाता है तथा वह क्या छोड़कर सुखी हो जाता है? इसपर धर्मराज युधिष्ठिरका उत्तर है—

मानं हित्वा प्रियो भवति क्रोधं हित्वा न शोचति।
कामं हित्वार्थवान्भवति लोभं हित्वा सुखी भवेत्॥

अर्थात् मनुष्य घमण्डको त्यागकर प्रिय बनता है। क्रोधको त्यागकर दुःखी नहीं होता। इच्छाओंको त्यागकर धनवान् बनता है तथा लोभको त्यागकर सुखी बन जाता है।

वस्तुतः लोभी मनुष्यकी कामना कभी पूरी नहीं होती। कामनाओंको इष्ट बनाना ही बन्धनको स्वीकार करना है। जबतक कामना है, तबतक मनुष्यको सुखके दर्शन स्वप्नमें भी नहीं हो सकते। अतः लोभसे बचनेके लिये हमें कामनाओंसे दूर रहना होगा। स्वामी विवेकानन्दने एक स्थानपर कहा है—

'कामना सागरकी भाँति अतृप्त है। ज्यों-ज्यों हम उसकी आवश्यकता पूरी करते हैं, त्यों-त्यों उसका कोलाहल बढ़ता जाता है।' सिसरोके शब्दोंमें—

'The thirst of desire is never filled nor fully satisfied.'

प्रकारान्तरसे गोस्वामी तुलसीदासजीने भी लोभ और भोगसे मनुष्यको यथाशक्ति दूर रहनेकी ही सलाह दी है। यथा—

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥

× × × × ×

भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥

महाभारतके अनुशासनपर्वमें त्यागपर बल देते हुए कहा गया है—

'नास्ति तृष्णासमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्।'

(अनुशासनपर्व, अ० १४५)

अर्थात् तृष्णा (लोभ)-के समान कोई दुःख नहीं है और त्यागके समान कोई सुख नहीं है।

तू तमाशा बन, तमाशाई न बन

(डॉ० श्रीगणेशदत्तजी सारस्वत)

तुलसीदासजीने 'श्रीरामचरितमानस' में अपने इष्टदेव श्रीरामजीकी ब्रह्म तथा महामानव दोनोंके मिश्रित रूपमें अवतारणा की है। उनके राम व्यापक ब्रह्म हैं, निर्गुण हैं, विगत विनोद हैं तथा भक्तोंके प्रेमके वशीभूत होकर प्रकट होते हैं। उनका अवतरण *'बिप्र धेनु सुर संत हित'* होता है। वे सच्चिदानन्द दिनेश हैं, जहाँ मोह-निशाका लवलेश भी नहीं है। वे पुरुषप्रसिद्ध प्रकाशनिधि हैं, प्रकाश्य जगत्के वे ही प्रकाशक हैं। वे ही मायाधीश हैं। उनकी सत्तासे मोहकी सहायता पाकर माया भी सत्य-जैसी प्रतीत होती है—*'जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥'* निर्गुण साधकोंके लिये वे परब्रह्म हैं तथा सगुणोपासकोंके लिये दशरथ-सुत हैं। तुलसीने रामके इन दोनों ही रूपोंकी उपासनापर बल दिया है तथा कहा है कि हृदयमें निर्गुण ब्रह्मका ध्यान हो, नेत्रोंके सम्मुख सुन्दर स्वरूपकी झाँकी हो तथा जिह्वापर निरन्तर राम-नामका जप चलता रहे—

हियँ निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट संपुट लसत तुलसी ललित ललाम॥

(दोहावली ७)

भक्तिके उपदेष्टा महात्मा कहते हैं—

श्वास श्वास पर नाम जप वृथा श्वास मत खोय।
का जानो इस श्वास को आवन होय न होय॥

इसलिये प्रत्येक श्वासका सदुपयोग हमारा लक्ष्य होना चाहिये, जो भगवन्नाम-स्मरणके द्वारा ही सम्भव है। जिन भगवान्की हम स्तुति करते हैं, वे हमसे दूर नहीं हैं। वे हममें हैं और हम उनमें हैं। वे ही सर्वेश्वर साकार-विग्रहसे भक्तोंके सामने आते हैं तथा निराकार रूपमें समग्र विश्वमें व्याप्त रहते हैं एवं साक्षी चिदात्मारूपमें समस्त प्राणियोंके हृदयोंमें रहते हैं। 'कपटकी टाटी' के कारण ही वे हमें नहीं दिखायी देते हैं—

मैं जान्यो हरि दूर है हरि है हिरदय माहिं।
आड़ी टाटी कपट की तासो दीसत नाहिं॥

इस 'कपटकी टाटी' को दूर करने लिये आवश्यक है ज्ञान—यह ज्ञान कि *'हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥'*

जन्म-जन्मान्तरके पुण्योंके फलस्वरूप ही यह विश्वास दृढ़ हो पाता है कि *'कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप। परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर॥'* इस विश्वासके दृढ़ होते ही परमात्माके प्रति चित्तमें अनुराग सुदृढ़ हो जाता है तथा महात्मा बुद्धकी यह वाणी हृदयमें प्रवेश कर जाती है—

पुत्ता मत्थि धनम्मत्थि इति वालो विहञ्चति।
अत्ता ही अत्तनो नत्थि कुतो पुत्तो कुतो धनम्॥

अर्थात् 'मेरा पुत्र है, मेरा धन है'—यह सोच-सोचकर मूर्ख परेशान होता है। जब मनुष्य स्वयं अपना ही नहीं है तो पुत्र और धन उसके कहाँतक होंगे? यह विवेक ही सांसारिक भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न करता है। इस वैराग्यसे शम (मनका वशमें होना), दम (इन्द्रियोंका वशमें होना), तितिक्षा (सहनशीलता), उपरति (भोगोंके सामने रहनेपर भी उनमें आसक्ति न होना), श्रद्धा (परमात्मामें, उनकी प्राप्तिमें, प्राप्तिके साधन बतलानेवाले शास्त्र तथा सन्तोंके वाक्योंमें अखण्ड विश्वास) तथा समाधान (सारी शंकाओंका मिट जाना)—इन छः सम्पत्तियोंकी प्राप्ति होती है। इनकी प्राप्तिसे आत्म-साक्षात्कारकी, परमात्माको प्राप्त करनेकी लालसा अपने पूर्ण आवेगके साथ जाग्रत् होती है। यह लालसा साधकको निश्चेष्ट नहीं रहने देती, उसे परमार्थ-पथका पथिक बना देती है। उसकी यह साधना तबतक चलती रहती है जबतक कि वह अपने अभीष्टकी सिद्धि नहीं कर लेता। *'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई'* की स्थिति ही उसका अभीष्ट है। श्रुति भी यही कहती है कि जिस प्रकार स्वच्छ जलमें डालनेपर स्वच्छ जल उसमें एकरूप हो जाता है, उसी प्रकार जिसने आत्मसाक्षात्कार किया है, ऐसा मुनि परमात्मारूप हो जाता है।

भगवत्प्राप्तिके साधनोंमें भक्तिका स्थान असाधारण है—**'मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।'** इस साधनमें साधकको मनोज्ञ माधुर्य रसकी प्राप्ति प्रारम्भसे होने लगती है, साधनावस्थामें ही इतना आनन्द प्राप्त होने लगता है कि भक्त सिद्धि भी नहीं चाहता, साधनामें ही निरत रहना चाहता है। वह यही याचना करता है कि हे प्रभो! हमें

इसी अवस्थामें पड़ा रहने दो, हम और कुछ नहीं चाहते। भरतकी भी तो यही याचना है—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

अपने भक्तोंकी इस भावनापर भगवान् रीझ जाते हैं और उन्हें सर्वस्व देनेको ललचा उठते हैं। भगवान् कहते हैं—

जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥

भक्ति भगवद्भावको विस्तार देती है, जिसके फलस्वरूप ***'सीय राममय सब जग जानी'*** की सूक्ति आचरणका विषय बन जाती है तथा ***'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत'*** की भावना रोम-रोमको पुलकित कर देती है और तब यह वाणी मुखर हुए बिना नहीं रहती है—***'कान्ह भये प्रानमय, प्रान भये कान्हमय, हिय मैं न जानि परै कान्ह है या प्रान है।'***

ऐसी दशामें भक्तके सामनेसे संसार अदृश्य हो जाता है। वह एक भावसे भावित होकर हँसता, रोता, गाता, चिल्लाता है। सुतीक्ष्णकी यही स्थिति है। भगवान् रामके आगमनका वृत्त सुनते ही वे इतने प्रेममग्न हो जाते हैं कि उन्हें आस-पासका भानतक नहीं रह जाता—

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥

ऐसे भक्तोंके लिये ही भगवान् कहते हैं कि ***'तात निरंतर बस मैं ताके।'*** उद्धवको सम्बोधित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**'क्रीतोऽहं तेन उद्धव'** हे उद्धव! मैं तो आत्मसमर्पण करनेवाले भक्तोंके हाथ बिक जाता हूँ, उनका क्रीतदास हो जाता हूँ। तुलसीकी इस प्रतिज्ञाके मूलमें भी यह समर्पण भाव है—

श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं।
नातो-नेह नाथसों करि सब नातो-नेह बहैहौं।

मीराकी भी यही प्रतिज्ञा है—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुगट मेरो पति सोई॥

जिन आँखोंमें भगवान्‌की छबि बस जाती है, उनमें अन्य वस्तुओंके लिये स्थान ही कहाँ? रहीमका विश्वास है—

प्रीतम छवि नैनन बसी पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि आय पथिक फिरि जाय॥

इसीलिये हम चारों ओर बिखरी हुई अपनी सांसारिक वृत्तियोंको समेटकर उन्हें परात्पर ब्रह्मके किसी भी रूपमें लगा दें। भगवान् कहते हैं—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥

भावसिद्धिके लिये अनेकत्वका एकत्वमें लय हो जाना अनिवार्य है। एक उर्दू कविकी इस वाणीमें जीवनकी सफलताका सम्पूर्ण रहस्य निहित है—

एक गुल पर हो फिदा बुलबुल तू हरजाई न बन।
खुद तमाशा बन मगर तू अब तमाशाई न बन॥

ऐसे भक्तोंका योग-क्षेम वहन करनेकी जिम्मेदारी स्वयं भगवान्‌ने ले रखी है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

इसलिये अपनेको उनके हाथोंमें सौंपकर हम निश्चिन्त हो जायँ।

इस निश्चिन्तताके लिये आवश्यक है उपासना। उपासनाके प्रारम्भमें प्रार्थना उपासककी उपास्यसे अभिन्न होनेकी प्रेरणा देती है। अन्तःकरणका सप्रेम आत्मनिवेदन, सप्रेम स्तुति ही प्रार्थना है। अनुराग एवं करुणामयी प्रार्थनामें विचित्र आकर्षण होता है। करुण पुकारपर प्रभु स्वयंको रोक नहीं पाते—रुक भी नहीं सकते। इसीलिये कातर स्वरोंमें हम निरन्तर यह प्रार्थना करते रहें—

विधि का विधान का न ज्ञान कुछ भी है मुझे,
करुणानिधान! पंथ सूझता न अभिराम।
भेद-भावना में मति भ्रमित हुई है अति,
स्वार्थ-सिद्धि में ही रति मानता हूँ आठो याम।
मुक्ति मिल पाती नहीं चलती न कोई युक्ति,
घेरे रहते सदैव लोभ-मोह-द्रोह-काम।
डूबा अब डूबा इस कामना के सागर में,
लो उबार एक बार मेरे पूर्णकाम राम।

हमारे पुकारनेभरकी देर है। वे तो रक्षा करनेके लिये तत्पर हैं ही। उनकी तो यह टेक ही है—

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥

धर्मका स्वरूप

(डॉ० श्रीसम्पूर्णानन्दजी)

धर्मके विषयमें कुछ लिखनेके पहले हमको इस शब्दकी परिभाषा निश्चित कर लेनी चाहिये। इस समय पण्डित-अपण्डित दोनों ही इसको विभिन्न अर्थोंमें प्रयुक्त करते हैं और अब आजकल सरकारने अराजकतापर अपनी छाप लगाकर लिखने-बोलनेवालेका काम और भी कठिन कर दिया है।

पूर्वमीमांसाकार जैमिनिके अनुसार—

'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' वेद जिसकी चोदना—घोषणा करे, वह धर्म है। यह वाक्य निर्णय करनेका बोझ मनुष्यसे हटाकर वेदपर डाल देता है। जिस आचरणका समर्थन वेद करे, वह धर्म है; जो वेदकी दृष्टिसे निषिद्ध हो, वह अधर्म है। अधर्मकी यह परिभाषा दी तो नहीं है, परंतु अर्थापत्तिसे यही निष्पन्न होता है।

इस परिभाषामें अव्याप्तिदोष आता है, कम-से-कम ऐसी आशंका होती है। पृथिवीपर करोड़ों ऐसे व्यक्ति हैं, जो वेदको प्रमाण नहीं मानते। यदि यह परिभाषा स्वीकार कर ली जाय तो हम ऐसे लोगोंके आचरणके सम्बन्धमें कुछ कहनेके अधिकारका परित्याग कर देते हैं। उनका आचरण हमारी दृष्टिमें न धर्म होगा न अधर्म, या फिर उनके कामोंको अपनी कसौटीपर हठात् कसेंगे। वह वेदको मानते नहीं, परंतु हम उनके व्यवहारकी धर्माधर्मरूपताका वेदके अनुसार निर्णय करेंगे। इससे अर्थविक्लवता और बढ़ेगी। कलहमें वृद्धि होगी और हम करोड़ों मनुष्योंको प्रभावित करने तथा उनके आचरणमें सुधार करनेके अवसरको खो बैठेंगे। यह काम अच्छा है या बुरा?—विवाद यहाँसे हटकर इस मंचपर आ जायगा कि वेदमें सार्वभौम प्रामाणिकता होनेकी क्षमता है या नहीं। इस प्रश्नका ऐसा उत्तर मिलना, जो सबके लिये सन्तोषजनक हो, बहुत कठिन है।

इस प्रसंगमें ईश्वरका नाम लेना भी उलझनको बढ़ाता है। जो काम ईश्वरको सम्मत हो, वह धर्म है—ऐसा कहना भी विवादको कम नहीं करता। पहले तो ईश्वरकी सत्ताको सिद्ध करना होगा। फिर यदि ईश्वरका होना मान भी लिया जाय तो उसकी इच्छा कैसे जानी जाय? वेद, कुरान और बाइबिल—तीनों ही अपनेको ईश्वरके अभिप्रायका अभिव्यंजक बताते हैं; परंतु कई विषयोंमें आपसमें मतभेद है। यह कैसे जानें कि ईश्वर किस बातको पसंद करता है।

ऐसा लगता है कि यदि धर्मके सम्बन्धमें कुछ निश्चय करना है तो यह दायित्व हमको अपने ऊपर ही लेना होगा। इस बोझको ईश्वर या वेद या किसी अन्य ग्रन्थपर नहीं डाला जा सकता और हम इस दायित्वको तभी निबाह सकते हैं, जब इस प्रश्नको मनुष्यमात्रकी दृष्टिसे देखें। यदि किसी एक समुदायके सामने रखकर विचार किया गया तो वह एकदेशीय और अपूर्ण, सम्भवतः पक्षपातपूर्ण होगा।

पुराने वाङ्मयमें एक ऐसी परिभाषा मिलती है, जिसमें प्रत्यक्ष या परोक्षरूपसे किसी सम्प्रदाय-विशेषकी चर्चा नहीं मिलती। वैशेषिक-दर्शनमें कणादने कहा है—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

धर्म वह है, जिससे अभ्युदय और निःश्रेयसकी सिद्धि होती है।

इस परिभाषाके अतिरिक्त मनुकी दी हुई परिभाषा भी इस दृष्टिसे निर्दोष है। उनके शब्द हैं—**'धारणाद्धर्मः'**—जो जगत्को धारण करता है, वह धर्म है।

जिन दो परिभाषाओंको हमने अपेक्षया निर्दोष माना है, उनमें किसी सम्प्रदायविशेषकी मान्यताओंको आधार नहीं माना गया है और न किसी आध्यात्मिक या धार्मिक सिद्धान्तको पहलेसे स्वीकार कर लेना आवश्यक ठहराया गया है, परंतु दोनोंमें ही मतभेद और वैचारिक स्तरपर घोर संघर्षके लिये पर्याप्त अवकाश है। अभ्युदयकी कसौटी क्या है? अभ्युदय किन बातोंसे होता है? निःश्रेयस क्या है? जगत्को कौन-सी बातें धारण करती हैं? जबतक इन बातोंपर ऐकमत्य न हो, तबतक परिभाषाके शब्दोंको

निर्विवाद और सार्वभौम कहना निरर्थक है।

विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि निःश्रेयसका विषय हमको इतने गहरे शास्त्रार्थमें डाल देगा कि मूल प्रश्नका निर्णय करना कठिन हो जायगा। इस बातको ध्यानमें रखनेसे मनुकी दी हुई परिभाषा सबसे अधिक समीचीन लगती है। वह अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोषोंसे मुक्त है। अतः मैं तो यही मानकर चलता हूँ कि **'धारयतीति धर्मः। यो लोकान् धारयति, येन मानवसमाजो धृतः स धर्मः।'**

परिभाषा तो हुई पर अभी इसके शब्दोंको अर्थ पहनाना है। समाजका धारण कैसे, किन बातोंसे हो सकता है—यह निश्चय करना होगा। पहले तो यह देखना चाहिये कि स्वयं मनुकी इस सम्बन्धमें क्या राय है? **'धारणाद्धर्मं इत्याहुः'**—कहते समय उनकी बुद्धिमें क्या था? इस प्रश्नका उत्तर स्पष्ट शब्दोंमें मिलता है। उनका **'अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः'** इत्यादि श्लोक प्रसिद्ध है। उन्होंने अहिंसादि दस बातोंका उल्लेख करके इनको **'दशकं धर्मलक्षणम्'** बताया है और इनको सार्ववर्णिक—सब वर्णोंद्वारा पालनीय कहा है। इससे मिलती-जुलती भाषामें पद्मपुराणके भूमिखण्डमें धर्मके ये दस अंग गिनाये गये हैं—ब्रह्मचर्य, सत्य, तप, दान, नियम, क्षमा, शौच, अहिंसा, शान्ति और अस्तेय। मत्स्यपुराण सनातनधर्मके ये मूल गिनाता है—अद्रोह, अलोभ, दम, भूतदया, तप, ब्रह्मचर्य, सत्य, अनुक्रोश, क्षमा और धृति।

इसी प्रकारकी सूचियाँ दूसरे ग्रन्थोंमें भी मिलेंगी। सब सूचियाँ पूर्णतः एक-दूसरेसे नहीं मिलतीं, परंतु कई बातें सबमें मिलती हैं। अतः ऐसा मानना चाहिये कि जो बातें समानरूपसे सभी सूचियोंमें विद्यमान हैं, वह सभी आचार्योंके मतमें धर्मके अंग हैं। शेषके सम्बन्धमें मतभेद हो सकता है।

जो समानांश है, उसपर दृष्टि डालनेसे भी कुछ बड़े शिक्षाप्रद और रोचक तथ्य सामने आते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य—ये चार नाम हर सूचीमें मिलते हैं। अपरिग्रह भी मिलता है, परंतु भिन्न-भिन्न नामोंसे। इसके अतिरिक्त शौच, दया, क्षमाके नाम आते हैं। हमको यह भूलना न चाहिये कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहको पतंजलिने योगके अंगोंमें प्रथम स्थान दिया है और इनके सम्बन्धमें उनका कहना है कि ये पाँचों देश-काल-समयाद्यनवच्छिन्न सार्वभौम महाव्रत हैं अर्थात् इनके पालन करनेमें कहीं किसी अपवादके लिये स्थान नहीं है। इनका हर जगह और हर समय पालन करना चाहिये, सबके साथ पालन करना चाहिये और सबको पालन करना चाहिये। इनका महत्त्व पतंजलिकी दृष्टिमें यहाँतक है कि उन्होंने उनको स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधानकी अपेक्षा भी प्राथमिकता दी है और उनका ऐसा करना उचित भी था। ये ऐसे गुण हैं, जिनको ईश्वरकी सत्ताको स्वीकार न करनेवाले नास्तिक और आस्तिक सभी एक स्वरसे मानते हैं। प्राचीन कालसे ही सभी आर्षग्रन्थ इन गुणोंका, इनमें भी सर्वोपरि सत्य और अहिंसाका स्तुति-गान करते आये हैं। स्वयं वेदका कहना है—

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः। येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामा यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्॥

—सत्यकी ही विजय होती है, अनृतकी नहीं। सत्यसे ही वह देवयानमार्ग बिछा हुआ है, जिससे आप्तकाम ऋषिलोग उस स्थानको पहुँचते हैं, जहाँ सत्यका परम भण्डार है।

मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि।

—किसी प्राणीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये।

फारसीमें एक महात्माने कहा है—

रास्ती मुजिबे रज़ाए खुदास्त।
कस न दीदम कि गुम शुद अज रहे रास्त॥

—सच्चाई ईश्वरके प्रसन्न करनेका साधन है। मैंने किसी ऐसे व्यक्तिको नहीं देखा कि जो सत्यपर चलकर पथभ्रष्ट हो गया हो। और—

मबाश दरपथे आज़ार ब हरचे रब्बाही कुन
कि दर ता रीकेत मां गैर अज़ीं गुनाहे नेस्त।

—किसीको सताओ मत और जो तुम्हारे जीमें आये, करो; क्योंकि मेरे धर्ममें इसके सिवा और कोई पाप नहीं है।

अस्तु, ऐसा मानना अनुचित न होगा कि जिन बातोंकी सब लोग प्रशंसा करते हों, जो सबकी दृष्टिमें धर्मके अंश और अंग या लक्षण हैं, वे धर्मके सर्वश्रेष्ठ प्रतीक हैं। और बातें अधर्म नहीं हैं, धर्मके विरुद्ध नहीं हैं, परंतु उनका स्थान गौण है। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि मनु आदि, जो धर्मके विषयमें प्रमाण हैं, किसी विशेष पूजा-पाठको सार्वभौम धर्मोंमें नहीं गिनते। एक तो यह विवादका विषय हो सकता है कि कोई भी ऐसी सत्ता है या नहीं जो उपास्य है। फिर उपासनाकी प्रक्रियामें भेद हो सकते हैं। इसलिये उपासनाको गौण स्थान देना ही चाहिये। जो लोग यह चाहते हैं कि संसारमें धर्मका पुनः प्रचार और प्रसार हो, उनको चाहिये कि अहिंसा आदि पाँचों यमोंके प्रचार और प्रसारके लिये प्रयत्न करें। यदि इनका ह्रास रहा तो कोई पूजा-पाठ धर्मका उद्धार नहीं कर सकती।

आज जगत्में अंधेर मचा है। सारे जगत्की बातको छोड़ दें। हम अपने देशको लें। पहलेसे भले ही हम कुछ भौतिकताकी ओर बढ़ गये हों, श्रद्धामें कुछ कमी आ गयी हो फिर भी पूजा-पाठपर पर्याप्त धन व्यय होता है। नये मन्दिर बनते ही जाते हैं। उनमें भोग-पूजाके लिये प्रबन्ध होता ही है। मन्दिरोंमें गाना-बजाना होता ही रहता है। कण्ठी-माला धारण किये हुए साधु-महात्मा दीख ही पड़ते हैं। गृहस्थ भी किसी-न-किसी प्रकारका जप आदि कर ही लेते हैं। फिर भी भ्रष्टाचारकी शिकायत चारों ओर सुन पड़ती है। इसका बड़ा भारी कारण यह है कि हम धर्मके स्वरूपको भूल गये और **'अतस्मिंसतत्'**—जो जहाँ नहीं है, उसको वहाँ ला बैठाया है। धर्मका मूल पूजा-पाठमें नहीं है, यमोंके पालनमें है; परंतु हम उसे पूजा-पाठमें देखते हैं। यदि कोई व्यक्ति कभी मन्दिरमें पूजा करने न जाय, वहाँ जो भजन आदि या जो गाना होता है, उसमें सम्मिलित न हो तो उसके ऊपर अँगुली उठ सकती है। परंतु यह कोई नहीं देखता कि उसके आचरणमें सत्यका क्या स्थान है और उसके व्यवहारमें हिंसा कितनी है। जो मन्दिर बनवाता है, उसकी प्रशंसा होती है, परंतु यह कोई नहीं पूछता कि मन्दिर बनवानेके लिये उसके पास धन कहाँसे आया। भगवान् व्यासकी यह उक्ति ऐसे अवसरोंपर लोग भूल जाते हैं—

नाच्छित्त्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दुष्करम्।
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम्॥

—दूसरेके मर्मका छेदन किये बिना, अकरणीय कामोंके किये बिना, जिस प्रकार मछुवा एक अपने पेटके लिये सैकड़ों छोटी मछलियोंका हनन करता है, उसी प्रकार दूसरोंका आघात किये बिना बहुत धन प्राप्त नहीं हो सकता।

व्यासजी भी विष्णुके अवतार माने जाते हैं। परंतु जब कोई विष्णुकी पत्थरकी मूर्ति और उसके लिये पत्थरका मन्दिर बनवाता है तो व्यासरूपी विष्णुकी इस उक्तिको हम हृदयसे भुला देते हैं। फिर हमको इस बातकी शिकायत करनेका कोई अधिकार नहीं है कि धर्मका ह्रास हो रहा है। धर्म जिन बातोंमें है, उनको बढ़ावा देना चाहिये। यदि कोई धर्माचरणसे च्युत होता है तो उसको इसके लिये दण्ड मिलना चाहिये। सरकार दण्ड दे या न दे, समाजको, ब्राह्मणसमुदायको, समाजके धर्मप्रिय समुदायको उसे दण्ड देना चाहिये। कुछ नहीं तो उससे खुलकर सम्बन्ध-विच्छेद कर देना चाहिये। यदि हम धर्मसे सचमुच प्रेम रखते हैं तो उसका यही उपाय है। यमोंसे अन्यत्र धर्मको ढूँढ़ना आत्मवंचना है और हमको यह न भूलना चाहिये कि आत्मवंचना परवंचनाकी पहली सीढ़ी है।

एक बात और। मैंने जो पूजा-पाठके सम्बन्धमें कहा है, उससे किसीको यह न समझना चाहिये कि मैं उपासनाका विरोधी हूँ; ऐसा नहीं है। मैं मनुष्य-जीवनको सार्थक बनानेके लिये उपासनाको परमावश्यक समझता हूँ। परंतु कौन-सी उपासना? इस सम्बन्धमें याज्ञवल्क्यजीने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है—

अयं तु परमो धर्मो यद् योगेनात्मदर्शनम्॥

—योगके द्वारा आत्मसाक्षात्कार करना सबसे बड़ा धर्म है। जो लोग धर्मकी चर्चा करते हैं और साथ ही इसकी उपासनाको भी धर्मके अंगोंमें महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं, जैसा कि देना चाहिये, उन्हें इस परम धर्म योगकी शरणमें आना चाहिये। परम धर्मको छोड़कर क्षुद्र धर्मोंकी ओर जाना उसी प्रकारका काम होगा जिसको कि तुलसीदासजीने यों कहा है—

गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

धर्मकी एक अचूक कसौटी है। वह हमारे ध्यानमें प्राय: बहुत कम आती है। भले ही इस विश्वके सभी प्राणी ब्रह्मसे अभिन्न हों, परंतु हमको इस अभेदका प्राय: अनुभव नहीं होता। अपने छोटे-छोटे 'स्व' में प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार भूला रहता है कि उसको उस महान् 'स्व' का पता नहीं लगता है। वह पुरुष बहुत भाग्यवान् है, जो समाधिके द्वारा आत्मसाक्षात्कार करता है। कभी-कभी किसी उच्च कोटिके कलाकार या विचारकको भी थोड़ी देरके लिये उस परम सत्यकी झलक दीख पड़ जाती है। इसके सिवा एक और अवस्था शुद्ध धार्मिक काम करनेके समय सामने आती है। व्यवहारमें पति-पत्नी या माता और सन्ततिमें एक प्रकारका तादात्म्य होता है। इन युगलोंमेंसे माता सन्ततिके लिये, पत्नी पतिके लिये और पति पत्नीके लिये हँसते-हँसते प्राणको न्योछावर कर सकता है, परंतु जहाँ इस प्रकार दो प्राणियोंका तादात्म्य है, वहाँ युगपत् अन्य सारे प्राणियोंसे विलगाव है।

माताके लिये उसकी सन्तान सब कुछ है और उसके लिये वह सारे विश्वसे लड़ सकती है। यही दशा पति और पत्नीके बीचमें होती है। अपना प्रेमपात्र एक ओर और सारा विश्व दूसरी ओर। परंतु जब सचमुच कोई व्यक्ति किसी पूर्णतया धार्मिक कामको करता है—और यह स्मरण रखना चाहिये कि सच्चा धार्मिक काम निश्चय ही निष्काम होगा—तो उस समय उसका एकके साथ तादात्म्य तो होता है, परंतु दूसरोंके साथ विलगाव नहीं होता। यदि कोई व्यक्ति डूब रहा हो या जलते घरमें आगसे घिर गया हो और उस दृश्यको देखकर कोई दूसरा व्यक्ति एकाएक उसको बचानेके लिये पानी या आगमें कूद पड़े तो उस समय उसको उस आपन्न व्यक्तिके साथ तादात्म्य होगा, परंतु समूचे विश्वसे विलगाव नहीं होगा। उतनी देरके लिये इस नानात्वपूर्ण विश्वका उसके लिये अभाव हो जायगा और इस प्रकार क्षणभरके लिये उसको अभेदका दर्शन हो जायगा। उस क्षणमें विश्वका वास्तविक मूल रूप उसके सामने आ जायगा और वह भेदभावोंसे ऊपर उठ जायगा। सच्चे धार्मिक कर्मकी यह सबसे बड़ी पहचान है।

('कल्याण' के विशेषाङ्क 'धर्माङ्क' से)

[प्रे०—श्रीऋषभदेवजी]

विनय

(श्रीकृपाशंकरजी शर्मा 'अचूक')

कब मोहि मिलै सहारौ तेरौ।
जन्म-जन्म सूँ भटक रह्यो मैं, पायो दुःख घनेरौ।
देख लियो परिवार कुटुंब सब, यह स्वारथ कौ ढेरौ॥ कब मोहि...॥
बहत जात अथाह जल भीतर नहिं कछु दीखै बेरौ।
तन बल, जग बल कियौ भरोसों, पल भर तोहि न टेरौ॥ कब मोहि...॥
भूल्यो ज्ञान, ध्यान जग मांही, आ दुविधा ने घेरौ।
जो भी मिल्यौ-मिल्यौ छल बल सूँ कियौ आपनो चेरौ॥ कब मोहि...॥
किसे तजूँ किसकूँ अपनाऊँ, फिर कहाँ करूँ बसेरौ।
दास अचूक कहै बिनु स्वामी, नाहिं जगत मन मेरौ॥ कब मोहि...॥

धीमा जहर तम्बाकू

(श्रीप्रकाशजी रातड़िया)

मनुष्य स्वयंको सभी प्राणियोंमें श्रेष्ठ होनेका दावा करता है तथा उसे अपनी बुद्धिपर बड़ा गर्व है, किंतु आश्चर्य है कि वह इतना भी विचार नहीं कर पाता कि उसे किस वस्तुका सेवन करना है और किससे दूर रहना हैं। ज्ञान-विज्ञानके व्यापक प्रचार-प्रसारके बावजूद ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत बड़ी है जो बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकूका निरन्तर उपयोग करते हैं। जबकि यह निर्विवाद तथ्य है कि तम्बाकू एक धीमा जहर है, जो जीवन और स्वास्थ्यके लिये खतरनाक है।

साँपसे भी अधिक खतरनाक—साँपके काटनेसे वर्षभरमें १०००० लोगोंके मरनेका अनुमान है जबकि तम्बाकूके सेवनसे मरनेवालोंकी संख्या ४२ लाख है। इसके बावजूद साँपसे हर कोई डरता है किंतु तम्बाकूके नशेसे ग्रस्त लोग तम्बाकूसे नहीं डरते। अधिकांश लोग जीवनोपयोगी अन्य वस्तुओंकी तरह इसका उपयोग करते हैं। तम्बाकू चाहे मुँहमें रखकर चबायी जाय या बीड़ी-सिगरेटके रूपमें धुआँ खींचकर धूम्रपान किया जाय, जीवनके लिये अत्यन्त घातक है।

बुराईको बुराई नहीं समझते—यह एक वैज्ञानिक और प्रामाणिक तथ्य है कि तम्बाकू जहर है तथा विभिन्न रोगोंका कारण है। किंतु फिर भी तम्बाकूके आदी लोग इसे बुराई ही नहीं समझते। जबतक किसी बुराईको बुराई नहीं समझा जायगा तबतक मनुष्य इससे मुक्तिका उपक्रम नहीं कर सकता है। शरीरपर होनेवाले इसके गम्भीर प्रभावको तो तभी मालूम किया जा सकता है जबकि इससे सम्बन्धित तथ्योंका ज्ञान हो या जब गम्भीर रोगके रूपमें यह जीवनको प्रभावित कर दे, किंतु इसके व्यसनी व्यक्तियोंके चेहरेसे प्रखरता तथा तेज गायब हो जाना, वृद्धावस्थाके लक्षण दिखायी देना, चेहरेकी सुन्दरता लुप्त हो जाना तथा मुँहसे बदबू एवं गन्दगीका प्रसारण होना, प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है।

घातक जहर—तम्बाकूमें कई घातक जहर होते हैं। निकोटीन, कोलतार, आर्सेनिक, कार्बनडाइऑक्साइड, कोयलेकी गैस इसमें निहित होती है। इन घातक जहरीले पदार्थोंके प्रभावसे तम्बाकू-सेवन करनेवाले व्यक्तिको कैंसर, हृदयाघात, पक्षाघात (लकवा), हाथ-पैर गलना (गैंगरिंग), रक्तचाप, असन्तुलन तथा शारीरिक कमजोरी-जैसे रोग हो जाते हैं। मस्तिष्ककी क्षमता शिथिल हो जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। अनिद्रा, बेचैनी, उदासी तथा निराशाके भाव तम्बाकूके प्रभावसे व्यक्तित्वके अंग बन जाते हैं। व्यक्तित्व विकृत हो जाता है। कोई भी व्यक्ति नजदीकसे सम्पर्कमें ग्लानि अनुभव करता है; क्योंकि दाँत और चेहरा गंदा एवं बीभत्स हो जाता है तथा बदबू फैलाता है। दाम्पत्य-मधुरता समाप्त हो जाती है।

गरीब बनाती है तम्बाकू—तम्बाकूका व्यसन गरीबीका एक बहुत बड़ा कारण है। पूरी दुनियामें लगभग ५० अरब डॉलरकी तम्बाकू तथा धूम्रपानसामग्री प्रतिवर्ष तम्बाकूके नशेड़ियोंद्वारा उपयोग कर ली जाती है। तम्बाकूसे होनेवाले रोगोंके उपचारपर स्वास्थ्यसेवाओंमें प्रतिवर्ष १०० खरब डॉलर व्यय होता है।

यह जानकारी पूरी दुनियाके सन्दर्भमें सामान्य जानकारी है। इस कारण सीधे-साधे व्यक्तिपर प्रभाव डालनेवाला तथ्य मालूम नहीं होता है, किंतु इसे व्यक्तिकी जेबपर बोझके रूपमें देखनेपर इसका भार भारी होना स्पष्ट होगा। जो व्यक्ति १० रुपये प्रतिदिन तम्बाकू-बीड़ी या धूम्रपानपर खर्च करता है, उसका एक माहका व्यय ३०० रुपये और एक वर्षका व्यय ३६०० रुपये होता है। यदि यह राशि बचत कर ली जाय और बैंकमें जमा की जाती रहे तो इसी जीवनमें लाखों रुपये संग्रह हो जायगा। गरीबीके कारण स्वयंके उचित आहार यहाँतक कि बच्चोंके दूध तथा शिक्षापर जो व्यक्ति खर्च नहीं कर पाता है, वह तम्बाकू-जैसे मदमें खर्च करके स्वयं गरीबीको आमन्त्रित करता है।

गलत संगतका असर—किशोरावस्थामें स्वयंके

व्यक्तित्वको आकर्षक बनानेके लिये, उचित मार्गदर्शनके अभाव और गलत संगतमें पड़कर, जिज्ञासावश धूम्रपानका स्वाद चखनेवाला नवयुवक धीरे-धीरे इसे कब आदत और व्यसन बना लेता है, उसे आभास ही नहीं हो पाता। किंतु जबतक उसे मालूम होता है कि यह एक घातक बुराई उसने अपना ली है तबतक वह इस गन्दी आदतके प्रति स्वयंको लाचार पाता है और अपने-आपको कभी इतना मजबूत नहीं कर पाता कि फिर उसे त्याग दे। कई लोग यह भ्रम पाल लेते हैं कि इससे तनावमें कमी आती है। कई लोग यह कहते सुने जाते हैं कि समय बिताने और विश्रामके लिये एक सहारा है। सिनेमा-संस्कृति और मनमौजीपनके प्रभावमें आकर भी कई लोग धूम्रपानकी आदतके शिकार हो जाते हैं। विज्ञापनोंका आकर्षण तथा धूम्रपान करते हुए आकर्षक चित्रोंको देखकर भी कुछ लोग इसके अनुरूप बननेकी ललकमें धूम्रपान अपना लेते हैं, किंतु भोले-भाले लोगोंको इसके दुष्परिणामोंका तब पता चलता है जबकि वे जीवनमें बहुत कुछ खो चुके होते हैं।

एक संकल्प हो सकता है वरदान—तम्बाकू-सेवन करनेवाला रोगग्रस्त होनेकी दशामें शरीर एवं मस्तिष्कपर इसके दुष्परिणामोंको प्रत्यक्ष अनुभव करता है, फिर भी वह अपने-आपको विवश समझकर इससे मुक्ति प्राप्त नहीं करता है। किंतु यदि धूम्रपानसे पीड़ित कोई व्यक्ति स्वयंको इससे मुक्त कराना चाहता है तो वह बिलकुल भी कठिन नहीं है, केवल एक दृढ़ संकल्पकी आवश्यकता है। वह तत्क्षण इसका त्याग कर सकता है। ऐसे कई उदाहरण प्रत्यक्ष देखे गये हैं कि लगातार धूम्रपान करनेवालोंने सद्बुद्धि आते ही एक क्षणमें इसका त्याग किया है। कुछ लोगोंको यह भ्रम रहता है कि वर्षोंतक धूम्रपान करनेके बाद अब इसको छोड़ देनेसे जीवन और स्वास्थ्यपर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, किंतु यह वास्तविकता नहीं है। सच्चाई तो यह है कि जब जागे तभी सबेरा। जब व्यक्ति धूम्रपान त्यागता है, उसी दिनसे इसके दुष्परिणामोंसे उसे मुक्ति प्राप्त होती है। कुछ दिनों उसे अटपटा लग सकता है, किंतु इसका कोई प्रतिकूल प्रभाव शरीरपर नहीं होता है।

सार्वजनिक धूम्रपान अपराध है—विभिन्न नशोंकी तरह तम्बाकू एवं धूम्रपान समाजके लिये घातक हैं, इसे अब समाज और सरकार धीरे-धीरे अनुभव करने लगी है। अफीमपर पूर्ण प्रतिबन्ध है, शराबपर भी विभिन्न प्रकारके नियन्त्रण हैं, किंतु इनसे कहीं व्यापक और अधिक खतरनाक प्रभाव तम्बाकू और धूम्रपानका है। इसीलिये सिगरेट और अन्य तम्बाकू-उत्पादनोंका प्रतिषेध व्यापार तथा वाणिज्य-उत्पादन-प्रदाय और वितरणका विनियमन अधिनियम २००३ पारितकर प्रभावी किया गया है, जिसके अनुसार सार्वजनिक स्थानोंपर धूम्रपानको दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। इसके विज्ञापन करने तथा शैक्षणिक संस्थाओंके निकट एवं १८ वर्षसे कम आयुके व्यक्तियोंद्वारा इसके विक्रयको भी दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। इस कानूनमें विभिन्न अपराधोंके लिये अर्थदण्डसे लेकर पाँच वर्षतककी सजाका प्रावधान किया गया है।

बुराईके विरोधमें वातावरण बनाना जरूरी—बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू और धूम्रपानके दुष्परिणामोंके व्यापक प्रचार-प्रसारकी आवश्यकता है ताकि मानवताको इसके अभिशापसे बचाया जा सके। किशोर वयके युवाओंको इसके दुष्परिणामोंसे अवगत करानेकी आवश्यकता है। जो लोग इस बुरी आदतके शिकार हो रहे हैं और अब इससे मुक्ति पा गये हैं, वे अपने अनुभवसे अधिकाधिक लोगोंको अवगत करायें। जो धूम्रपान नहीं करते हैं, वे धूम्रपानके विरुद्ध वातावरण बनानेमें आगे आयेंगे तो यह परोपकारके साथ-साथ स्वयंपर भी उपकार होगा; क्योंकि धूम्रपान करनेवालोंका धुआँ धूम्रपान नहीं करनेवाले लोगोंको भी प्रभावित करता है और इसके दुष्परिणामसे वे अछूते नहीं रह पाते हैं। धूम्रपान त्यागने तथा जीवनभर इससे अलग रहनेका संकल्प करनेका यह क्षण ही सर्वोत्तम है। आइये, हम संकल्प करें कि मानवताको इसके दुष्परिणामोंसे बचानेके लिये हर सम्भव प्रयास करेंगे।

जीवनचर्या—श्रीरामचरितमानसमें

(श्रीदेवेन्द्रजी शर्मा)

[गतांक संख्या ९ पृ०-सं० ८७८ से आगे]

उत्तरकाण्ड

हे पक्षिराज गरुड़जी! भगवान् श्रीशिवजी, भगवान् श्रीब्रह्माजी, श्रीशुकदेवजी, श्रीसनकादि मुनि और श्रीनारद मुनि ये जो सब ब्रह्मविचारमें परम निपुण हैं, इन सबका मत यही है कि भगवान् श्रीरामजीके चरणकमलोंमें प्रेम करना चाहिये। श्रुति, पुराण और सभी ग्रन्थ भी यही कहते हैं कि अन्धकार भले ही सूर्यका नाश कर दे, बर्फसे भले ही अग्नि प्रकट हो जाय, जलको मथनेसे भले ही घी उत्पन्न हो जाय और बालू (को पेरने)-से भले ही तेल निकल आये, ये सब अनहोनी बातें चाहे हो जायँ, परंतु श्रीरघुनाथजीके भजन और भक्तिके बिना, किसी और उपायसे न तो जीवनमें सुख ही मिल सकता है और न ही संसाररूपी समुद्रको पार किया जा सकता है—यह सिद्धान्त अटल है।

श्रीरामचरितमानसमें धन्य होनेकी परिभाषा—

—मनुष्यके सब प्रकारसे गुणी, ज्ञानी, पण्डित और धर्मपरायण होनेपर भी वह तभी धन्य माना जाता है जब—

'राम चरन जा कर मन राता॥' (रा० च० मा० ७। १२७। २) अर्थात् श्रीभगवान्‌के श्रीचरण-कमलोंमें उसकी प्रीति हो जाये।

—मनुष्यके सब प्रकारसे नीतिनिपुण, परम चतुर, श्रुति-सिद्धान्तोंमें प्रवीण, महान् कवि, महान् विद्वान् और शूर-वीर होनेपर भी वह तभी धन्य माना जाता है जब—

'जो छल छाँड़ि भजइ रघुबीरा॥' (रा०च०मा० ७। १२७। ४) अर्थात् वह छल-कपट त्यागकर श्रीभगवान्‌का भजन करे।

—***'धन्य देस सो जहँ सुरसरी।'*** (रा०च०मा० ७। १२७। ५) अर्थात् देश वही धन्य है, जिसमें परमपावन श्रीगंगाजी विराजमान हों। इससे तात्पर्य है कि मनुष्यको गंगास्नान, गंगा-दर्शन आदि कर्मोंको अपनी दैनिकचर्यामें शामिल कर लेना चाहिये।

—***'धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी॥'*** (रा०च०मा० ७। १२७। ५) अर्थात् नारी वही धन्य है, जो पतिव्रत धर्मका पालन करती है।

—***'धन्य सो भूपु नीति जो करई।'*** (रा०च०मा० ७। १२७। ६) अर्थात् राजा वही धन्य है, जो प्रजाके हितमें नीतिका निर्धारण और पालन करता है।

—***'धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई॥'*** (रा०च०मा० ७। १२७। ६) अर्थात् ब्राह्मण वही धन्य है, जो अपने धर्मसे नहीं डिगता।

—***'सो धन धन्य प्रथम गति जाकी।'*** (रा०च०मा० ७। १२७। ७) अर्थात् धन वही धन्य है, जो सुपात्रोंको दान देनेमें खर्च होता है। इसका तात्पर्य है कि सत्पात्रको दान देना जीवनचर्याका अंग होना चाहिये।

—***'धन्य घरी सोइ जब सतसंगा।'*** (रा०च०मा० ७। १२७। ८) अर्थात् समय (काल) वही धन्य है, जो सत्संगमें प्रयोग होता है अर्थात् सत्संगको जीवनचर्याका अंग बना लेना चाहिये।

—***'धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा॥'*** (रा०च०मा० ७। १२७। ८) अर्थात् जन्म वही धन्य है, जिसमें ब्रह्मज्ञोंके प्रति अभंग भक्ति हो।

अब अन्तमें एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि उपर्युक्त इतनी सब चर्चा करनेके बाद भगवान् श्रीरामकी जीवनचर्या (चरित्र)-से क्या सीखा जाय? तो इस अनन्त विस्तारवाले विषयका कम-से-कम शब्दोंमें समापनके लिये श्रीरामचरितमानसकी एक ही पंक्ति आती है और वह पंक्ति श्रीगोस्वामीजीने परम भक्त श्रीकाकभुसुण्डिके द्वारा कहलवायी है—

अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥

(रा०च०मा० ७। १२४। ४)

यहाँपर 'सुभाउ' का अर्थ आदर्श, पवित्र और निर्मल, कोमलचित्त, उदारतासे परिपूर्ण, ज्ञान-विज्ञानमें दक्ष, सद्गुणों-सत्कर्मोंसे युक्त, सुन्दर और सुदृढ़ जीवनचर्यासे है, जिसमें भगवान् श्रीराम अनुपम और अद्वितीय हैं। अतः भगवान् श्रीरामकी जीवनचर्या (चरित्र)-से हम सबको सब कुछ ही सीखना चाहिये।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज श्रीरामकथाके श्रवण, पठन-पाठन, गायन और चिन्तनकी फलश्रुति बताते हुए कहते हैं कि संसारमें मति, कीरति, गति, भूति, भलाई, धन, धरम, धाम और भगवान् श्रीरामकी भक्ति—इन

सबकी यदि प्राप्ति करनी है तो श्रीरामकथाके निरन्तर श्रवण, पठन, गायन और चिन्तनको अपनी जीवनचर्याका अति आवश्यक अंग बनाना चाहिये।

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

(रा०च०मा० ७।१३०।२)

उत्तरकाण्डमें वर्णित उपर्युक्त सभी बातें एक श्रेष्ठ जीवनचर्याको ही प्रतिपादित करती हैं।

जीवनचर्यामें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति—तीनों प्रकारके मार्गियोंके लिये प्रबल शत्रु माने जानेवाले काम, क्रोध और लोभ भी जीवनमें सार्थक (मित्र) हो सकते हैं, यदि इनकी गतिको श्रीभगवान्‌की ओर मोड़ दिया जाय। जैसे—

काम (इच्छाएँ)—

एक लालसा उर अति बाढ़ी॥
राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं॥

(रा०च०मा० ७।११०।१३-१४)

अर्थात् जीवकी सम्पूर्ण इच्छाएँ यदि श्रीभगवान्‌के श्रीचरणकमलोंके दर्शनोंके प्रति प्रबल (केन्द्रित) हो जायँ तो जीवनचर्यामें कामनाएँ सार्थक (मित्र) सिद्ध हो जाती हैं।

क्रोध—

बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि॥

(रा०च०मा० ७।१२० (ख))

अर्थात् क्रोधका प्रयोग यदि ज्ञान, वैराग्य और भक्ति—तीनों प्रकारके मार्गोंमें रुकावट उत्पन्न करनेवाले महाशत्रु काम, मद, लोभ और मोह आदिका शमन करनेमें किया जाय तो जीवनचर्यामें क्रोध सार्थक (मित्र) सिद्ध हो जाता है।

लोभ—

'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥' (रा०च०मा० ६।१०२।१) अर्थात् जिस प्रकार सांसारिक वस्तुओंके एक बार लाभ होनेके बाद उनके और अधिक लाभका लोभ दिनों-दिन बढ़ता ही जाता है। उसी प्रकार—

सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥

(रा०च०मा० २।२०५।२)

यदि भगवान् श्रीसीतारामजीके युगल श्रीचरणकमलोंमें प्रेमके दिनों-दिन बढ़नेके लाभका लोभ हृदयमें जाग्रत् हो जाय तो जीवनचर्यामें लोभ भी सार्थक (मित्र) सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार हर दृष्टिकोणसे सुन्दर सुदृढ़ और महान्तम जीवनचर्याओंके उदाहरण श्रीरामचरितमानसमें उपलब्ध हैं, जो अपने कल्याणार्थ अपनी जीवनचर्याका अनिवार्य अंग बनानेयोग्य हैं। **[समाप्त]**

परमानन्दकी ओर

(स्वामी श्रीपथिकजी महाराज)

आज जिनकी महती कृपा, बलद्वारा विनाशके पथसे लौटकर जीवनकी ओर यात्रा करते हुए इस प्रशान्त भूमिमें खड़े होकर शान्तिकी साँसें ले रहा हूँ, उन परम दयालु आनन्दमय सद्‌गुरुदेव परमात्माको बार-बार नमस्कार है। इस स्थलपर मैं जिस प्रकाशसे अपनेको घिरा पाता हूँ—इसके पूर्वमें अपने उस संसारमें इससे सर्वथा वंचित ही था, जहाँ कि मानव-समाज इस प्रकाशके बिना ही अन्धकारमें कितनी लम्बी दौड़-धूप कर रहा है और पग-पगपर असफलताकी चोटोंसे आहत होकर कहीं भाग्यको, कहीं अपने समीपवर्ती संसारको बुरी तरह कोस रहा है। ओह! कितनी करुणाजनक दीन अवस्था है। कितना दुःखद क्रन्दन है। कितनी अशान्तिसे भरी हुई आहोंकी श्वासोच्छ्‌वासें हैं। साथ ही उस अन्धकारमें पाशविकताका नग्न नृत्य है। कितना क्रान्त्योत्पादक कलह है। यह सब कुछ मुझे इस स्थलपर आनेसे स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। कुछ ऊपर दृष्टि उठानेपर मुझे यह भी दीख रहा है कि मेरे ही समान कितने ही पथिक इस परम लक्ष्यकी ओर कोई मन्द गतिसे तो कोई तीव्रतासे बढ़ रहे हैं। मैं जिधर दृष्टि डालता हूँ, उधर ही अपने-अपने दिशा-स्थलमें परम लक्ष्यकी ओर झुण्ड या अकेले ही यात्रा करते हुए कुछ पथिक तो बहुत आगे बढ़ गये हैं, कुछ लोग हमारे ही निकट आगे-पीछे दीख रहे हैं। मेरी दृष्टि कुछ ऐसे लोगोंपर भी पड़ रही है, जो हमारे ही पदचिह्नोंको देखते हुए यात्रा शुरू कर रहे हैं या कुछ ऐसे भी हैं, जो खड़े होकर अपनी जगहसे मुझे देखते हुए मानो अपनी अधीरता, आकुलता, उत्सुकताको मूक वेदनाद्वारा प्रकट कर रहे हैं।

मेरे मित्रो! क्या तुम मेरी आवाज सुनते हो? मैं तुम्हींसे

कह रहा हूँ। क्या तुमने कभी यह सोचा है कि इस जीवनका लक्ष्य क्या है? ध्यान देनेपर तुम स्पष्ट समझ सकोगे कि यह मानव जीवन धारण करके तुम बाल्यावस्थासे आजतक नाना प्रकारके खेल-कौतुकोंमें विविध रूपके स्वांग बनाकर, नाना प्रकारके अभिलषित सम्बन्धोंको रच-रचकर, इतनी लम्बी दौड़-धूप केवल आनन्दके लिये करते हो—जाने क्या-क्या बनाते—बिगाड़ते हो—तुम आनन्दहीके लिये किसी भी पदार्थकी ओर किसी भी दिशामें दौड़ते-फिरते हो। पर आजतक सत्य आनन्दाधार न मिला—न उसका पथ ही मिला। अपनी समझमें बड़ी लम्बी यात्रा कर डाली, पर आँख खुली हो तो देखो कि कोल्हूके बैलकी तरह उसी जगहपर चक्कर काटते रहे, इसी प्रकार तुमने आज कितने ही प्रकारके चमकते-दमकते हुए देखनेमें मनोहर पदार्थोंको लोभवश संग्रह कर रखा है और उनकी प्राप्तिमें बड़े गर्वित हो, पर किसी सुजान पारखीके सामने तुम्हें पता चलेगा कि वह सब काँचकी तरह झूठी चमक-दमकसे तुम्हें धोखा दे रहे हैं, उनमें कोई भी रत्न, मणि, हीरा नहीं है। इसी प्रकार अनेक बार तुम विशाल वैभव, ऐश्वर्य-भोगोंके बीच आमोद-प्रमोदकी विलास-सामग्रीका उपभोग करते हो। हर्ष-अभिमानसे उस समय दीन-दुनिया सभीको भूल जाते हो तो इसके विपरीत कभी तुम दरिद्रता, दुःखोंके भारसे दबकर जगह-जगह असार पदार्थोंके लिये, कभी कंगाल बनकर घोर दुःख-भोग करते हो और कभी राजा, महाराजा, सम्राट्-पदके ऐश्वर्य-सुखोंको भोगते हो। पर जब सद्गुरु-कृपासे ज्ञानरूपी प्रकाशद्वारा विवेक-दृष्टि खुलेगी, तब तुम्हें पता चलेगा कि यह सब अज्ञान निशामें मोह नींदसे घिरे हुए स्वप्न देख रहे थे। जबतक जागते नहीं हो, तभीतक यहाँके भौतिक सुखों-दुःखोंकी सत्यताका विश्वास दृढ़ है, पर जागनेपर सभी असत्य प्रतीत होगा। अरे पथिक! तुमने आजतक किन-किन पदार्थोंको आनन्दाधार बनाया, पर अभीतक उस आधारको न पा सके, जो अविनाशी हो।

अगणित नाम-रूपोंको जन्म-जन्मान्तरोंसे धारण करने और छोड़नेवाले पथिकरूपमें अविनाशी आत्मन्! सावधान होकर सुनो और देखो तुमने अनेकानेक आधारोंको कल्पितकर कितनी विधियोंसे सभी दिशाओंमें लोक-लोकान्तरोंमें जिस आनन्दकी खोज अभीतक की है और आज भी जिसको इधर-उधर झाँकते-फिरते हो—ध्यान देकर सुन लो, उस आनन्दाधारका सच्चा पता बतानेवाले आनन्दस्वरूप सद्गुरुदेव महात्मा सन्तजन हैं। मैं इन्हीं गुरुदेवके चरणोंमें बैठकर अपने परम लक्ष्यका ज्ञान जो कुछ प्राप्त कर रहा हूँ; उसे तुमको भी बताना चाहता हूँ—क्योंकि मैं भी तो पथिक हूँ।

श्रान्त, क्लान्त, भ्रान्त पथिक! अरे जिसकी खोजमें तुम इतना भटक रहे हो, वह तो तुम्हारे निकट-से- निकट ही है। सावधान होकर पीछे लौटो, तुम्हें पता चलेगा कि वह आनन्दाधार मेरे जीवनका जीवन, प्राणोंका भी प्राण मेरे अन्तर-बाहर व्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा है। यही है तुम्हारा लक्ष्य। यही है परमानन्द स्वरूप। यहींपर है तुम्हारी परम मुक्ति। यहींपर है अभावका अभाव और पूर्णताकी पूर्णता। यही है आनन्दका आनन्द। यही है जीवनका जीवन। प्यारे पथिक! आओ, अब देखो, इस परमाधार परम लक्ष्यका पथ क्या है?

प्यारे पथिक! अब इस समय तुम अपनी सम्पूर्ण यात्राका चित्र देखो। सावधान होकर समझ लो। सद्विचार ही इस परमलक्ष्य परमानन्दका पथ है और सद्विवेक ही इस पथके देखनेकी दृष्टि है तथा त्याग ही तुम्हारे साथ एक दिव्य अस्त्र है, जिसके द्वारा तुम अपनी यात्रामें चलनेके पहले अपने ऊपर-नीचे, आगे-पीछेकी तमाम तरहकी कठिनाइयोंको, द्वन्द्वोंको, दुःखोंको, बन्धनोंको दूर कर सकोगे। पग-पगपर इसी त्यागरूपी अस्त्रके बलपर तुम चल सकोगे और इस पथमें चलते हुए आगे सद्व्यवहार-रूपी साधन बल है, जिसके द्वारा तुम तमाम प्रकारकी शक्ति, स्फूर्ति, पवित्रता एवं सद्गुणरूपी सम्पत्तिसे धनी हो सकोगे। पुनः यह सब कुछ होनेपर भी अभी तुम अँधेरेमें ही रहोगे। आगे ज्ञानरूपी प्रकाश प्राप्त होता है। उसमें पहुँचकर सर्वज्ञाता बनोगे। उसी प्रकाशमें चलते-चलते ऊँचे स्तरोंमें तुम्हारी पहुँच होगी। तभी वहाँ प्रेमके सौन्दर्यमें परमानन्दका पूर्ण बोध होगा। बस, वहीं प्रेममय परमानन्दस्वरूप परमात्मामें तन्मयता प्राप्त करोगे। परंतु मेरे उत्सुक साथी! यात्राका सम्पूर्ण चित्र देखकर तुमने परमानन्दकी प्राप्ति सरल ही समझी होगी, पर पता तब चलेगा जब तुम इस पथमें कदम बढ़ाना शुरू करोगे। हाँ! तो क्या तुम मेरे साथ चलना चाहते हो? परंतु तुमने अभी मुझे समझा ही क्या है। प्यारे पथिक! तुम्हें देखकर हर्ष एवं कौतूहलसे यह हृदयोद्गार निकल रहा है। सावधान होकर सुन तो लो। **[प्रेषक—श्रीमहेशचन्द्रजी]**

आजकी आवश्यकता—गोरक्षा एवं गोसंवर्धन

(मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)

[गतांक सं० ९ पृ०-सं० ८६८ से आगे]

गोसेवा भगवान् श्रीकृष्णका प्रत्यक्ष आश्रय है। भगवान्के तीन स्वरूप हैं—आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। भागवत और गोमाता दोनों भगवान्की विभूति हैं। गोमाताकी सेवा भगवान् श्रीकृष्णके आधिभौतिक चरणोंका आश्रय है, श्रीकृष्णके चरणकमलकी प्राप्तिका प्रथम सोपान है गोमाताकी सेवा। गायका आश्रय प्रत्यक्ष श्रीकृष्णका आश्रय है, पर दुर्भाग्यकी बात यह है कि जो सरल साधन भगवान्की प्राप्तिके हैं, उनमें किसीका मन नहीं लगता। गायका गोबर उठाना, गायको सानी डाल देना, खुजोरा करना, गायको प्रणाम करना—कितने सरल साधन हैं भगवत्प्राप्तिके। पर इनमें मन नहीं लगता। अब नामजप छोड़कर, गोसेवा छोड़कर, संतसेवा छोड़कर हम सोचें कि ये आँख-नाक-बन्द करनेसे और बड़ी-बड़ी तपस्या करनेसे भगवान् मिल जायँगे तो यह सम्भव नहीं।

ब्राह्मणी जाबालाने अपने पुत्र सत्यकामको महर्षि गौतमके पास भेजा। महर्षि गौतमने जब उसका परिचय सुना तो कहा—निश्चय ही तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारे भीतर सत्य प्रतिष्ठित है। उस ब्राह्मण ब्रह्मचारीको धर्मकी शिक्षा प्रदान करके एक सौ गायें दे दीं और कहा—जब ये हजार हो जायँ तब इन्हें लौटा लाना, वह बालक बड़ी निष्ठासे गोसेवा करता। सत्यकाम जाबाल सौ गायें लेकर चला गया और जब गोवंशकी संख्या एक हजार हो गयी, तब गायें उसकी सेवासे सन्तुष्ट हो गयीं। उस गोवंशका एक नन्दी वृषभ ब्रह्मचारी सत्यकामके पास आया। सत्यकामने बड़े आदरपूर्वक कहा—कहो नन्दीश्वर! क्या कहना चाहते हो? उसने कहा—वत्स सत्यकाम, हम तुम्हारी सेवासे अत्यन्त सन्तुष्ट हैं। अब हमारी संख्या एक हजार हो चुकी है, अब तुम हमें गुरुगृहकी ओर ले चलो। हम तुम्हारी सेवासे सन्तुष्ट हैं, तुम ब्रह्मविद्याके अधिकारी पात्र हो, आचमन, प्राणायाम करके सावधान हो जाओ, मैं तुम्हें ब्रह्मविद्याके प्रथम पादका उपदेश करता हूँ। ऐसा कह वृषभने ही ब्रह्मविद्याके प्रथम पादका उपदेश दे दिया और कहा कि तुम्हें अगले चरणका उपदेश अग्निके द्वारा प्राप्त हो जायगा। दूसरे दिन वह चल पड़ा, समिधा जलाकर अग्निहोत्र कर रहा था, उसी समय अग्निकी ज्योतिसे उसे ब्रह्मविद्याके द्वितीय पादका उपदेश प्राप्त हुआ। तृतीय पादका उपदेश उसे एक जलपक्षीके द्वारा हुआ और उसने कहा कि तुमको चतुर्थ पादका उपदेश तुम्हारे गुरुजी करेंगे। तो जब वह एक हजार गोवंशको लेकर गुरुजीके निकट पहुँचा तो गौतमजी आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने कहा—'पुत्र, तुम्हारा मुख तो ब्रह्मज्ञानीके जैसा दिखायी पड़ रहा है।' अर्थात् केवल गोसेवासे सत्यकाम ब्रह्मविद् हो गया।

श्रीमद्भागवतमहापुराण ग्रन्थके प्रतिपाद्य भगवान् श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्णका वन्दन ग्रन्थके आदिमें **'सत्यं परं धीमहि'** कहकर किया गया है।

तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्णमें और गायमें अन्तर नहीं है, इसलिये **'सत्यं परं धीमहि'** कह करके गायका ध्यान किया गया। भागवतके मंगलाचरणके प्रथम श्लोकके रूपमें गायका वन्दन किया गया है।

मांसाहारी लोग जो अपनेको हिन्दू भी कहते हैं, वे होटलोंमें जाकर मांस खा रहे हैं और उस मांसमें गोमांस भी पहुँच रहा है। वे कहनेको तो अपनेको हिन्दू कहते हैं और गोमांस खा रहे हैं तो बताइये वे ऐसी स्थितिमें गायके हितकी बात कैसे सोच सकते हैं? गायके हितकी बात, गायकी सेवाकी बात, रक्षा और कल्याणकी बात कैसे सोच सकते हैं? गायके रक्तकी एक बूँद किसी तालाब, कुएँमें गिर जाय, उसको पी लेनेसे जहाँ हिन्दूधर्म नष्ट हो गया, ऐसा कहा जाता था, आज वे मांस खा रहे हैं और कहते हैं हम हिन्दू हैं। वे कैसे हिन्दू हैं?

हमारे पूज्य गुरुदेव श्रीभक्तमालीजी महाराज तो बार-बार कहते थे कि पण्डितजी, सर्वाधिक अत्याचार गायपर हो रहा है। इसलिये गायकी सेवासे बढ़कर सत्कर्म इस

कलिकालमें दूसरा कोई नहीं हो सकता। महाराजजीके मुखसे हमने अनेक बार इस वाक्यको सुना। गाय, ब्राह्मण और साधु तीनोंपर संकट है, पर महाराजजी कहते थे साधु और ब्राह्मण—इनको काटनेके यान्त्रिक कत्लखाने नहीं बने हैं, इनको कहीं-न-कहीं जाकर सिर छिपानेकी जगह है, पर गायको नष्ट करनेके तो यान्त्रिक कत्लखाने बन गये हैं, गाय काटी जा रही है; इसलिये सर्वाधिक संकट गायके ऊपर है और ऐसी स्थितिमें गायकी सेवासे बढ़कर दूसरा कोई शुभकर्म नहीं है। सबसे श्रेष्ठ सत्कर्म गायकी सेवा ही है, गायकी रक्षा है। आप सोचिये, परम धर्मात्मा शूरवीर चक्रवर्ती सम्राट्के शरीरकी कितनी कीमत हो सकती है और वह भी धर्मधुरन्धर सम्राट् दिलीपके। पर परम गोभक्त दिलीप नन्दिनी गायको बचानेके लिये सिंहके आगे अपना बलिदान करनेको प्रस्तुत हो जाते हैं। वे कहते हैं—सिंह! तुम्हें खाना ही है तो तुम मुझे खाकर अपनी भूख मिटा लो, किंतु मेरे गुरु महाराजकी गायको छोड़ दो, आप सोचिये कि एक सम्राट् एक गायकी रक्षाकी कीमत अपने शरीरसे चुका रहा है और आज गाय नष्ट हो रही है।

गायकी महिमा सर्वोपरि है और वेदोंने खूब उसका गायन किया है। स्मृतियोंमें, पुराणोंमें भी गो-महिमाका खूब गायन किया गया है, वेदके मूलमें गो-महिमा है और वेदका अनुकरण करनेवाले पुराणोंने उसका विस्तार किया और उस वेदका अनुगमन करनेवाली जो स्मृतियाँ है, उन स्मृतियोंमें भी गौ-माहात्म्यका वर्णन किया गया है।

गायकी भक्तिकी, गायकी सेवाकी बहुत बड़ी महिमा है, जो छिपी हुई नहीं है, सब जानते हैं, पवित्र साधन है। सम्पन्न श्रीमन्त तो इस साधनको कर ही सकते हैं, जो सर्वथा अकिंचन हैं, वे भी इस साधनको कर सकते हैं। जिनके पास कुछ नहीं है, भौतिक वस्तु परमात्माने जिन्हें नहीं दी है। ऐसे परम अकिंचन लोग भी गोसेवा कर सकते हैं, यह ऐसा पवित्र साधन है। आपलोग कहेंगे कैसे कर सकते हैं? अरे भाई! आपके पास भूमि नहीं है, धन नहीं है, अन्न नहीं है, परंतु शरीर तो भगवान्‌ने दिया है कि नहीं? किसी गौशालामें जाकर झाड़ू लगायी जा सकती है, गोबर उठाया जा सकता है, गायकी पीठको खुजोरा किया जा सकता है और कुछ न बने तो गाय चरायी जा सकती है। इसमें पैसेकी कोई जरूरत नहीं है। जो सर्वथा अकिंचन है, जिसने एक झोपड़ी भी कहीं नहीं बनायी है, वह व्यक्ति भी गोसेवा कर सकता है, बस केवल बात यह है कि गोसेवाका संकल्प, गोसेवाकी भावना उसके चित्तमें होनी चाहिये, फिर वह गोसेवा कर सकता है।

पंढरपुरमें एक महात्मा मिले, बोले महाराज! हमारी गोमाताके दर्शन करने चलो, गोशालामें। बड़े प्रसन्न हुए हमलोग। गये दर्शन करने, चन्द्रभागाके किनारे उन्होंने गायोंको रखा हुआ था। बहुत गायें थीं उनके पास और उन्होंने अपना अनुभव बताया कि ऋषिकेशके सत्संग-भवनमें परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजका प्रवचन सुन रहे थे, वहाँ प्रवचनमें स्वामीजीने गोसेवाकी बात कही। कहा अकिंचन व्यक्ति भी गोसेवा कर सकता है, बस यही सूत्र हमने बना लिया और गोसेवामें हम लग गये। यहाँ जो गाय इधर-उधर भटक रही थीं, उन्हींको हमने रखा और उनको कुछ घास-चारा ला करके डाल देना, इस तरहसे सेवा शुरू की, होते-होते बहुत लोगोंने हटानेका प्रयास किया। सरकारी लोगोंने कहा कि किसकी जमीनमें बाबाजी बैठ गये। हमने कहा—भैया! हमको हटा दो, पर गायको तो कहीं रखो। तो वे महात्मा बता रहे थे कि हम तो बिना पढ़े-लिखे हैं, पर यहाँ लोग हमको सिद्ध मानने लगे, कैसे सिद्ध मानने लगे? बोले किसीकी कोई कामना होती कि महाराज! हमारा अमुक काम नहीं बन रहा है तो हम कहते हैं गायको चारा-दाना डाल दो, ठीक हो जायगा। गऊ माता सबको ठीक कर रही हैं और नाम हमारा हो रहा है। उन्होंने बताया कि गोमाता ही सबका कार्य कर रही हैं।

तो अकिंचन व्यक्ति भी सेवा कर सकता है, अब उस गोसेवाके साथ-ही-साथ भगवन्नाम-जप हो तब तो फिर कहना ही क्या है? इतना सरल साधन गोसेवा जिसे धनवान् नहीं धनहीन व्यक्ति भी कर सकता है, विद्वान् ही नहीं मूर्ख व्यक्ति भी कर सकता है, पर ऐसे पवित्र साधनमें जीवोंकी रुचि क्यों नहीं है? इसका कारण कि उनकी बुद्धि है कलिमलसे ग्रसित और मलिन बुद्धि, मलिन

अन्तःकरणमें पवित्र साधनकी महिमा प्रकट नहीं होती। इसलिये चित्तका निर्मल होना अत्यन्त अपेक्षित है और रामनामका जप करेंगे तो सारी मलिनता मिट जायगी, चित्त निर्मल हो जायगा।

सबके आराध्य, उपास्य भगवान् और भगवान्का आराध्य उपास्य कौन है? तो श्रीमद्भागवतका अनुशीलन करनेसे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि सबके आराध्य-उपास्य भगवान् हैं और भगवान्की भी आराध्य-उपास्य गोमाता हैं, तो भगवान् इष्ट हैं और इष्टका इष्ट गोवंश है, गोमाता हैं इसलिये गाय अति इष्ट है। श्रीकृष्णावतारकी लीलामें भगवान् गोभक्ति करते हैं, कैसी अद्भुत गोभक्ति है, भगवान्की लीला गोसेवासे जुड़ी हुई है। भगवान्के प्राकट्यके समय श्रीवसुदेवजीने १०,००० पयस्विनी गायोंके दानका संकल्प किया। इसके बाद भगवान् ब्रजमें पहुँच गये, वहाँ तो कहना ही क्या? नन्दोत्सवमें बीस लाख गायोंका दान किया गया। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि ब्रज शब्दका अर्थ ही है गोष्ठ और ऐसा गोष्ठ जिसमें १,००,०००,०० (एक करोड़) गोवंश निवास करता हो।

पूतनाकी छातीसे जब ग्वाल-बालोंने ठाकुरजीको उतारा तो बोले राक्षसीने स्पर्श कर लिया है बालकको तो ये शुद्ध कैसे हो? भगवान्को कहाँ लाया गया—गोशालामें, गो-मूत्रसे स्नान कराया, गोबरका लेप किया, गोमाताकी चरण-रज श्रीअंगमें लगायी और फिर पूँछसे भगवान्को झाड़ा लगाने लगे। भगवान् बड़े खुश हो रहे थे कि ये मेरा अवतार गोमाताकी भक्तिके लिये हुआ है और देखो तो सही, ये गोपियाँ हमको गोसदनमें लेके आयीं गोमाताकी चरण-रज, गोमाताका गोमय और गोमाताके पवित्र मूत्रका स्पर्श करके मेरे अवतार धारण करनेका प्रयोजन सफल हो गया। आज गव्य पदार्थोंका स्पर्श करके मैं भी कृतार्थ हो गया, यह अनुभव करते हुए भगवान् प्रसन्न हो रहे हैं।

अब ठाकुरजी कुछ और बड़े हुए तो मैया तो उन्हें मणिमय प्रांगणमें खेलनेके लिये विराजमान कर देती हैं, पर मणिमय प्रांगण और सुन्दर-सुन्दर खिलौनोंके बीचमें बैठकर भगवान्को अच्छा नहीं लगता। भगवान् गो-रजमें खेलने चले जाते। जहाँ गाय और बछड़े क्रीड़ा कर रहे हैं, उस रजमें ठाकुरजी खेलने जाते, मैया दौड़कर उठाने जाती, कहीं बछड़ा, बछिया, गाय लालाके ऊपर पाँव न रख दे, सींगसे कहीं प्रहार न कर दे। इस भयसे माता उनको बचानेको जाती हैं। गो-रजको श्रीअंगमें लेप करके भगवान्को अतिशय प्रसन्नता होती है।

पद्मगन्धा जातिकी गायें बाबाके महलमें ही निवास करती थीं, जिनके श्रीअंगसे, जिनके दुग्धसे, दहीसे, घृतसे, छाछसे खिले हुए कमलके मकरन्दकी सुगन्ध प्रकट होती; ऐसी १,००,००० (एक लाख) पद्मगन्धा गायें नन्दबाबाके गोष्ठमें थीं। उनके गोमय और गोमूत्रसे भी एक विशेष प्रकारकी कमलकी सुगन्ध आती, तो उनके गोमय और गोमूत्रके मिश्रणसे जो रज मिलकर एक विशिष्ट प्रकारकी कीच बन गयी है, उसका नाम है ब्रजकर्दम। इस गोष्ठके कीचड़में भगवान् बैठ जाते हैं और कीचमें भगवान् स्नान करने लग जाते हैं, अंजलिसे कीचको अपने और दाऊ दादाके ऊपर भी चढ़ाते हैं; इसको सन्तोंने 'पंकाभिषेक-लीला' कहा है। कीचमें सने हुए लालजीको देखकर मैया कहती हैं कि 'अरे कन्हैया! मोहे तो ऐसा लगे है कि पूर्वजन्मको सूकर है। ठाकुरजी हँस पड़े। बोले तू कह तो रही है नाराज होकर, पर ठीक कह रही है, मैंने 'वराह' अवतार भी धारण किया था। ये ठाकुरजीका गो-प्रेम है।'

फिर ठाकुरजी कुछ और बड़े हो गये तो खेलते-खेलते गाय-बछड़ोंके पास चले जाते हैं। बछड़े भी उहकते हुए भगवान्के पास आ जाते हैं, सूँघते हैं और दिव्य सुगन्धवाले भगवान्के श्रीअंगको पाकर आनन्दमें आकर बछड़े उछल-कूदमें लग जाते हैं। जब बछड़े खड़े हो जाते हैं तो ठाकुरजी धीरे-धीरे उनके पैरके निकट जाते हैं और उनकी लम्बी लटकती हुई पूँछको पकड़ लेते हैं और पूँछको पकड़के खड़े हो जाते हैं, भगवान्के श्रीअंगका स्पर्श पाकर बछड़ोंमें बिजली-सी कौंध जाती है और वे बछड़े पूरी चौकड़ी भरने लग जाते हैं। ठाकुर बछड़ेके पीछे पूँछपर लटक रहे हैं और बछड़े भाग रहे हैं, इसको आचार्योंने कहा है—'लटकन्त ब्रह्म।' तो यह ठाकुरजीका गो-वत्स प्रेम है। **[क्रमशः]**

साधनोपयोगी पत्र

(१)

सेवा और भजन

आपका कृपापत्र मिला। आपका लिखना बहुत ही यथार्थ है। 'भगवान्‌को याद करते हुए भगवान्‌को अर्पण करके जो कुछ भी कर्म किये जाते हैं, सब भजन ही हैं।' समस्त जीव भगवान्‌के ही स्वरूप हैं, भगवान् ही इन सबके रूपमें प्रकट हैं, अतएव जीवोंकी सेवा निश्चय ही भगवान्‌की सेवा है तथा सेवा और भजन एक ही वस्तुके दो नाम हैं। इसलिये जीवसेवा भजन है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। आप इस प्रकारकी सेवा करते हैं और करना चाहते हैं, यह बहुत ही अच्छी बात है। इसमें चार बातोंका ध्यान सदा रखना चाहिये—

१. भगवान्‌का अखण्ड स्मरण, २. सब कुछ भगवान्‌को अर्पण, ३. सब जीव भगवान्‌के ही स्वरूप हैं, यह अटल विश्वास और ४. जब सब कुछ उन्हींका है और सब जीव वे ही हैं, तब सेवा करनेवाला मैं तो केवल निमित्तमात्र हूँ। सेवा नहीं करता हूँ तो कर्तव्यसे च्युत होता हूँ, पाप करता हूँ और सेवा करके अभिमान करता हूँ तो बेईमानी करता हूँ—यह ध्यान।

यदि इन चार बातोंको हृदयमें उतारकर आप जगत्‌के दुःखी जीवोंकी सेवा कर सकें तो इससे बढ़कर और भजन क्या होगा? जीव-सेवाके द्वारा भगवद्भजनकी यह प्रणाली बहुत ही श्रेष्ठ है। ऐसा भाव हो जानेपर तो मनुष्यका प्रत्येक कार्य—चाहे वह अपने भरण-पोषणका ही हो—भगवान्‌का भजन ही बन जाता है। परंतु भाई साहब! ऐसा सोचना जितना सहज है, होना बहुत ही कठिन है। आप जगत्‌में देख रहे हैं, सेवाके नामपर क्या-क्या हो रहा है और किस बुरी तरहसे लोग उस नकली सेवाका कितना अधिक बदला चुकवाना चाहते हैं। सेवाकी दूकान नहीं खुलती। सेवा तो हृदयकी स्वाभाविक वस्तु है। क्या अपनी निजकी सेवाके लिये किसी प्रकारके विज्ञापनकी, किसीपर अहसान प्रकट करके और किसीसे उसका बदला चाहनेकी भी कहीं जरूरत होती है? वह तो ऐसा कार्य है, जिसको करना ही पड़ता है, किये बिना सन्तोष होता ही नहीं। ठीक यही भाव लोकसेवामें होना चाहिये। देशात्मबोध हुए बिना वास्तविक देशभक्ति या जीवात्मबोध हुए बिना वास्तविक जीव-सेवा नहीं हो पाती। जो अपने व्यक्तित्वको आभ्यन्तरिक चित्तसे देश या जीवोंके साथ घुला-मिलाकर एक कर देता है, अपने पृथक् व्यक्तित्वको खो देता है, उसकी परवा ही नहीं करता, वही यथार्थ देश-सेवा या जीव-सेवा कर सकता है और जीवमात्रको भगवान्‌का स्वरूप समझकर जिन वस्तुओंके द्वारा उनकी सेवा की जाती है—उन समस्त वस्तुओंको, जिन साधनोंसे सेवा की जाती है, उन 'मन-बुद्धि-शरीरादि' साधनोंको और जिस 'अहं' में सेवाकी भावना जाग्रत् होती है, उस 'अहं' को भगवान्‌के अर्पण करके जो सेवा होती है, वह तो इससे कहीं विलक्षण होती है। उन महात्मा पुरुषोंको धन्य है, जो इस प्रकार जनताकी सेवा कर पाते हैं। वस्तुतः वे भगवान्‌के बड़े ही प्रिय भक्त हैं। भगवान्‌ने अपने प्रिय भक्तोंके लक्षण बतलाते हुए कहा है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

जगत्‌में अनन्त प्रकारके प्राणी हैं और उन सभीके रूप, स्वभाव, कर्म, कर्मफल-भोगकी स्थिति आदि भिन्न-भिन्न हैं। मनुष्यके मनमें कुछ ऐसा अज्ञान है कि वह सबको न तो अपने अनुकूल पाता है और न प्रतिकूल। इससे उनके रूप, स्वभाव, कर्म तथा स्थिति आदिमें जहाँ अनुकूलता होती है, वहाँ राग होता है और जहाँ प्रतिकूलता होती है, वहाँ द्वेष होता है। भगवान्‌का सच्चा भक्त सब जीवोंमें भगवान्‌को देखता है, इसलिये वह रूप, स्वभाव, कर्म और स्थिति आदिके भेदसे किसी अवस्थामें किसीके साथ द्वेष नहीं करता और न वह अनुकूल विषयोंकी दृष्टिसे होनेवाले रागकी भाँति किसीसे राग ही करता है। शरीर और स्थिति आदिके भेदसे व्यवहार-भेद रहनेपर भी वह सबमें अपने भगवान्‌को पहचानकर हृदयसे स्वाभाविक ही सबसे प्रेम करता है। जैसे अपनेमें अपना मैत्रीभाव नित्य, विशुद्ध और सदा अक्षुण्ण होता है, वैसे ही जगत्‌के सभी प्राणियोंमें वह मैत्रीभाव रखता है। मित्रताका आदर्श

देखना हो तो श्रीरामचरितमानसके भगवान् श्रीरामके इन वचनोंको याद कीजिये—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥
जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

—यह मैत्रीभाव प्राणिमात्रके प्रति अखण्ड और अचल होता है। परंतु जहाँ दुःख और कष्टोंकी विशेषता होती है, वहाँ तो उसका हृदय फटने-सा लगता है। करुणभावकी तीव्र धारा मन-प्राणको विगलितकर दुःख और कष्टमें पड़े हुए दीन प्राणियोंकी पीड़ाको अपने अन्दर आत्मसात् कर लेना चाहती है। यह वह दया नहीं है जो दीनोंपर हुआ करती है, यह परोपकारका भाव नहीं है जो दूसरोंके प्रति हुआ करता है, यह तो वह महान् करुणभाव है जो बड़े-से-बड़े बुद्धिमान् और बलवान्‌को भी बल-बुद्धिकी विस्मृति कराकर, अभिमन्यु और घटोत्कचके मरनेपर जैसे धीमान् अर्जुन और बलवान् भीम रोये थे और पछाड़ खाकर जमीनपर गिर पड़े थे, वैसे ही रुला देता है। ऐसा होनेपर भी भक्तके इस रोनेमें अर्जुन और भीमको व्याकुल करनेवाला शोक अथवा दुःख नहीं है। यह तो वह सात्त्विक पीड़ा है, जो सर्वभूतोंमें आत्मवत् दृष्टि रखनेवाले मैत्रीभावापन्न पुरुषोंके हृदयमें जीवोंको दुःखकी धारामें बहते देखकर होती है। इसमें शोकजनित निर्वेद, निराशा और अशक्ति तथा प्रमादजनित निरुद्यमता, आलस्य और लापरवाही नहीं है। इसमें आँसुओंके साथ-साथ बड़ी भारी कर्मशीलता है; क्योंकि ये आँसू आत्मामें, मन-बुद्धिमें और सारे अवयवोंमें पवित्र बोध, तेज, प्रकाश, बल, उत्साह और उल्लासका अदम्य प्रवाह बहा देनेवाले सत्त्वगुणसे प्रसूत विशुद्ध 'करुणा' भावके होते हैं, जो दीनोंके आँसुओंको सुखाकर ही सूखते हैं। परंतु इतनी ही बात नहीं है, भगवान्‌के सच्चे भक्तमें यह मैत्री और करुणाका भाव भी केवल नाट्यके लिये ही होता है। उसका असली भाव तो इससे भी ऊँचा है। जैसे किसी नाटकमें कोई पिता भिन्न-भिन्न प्रसंगोंपर मित्रताका और दीनताका अभिनय करे और उस पिताको ठीक पहचाननेवाला पितृभक्त पुत्र स्टेजपर अपने पार्टके अनुसार बदलेमें मैत्री और करुणा-भावका अभिनय करे, परंतु उसका मन इन अभिनयोंको करते समय भी इनसे कहीं ऊँचे सर्वसमर्पणसे युक्त पितृभक्तिके भावोंसे भरा रहे। वैसे ही भक्त जहाँ मैत्री और करुणाका अभिनय करता है, वहाँ भी वह भगवान्‌की भक्तिमें ही डूबा रहता है। वह जानता है कि मेरे भगवान् ही आज यहाँ मेरे सामने 'मित्र' और 'दीन' के रूपमें उपस्थित हैं और मेरे साथ लीला करना चाहते हैं। अतएव वह सोचता है—मुझे इनकी रुचि और इच्छाके अनुसार इनके साथ ऐसी लीला करनी चाहिये, जिससे इन्हें अपनी लीलामें सुभीता हो और इसलिये ये महान् आनन्दको प्राप्त हों। भक्त इसी भावसे, प्रतिक्षण उन्हें देखता हुआ और मन-ही-मन उन्हें प्रणाम करता हुआ उनके इच्छानुसार लीलामें संलग्न रहता है। उसे न तो इसमें कहीं ममता होती है, न अपने कर्तृत्वका या अपने अस्तित्वका कहीं अभिमान या अहंकार होता है, न वह लीलाके सुख-दुःखसे सुखी-दुःखी होता है और न वह किसीके द्वारा अत्यन्त सताये जानेपर भी किसीको कभी भी भय देनेमें कारण होता है। वह सदा ही क्षमावान् रहता है; क्योंकि वह जानता है कि सभी मेरे हरिके स्वरूप हैं फिर वह किसपर कैसे क्रोध करे? किसका बुरा चाहे? और किससे वैर करे?

अब हौं कासौं बैर करौं।
कहत पुकारत हरि निज मुखतें घट-घट हौं बिहरौं॥

उसे अपने लिये कुछ प्रयोजनीय ही नहीं होता, इससे वह अपनी स्थितिमें ही सदा सन्तुष्ट रहता है, सदा अपने भगवान्‌से युक्त रहता है। मन, इन्द्रिय और शरीरपर उसका पूरा अधिकार रहता है। वह अपने निश्चयमें दृढ़ होता है और सबसे बड़ी बात और असली बात तो यह है कि उसके मन और बुद्धि भगवान्‌को अर्पण किये हुए होते हैं। भगवान् ही उनके स्वामी, प्रेरक और उसमें बसनेवाले होते हैं। भगवान्‌के अपने घर बन जाते हैं। इससे उनके मन-बुद्धिमें जो कुछ भी आता है, सब भगवान्‌की ही ओरसे आता है। ऐसा भक्त भगवान्‌को बड़ा प्यारा होता है। सच पूछिये तो असली जनसेवा तो ऐसे ही भक्त कर सकते हैं।

इसका यह अभिप्राय नहीं कि ऐसा न हो तो फिर सेवा ही न करे। किसी भी भावसे की जाय, सेवा तो उत्तम ही है। जो लोग भजनका बहाना करके सेवासे मुँह मोड़ लेते हैं और शरीरके आराम, भोग और नींदके खर्राटोंमें अपना जीवन बिताते हैं, वे वस्तुतः भजन नहीं करते, वे तो अपने-आपको

ही धोखा देते हैं। इतना अवश्य समझ रखना चाहिये कि जैसे भजनके नामपर सेवा छोड़नेवाला आदमी बड़ी भूल करता है, उससे भी कहीं बड़ी भूल वह करता है जो सेवाके नामपर भगवान्‌का विस्मरण करके उनका भजन छोड़ देता है। जिसके हृदयमें भगवान्‌का अस्तित्व और अवलम्बन नहीं है, उसके द्वारा की जानेवाली सेवासे 'सर्वभूतहित' कभी हो ही नहीं सकता। वैसी सेवा राग-द्वेषको बढ़ाकर वैर-विरोध और काम-क्रोधको जगा देती है और फिर कहीं तो खुली हिंसा आती है और कहीं वह पिशाचिनी अहिंसाकी बनावटी सुन्दर पोशाक पहनकर अन्दरसे जबरदस्त हमला करती है।

मैं आपको या अन्य किसीको भी कर्मक्षेत्रसे हटनेकी बात तो कभी नहीं कहता। परंतु वर्तमान परिस्थितिमें—जहाँ सभी क्षेत्रोंमें राग-द्वेष और काम-क्रोधका ही नंगा नाच हो रहा है, चाहे उसका नाम कुछ भी हो; वहाँ भगवत्प्राप्तिकी इच्छावाले पुरुषको अपने थोड़े-से जीवनमें इतनी बड़ी जोखिम नहीं उठानी चाहिये और जहाँतक हो सके भगवान्‌के नामका आश्रय लेकर अधिक-से-अधिक भगवन्नाम-स्मरण करना चाहिये। मेरी समझसे यदि सेवाकी वासना मनमें होगी तो 'भगवन्नाम-ग्रहणके द्वारा जगत्‌की सेवा भी कम नहीं होगी।' यह विश्वास करना चाहिये। कलियुगमें यही एकमात्र मार्ग है।

भगवान्‌की कृपापर निर्भर करके, बस उनका नाम लेते रहिये। इस कालमें जीवोंके लिये यही सर्वोत्कृष्ट साधना है। दूसरे सब साधन तो इस सुधामयी बूटीके अनुपानमात्र हैं। सच पूछिये तो यह कहना भी अत्युक्ति न होगा कि इस युगमें जगत्‌के उद्धारकी चेष्टा तो बस, अहंकारकी सृष्टिमात्र होगी।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(२)

जीवन्मुक्तके द्वारा वस्तुतः कर्म नहीं होते

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला, धन्यवाद। आपने पूछा कि 'जीवन्मुक्त पुरुषके द्वारा कर्म होते हैं या नहीं, यदि होते हैं तो किस प्रकार होते हैं?' और इसके उत्तरमें विस्तारपूर्वक लिखनेका अनुरोध किया, सो आपकी कृपा है। परंतु पत्रमें बहुत विस्तार करनेके लिये पर्याप्त समय चाहिये, अतः प्रश्नका उत्तर ठीक-ठीक समझमें आ जाय, इस दृष्टिको सामने रखते हुए मैं संक्षेपमें लिखनेका प्रयत्न करता हूँ।

जीवन्मुक्त पुरुषके द्वारा वास्तवमें कर्म नहीं होते; क्योंकि ज्ञानाग्निके द्वारा उसके समस्त कर्मोंका क्षय हो जाता है। श्रीभगवान्‌ने गीतामें कहा है—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा॥

(४।३७)

'अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनको भस्मसात् कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मोंको भस्मसात् कर देती है।' उपनिषद्‌में भी आता है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

(मुण्डक० २।२।८)

'उस परावर परमात्माका साक्षात्कार हो जानेपर जड-चेतनकी एकात्मतारूप हृदयकी ग्रन्थि टूट जाती है। जड देहादिमें होनेवाले आत्माभिमान तथा समस्त संशयोंका नाश हो जाता है और सम्पूर्ण कर्म (बीजसहित) नष्ट हो जाते हैं।'

वस्तुतः 'कर्म' संज्ञा वहीं सिद्ध होती है, जहाँ कोई 'कर्ता' होता है। जीवन्मुक्तमें कर्तापनका अहंकार रहता नहीं, इसलिये उसके द्वारा कर्म नहीं होते।

यह होनेपर भी अन्तःकरण तथा इन्द्रियोंके द्वारा यथायोग्य कर्म होते रहते हैं और राग-द्वेष, कामना-वासना तथा ममता-अहंकारसे रहित होनेके कारण वे कर्म सहज ही परम उज्ज्वल, आदर्शरूप तथा सबके लिये हितकारी भी होते हैं। जीवन्मुक्त पुरुषका न तो उन कर्मोंसे कोई सम्बन्ध होता है; क्योंकि उसका अन्तःकरणसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता, और न उन कर्मोंके होनेमें कोई बाधा आती है; क्योंकि समष्टि चेतनकी सत्तासे बिना कर्तृत्वाभिमानके पूर्वाभ्यास तथा प्रारब्धानुसार वे होते रहते हैं।

हाँ, जीवन्मुक्त—भगवत्प्राप्त पुरुषके अन्तःकरणमें काम-क्रोधादि विकार या दोष नहीं रहते; क्योंकि परमात्माकी प्राप्तिसे पूर्व ही अन्तःकरणकी शुद्धि हो जाती है और उस अहंकाररहित शुद्ध अन्तःकरणमें काम-क्रोधादि विकारोंके उत्पन्न होनेका कोई कारण नहीं रह जाता। आपने कुछ लोगोंके उदाहरण देकर जो काम-क्रोधादिका होना बतलाया है—सो पता नहीं, वे लोग जीवन्मुक्त थे या नहीं; मान्यता तो सिद्धान्तकी होनी चाहिये, न कि किसी पुरुषविशेषके आचरणकी। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६७, शक १९३२, सन् २०१०, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, कार्त्तिक कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ७।५२ बजेतक	रवि	भरणी रात्रिमें १२।१७ बजेतक	२४ अक्टूबर	स्वातीमें सूर्य रात्रिमें ११। ३८ बजेसे। **अशून्यशयनव्रत।**
द्वितीया दिनमें ८। ३० बजेतक	सोम	कृत्तिका ,, १। ८ बजेतक	२५ ,,	भद्रा रात्रिमें ८। ३३ बजेसे, **वृषराशि** प्रातः ६। ३० बजेसे।
तृतीया ,, ८।३५ बजेतक	मंगल	रोहिणी ,, १। २८ बजेतक	२६ ,,	भद्रा दिनमें ८। ३५ बजेतक, **श्रीगणेशचतुर्थीव्रत (करवाचौथ)** चन्द्रोदय रात्रिमें ७। ४० बजे।
चतुर्थी प्रातः ८।११ बजेतक	बुध	मृगशिरा ,, १। २१ बजेतक	२७ ,,	मिथुनराशि दिनमें १। २५ बजेसे।
पंचमी ,, ७।१७ बजेतक षष्ठी रात्रिशेष ५।५७ बजेतक	गुरु	आर्द्रा ,,१२। ४७ बजेतक	२८ ,,	भद्रा प्रातः ५। ५७ बजेसे।
सप्तमी ,, ४।१७ बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु ,,११।५३ बजेतक	२९ ,,	भद्रा सायं ५। ७ बजेतक, **कर्कराशि** रात्रिमें ६। ७ बजेसे।
अष्टमी रात्रिमें २। १८ बजेतक	शनि	पुष्य ,,१०।४० बजेतक	३० ,,	मूल रात्रिमें १०। ४० बजेसे, **श्रीराधा जयन्ती, अहोईव्रत।**
नवमी ,,१२।८ बजेतक	रवि	आश्लेषा,, ९।१३ बजेतक	३१ ,,	सिंहराशि रात्रिमें ९। १३ बजेसे।
दशमी ,, ९। ४७ बजेतक	सोम	मघा ,, ७।३७ बजेतक	१ नवम्बर	भद्रा दिनमें १०। ५७ बजेसे रात्रिमें ९। ४७ बजेतक। **मूल** रात्रिमें ७। ३७ बजेतक।
एकादशी,, ७। २४ बजेतक	मंगल	पूर्वाफाल्गुन ,, ५।५६ बजेतक	२ ,,	कन्याराशि रात्रिमें ११। ३१ बजेसे, **रम्भा एकादशीव्रत (सबका)** शुक्रोदय पूर्वमें प्रातः ६। ३४ बजे।
द्वादशी सायं ५। १ बजेतक	बुध	उत्तरा फाल्गुन सायं ४। १७ बजेतक	३ ,,	**गोवत्सद्वादशीव्रत प्रदोषव्रत, धनतेरस, धन्वन्तरि-जयन्ती।**
त्रयोदशी दिनमें २।४५ बजेतक	गुरु	हस्त दिनमें २। ४३ बजेतक	४ ,,	भद्रा दिनमें २। ४५ बजेसे रात्रिशेष ५। ४१ बजेतक। तुलाराशि रात्रिमें २। १ बजेसे **नरकचतुर्दशी।**
चतुर्दशी ,, १२।३९ बजेतक	शुक्र	चित्रा ,, १। २० बजेतक	५ ,,	**हनुमज्जयन्ती, दीपावली, अमावस्या।**
अमावस्या,, १०।४९ बजेतक	शनि	स्वाती ,, १२। १३ बजेतक	६ ,,	**स्नानदानकी अमावस्या, अन्नकूट, काशीसे अन्यत्र गोवर्द्धनपूजा,** वृश्चिकराशि रात्रिशेष ५। ३७ बजेसे।

सं० २०६७, शक १९३२, सन् २०१०, सूर्य दक्षिणायन, शरद-ऋतु-हेमन्तऋतु, कार्तिक शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ९।१९ बजेतक	रवि	विशाखा दिनमें ११।२५ बजेतक	७ नवम्बर	विशाखामें सूर्य प्रातः ६।४७ बजे। चन्द्रदर्शन **यमद्वितीया, भ्रातृद्वितीया, भैयादूज, काशीमें गोवर्द्धनपूजा।**
द्वितीया प्रातः ८। १३ बजेतक	सोम	अनुराधा ,, ११। ० बजेतक	८ ,,	**भ्रातृद्वितीया (बंगाल)** मूल दिनमें ११। ०० बजेसे।
तृतीया ,,७। ३४ बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा ,, ११। २ बजेतक	९ ,,	भद्रा रात्रिमें ७। २८ बजेसे, धनूराशि दिनमें ११। ०२ बजेसे **श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
चतुर्थी ,,७।२२ बजेतक	बुध	मूल ,,११।३२ बजेतक	१० ,,	भद्रा प्रातः ७। २२ बजेतक, मूल दिनमें ११। ३२ बजेतक।
पंचमी ,,७।४४ बजेतक	गुरु	पूर्वाषाढ़ ,,१२। ३४ बजेतक	११ ,,	मकरराशि रात्रि ६।५६ बजेसे।
षष्ठी दिनमें ८। ३६ बजेतक	शुक्र	उ०षा० ,, २। ४ बजेतक	१२ ,,	**श्रीसूर्यषष्ठीव्रत।**
सप्तमी ,, ९।५७ बजेतक	शनि	श्रवण सायं ४। ०३ बजेतक	१३ ,,	भद्रा दिनमें ९। ५७ बजेसे रात्रिमें १०। ४९ बजेतक। **कुम्भराशि** प्रातः ५। ११ बजेसे, **पंचकारम्भ** प्रातः ५। ११ बजेसे।
अष्टमी ,, ११। ४१ बजेतक	रवि	धनिष्ठा रात्रिमें ६। २० बजेतक	१४ ,,	**गोपाष्टमी।**
नवमी ,,१।४२ बजेतक	सोम	शतभिषा रात्रिमें ८।५३ बजेतक	१५ ,,	अक्षयनवमी।
दशमी ,,३।५० बजेतक	मंगल	पूर्वाभाद्रपद ,,११। २९ बजेतक	१६ ,,	भद्रा रात्रिमें ४।५२ बजेसे। **मीनराशि** सायं ४।५० बजेसे। **वृश्चिक संक्रान्ति** रात्रिशेष ४। ३९ बजेसे **हेमन्तऋतु प्रारम्भ।**
एकादशी सायं ५।५६ बजेतक	बुध	उत्तरा भाद्रपद ,,१।२७ बजेतक	१७ ,,	भद्रा सायं ५।५६ बजेतक, **प्रबोधिनी एकादशीव्रत (सबका), सौर मार्गशीर्षमासारम्भ,** मूल रात्रिमें १।२७ बजेसे।
द्वादशी रात्रिमें ७।४९ बजेतक	गुरु	रेवती रात्रिशेष ४। १८ बजेतक	१८ ,,	पंचक समाप्त रात्रिशेष ४। १८ बजे, मेषराशि रात्रिशेष ४। १८ बजेसे। **चातुर्मास्यव्रत समाप्त, तुलसी विवाह।**
त्रयोदशी ,,९।२२ बजेतक	शुक्र	अश्विनी ,,५।१२ बजेतक	१९ ,,	मूल रात्रिशेष ५। १२ बजेतक, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,,१०। २७ बजेतक	शनि	भरणी अहोरात्र	२० ,,	भद्रा रात्रिमें १०। २७ बजेसे, अनुराधामें सूर्य दिनमें ११।४३ बजेसे **श्रीवैकुण्ठचतुर्दशीव्रत।**
पूर्णिमा ,,११।५ बजेतक	रवि	भरणी प्रातः ७।४२ बजेतक	२१ ,,	भद्रा दिनमें १०।४६ बजेतक, वृषराशि दिनमें १।५६ बजेसे, **स्नान-दान-व्रतकी कीर्तिकी पूर्णिमा, गुरुनानक जयन्ती, कार्तिकेय दर्शन, कार्तिक स्नान समाप्त।**

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६७, शक १९३२, सन् २०१०, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ११।११ बजेतक	सोम	कृत्तिका दिनमें ८।४१ बजेतक	२२ नवम्बर	× × × ×
द्वितीया ,, १०।४६ बजेतक	मंगल	रोहिणी ,, ९।८ बजेतक	२३ ,,	मिथुनराशि रात्रिमें ९।८ बजेसे।
तृतीया ,, ९।५३ बजेतक	बुध	मृगशिरा ,, ९।८ बजेतक	२४ ,,	भद्रा दिनमें १०।२० बजेसे रात्रि ९।५३ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ७।३० बजे।
चतुर्थी ,, ८।३४ बजेतक	गुरु	आर्द्रा प्रातः ८।३९ बजेतक	२५ ,,	कर्कराशि रात्रिमें २।१ बजेसे।
पंचमी ,, ६।५४ बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु प्रातः ७।४८ बजेतक पुष्य रात्रिशेष ५।३२ बजेतक	२६ ,,	मूल रात्रिशेष ५।३२ बजेसे।
षष्ठी सायं ४।५७ बजेतक	शनि	आश्लेषा ,, ५।१६ बजेतक	२७ ,,	भद्रा सायं ४।५७ बजेसे, रात्रि ३।५१ बजेतक, सिंहराशि रात्रिशेष ५।१६ बजेसे।
सप्तमी दिनमें २।४६ बजेतक	रवि	मघा रात्रिमें ३।४१ बजेतक	२८ ,,	मूल रात्रिमें ३।४१ बजेतक, कालभैरवाष्टमी।
अष्टमी दिनमें १२।२७ बजेतक	सोम	पू० फा० ,, २।१ बजेतक	२९ ,,	× × × ×
नवमी ,, १०।५ बजेतक	मंगल	उ०फा० ,, १२।२१ बजेतक	३० ,,	भद्रा रात्रिमें ८।५४ बजेसे, कन्याराशि प्रातः ७।३७ बजेसे।
दशमी प्रातः ७।४४ बजेतक एकादशी रात्रिशेष ५।२९ बजेतक	बुध	हस्त ,, १०।४५ बजेतक	१ दिसम्बर	भद्रा प्रातः ७।४४ बजेतक, उत्पन्नाएकादशीव्रत (स्मार्त्त)।
द्वादशी रात्रिमें ३।२६ बजेतक	गुरु	चित्रा ,, ९।२० बजेतक	२ ,,	तुलाराशि दिनमें १०।३ बजेसे, उत्पन्नाएकादशीव्रत (वैष्णव)।
त्रयोदशी ,, १।३८ बजेतक	शुक्र	स्वाती ,, ८।७ बजेतक	३ ,,	भद्रा रात्रिमें १।३८ बजेसे, प्रदोषव्रत, ज्येष्ठा नक्षत्रमें सूर्य दिनमें २।५२ बजेसे।
चतुर्दशी ,, १२।९ बजेतक	शनि	विशाखा ,, ७।१५ बजेतक	४ ,,	भद्रा दिनमें १२।५३ बजेतक, वृश्चिकराशि दिनमें १।२८ बजेसे मासशिवरात्रिव्रत।
अमावस्या ,, ११।६ बजेतक	रवि	अनुराधा ,, ६।४३ बजेतक	५ ,,	स्नान-दान, श्राद्धकी अमावस्या, मूल सायं ६।४३ बजेसे।

सं० २०६७, शक १९३२, सन् २०१०, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १०।३० बजेतक	सोम	ज्येष्ठा रात्रिमें ६।३८ बजेतक	६ दिसम्बर	धनूराशि रात्रिमें ६।३८ बजेसे।
द्वितीया ,, १०।२२ बजेतक	मंगल	मूल ,, ७ बजेतक	७ ,,	मूल रात्रिमें ७ बजेतक, चन्द्रदर्शन।
तृतीया ,, १०।४७ बजेतक	बुध	पू० षा० ,, ७।५४ बजेतक	८ ,,	मकरराशि रात्रिमें २।१५ बजेसे।
चतुर्थी ,, ११।४४ बजेतक	गुरु	उ०षा० ,, ९।१८ बजेतक	९ ,,	भद्रा दिनमें ११।१६ बजेसे रात्रि ११।४४ बजेतक, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी ,, १।८ बजेतक	शुक्र	श्रवण ,, ११।१० बजेतक	१० ,,	श्रीरामविवाह।
षष्ठी ,, २।५६ बजेतक	शनि	धनिष्ठा ,, १।२४ बजेतक	११ ,,	कुम्भराशि दिनमें १२।१७ बजेसे, पंचकारम्भ दिनमें १२।१७ बजेसे श्रीस्कन्दषष्ठीव्रत, चम्पाषष्ठीव्रत (महाराष्ट्र)।
सप्तमी रात्रिशेष ४।५९ बजेतक	रवि	शतभिषा ,, ३।५३ बजेतक	१२ ,,	भद्रा रात्रिमें ४।५९ बजेसे।
अष्टमी अहोरात्र	सोम	पूर्वाभाद्रपद ,, शेष ५।२९ बजेतक	१३ ,,	भद्रा रात्रिमें ६।४ बजेतक, मीनराशि रात्रि ११।५० बजेसे।
अष्टमी प्रातः ७।१० बजेतक	मंगल	उत्तरा भाद्रपद अहोरात्र	१४ ,,	महानन्दा नवमीव्रत।
नवमी दिनमें ९।१७ बजेतक	बुध	उत्तरा भाद्रपद दिनमें ९।३ बजेतक	१५ ,,	मूल दिनमें ९।३ बजेसे।
दशमी ,, ११।९ बजेतक	गुरु	रेवती ,, ११।२३ बजेतक	१६ ,,	भद्रा रात्रिमें ११।५६ बजेसे मेषराशि दिनमें ११।२३ बजेसे, धनु संक्रान्ति मूल नक्षत्रमें सूर्य सायं ४।४३ बजे, खरमासारम्भ, पंचक समाप्त दिनमें ११।२३ बजे।
एकादशी दिनमें १२।४३ बजेतक	शुक्र	अश्विनी ,, १।२५ बजेतक	१७ ,,	मूल दिनमें १।२५ बजेतक, गीता-जयन्ती, भद्रा दिनमें १२।४३ बजेतक, मोक्षदाएकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी ,, १।४७ बजेतक	शनि	भरणी ,, २।५९ बजेतक	१८ ,,	वृषराशि रात्रिमें ९।१५ बजेसे, शनिप्रदोषव्रत।
त्रयोदशी ,, २।२३ बजेतक	रवि	कृत्तिका सायं ४।६ बजेतक	१९ ,,	× × × ×
चतुर्दशी ,, २।२७ बजेतक	सोम	रोहिणी ,, ४।४२ बजेतक	२० ,,	भद्रा दिनमें २।२७ बजेसे रात्रि २।१४ बजेतक, मिथुनराशि रात्रिशेष ४।४५ बजेसे, व्रत-पूर्णिमा, पिशाचमोचन यात्रा, कपर्दीश्वरदर्शन, दत्तात्रेय-जयन्ती।
पूर्णिमा ,, २।१ बजेतक	मंगल	मृगशिरा ,, ४।४८ बजेतक	२१ ,,	स्नान-दानादिकी-पूर्णिमा।

कृपानुभूति

[सच्ची दैवी घटना]

प्रत्येक मानवहृदय बच्चोंकी किलकारी सुननेके लिये लालायित रहता है; फिर उस घरमें, जहाँ कि कई वर्षोंके पश्चात् बच्चेकी चहक सुनायी दी हो।

लगभग नौ या दस वर्षोंसे मेरे घरमें कोई छोटा बच्चा न था। कई वर्षोंकी प्रतीक्षाके पश्चात् मेरे घरमें नाती (लड़कीका लड़का) अशोकका जन्म हुआ। वही सबकी ममताका केन्द्रबिन्दु बना और दुलारका अधिकारी भी। कई वर्षोंके पश्चात् घरमें एक आशाका दीप आलोकित हुआ, सारा घर पुलकित हो उठा। जिस प्रकार किसी अन्धकारपूर्ण घरमें यदि एक ही दीपक होता है तो लोग उसे आँधी और तूफानके भयसे अपने अंचलमें छिपानेका प्रयत्न करते हैं और यदि कहीं आँधीका तीव्र झोंका दीपककी लौको प्रकम्पित कर देता है तो सभीको घरके पूर्व अन्धकारका स्मरण हो जाता है, सभी दुःखित होने लगते हैं और उसकी बढ़ती हुई ज्योति देखकर सभीको हर्ष होता है। वही अवस्था मेरे घरकी भी हुई। घरका प्रत्येक व्यक्ति उसीका मुख निहारा करता, मानो परिवारका सुख-दुःख उसीमें केन्द्रीभूत हो गया हो और वास्तविकता भी थी। जब वह अपने घर चला जाता, तब घरमें असीम निस्तब्धता हो जाती; क्योंकि घर उसीकी तोतली बोलीसे मुखरित होता रहता था।

२९ नवम्बर सन् १९५४ ई०की बात है जबकि वह अपने घर उन्नाव था, उसी दिन किसी आवश्यक कार्यसे मैं लखनऊ चला गया था। घरपर था मेरा लड़का, लड़की और मेरी पत्नी। यद्यपि मैं उसी दिन लौट आनेवाला था। फिर भी मेरे आनेसे पूर्व ही उन्नावसे तार आया। तारसे मालूम हुआ कि मेरा अशोक अधिक चिन्ताजनक अवस्थामें है। मैं लखनऊमें था ही, घरपर हलचल मच गयी। लड़कीको नौकरके सहारेपर छोड़कर मेरा लड़का अपनी माँको साथ लेकर उन्नावके लिये रवाना हो गया। मैं जब लखनऊसे लौटकर आया और तार देखा तो अधिक व्याकुलता हुई। प्रातःकाल एक और तार मिला, जिससे मालूम हुआ कि वह छतसे गिर पड़ा है और अवस्था शोचनीय है। शामको मैं अपनी लड़कीके साथ उन्नाव जा पहुँचा। स्टेशनपर मेरा लड़का मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। उससे मालूम हुआ कि अशोक दस फीट ऊँची छतसे सिरके बल गिर पड़ा है, अभी होश नहीं आया। मैं सीधे अस्पताल ही गया। अशोककी अवस्था देखकर बरबस नेत्रोंमें अश्रु आ गये। डॉक्टरोंके विचार सुनकर और भी व्याकुलता बढ़ी। उनका विचार था कि बच्चेका बचना कठिन ही नहीं, वरं असम्भव है। वहाँके सिविल सर्जनका विचार था कि यदि बच्चेको ३६ घंटेमें होश आ जाता है तो बचनेकी आशा की जा सकती है, किंतु यदि ३६ घंटेमें होश नहीं आता तो ईश्वरके हाथमें है।

अशोकके होशमें आनेकी प्रतीक्षा की जाने लगी; किंतु ३६ घंटेके स्थानपर ४८ घंटे निकल गये, उसे होश न आया। डॉक्टरोंकी समझमें ही नहीं आता था कि क्या किया जाय। हमलोगोंने भी कोई कोर-कसर बाकी न रखी। सभी देवी-देवताओंकी मान्यताएँ मानी गयीं, किंतु उसकी अवस्थामें कोई सुधार दृष्टिगत नहीं हुआ। धीरे-धीरे उसकी अवस्था गिरती ही गयी और बुखार बढ़ता गया। बुखार कम करनेके लिये बर्फ भी रखी जाती, पर कोई अन्तर न पड़ता। माघ-पूसका महीना था, जाड़ा अधिक पड़ रहा था। सभी गरम रजाइयोंमें लिपट जानेके लिये इच्छुक थे, किंतु हमलोगोंको सर्दीका लेशमात्र भी अनुभव न होता था। सभीकी यही इच्छा थी कि किस प्रकार इसकी व्यथा अपने ऊपर ले ली जाय, जिससे अशोक स्वस्थ हो जाय; किंतु किसीकी भी कोई युक्ति न चली।

आखिर उसकी अवस्था अधिक शोचनीय हो गयी,

उसे रह-रहकर दौरे-से आते और चीखकर हाथ-पैर ऐंठने लगते। उसकी यह अवस्था देखकर सभी लोगोंकी व्याकुलता और अधिक बढ़ी। हमलोग उससे पुनः मिलनेकी आशा छोड़ बैठे। जगमगाता दीपक तिमिर बटोरने लगा, ज्योति धुँधली पड़ने लगी, परिवारका भविष्य अन्धकारमय प्रतीत होने लगा। हमलोग अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे एकटक उसकी ओर देखते रहे और प्रभुका स्मरण करते रहे। भगवान्‌की शक्तिके सम्मुख एक असहाय मानवकी सफलता असम्भव है, अतः हमलोग उसी सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् परमात्माके सहारे अशोकको छोड़ चुके थे।

उसकी यह अवस्था राततक चलती रही। दो बजेके लगभग उसे कुछ नींद आ गयी और दौरोंका जोर कम हो गया। मैंने भी उसकी बर्फकी टोपी बर्फसे भरकर उसके सिरपर रख दी। बच्चेको चैनसे सोते देखकर सभीको कुछ-कुछ नींद आने लगी; क्योंकि सभी थके थे। जब प्रातःकाल मैं कमरेसे बाहर निकला तो एक मुसलमान युवतीने, जो कि अपने पेटकी चिकित्साके लिये आयी थी, मुझे निकलते देखकर पूछा—'बच्चेका क्या हाल है?' मैंने भी उसकी उस समयकी अवस्थाके अनुसार कह दिया—'अभी तो आरामसे सो रहा है, रातको दो बजेके बादसे कोई दौरा भी नहीं आया।' तब वह रातमें घटी हुई एक घटनाका वर्णन करने लगी। उसने कहा—'रातके लगभग ढाई बजे, जबकि मेरे पेटमें अधिक दर्द हो रहा था और मैं उठ बैठी थी, तब आपके दरवाजेपर एक साधुजी जिनकी सफेद दाढ़ी उनकी नाभितक लटक रही थी और हवाके झोंकेसे कभी-कभी फहराने लगती थी, उन्नत ललाट और एक अतीव आभा जिनमें दृष्टिगोचर हो रही थी, शरीरपर केवल एक अचला और पैरमें खड़ाऊ थे। पहले मैं कुछ संकुचित हुई और मैंने समझा कि इनके घरका कोई मरीज पड़ा होगा, परंतु बादमें उनसे पूछा कि क्या आप रोगीको देखना चाहते हैं, किंतु वे कुछ न बोले। तो मैंने फिर पूछा कि क्या मैं पुकार दूँ, किंतु उनपर कोई असर न हुआ और दरवाजेके पास खड़े रहे। जब मैं उठकर खड़ी हुई और सोचा कि आपको पुकार दूँ तो वे अस्पतालके पिछवाड़ेकी ओर, जिधर कोई रास्ता नहीं है, चल पड़े। मैं भी उनके पीछे गयी कि देखें कहाँ जाते हैं, कुछ दूर जाकर देखा कि वे दीवालके पास जाकर गायब हो गये!'

उसी सुबह जब मैं यह घटना सुनकर गया, तभी अशोककी निद्रा भंग हुई और उसे होश आया। होश आते ही उसने कहा—'पानी दो जल्दीसे।' उसकी तोतली बोली सुननेके लिये सभी लालायित थे। उसका पानी माँगना सुनकर सभी प्रसन्नतामें झूम उठे। उसी दिन डॉक्टर भी 'out of danger' (खतरेसे बाहर) लिख गये और कहा—'मुंसरिम साहब! अब आपका नाती बच गया।' मैं भाव-विह्वल हो गया और जो डॉक्टरके मुखसे सुनना चाहता था, वही सुन लिया।

अशोकका यह पुनर्जन्म सभीको याद रहेगा। और सबसे अधिक यह दैवी घटना, जिसने कि ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वासको और भी पुष्ट कर दिया। इस घटनाने सबसे अधिक उनपर असर किया, जो ईश्वरको कुछ मानते ही न थे; वे भी कहने लगे कि—

'जाको राखै साइयाँ मारि सके ना कोय।'

यदि इस घटनाको मनगढ़ंत मान लिया जाय, फिर भी विश्वास नहीं किया जा सकता कि ऐसी घटना मनगढ़ंत भी हो सकती है; क्योंकि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमलोग अपने सम्मुख देख रहे थे। उस मुसलमान युवतीको यदि यह मनगढ़ंत ही करना था तो वह अपने किसी पीर-औलिया या मुल्लाका स्वरूप वर्णन करती, न कि एक हिंदू दिव्यात्माका। फिर एक अपरिचित युवतीको मनगढ़ंत करनेका तात्पर्य ही क्या था। खैर, कुछ भी हो और कोई भी हों। वे थे एक दिव्यात्मा ही और दैवी शक्तिके स्वरूप ही।

उसी दिनसे अशोकके स्वास्थ्यमें सुधार होने लगा और कुछ सप्ताहोंके पश्चात् पूर्ण स्वस्थ होकर वह पुनः फुदकने लगा। धन्य है ईश्वरकी महिमा!

—कन्हैयालाल शुक्ल 'मुंसरिम'

पढ़ो, समझो और करो

(१)

बुरे समयमें मदद

मेरे पिताजीका ९६ वर्षकी आयुमें १६ दिसम्बर सन् २००९ ई० को निधन हो गया था। धार्मिक कृत्यों एवं सामाजिक परम्पराओंको पूरा करके मैं १६ जनवरी सन् २०१० ई० की दोपहरको अपनी एवं छोटे भाईकी पत्नीको लेकर अपने पैतृक गाँव पाँचेटिया (जिला—पाली, राजस्थान)-से कारद्वारा ५० कि०मी० दूरस्थित अपने शहरके निवास-स्थान पाली आ रहा था। पालीसे करीब २५ कि०मी० पहले मुझे कारके निचले हिस्सेसे कुछ अनजानी-सी आवाज सुनायी देने लगी। मुझे लगा कि गाड़ीमें कुछ गड़बड़ हो गयी है, किंतु एकाएक विश्वास भी नहीं हो रहा था। अतः कुछ मिनटोंतक गाड़ी चलाता रहा, अन्ततः नीचे उतरकर देखा तो गाड़ीके अगले पहियेमें पंचर हो चुका था। मुझे क्षणिक चिन्ता हो गयी, कार रखनेके पिछले १० वर्षोंमें बीच रास्तेमें सुनसान जगहपर पंचर होनेकी यह पहली घटना थी। ६२ वर्षकी उम्र एवं भारी शरीर होनेसे मुझे यह भी पता था कि स्वयं टायर बदलना मेरे लिये सम्भव नहीं है। साथमें दो स्त्रियाँ भी थीं, जिससे और भी परेशानी महसूस हो रही थी। अब क्या होगा? कौन मददमें आयेगा? कब पाली पहुँचेंगे—यही विचार मेरे मनमें बार-बार आ-जा रहे थे कि उन्हीं क्षणोंमें पालीकी ओरसे आता हुआ पानीका टैंकर लिये एक ट्रैक्टर पाससे गुजरा, जिसे २०-२५ वर्षका एक युवक चला रहा था; मैंने उस युवकको रुकनेके लिये इशारा किया। उसने मेरी परिस्थिति समझकर तुरंत टैंकर रोक दिया एवं मेरी मददके लिये आ गया। उसने मुझसे टायर बदलनेका सामान लेकर स्वयं टायर बदल दिया। मेरी अवस्था देखते हुए उस सज्जन युवकने इस कार्यमें मुझसे कोई मदद भी नहीं माँगी। सब घटनाक्रम १५ से २० मिनटमें पूरा हो गया एवं गाड़ी फिरसे चलनेकी अवस्थामें आ गयी। इस घटनाने मुझे भाव-विभोर कर दिया। मैंने मन-ही-मन उस व्यक्तिका बहुत आभार माना। मेरे पूछनेपर उसने अपनेको पासके गाँवका रहनेवाला बताया। कृतज्ञताके भावसे मैं उस युवकको इनामके रूपमें कुछ रुपये देने लगा, किंतु उसने अस्वीकार करते हुए कहा कि मैंने यह कार्य आपकी निःस्वार्थ भावसे मदद करनेके उद्देश्यसे किया है एवं पहले भी इस प्रकार बुरे समयमें लोगोंकी मदद करता रहा हूँ, इसपर मैंने उसे समझाया कि मैं यह पैसा आपको मजदूरीकी भावनासे नहीं दे रहा हूँ बल्कि तुम्हारी नेक भावनाको पुरस्कृत कर रहा हूँ, पर फिर भी उसने उसे स्वीकार नहीं किया।

तब मैंने कहा—आजके सभ्य कहे जानेवाले युगमें जब लोग अपना एक क्षण भी दूसरेकी मददमें नहीं देना चाहते हैं, तब आपने अपना कार्य रोककर मेरी इस कठिन परिस्थितिमें निःस्वार्थभावसे मदद की है। अतः मैं आपको यह राशि कृतज्ञतास्वरूप देना चाहता हूँ, इसपर उस व्यक्तिने कहा कि आप मुझे पाँच रुपये दे दीजिये। तब मुझे यह भी मालूम हुआ कि यह व्यक्ति लालचकी आदतसे कोसों दूर है। मैंने एक बार पुनः आग्रह किया तो मेरी तीव्र भावनाको समझकर विवश होकर उसने मेरी सम्पूर्ण भेंट स्वीकार की। अन्तमें मैंने अपना परिचय दिया ताकि भविष्यमें आपसमें फिर मिल सकें और तदुपरान्त हम अपने-अपने स्थानोंके लिये रवाना हो गये।

रास्तेमें विचार आया कि ईश्वरने समाजमें बुरे व्यक्तियोंके साथ-साथ प्रचुर संख्यामें अच्छे इन्सान भी पैदा किये हैं, जो बुरे वक्तमें दूसरोंकी मदद करनेकी भावना रखते हैं। आनुवंशिकी विषयके वैज्ञानिक होनेके नाते मुझे लगा कि प्रचलित वैज्ञानिक दृष्टिकोण एक बार फिर कसौटीपर खरा उतरा कि मानव-स्वभावमें प्राकृतिक विविधता होती है तथा बुराई या भलाई करनेकी आदत भी कुछ अंशतक आनुवंशिक गुणके रूपमें विद्यमान रहती है, जो उचित वातावरण पाकर भला या बुरा कार्यकर अभिव्यक्त होती है।

इस छोटी-सी घटनाने मुझे एक बार पुनः मानव-स्वभावको समझनेका अवसर दिया। मैंने इस मददके लिये भगवान्‌को भी धन्यवाद दिया एवं तय किया कि प्रबुद्ध पाठकोंकी जानकारी-हेतु यह घटना मैं कल्याणमें प्रकाशन हेतु प्रेषित करूँगा।—**डॉ० महादेव आढ़ा**

(२)

कर्जदारसे शरम

श्रीरामतनु लाहिड़ीकी बहुत-सी जीवनियाँ लिखी जा चुकी हैं। उनके जीवनकी अनेक घटनाएँ शिक्षाप्रद हैं। कहते हैं एक बार वे कलकत्तेकी एक सड़कपर अपने एक मित्रके साथ चले जा रहे थे। एकाएक उन्होंने एक गलीके मोड़पर अपने मित्रकी बाँह पकड़ ली और उसे साथ लिये एक गलीमें झपाटेके साथ घुस गये। जल्दी-जल्दी कदम रखते हुए वे चलते रहे और उस समयतक नहीं रुके, जबतक पीछे देखकर उन्होंने यह निश्चय न कर लिया कि उनका पीछा तो नहीं किया जा रहा है। उनके मित्र उनकी यह हरकत देखकर बहुत चकित हुए और कुछ समयतक तो उनके मुँहसे बोलतक न निकला। अन्तमें उन्होंने पूछा कि उनके इस प्रकार घबराकर दौड़ पड़नेका क्या कारण था?

रामतनु बाबूने अबतक अपने मित्रका हाथ छोड़ दिया था। दिमाग भी ठीक-ठिकाने आ गया था। उन्होंने कहा—ओह, मैंने एक आदमीको देखा था। वह दूरसे निश्चय ही हमलोगोंकी ओर आता दिखायी दे रहा था।

लेकिन इससे क्या? उससे बचकर भागनेकी ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी और वह भी इतने विचित्र ढंगसे? आपको उससे ऐसा डर ही क्या था?

असल बात यह है—रामतनु बाबूने कहा कि वह आदमी बहुत अरसेसे मेरा कर्जदार है। धन तो बहुत ज्यादा नहीं है, परंतु वह उसे वापस करनेमें असमर्थ है। किंतु उससे बचकर इस तरह भागनेका यह तो कोई कारण नहीं है। उनके मित्रने उन्हें टोककर पूछा।

'कारण तो है। रामतनु बाबू बोले—समझो जरा, यदि हम दोनोंकी भेंट हो जाती तो हम दोनोंको ही एक-दूसरेके सामने पड़नेसे शरम आती और बेचैनी महसूस होती। वह तुरंत मुझसे क्षमा माँगता और धन लौटानेका ऐसा वादा करता, जो वह कभी भी पूरा नहीं कर सकता था। असलमें ऐसे ही वादे वह पीछे करता भी रहा है। अब मैं यह चाहता था कि न तो वह लज्जित हो और न उसे मेरे कारण फिरसे झूठ भी बोलना पड़े।'

'किंतु इससे तो अच्छा यही था कि उससे आप कह देते कि आपने कर्ज छोड़ ही दिया और इस तरह सारा मामला ही हल हो जाता।' मित्रने कहा।

'शायद मैं यही करता भी, रामतनु बाबूने कहा—'परंतु फिर मुझे यह खयाल आया कि मेरे ऐसा करनेसे उसके आत्मसम्मानको चोट लगेगी। इससे बेहतर मैंने यही सोचा कि उसके सामने ही न पड़ा जाय। इससे उसका यह आत्मसम्मान बना रहेगा कि उसपर किसीका कर्ज तो चाहिये और वह उसे अवसर आनेपर अवश्य लौटा देगा। कभी-कभी आदमीका भ्रम बने रहनेसे भी उसका आत्मविश्वास नष्ट नहीं होता।'

उनके मित्र यह देखकर दंग रह गये कि रामतनु बाबूमें दूसरोंकी भावनाओंका खयाल रखनेकी कितनी क्षमता है। उनका तो यहाँतक खयाल था कि इस संसारके भीतर शायद ही इतनी सुकोमल भावनाएँ रखनेवाला दूसरा आदमी मिल सके। निश्चय ही रामतनु बाबू-जैसे मनुष्य इस धरतीपर जल्दी दिखायी नहीं देते। ('पराग')

—वल्लभदास बिनानी

(३)

अभी भी ईमानदारी जिन्दा है

यह घटना मार्च, २००९ ई० की है। हम सपरिवार दिल्लीसे नोयडा एक शॉपिंग सेन्टरमें गये थे। मेरी नवविवाहिता बेटी एवं दामाद भी हमारे साथ थे। शामका समय था, अँधेरा हो रहा था। हम एक बेंचपर बैठे थे। बेटीके हाथमें मोबाइल फोन था, जिसकी कीमत १६००० रुपये थी। चलते समय मोबाइल वहीं बेंचपर छूट गया। हमलोग वहाँसे कारमें दिल्ली वापस आ रहे थे। काफी दूर आनेके बाद अचानक बेटीको ध्यान आया कि मोबाइल उसके हाथमें नहीं है। हमने कारमें एवं सारे सामानमें अच्छी तरहसे खोजा, पर मोबाइल न मिला। हमने दूसरे मोबाइल फोनसे उस फोनमें रिंग किया। घण्टी बज रही थी, लेकिन कोई उठा नहीं रहा था। बहुत बार रिंग इसलिये नहीं किया कि घण्टीकी आवाज सुनकर कोई गलत आदमी न उठा ले। हम सब बहुत घबरा गये; क्योंकि महँगा फोन होनेके अलावा उसके अन्दर और भी बहुत सारी विशेष जानकारियाँ थीं। भगवान् श्रीरामको स्मरण करते हुए हमने निर्णय लिया कि उसी जगहपर दुबारा जाकर देखते हैं।

वहाँ जाकर ढूँढ़नेमें मोबाइल कहीं नजर नहीं आया। दूसरे फोनसे घण्टी बजायी, तब घण्टी तो बजी, लेकिन

कहाँ बजी, यह नहीं पता चल रहा था। कोई बोल भी नहीं रहा था। हमारी परेशानी और भी बढ़ गयी। इतनेमें उस शॉपिंग सेन्टरका गार्ड पास आया और पूछने लगा, क्या खोज रहे हैं? जब उसे बताया कि हमारा मोबाइल खो गया है तो उसने अपनी जेबसे फोन निकाला और कहा कि क्या यही है? जब हमने हाँ कहा तो उस गार्डने बताया कि एक सज्जन व्यक्ति उसे दे गये थे और कह गये थे कि कोई पूछने आये तो उसको दे देना। उन दोनों सज्जनोंकी महानता एवं ईमानदारीसे हमारा इतना बड़ा नुकसान होते बचा।

आज कलियुगमें भी ऐसे ईमानदार सज्जन इस संसारमें हैं। हमने परम प्रभु परमात्माका हार्दिक धन्यवाद करते हुए उन दोनों सज्जनोंकी ईमानदारीका सादर अभिवादन किया। जब भी हम इस घटनाको याद करते हैं तो स्वतः ही उन सज्जनोंके प्रति नतमस्तक हो जाते हैं। भगवान् उनको सभी प्रकारका सुख प्रदान करे।—**जगदीश चांदना**

(४)

भगवान् श्रीरामने प्रार्थना सुनी

घटना सन् १९८१ ई०की है। मैं जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुरमें अध्यापनका कार्य करता था। मेरी नियुक्ति केन्यामें नैरोबी विश्वविद्यालयमें हुई। मैंने अक्टूबरमें नैरोबी पहुँचकर कार्यभार सँभाला। नियुक्तिकी शर्तोंके अनुसार मुझे एवं मेरे पूरे परिवारके पाँचों सदस्योंको हवाई सफरकी आने-जानेकी टिकटें मिली थीं। पहली बार नैरोबी जाते समय मैं अकेला ही गया। मेरी पत्नी तथा बच्चे ७-८ महीनेके बाद आनेवाले थे।

जून १९८२ ई०में मैंने अपने परिवारको नैरोबी बुलाया। परंतु नैरोबी हवाई अड्डेसे उनके बाहर निकलनेके लिये मुझे केन्यासरकारके विदेश मन्त्रालयसे चार आश्रित पास चाहिये थे। वे वहाँ कार्यरत लोगोंके परिवारके आनेपर सबको देते थे। परिवारके आनेसे दो दिन पूर्व मैं विदेश मन्त्रालय गया और आश्रित पास माँगे। उन्होंने आश्रित पास देनेसे पहले मेरा विवाहका कोर्टसे प्राप्त सर्टीफिकेट माँगा। उनको मैंने स्पष्टीकरणमें यह कह दिया कि भारतमें ९९ प्रतिशत विवाह कचहरीमें नहीं, बल्कि धार्मिक विधिसे सामाजिक मर्यादाके अनुसार होते हैं। तब उनका जवाब यह था कि जितने दूसरे भारतीय यहाँ आये हुए हैं, उनके पास कचहरीद्वारा दिये गये इस प्रकारके सर्टीफिकेट क्यों हैं? आपके पास क्योंकि विवाहका उपयुक्त दस्तावेज नहीं है, अतः हम यहाँके नियमोंके अनुसार आपको आश्रित पास नहीं देंगे। मैंने अन्य दलीलें दीं, लेकिन वे सब व्यर्थ निकलीं। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि इससे अधिक हम कुछ नहीं कर सकते। आपको कुछ कहना है तो आप कल आकर सचिव महोदयसे मिलिये। इसी बीच मेरा परिवार जोधपुरसे बम्बईके लिये ट्रेनद्वारा रवाना हो चुका था।

ऐसी स्थितिमें मैंने पहली बार यह महसूस किया कि पैरोंके नीचेसे धरती कैसे खिसकती है? बचपनसे ही मेरे संस्कार ऐसे रहे हैं कि मैं हमेशा रामनामका जप किया करता हूँ। इस घटनाने मुझे झकझोर दिया। मैं थका हुआ अपने निवासपर आया। उस रात मैंने खाना नहीं खाया। मुझे केवल एक ही डर सता रहा था कि यदि मेरी पत्नी एवं तीन बच्चे नैरोबी पहुँच जाते हैं तो मैं उन्हें बाहर कैसे लाऊँगा? दूसरे दिन सुबह मैं समयपर पुनः विदेश विभागमें सचिव महोदयसे मिलने गया। जानेसे पूर्व मैंने अपने आराध्य श्रीरामका ध्यान किया और प्रार्थना की कि यह वह समय है जब मुझे आपकी कृपा चाहिये। मन मजबूत करके मैं सचिवसे मिला। मैंने ईश्वरके नामकी शपथ खाते हुए यह कहा कि मैं जो कह रहा हूँ, वह पूर्णतया सत्य है। इसपर सचिवने कहा कि पासमें ही केन्या उच्चन्यायालय है, वहाँ जाकर कोई वकील कर लीजिये और कोर्टमें शपथपत्र दीजिये। केवल केन्या उच्चन्यायालय ही इसे निपटायेगा। मेरे पास एक दिनका समय था। मैं दुःखी मनसे सचिवके कमरेसे बाहर आया। लेकिन उस समय मेरे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा, जब बाहर वे ही व्यक्ति जिन्होंने पहले दिन मुझे आश्रित पास देनेसे मना किया था, चार आश्रित पास लिये खड़े थे। उन्होंने मुझसे इतना ही कहा कि ये आपके पास हैं, गिन लीजिये। मैं क्या कहता? दंग रह गया। प्रभु श्रीराम इतनी कृपा करते हैं, मुझे यह पहले पता नहीं था। मेरी स्थिति ऐसी हो गयी कि मैं सात मंजिलके मकानसे लिफ्टद्वारा न उतरकर सीढ़ियोंसे उतरा और बार-बार प्रभुका स्मरण करता रहा।—**रामलाल शर्मा**

मनन करने योग्य

जीवनका अन्तिम सत्य है मृत्यु

इस संसारमें सभी कुछ परिवर्तनशील है। इस समय जो कुछ है, उसमें अगले क्षण ही कुछ भी परिवर्तन हो सकता है। एक निर्धन व्यक्ति धनवान् हो सकता है और अत्यन्त धनवान् व्यक्ति निर्धन हो सकता है। एक पूर्ण स्वस्थ व्यक्तिकी अचानक मृत्यु हो सकती है और मरणासन्न व्यक्ति भी लम्बे समयतक जीवित रह सकता है, किंतु अन्ततोगत्वा उसकी भी मृत्यु होती है। देश, काल, बुद्धि-चातुर्य आदिसे किन्हीं भी स्थितियोंको बदला भी जा सकता है, किंतु जीवनका अन्तिम सत्य है मृत्यु; उसे टाला नहीं जा सकता है, वह तो अवश्यम्भावी है। संसारके सबसे अधिक समृद्ध या सर्वोच्च सत्तासम्पन्न व्यक्ति भी मृत्युसे मुक्ति पानेमें समर्थ नहीं हैं।

ईश्वरीय विधानमें जन्मके साथ मृत्युका अनिवार्य योग निश्चित है। विद्वान् सन्तोंका कहना है कि मृत्युकी भी उपयोगिता है और ईश्वरने मृत्युका विधान रचकर प्राणिमात्रपर बड़ा उपकार किया है। यदि मनुष्यको मृत्युका भय नहीं रहा होता तो वह कभी बुरे कार्योंसे बचनेका प्रयास नहीं करता, उसके पाप पराकाष्ठातक पहुँच जाते, वह ईश्वरके प्रति भक्तिभावना नहीं रखता, वह सदैव यही सोचता कि मैं तो मृत्युसे भी परे हूँ, अमर हूँ, मैं असीमित वर्षोंतक जो भी चाहूँ करता रह सकता हूँ। मृत्युका भय ही उसे दुष्कर्मोंकी ओर जानेसे रोकता है, न जाने कब मृत्यु आ जाय—इस चिन्तनके कारण अच्छे कार्योंको करनेके लिये प्रेरित करता है।

एक बहुत बड़े सन्त थे, कुछ वर्षपूर्व उनका शरीर शान्त हुआ था। जब उनका जन्म हुआ, तब उनकी कुण्डली देखकर अनेक ज्योतिषियोंने यह कहा था कि १९ वर्षकी आयुमें इनकी मृत्यु हो जायगी। इसी कारण घरवालोंने उनका बहुत शीघ्र विवाह कर दिया और सन्तान भी हो गयी, जिससे वंश चलता रहे। उनको भी इस बातका भान हो गया था कि कुछ ही समय बाद उनकी मृत्यु हो जायगी, इसलिये वे चिन्तित और अनमने-से रहने लगे। कभी वे सोचते कि जंगलमें चले जायँ, कभी सोचते कि घर-बार छोड़कर साधु हो जायँ। इसी बीच उनकी एक सन्तसे भेंट हुई। उन्होंने कहा कि मृत्युको तो टाला नहीं जा सकता है, किंतु तुम्हारे मनमें मृत्युका जो भय समा गया है, उससे मुक्ति मिल सकती है। सन्तने उन्हें भगवान्‌के प्रति भक्तिके लिये प्रेरित किया और कहा कि आत्मा अजर-अमर है, ईश्वरका अंश है। मृत्यु तो शरीरकी होती है, आत्मा कभी नहीं मरती। जब उन्हें इस यथार्थका ज्ञान हुआ तो उन्हें मृत्युका भय नहीं रहा।

श्रीरवीन्द्रनाथ टैगोरने लिखा है कि मौत तो एक मीठी नींद है। जैसे नींदके समय आदमी सब कुछ भूल जाता है, वैसे ही मृत्युके समय भी आदमी सब कुछ भूल जाता है। सोते समय यह ख्याल रहता है कि सुबह जब हम उठेंगे तो हमको हमारी बनी-बनायी दुनिया मिल जायगी, किंतु मृत्युके समय ख्याल रहता है कि वह हमें नहीं मिलेगी। इसलिये लोग अपनी बनायी दुनियाके छूटनेसे, धन-दौलत-कुर्सीके छूटनेसे, पुत्र-पौत्रादिके छूटनेसे और जिस शरीरमें मैं-मेरा है, उस शरीरके छूटनेसे दुःखी होते हैं। परंतु हमारा चिन्तन यह हो कि मृत्युके पश्चात् जब हमारी शवयात्रा निकले तो उसमें बहुत बड़ी संख्यामें लोग हों और यदि हमने जीवनमें दूसरोंके साथ परोपकार किया है, अभावग्रस्तकी यथासम्भव सहायता की है, दूसरोंके दुःख-दर्दको बँटाया है, सत्कार्योंमें सहायता की है तो लोग हमारी सेवाओंका स्मरण करें और यदि उनके मनमें मृत्युका शोक हो तो हमारी यह मृत्यु सैकड़ों जन्मोंसे श्रेष्ठ होगी। यदि शवयात्रामें लोग बुराई करें, मन-ही-मन प्रसन्न हों, अपने परिवारमें कहें कि और पहले मर जाता तो अच्छा था, तब निश्चय ही मृत्युसे पूर्वका जीवन भी निकृष्ट माना जाना चाहिये। इसलिये मृत्युका भय नहीं मानें और मृत्यु आनेसे पूर्वतकका हर क्षण अच्छे कार्योंमें लगायें।—**मोहनस्वरूप भाटिया**

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०६६ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०६७ तक रही है)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे नाम-स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या ८३,२१,५२,००० (तिरासी करोड़, इक्कीस लाख, बावन हजार)

(ख) नाम-संख्या १३,३१,४४,३२,००० (तेरह अरब, इकतीस करोड़, चौवालीस लाख, बत्तीस हजार)

(ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर कैलिफोर्निया, फ्रामिंघम, मिडिलटाउन, यू०के०, यू०एस०ए०, यूनाइटेड किंगडम आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंचरवाड़ी, अंबाजोगाई, अंबाला कैंट, अंबाला छावनी, अँवरी, अकबरपुर, अकलतरा, अकलेरा, अकोट, अकोड़ा, अकोदियामण्डी, अकोला, अगनापारा, अगराना, अचलगंज, अचौसा, अछरेरा, अछल्दा, अजबपुरा, अजमेर, अजीतगंज, अटरिया, अटिटैरियाटोला (मौजे), अटेलीमंडी, अठहठा, अठारह गुड्डी, अडावद, अतरपुरा, अनपरा, अनसुसी, अनूपपुर, अन्नानगर (वेस्ट), अफजलपुर, अबरोलनगर, अबाड़ा, अबूरोड, अबोहर, अमजा, अमडाँड़, अमनौर, अमरतपुर, अमरपुरकोडला, अमरपुरा, अमरा, अमरापुर, अमरावती, अमरावती (घाट), अमरी, अमसिन, अमानगंज, अमिलिया, अमिलिया (खरहरी), अमृतपुर, अमृतसर, अम्बा, अम्बाजोगई, अम्बासा, अयाना, अरडका, अरनेठा, अरनोदा, अररियावैरगाछी, अखन्ना, अर्जुनपुर, अर्रोलि, अलकनन्दा, अलगप्पननगर, अलवर, अलीगढ़, अलीपुराकला, अल्मोड़ा, अवगिला, अवाड़ा, अशोकनगर, असदपुर, असनावर, असुरेश्वर खोलाखेत, अहमदनगर, अहमदाबाद, अहिरवलिया, अहिरौलिया-टोला, अहेरी, अहेरीपुर, आँटाखास, आँतेला, आऊवा, आइसन, आई०टी०रोड, आगरा, आजमपकरिया,, आटकोट, आटोल, आड़की, आढ़सरबास, आणंद, आदित्यपुर, आदिलाबाद, आनन्दनगर, आना, आबूरोड, आभानेरी, आमगाँवबाड़ा, आमनपुर, आमला, आमोना, आम्बावाड़ी, अयूबा, आर्वी, आशियानानगर, आष्टा, आसनकुंडिया, आसांग, आसैर, इंदवार, इंदौर, इंदौरी, इन्दौत, इन्द्रगढ़, इन्द्रपुरम्, इकलहरा, इचलकरंजी, इजोत, इटही, इटावा, इमामनगर, इरांगपार्ट I-II, इरेल भेली I-II, इरोर साउथ, ईरोड, ईशमेला, ईशानगर, ईसरदा, ईसापुर, ऊँगली, उंदीरखेड़, उखुल, उछटी, उजानगंगोली, उज्जैन, उड़ेला, उतरादा, उत्तरमणिपुर, उदयपुर, उदराया, उधमसिंहनगर, उन्नाव, उपलेटा, उमरखेड़, उमरादा, उमरावगंज, उल्दन, उरतुम, उस्मानाबाद, ऊँचिया, ऊगू, ऊदपुर, ऊना, ऊसरी, एकान्तवाड़ा, एटा, एणेपुरी, एतला, एरू, एलाहाबाद, ऐंचाया, ऐनखेड़ा, ओझवलिया, ओझानगर, ओडेकरा, ओदनपुर, ओरछा, ओसवाली, औदहा, औरंगाबाद, औरैया, कंचनपिंडरा, ककरइन, ककराला, कक्कर, कचन्दा, कछवा, कछुआ, कछुआ-चकौती, कछुआरा, कटक, कटनी, कटरा, कटाली, कटिहार, कटुई, कठार, कठूमर, कड़ीला, कडैल, कथगवाँ, कथैयाँ, कनखल, कनलगाँव, कनान, कनेई, कन्दवा, कन्सोपुर, कन्हारी, कन्नौज, कपासन, कमरपुर, कमलपुरी, करडी, करतारनगर, करनाल, करबगाँव, करम्मर, करवाड़, करही (शुक्ल), कराह, कराहल, करौदिया, करौदी, करौरा, कसौत, कर्वी, कलकत्ता, कल्याण, कल्याणपुरा, कवलपुरा मठिया, कसाहापूर्व, कांगपोक्पी, कांगलातोम्बी, काँटाबाजी, कांगली, काँवट टाउन, काईथवेद, काकोरिया, काउली, काटोल, काठगोदाम, कादरगंज, कानडी, कान्दीवली, कानपुर, कान्डे, कापड़ीवास, कामता, कामटी, कायस्थाना, कारगू, कालाडेरा, कालापहाड़, कालापीपल, कालिंपोंग, कालीकट, कालूखाँड, काशीपुर, कासगंज, कासिमबाजार, किनाथी, किला, कीशमपुर, कुंजी, कुंडई, कुंडल, कुंडा, कुंवारिया, कुआहेडी, कूकड़ेला, कुकड़ेश्वर, कुकढ़ा, कुचामनसिटी, कुडगाँव (देवी), कुतबपुर, कुन्हील पनेरा, कुमरडीह, कुमार, कुरदा, कुरावली, कुरुक्षेत्र, कुर्याह, कुलुपटांगाबस्ती, कुल्हर, कुशराती तल्ली, कुसुमपटी, कुसैला, कूँचलवाडाकला, कूटी, कूड़ाघाट, कृष्णगढ़, केकड़ी, केराय, केलोद, केशवकटरा, केशोपुर, कैथल, कैथून, कैनखोला, कैमुआँ, कैराना, कोंच, कोंदागाँव, कोईरांगै, कोईलारी, कोकलक चक, कोकबाजार, कोटद्वार, कोटवन्दना, कोटा, कोठी, कोथराखुर्द, कोपरा, कोपला, कोमना, कोयम्बटूर, कोरापुट, कोरबा, कोरिहर, कोर्रा, कोलकाता, कोलारा, कोलिया, कोलीटेक, कोसली, कोसिंगा, कोहेफिजा, कौड़िया,

कौड़ीहार, कौब्रुलेखा, कौराकुड़ा, कौलती (नेपाल), कौवाताल, क्योंड़क, क्वारी, खंडवा, खंडात, खकसीस, खजुहा, खजूरी, खजूरी रुण्डा, खटौराखुर्द, खडगवाँकला, खड़ीत, खतौली, खत्रीवाड़ा, खन्ना, खपटिहाँ कलाँ, खरगढ़, खरगपुर, खरगोन, खरेड़ा, खलियापाली, खाटेगाँव, खानपुरा, खारकला, खालिकगढ़, खिरनीबाग खिरीथललछीमा, खिरेंटी, खिलचीपुर, खींवसर, खीरीथल, खुँटपला, खुजावाँ, खुटवला, खुतेही, खुन्टापड़ा, खुनिगवाँ, खुमाड़, खुरई, खुरपा, खुरसीपार, खुरहंड, खुरहानमिलिक, खुर्जा, खुशीपुरा, खूखूतारा, खेजड़पाड़ा, खेड़लीरेज, खेड़ापुर, खेरथल, खेरवा, खेरा, खेलदेशपांडे, खैरखाँ, खैरनगर, खैरा, खैराचातर, खैराबाद, खैल, खोकसर, खोड, खोर, खोलापुर, खोलीघाट, खौर, गंगाखेड़, गंगापुरसिटी, गंगाशहर, गंगेव, गंगोली, गंज, गंजबसौदा, गंजजलालाबाद, गंटूर, गजनेर, गड़कोट, गढ़पुरा, गढ़बसई, गढ़िया रंगीन, गढ़ीरामपुर, गणगौरघाट, गणेती, गढ़चन्दूर, गदरपुर, गदरपिपरिया, गद्दीपानी मखलिया, गम्हरिया, गरनिया, गरसाहड़, गरियाखेड़ी, गरीबनगर, गरोठ, गरौठर खास, गलगलहाकोठी, गल्लाटोला, गल्ले वोरगाँव, गहासाँड, गांधीधाम, गांधीनगर, गांभौयान, गाजियाबाद, गाजीपुर, गाडरवाड़ा, गाड़ाटोल, गाढ़ीधाम, गान्तोक, गिरियाँव, गिरिजास्थान, गिरिडीह, गुंज, गुंडरदेही, गुडगाँव, गुड़ाकला, गुढ़कटला, गुढ़ानाथवता, गुदरीबजार, गुना, गुप्तेश्वर, गुमानीवाला, गुरदासपुर, गुराडियाजोगा, गुलपाड़ा, गुलबर्गा, गुहला, गैरतलाई, गैल, गोंइठा, गोंडा, गोंडी, गोंदिया, गोकुल, गोखलेनगर, गोटोर, गोठड़ा, गोदावरी, गोपालगंज, गोपालपुर, गोपीबुंग, गोरखपुर, गोरेगाँव, गोलागोकरनाथ, गोलाघाट,गोलिक, गोवडीहा, गोविन्दगढ़, गोविन्दपुर, गौतमबुद्धनगर, गौर, गौरीपुर, गौसपुर, ग्यानसू, ग्वालियर, घगोंट, घघरा, घराकड़, घ़टियाली, घाटकोपर, घाटमपुरकला, घाटलोडिया, घाटवा, घासनिया, घिंचलाय, घुंसी, घुघली, घोरंगी, घोराठी, चंडीगढ़, चंदनपुर, चंदना, चंदेरी, चंद्रयलकलोरी, चंद्रनगर, चंद्रपुर, चंपाघाट, चंपावत, चकमदारी, चकौती, चटेरा, चट्टी अनन्तपुर, चन्दौसी, चमाला, चरखारी, चांडेल, चाँदपोस, चाईबासा, चाकरोद, चाकुलिया, चादूररेलवे, चारहजारे, चास, चिचगढ़, चिचोली, चिटगुप्पा, चितनगला, चित्तौड़गढ़, चिरंजीवविहार, चिलौली, चुराचान्दपुर, चुरु, चेन्नई, चैतड़, चैसार, चोधई, चोरबड, चोरौत, चौखुटिया, चौधरीबसंतपुर, चौपड़बाजार, चौमहला, चौरबा, चौरास, चौरी, चौली, चौसाना, चौहटन, छकना, छतर, छत्तीसगढ़, छपरा, छपोरा, छम्पर, छापड़ा, छापर, छिन्दवाड़ा, छिरास, छोटालाम्बा, जंगबहादुरगंज, जंघोरा, जंडियालागुरु, जकड़पुर, जगतपुरा, जगदलपुर, जगदेवपुर, जगाधरी, जजुराली, जटनी, जट्टा छापर, जनोटी पालड़ी, जनौरा, जबलपुर, जमशेदपुर, जमोड़ी, जम्मू, जम्मूतवी, जयनारायण व्यासनगर, जयपुर, जयप्रकाशनगर, जरड़, जरवलरोड, जरुड, जरौल, जलगाँव, जलपाईगुड़ी, जलालगढ़, जलाली, जल्तूरी, जसदेवपुर, जसवंतपुरा, जसो, जहाँगीराबाद, जाकरपुरा, जाटनी, जाजली, जाजोता, जानकीपुरम्, जामनगर, जामपाली, जायधाकर्रा, जालना, जालन्धरशहर, जालसू रेल्वेस्टेशन, जालोर, जावरा, जिगना, जियाराम राघोपुर, जुगसलाई, जुट्टा, जुरहरा, जुलाहापाड़ा, जूनागढ़, जूनालखनपुर, जूनी हरदी, जैतगढ़, जैतसर, जैतास, जैतो, जैपूर, जैसलमेर, जोकहाई, जोगीनवादा, जोगेन्द्रनगर, जोधपुर, जोरहाट, जोरी, जौलखेड़ा, जौहा अम्बाह, जौलजीवी, ज्योलीकोट, झांडेश्वर, झाँसी, झापा, झाबुआ, झालरापाटन, झालावाड़, झालोद, झिलिमिल्स, झुन्झनू, झूलाघाट, झूँसी, झोटवाड़ा, झोपरखेड़ा, झौंथरी, टनकपुर, टाँडीकला, टाणा, टारीछपरा, टिमरनी, टिहोली, टीकमगढ़, टी०पी० बानम, टुण्डी, टूण्डला, टेकनिया, टेकापार, टेघरा, टेमर, टोंकखुर्द, टोका, टोड़ीजागीर, टोडारायसिंह, टोरडा, ठकठौलिया (कौडिया), ठकनालहिया, ठकुरापारा, ठठारी, ठाँ, ठाणी, ठाठाँ, ठीकरिया, डंगालपाड़ा, डकोर, डढवा, डबरा, डामू, डलबोरा, डालमियानगर, डिक्की-खेतीखान, डिगुलपुरा, डिड़वाड़ी, डिप्टीगंज, डिमौली, डिलारी, डीम, डुमरा, डुमराँव, डुमरिया, डुमरियाबुजुर्ग, डुमेहर, डूँगरपुर, डूण्डलौद, डैहर, डोंगरिया, डौंडीलोहरा, डोमचाँच बाजार, ढाँगू, ढेंगाडीह, ढाणा, ढेकवारी, ढ़ौरमिश्रा, तँवरा, तरकेड़ी, तरौका, तर्मा, तलोरी, तल्याहड़, तत्थेड़, ताल, तालजा, तालपहाणी, तालीकोठी, तिगाँव, तिन्सिना, तिलरथ, तिलकवाड़ा, तिलहर, तिली, तिलोकपुर, तिवारीपुरखुर्द, तीतरिया, तीसपरी, त्रिपुरा, तुनि, तुलसीपार, तुल्लाह, तेलबाग कालोनी, तेलहरा, तोरपा, तोरना, तोरनी, तोरिवारी, तोलरा, तोला, तोसीणा, तौरा, तौलिहवा, थाना (महा०), थाने, थोई, थरेट, थाणे, थुम्हा, दडीबा, दतिया, दमोह, दयालपुरा, दरबारशाह, दरिऔरा, दरियापुरकट्टा, दशरंगपुर, दसूहा, दहमी, दहिवद, दहिसर, दहीगाँव, दादरी, दातगंज, दातारपुर, दातांरामगढ़, दादाबाणी, दापोरी, दामनजोड़ी, दारानगरगंज, दाहेद, दिगमन, दिघी, दिमनी, दियरी, दिवठाणा, दिल्ली, दीक्षितपुर, दीगरा, दुमका, दुर्ग, दुर्गानगर, दुर्गावाड़ी, दुलचासर, दूबेपुर, देईखेड़ा, देउलागाँव धुवे, देदौल, देव, देवकुली, देवखैरा, देवगाँव, देवतोली, देवपुरा, देवपुरी, देवभाने, देवभोग, देवरी, देवरीकला, देवरीनाहर, देवलागाँव, देवास, देवीदान, देवीपुरा, देहरादून, दौलतगढ़, दौलतपुरा, दौसा, द्वारका, धमौरा, धनहरा, धनौरा मण्डी, धमघा, धमा, धरमपुरी, धरमपेठ, धर्मपुरा, धर्मशाला, धसनियाँ, धाता, धानक बस्ती, धानीखेड़ा, धामन्दा, धामा, धामार, धार, धारजोल, धारणगाँव, धारवाड़, धुले, धुलिया, धूलवा, धोत्रा भ०, धोरकाट, धोला भाटा, धौलपुर, ध्रांग्ध्रा, नंगलडैम, नंदनपुरा, नंदावता, नंदुरवार, नआगा, नईदिल्ली, नईबाजार, नखन, नगर, नगलाकुंजल, नगलामुरली, नगलारेवती, नदवई, नदियामी, नबाबगंज, नबीनगर, नयापुरा, नयारामनगर, नरपतगंज, नरसिंहपुर, नरीखेड़ा, नर्मदानगर, नलखेड़ा, नल्लाजेरला, नवागढ़, नवामोढ़ा, नांगलोई, नांदिया, नांदेड़, नाकोट, नागपुर, नागेश्वरनाथ मन्दिर, नाग्रीजुली, नागौद, नाचनी, नाथूखेड़ी, नानामांडवा, नारकेंड़ा, नारंगी, नारायणगढ़, नारायणपुर, नारायणपुरा, नारायणपेठ, नालछा, नालापार, नासिक,

नाहरगढ़, नाहरपारा, निगदी, निडिल, निफाड़, निबिहा, निमिसर, निमाण, निम्बाटोला, निरालानगर, निरौधा, निवाड़ी, नीदर, नीमच, नेनूपट्टी, नेल्हारा, नेवरा, नेवढ़िया, नेवारी, नेहरूग्राम, नैनी, नैनीताल, नोयडा, नोखा, नोनार, नोवेडा, नोहर, नौगवाँ पकड़िया, नौगाँव, नौगाँवा, नौतनवाँ, नैवाहीदेवी, ९९ ए० पी० ओ०, पंचैत, पंचौरा, पंछत, पंडतेहड़, पंडरिया, पंडारी, पंडेर, पंतनगर, पंत्पूड़ी, पकड़िया, पगारा, पचपदरानगर, पचोर, पचौडर, पजाईगाँव, पटना, पटनासिटी, पटवाध, पटियाला, पटियाली, पटेगना, पटेलनगर, पटेल भीखापाली, पटोरी, पट्टी, पठानकोट, पडारा, पडरिडोडा, पडरीचेतसिंह, पत्योरा, पद्मनाभनगर, पथरगामा, पनई, पनियाँ, पन्धाना, पन्हाना, पपदेव, परतला, परतुर, परथावल, परभड़ी, परलीबैजनाथ, परसवाड़ा, परसाधाम, परसापाली, परसाई-पिपरिया, पल्वल, पलाडा, पलिया, पलेई, पवनपुरी, पवालघुटकुरी, पुसुपुला, पहरा, पहरुवा, पाँगरी, पांडुकेश्वर, पांडुपुरी, पांडेगीह, पाकुड़िया, पातल, पानगाँव, पानदा, पानापुर, पायली, पारसपकड़ी, पालवी, पालाकोल, पाली, पालीमारवाड़, पालेज, पाहल, पिंडरई, पिछोर, पिजडा, पिठौरा, पिथौरा, पिथौरागढ़, पिपरा, पिपरिया, पिपरियाकाछी, पिपरौलीबाजार, पिपलखुटा, पिपलगाँव सराय, पिपला, पिपलीया हान, पिपल्यादेव, पिलखुवा, पीठ, पीठपुरा, पीपलरावाँ, पीमूण, पीपली आचार्यान्, पीलीबंगा, पुखऊ, पुणे, पुपरी, पुरन्दाहा, पुराना भर्थना, पुरुलिया, पुलगाँव, पूर्वकच्छ, पूर्णियाँ, पूरेना, पेठ, पैकौरी, पोखरभिण्डा, पोखरा, पोटसो, पोन्धेपुरा, पोलीपाथर, पौना, प्रतापनगर, प्रतापगढ, प्रागपुरा, प्रीतमपुरी, प्रेमनगर, फतेहगढ़, फतेहनगर, फतेहपुर, फतेहाबाद, फरकपुर, फरीदाबाद, फर्रुखाबाद, फल्टा, फागा, फागी, फाजिलका, फाजिलपुरखास, फिरोजपुर, फिरोजाबाद, फुलवरियाटोला, फुलहर, फुलेरा, फूलझर, फूलपुररामा, फूलबेहड़, बंकेली, बंगलोर, बछौर, बक्षेरा, बचकोट, बजौरा, बटिण्डा, बटेरा, बड़कागाँव, बड़कारया, बड़खेरवा, बड़नगर, बडनेरगंगाई, बड़नेर भोलजी, बड़यास, बड़वानी, बड़हिया, बड़ारा, बड़ारी, बड़ारावला-माचलपुर, बड़ालू, बड़ोदरा, बड़ौत, बतरौली, बदौसा, बधाल, बनकट, वनबसा, बनवारी बसंत, बनियागाँव, बन्थरी, बनैल, बबेरु, बभनपुरी, बभनवरूई, बभनी, बभनौली, बमरौली, बमिढ़ा, बमूछपरा, बरखेड़ा, बरखेड़ालोया, बरखेड़ासोमा, बरगढ़, बरडेज, बरगदही, बसन्तनाथ, बरड़ा, बरनाला, बरवाडीह, बरारी, बरियारपुर, बरीपुरा, बरुड, बरेली, बरेलीकलाँ, बरेली खुर्द, बरैल, बरोटाँड, बरोहा (वमसन), बर्धमान, बलगी, बलती, बलरामपुर, बलवड्डा, बलवाड़ा, बलागिर, बलिगाँव, बलिया, बलेवा, बलौदा, बसंत, बसंतपुर, बसईकाजी, बसरेही, बसाव, बसुहार, बसदेहड़ा, बस्ती, बहनेरा, बहनोली, बहादुरपुर, बहादुरगढ़, बहुअरवा, बहेरी, बहोड़ापुर, बाँका, बाँकी, बँगरोद, बाँदा, बांद्रा, बाँदीकुई, बाँदू, बाँस, बाँसउरकुली, बाँसवाड़ा, बाकानेर, बागपत, बागबहार, बागुला, बाड़मेर, बाढ़, बाणागंगा, बादपारी, बानाबुरु, बानो, बाबापुर, बामणोद, बामनीखेड़ा, बाम्हनबाड़ा (चौरई), बमोरा, बायतु, बारकेल, बाराकाँधाकीच, बाराबाजार, बालवाड़ा, बालसी, श्रीबालाजी, बालागंज, बालाघाट, बाली, बालीपाकड़, बालेश्वर, बालोतरा, बावडियाकला, बावन, बावल, बासाकला, बिंदसी, बिटकुली, बिटारा (नेपाल), बिटोरा, बिदोली-कनखल, बिनौली, बिरमित्रापुर, बिरोल, बिलासपुर, बिलौदा, बिवार, बिहटा, बीकानेर, बीड़, बीडीगढ़, बीना, बीनागंज, बीरपुर, बीरमपुर, बीरेझर, बीसापुरकला, बुर्दा, बुल्ढाणा, बुलन्दशहर, बूँदी, बूरमाजरा, बेउर, बेगमगंज, बेगू, बेगूसराय, बेनियाकाबास, बेनीगंज, बेनीपुर, बेमेतरा, बेलगढ़, बेलटुकरी राजिम, बेलड़ा, बेलसोन्डा, बेलाड़ी, बैकुण्ठ, बैगनी, बैतूल, बैतूल बाजार, बैरवार, बैला, बोकारो, बोटाद, बोदला, बोदवड़, बोधन, बोरनार, बोराड़ा, बोलटुकरी, बोलुड, बौहनजट्ठा, ब्रह्मपुर, ब्रह्मपुरी, ब्रह्मापल्ली, ब्यौही, ब्यावर, भँडरा बाजार, भंडा, भंडारवन, भंडारा, भंडारी, भकुआबाँध, भगवानपुर, भगबुआ, भजौरा, भटवलिया, भटवाड़ा, भटिण्डा, भट्टू, भड़ा पिपल्या, भड़ूको, भभकी, भयन्दर, भरतनगर, भरतपुर, भरपूरा, भरवाई, भरौली धकणरी, भरोहिया, भलस्वा ईसापुर, भलुहा, भवरगढ़, भवनपुरा, भवानीखेड़ा, भवानीपुर, भाँटा, भांड़ेर, भाऊगढ़, भागलपुर, भागो, भानखेड़ा, भानोगाँव, भाभानगर, भारौली खुर्द, भालेरकोटला, भावनगर, भिंडुला, भिडासरी, भिलाई, भिवण्डी, भिवानी, भीखनपुर, भीखापाली, भीमदासपुर, भीलवाड़ा, भीलसेड़ी, भुण्डा, भुवनेश्वर, भुसावर, भुसावी, भून्तर, भूपालगंज, भेडवन, भैंसकोट, भैंसड़ा, भैंसवाड़ा घण्डियाल, भैरुन्दा, भोकरदन, भोकरन, भोजपुर, भोजौली, भोपाल, भोपालगढ़, भोरडा, भौनापार, भ्रमरपुर, मंगलपुर, मंगरूवनाथ, मंगसका, मंजलपुर, मंजेश्वर, मंझरिया, मँझौली, मंडला, मंडी, मण्डी गोविन्द, मण्डीदीप, मंडेला, मंढाभीमसिंह, मन्दसौर, मंसूर, मन्त्रोपखरी, मऊ, मकराना, मक्यांग, मखदुमपुर, मगरलोड, मगराना, मगरिया, मगोरी, मचाड़ी, मजगुवाँ मानगढ़, मजिरकाडा, मजगवा, मझवलिया, मझेवला, मझरैन, मटगाँव, मटेला (नेपाल), मड़ावदा, मडोरी, मण्लेश्वर, मतवाना, मत्तेपुर, मथुरा, मथुरानगर, मदनगंज किशनगढ़, मदारीचक, मद्रास, मधुपुर, मधुबनी, मनक चौक, मनकहरी, मनसुखी, मनिगाँव, मनोहरपुर, मन्नाड पल्ली, मरकचो, मलकापुर, मलगवाँ (नेपाल), मलगी, मलहद, मलाड, मलावर, मलासा, मलिका, मलिनियादियरा, मलेगवाँ, मसो, महका, महतोडीह, महनियाबास, महमदाबाजार, महम्मदपुर, महरोली, महलसरा, महागामा, महादेवा, महाराजपुर, महावीरनगर, महासमुन्द, महिदपुर, महिमल, महिया, महिषी, महिसौर, महुआखेड़ा, महुआशाला, महुरा, महू, महूडर, महेन्द्रगढ़, महेन्द्रनगर, महेसाना, महोली, महोवा, मांजलपुर, मांजू अर्की, मांडल, मांडवी, माँडलगढ़, मांडावास, माघरटोला, माचलपुर, मांचाड़ी, माजरा, माढ़ोताल, माणचौक, माणसा, मणिकगिरि, मणिकपुर, मातला, माधोपुर, मानसरोवर, मानहड़, मानेडाँडा, मानेसर, मारकन, मालतीपुर, मालथोन, मालपुर, मालीकुआ, मालेरकोटला, माल्हनवाड़ा,

मावलीजंक्शन, माहोविंग, मिझौना, मिरज, मिरिक, मिर्जापुर, मिश्रपुर, मिसरिया, मिसलवाड़ी, मीडसावंगी, मीण्डी, मीतली, मीरकीसराय, मीरापुर, मुँगेली, मुँडगाँव, मुंडीनौतनवाँ, मुंबई, मुंशीबाजार, मुक्तेश्वर, मुड़पार, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुबारकपुर, मुखेड़, मुरवानी, मुरहट्टी, मुरादपुर, मुरैना, मुर्कपार, मुलाना, मुल्लनपुर, मुसदपुर, मूँगसका, मूडी, मूढ़, मूढ़पार, मूल, मेघालय, मेघौना, मेड़तारोड, मेदनीपुर, मेमारान, मेरठ, मेलाखुर्द, मेवड़ा, मेहकर, मेहगाँव, मेहराना घोरा, मैनपुरी, मैनोह, मैरमपुर, मैशांग, मोगा, मोटवुंग, मोतीनगर, मोतीबाजार, मोदीनगर, मोन्टेड, मोल्कोन, मोहतरा, मोहनघाटी, मोहनपुरम्, मोहाली, मौजपुर, मौडमंडी, एम०डी०, यमुनानगर, यमुना विहार, यवतमाल, यादव छपरा, युसुफनगर, रंगिया, रक्षापुरम, रघुनी टोला, रचनानगर, रजवारी, रठोरा, रतनगवाँ, रतनपुरा, रतनमहका, रतलाम, रतवाई, रन्नौद, रमना, रमपुरा, रमलवत, ररी, रसूलपुर, रहली, राँची, राऊ, राजगढ़, राजनाँदगाँव, राजपुरा, राजरूपपुर, राजा आहर, राजाका सहसपुर, राजापारा, राजीवनगर, राजुरपाडी, राजेन्द्रनगर, राजोली, राजौरी गार्डेन, राटन, राधाऊर, रानीखेत, रानीगंज, रानीडीह, रानीबाग, रामगढ़ जबन्धे, रामगढ़वा, रामदयालनगर, रामनगर, रामपुर, रामपुर बखरा, रामपुरा, रामेश्वरकम्पा, रायकोट, रायगढ़, रायपुर, रायपुर कल्चुरियान, रायपुररानी, रायपुरशिवाला, रायपुरसानी, रायपुरा फूल, रायबरेली, रायरंगपुर, रावड़ा, रावतसर, रिक्षा, रिनोक बाजार, रिमुण्डा, रिसआ, रिवालसर, रिसदा, रीवा, रुठियाई, रुडकी, रुदासी, रुदौली, रेलमगरा, रैगाँव, रैल, रैहन, रोकड़ी, रोडू, रोपर, रोलडा, रोहतक, रोहनियाँ, रोहिणी, रौता, रौवारा, लक्ष्मणगढ़, लक्ष्मणपुर, लक्ष्मीगंज, लक्ष्मीपुर सायत, लक्ष्मीसागर, लखनऊ, लखनपुर, लखनादौन, लखीमपुर खीरी, लखोली, लखौरा, ललितानगर, लवन, लश्कर, लहरी, लहरौद, लहार हवेली, लहेरिया सराय, लाखेरी, लाडनू, लाडपुरा, लातूर, लाधेवली, लालगंज, लालनगर, लालपुर, लालपोल, लाल राजेन्द्रनगर, लालसिंह, लालाबाजार, लारौन, लावन, लिंगसेवस्ती, लिटाईपाली, लिलूह, लीमाचौहान, लुंगफौ, लुधियाना, लुनेरा, लुहारी, लोफंदी, लोपड़ा, लोहासिंघा, लोहारा, लोहियानगर, लैमाखोंग, वंडविहार, वक्षेरा, वटेरा, वड़ोदरा, वदनरेंगगाई वमनवरूई, वरंगल, वरगढ़, वरवा, वरा, वराहभूम, वरीपुरा, वरोरी, वर्धा, वल्लभनगर, वलवडजा, वसाहल, वाँगरोद, वागर, वाड़ा, वांढ़बाजार, वापी, वाराणसी, वाराहीहाट, वासी, वासौदा, वाहेगाँव, विजयपुरेरेती, विजयानगरम्, विजयाकाया, विजैपुरा, विदिशा, विद्यानगर, विद्युतनगर, विनिका, विरखेड़ा, विरहा कन्हई, विराटनगर, विलसंडा, विलासपुर, विल्लीपुत्तुर, विशनपुर, विशाड़, विशुनपुरवा, विशुनपुरवघनगरी, विष्णुपुर, वीरखाम, वीरगंज, वीरपुर, वेंकटेशनगर, वेलडीहा, वेलवाजंगल, वेल्डवार, वैर, वैरवार, वैशाली, वोरीवली, व्यावर, शंकोट, शकरा, शनिचरा, शहडोल, शहादतगंज, शान्तिपुर, शाजापुर, शामली, शासन, शास्त्रीनगर, शाहगंज, शाहजहाँपुर, शाहदरा, शाहपुर, शाहपुरा, शाहाबाद, शाहाबादमारकण्डा, शाहीबाग, शाहोपुरवरमा, शिकारपुर, शिकोहावाद, शिमला, शिवगंज, शिलाई, शिवकुटी, शिवगढ़, शिवपुरा, शिवपुरी, शिवाजीनगर, शिवाड़, शीतलापुरी, शे० आटोल, शेखपुर, शेगाँव, शेरगढ़, शेरपुरकला, शेरुणा, शेलगाँव, शेषपुर, शोरापुर, श्रीक्षेत्रविहार, श्रीगंगानगर, श्रीडूँगरगढ़, श्रीनगर, श्रीपालवसंत, श्रीपुरा, श्रीमुकामधाम, श्रीरामपुर, श्रीरामपुरी भगवानपुर, शृंगेरी, संगरूर, संभावली, संघर, संघोल, संताजीनगर, संतोलावारी, संतोषपुरम, संदणा, सकट, सकराया, सकरी, सक्ती, सगर, सगौली, सठवेहरा, सठिया, सतघरा, सतना, सत्यभामापुर, सदनपुर, सदाकत आश्रम, सदाशिवपेठ, सनावद, सपलेड, सब्जपुरा, समस्तीपुर, समेसर, सरथुआ, सरदमपिंडरा, सरदारशहर, सरबनिया महाराज, सरसपुर, सरसी-महाबली, सराईपाली, सरिया, सरेई-चम्पुआ, सरैंधी, सरैया, सरैया प्रवेशपुर, सरैया मखदुमपुर, सरैया हरदीटोला, सलमगाँव, सल्लोपार, सवाई माधोपुर, सवौर, ससना, सलोनबी, सहरसा, सहसवान, सहादतगंज, सहारनपुर, सहुरिया, सांखेखास, सांभारलेक, साँवड़, साइन, साऊकापुरवा, साकूपाली, साखु (नेपाल), सागर, सागाणा, सादीपुर, सादुलशहर, सनावद, साबरमती, सारगढ़, सारण, सारीपुर, सारेयाद, सार्दूलगढ़, सावन, सावनेर, सावली, सासनी, सासाराम, साहिबाबाद, साहू, साहूवाला, साहेबगंज, सिंगमापुर, सिंगहा यूसुफपुर, सिंगोली, सिंधिया, सिंधीबाजार, सिंधौड़ा, सिकन्दराबाद, सिगदोलाबाद, सिधारी, सिधौली, सिनजई, सितारगंज, सिमलैगर बाजार, सियली, सिरपुर कागजनगर, सिराई, सिराजा, सिरोन, सिरोही, सिलीगुड़ी, सिलौटा, सिलोही, सिवनी, सिवरी गोपीनाथपुर, सिसवाकला, सीकर, सीतापुर, सीतामढ़ी, सीनखेड़ा, सीनामारा, सीहड़, सीहोर, सुकवार, सुखलिया, सुगवा, सुजानगढ़, सुजिया मोहलिया, सुनाम, सुधार, सुभाषनगर, सुगवाँ, सुठालिया, सुन्दरी, सुन्हट, सुन्हेत, सुधार, सुपौलबाजार, सुबासा, सुरखण्डनगरी, सुरखी, सुरखेड़ा, सुरपुरा, सुरही, सुर्री, सुरेन्द्रनगर, सुल्तानपुर, सूठा, सूथा, सूरत, सूरतगढ़, सूरजपुर, सूरनगर, सेंगरपुरा, सेठवाना, सेढा, सेतीखोली, सेन्धवा, सेनाकला, सेनापति, सेपी बाजार, सेमरडाडी, सेमराघुनवारा, सेमरा बाजार, सेमराहाट, सेमरीदेव, सेरा (नेपाल), सेरौ, सेल, सेलापुर, सेलुबाजार, सेवता, सैंथिया, सोडाला, सोनई, सोनपुर, सोनपुरी, सोनापुर हाट, सोनीपत, सोरंग, सोरेनी बाजार, सोलन, सोलापुर, सोहन, सौरपुर, स्वर्गाश्रम, हजारीबाग, हटनी, हथौड़ाखेड़ा, हनुमाननगर, हरदा, हरदी, हरदोई, हरबोंगवा, हरया, हरसौली, हरिओमनगर, हरिद्वार, हरिपुर, हरिशंकरपुर, हरिहरपुर, हलद्वानी, हलियापुर, हल्लेवाली, हसनपालीया, हसनपुर, हसामपुर, हस्तिनापुर, हासी, हाजीपुर, हाटणी, हातिखुवा, हातौद, हाथरस, हापुड़, हाबड़ा, हामी, हालीशहरकोना, हावरा, हासुवा, हिंगनघाट, हिंगोली, हिंडौनसिटी, हिगोलाकला, हिम्मत-गंज, हिम्मतनगर, हिरनमगरी, हिसार, हुबली, हुमायूँपुर, हुस्से छपरा, हूर, हैदराबाद, होजी, होडल, होनावर, होशंगाबाद, होशियारपुर।

कल्याण

याद रखो—तुम जो यह सोचते हो कि जब मेरी आर्थिक स्थिति ऐसी हो जायगी तब मैं भजन-स्मरण करूँगा या जीवनमें अमुक काम पूरा हो जायगा, अमुक दायित्वसे मैं मुक्त हो जाऊँगा, अमुक व्यापारमें सफलता प्राप्त कर लूँगा, अमुक प्रकारके गुरु मिल जायँगे, अमुक प्रकारका एकान्त सुन्दर स्थान मिलेगा और उसमें सुन्दर सात्त्विक आश्रम बनाकर रहूँगा, तब भजन-स्मरण करूँगा—सो यह तुम्हारे मनका धोखा है। यह तत्त्वधीका निर्णय नहीं है।

जो काम तुम वर्तमान अवस्थामें नहीं कर सकते, उसे किसी कमीको पूर्ण कर लेनेके बाद करना चाहते हो, वह भविष्यमें अमुक अवस्था प्राप्त होनेपर कर सकोगे—इसका क्या विश्वास है; क्योंकि कमीका अनुभव तो वहाँ भी होगा। तब उस कमीकी पूर्तिकी प्रतीक्षामें भजनको टाल दोगे।

याद रखो—तुम्हारी मनचाही स्थिति मिल ही जायगी, इसका भी कोई निश्चय नहीं है। यह भी सम्भव है कि वैसी स्थितिकी प्रतीक्षामें ही तुम्हारा शरीर छूट जाय। तुम्हारे चाहनेसे अमुक स्थिति नहीं मिल सकती। प्रत्येक सांसारिक परिस्थिति—भोग पूर्वकर्मानुसार मिलता है। इसलिये यदि किसी स्थितिकी, वस्तुकी प्रतीक्षामें रहोगे तो भजन बनेगा ही नहीं। इस प्रतीक्षाको साधनका एक बड़ा विघ्न समझो। प्रतीक्षाका पल्ला न पकड़ो।

पूर्वकर्मवश मंगलमय भगवान्‌के मंगल विधानके अनुसार जो परिस्थिति तुम्हें मिली है, जरा भी देर न करके उसी परिस्थितिमें जीवनके असली कार्य भगवान्‌के भजन-स्मरणको आरम्भ कर दो और उसे बढ़ाते चले जाओ। यह पथ, यह मार्ग सुविचारित है, सन्तों, महात्माओं और भक्तोंने अपने तथ्य-अनुभवके आधारपर इसे पालनीय ठहराया है।

जो भजन करना चाहता है, उसको कोई भी परिस्थिति बाधा नहीं दे सकती। तुम मनके धोखेमें आकर ही परिस्थितिका बहाना करके भजन नहीं करते और अनुकूल परिस्थितिकी आशा-प्रतीक्षामें मूल्यवान् जीवनको खोते रहते हो। जीवनका बहुमूल्य समय अब न खोओ।

याद रखो—संसारमें कोई भी अवस्था पूर्ण नहीं है। सबमें किसी-न-किसी कमीका रहना अनिवार्य है, इसलिये तुम किसी भी अनुकूल परिस्थितिको प्राप्त करोगे, उसीमें कमीका अनुभव करोगे और तब वह भी प्रतिकूल प्रतीत होने लगेगी, उस कमीको मिटानेके लिये किसी दूसरी परिस्थितिकी आशा-प्रतीक्षा करके उसकी प्राप्तिके प्रयत्नमें लगोगे—यों कमीकी अनुभूति, उसकी पूर्तिकी आशा-प्रतीक्षा, उसके लिये प्रयत्न—इसीमें तुम्हारा वह मानव-जीवन—जो भजनकर भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिये भगवत्कृपासे मिला था—नष्ट हो जायगा, फिर पछतानेसे कुछ भी लाभ नहीं होगा। अतः पश्चात्ताप न करना पड़े, इसके लिये उपरिनिर्दिष्ट कर्तव्य अभी अपना लो।

याद रखो—तुम यदि भजन-स्मरणको किसी विशेष वस्तु या परिस्थितिकी प्रतीक्षापर छोड़ दोगे तो तुमसे भजन बनेगा ही नहीं। प्रत्येक परिस्थितिको भगवान्‌के भजन-स्मरणके अनुकूल मानकर उसीमें भजन करने लगोगे तो फिर भजनके प्रभावसे प्रतिकूलताका भाव ही नष्ट हो जायगा और सभी परिस्थितियोंमें अनुकूलताका अनुभव होगा तथा भगवान्‌का अखण्ड भजन होने लगेगा।

जब भजनका आनन्द मिलने लगेगा और वह तभी मिलेगा, जब भजनके प्रभावसे अन्तःकरणका मल नष्ट होकर वह निर्मल हो जायगा, तब तो तुम्हारे लिये भजन जीवन बन जायगा। तुम्हारा प्रत्येक क्षण और तुम्हारी प्रत्येक चेष्टा भजन बन जायगी, फिर तो मानव-जीवनकी परम और चरम सिद्धि तुम्हें प्राप्त हो जायगी। **'शिव'**

रामविवाह

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

रामु सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस मिलि नर नारि समाज॥

जनकपुरके नर-नारी शोभासीम सीताराम और सुकृतसीम जनक-दशरथको देखकर कहने लगे कि जनकके पुण्यकी मूर्ति जानकी एवं दशरथके पुण्यकी मूर्ति श्रीराम हैं। इन दोनों नरेन्द्रोंके समान किसीने भी सदाशिवकी आराधना नहीं की है। इनके समान किसीने भी फलसाधन नहीं किया, इनके समान संसारमें न कोई हुआ है, न है, न होगा। हम सब लोगोंने भी बड़े पुण्य किये हैं, जो संसारमें जन्म लेकर जनकपुरके वासी हुए, हमलोगोंने श्रीजानकी और श्रीरामजीकी शोभा देखी, हमारे समान कौन पुण्यात्मा है? कोकिलाके-से मीठे वचन और सुन्दर नेत्रोंवाली, सुमुखीजन कहने लगीं—सखि, इस विवाहमें बड़ा लाभ है, विधाताने बड़े भाग्यसे यह बात बना दी है, ये दोनों भाई हमारे नयनोंके अतिथि हुआ करेंगे। इनको देखकर हमलोग अपने नेत्रोंको सुफल करेंगी। विवाहके पश्चात् भी जब स्नेहवश राजा जनक बार-बार जानकीको बुलायेंगे, तब कोटिकन्दर्प-कमनीय दोनों भाई सीताजीको विदा करानेके लिये आयेंगे और यहाँ उनकी अनेक भाँति पहुनाई होगी, ऐसी ससुराल किसको नहीं रुचती! सब पुरवासी श्रीराम-लक्ष्मणको देख-देखकर प्रसन्न होंगे। सखि! जैसे श्रीराम-लक्ष्मणका सुन्दर जोड़ा है, वैसे ही राजाके साथ दो राजकुमार और हैं। साँवले और गोरे तथा सब अंगोंके सुहावने हैं। जो देख आये हैं, वे लोग ऐसा ही कहते हैं। एकने कहा—मैं आज ही देखकर आयी हूँ, वे ऐसे सुन्दर हैं, मानो ब्रह्माने अपने हाथसे ही बनाया हो। भरत-राम तो ऐसे मिलते-जुलते हैं कि कोई नर-नारी उनके भेदको एकाएक पहचान ही नहीं सकता। इसी तरह लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी एक ही रूपके हैं। उनके नख-शिख सब अंग-प्रत्यंग अनुपम हैं। वे ऐसे मनभावने हैं कि उनकी उपमाका तीनों भुवनमें कोई मिलता ही नहीं। ये बल, विनय, विद्या, शील एवं शोभाके सिन्धु हैं, इनके समान ये ही हैं। जनकपुरकी स्त्रियाँ अंचल फैलाकर विधाताको यह वचन (विनती) सुनाती थीं कि इसी पुरमें चारों भाई ब्याहे जायँ और हम सब मंगल गायें। नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर पुलकित होकर वे स्त्रियाँ परस्पर कहती थीं, हे सखि! भगवान् पुरारि सब पूरा करेंगे; क्योंकि दोनों राजा पुण्यके पयोधि हैं। इस तरह सब अनेक मनोरथ करतीं और उमँग-उमँगकर आनन्दसे हृदय भरती थीं।

इस तरह आनन्दमें कुछ दिन बीत गये। सब पुरजन और बराती प्रमुदित हो रहे थे। हेमन्त ऋतुका सुहावना अगहन महीना आया, जिसमें मंगलमूल रामके विवाहलग्नका दिन आया। ब्रह्माने तिथि, ग्रह, नक्षत्र, योग, वार और लग्न जो उत्तम था, शोधकर नारदजीके द्वारा भेज दिया। वही सब बातें जनकजीके गणकोंने भी निश्चित की थीं। लोगोंने यह बात सुनकर कहा—यहाँके ज्योतिषी भी साक्षात् ब्रह्मा ही हैं। मंगलमूल निर्मल गोधूलि वेलाको उचित समय जानकर ब्राह्मणोंने वही मुहूर्त राजाको बताया। राजाकी अनुमतिसे शतानन्दजीने सचिवोंको आज्ञा दी, मंगलकलश सजकर आये। शंख, ढोल आदि बहुत-से बाजे बजने लगे। सगुनके लिये कलश सजने लगे, सौभाग्यवती सुहागिन स्त्रियाँ गीत गाने लगीं, विप्रलोग पुनीत वेदध्वनि करने लगे। इस तरह सब लोग बारातको लानेके लिये जनवासेमें गये। वहाँ जाकर लोगोंने महाराज दशरथका वैभव देखा तो इन्द्रका भी वैभव उन्हें साधारण प्रतीत होने लगा। सब लोगोंने महाराजसे पधारनेकी प्रार्थना की। महाराज गुरुवरकी आज्ञा लेकर कुलविधिके अनुसार विधि पूर्ण करके मुनियोंके साथ समाज साजकर चले।

जिस समय श्रीचक्रवर्ती नरेन्द्र दशरथजी श्रीजनकजीकी प्रार्थनासे राम आदि पुत्रोंको लेकर विवाहार्थ चले, उस समय उनके भाग्य और वैभवका अवलोकनकर ब्रह्मादि देवता और शेषप्रभृति भी प्रशंसा करने लगे। मांगलिक अवसर जानकर देवगण पुष्पवर्षा करते थे और दुन्दुभि बजाते थे। शिव-ब्रह्मादि सकल देवगण अपने-अपने

यूथके साथ विमानोंपर बैठकर साथ-साथ चलते थे। उन लोगोंके अंगोंमें प्रेम-पुलकावलि प्रकट हो रही थी। रामविवाह देखनेकी लालसा सबके हृदयमें थी। जनकपुर देखकर सब देवता प्रसन्न हो रहे थे। उसके सामने सबको अपना लोक निम्न श्रेणीका ही जँचता था। चकित होकर सब लोग विचित्र वितानों और अलौकिक रचनाओंको देखते थे। नगरके स्त्री-पुरुष सब रूपकी खान, सुघर, धर्मात्मा, सुन्दर, सुशील तथा सुज्ञान थे, उनको देखकर देवांगनाएँ और देवता ऐसे हो गये, जैसे चन्द्रमाके सामने नक्षत्रोंकी स्थिति होती है। ब्रह्माको भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने वहाँ अपनी कृति कुछ भी नहीं देखी। भगवान् शंकरने सबको समझाया कि आपलोग आश्चर्यमें न पड़ो, धैर्यके साथ श्रीसीतारामजीका विवाह देखो। जिनके स्मरणमात्रसे सबके अमंगल जड़-मूलसहित नष्ट हो जाते हैं, चतुर्वर्ग अनायास ही हस्तगत हो जाते हैं—ये वही परम तत्त्व हैं। इस तरह देवताओंको समझाकर भगवान् शंकरने नन्दीश्वरको आगे बढ़ाया।

देवताओंने देखा कि महाराज दशरथ बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रफुल्लित हो जा रहे हैं, साथमें साधुओं एवं ब्राह्मणोंकी मण्डली थी। राम, लक्ष्मण दोनों मरकत और कनकके समान श्यामल और गोरे थे। उनकी अद्भुत जोड़ी देखकर देवगण बड़े ही प्रसन्न हुए। रामचन्द्रको देखकर प्रसन्न हो देवता दशरथकी प्रशंसाकर फूल बरसाने लगे। उमासहित भगवान् शंकर रामचन्द्रके सुभग स्वरूपको देखकर पुलकित हो उठे और उनके नेत्रोंमें आनन्दाश्रु आ गये। शरच्चन्द्रके समान सुन्दर मुखकमलसदृश नेत्र एवं अलौकिक सुन्दरता हठात् मनको आकर्षित करती थी। श्रीरामके मयूरकण्ठके समान श्यामल अंगमें तडित-विनिन्दक, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तथा विवाहके मंगलमय भूषण बड़े सुहावने लगते थे। मनोहर बन्धुओंके साथ चपल तुरंगोंको नचाते हुए रामचन्द्रजी जा रहे थे। बन्दीजन बिरदावलीका बखान कर रहे थे। जिस तुरंगपर रामचन्द्रजी विराज रहे थे, उसकी गति देखकर गरुड़ भी लजाते थे। वह सब भाँति इतना सुन्दर था कि मालूम पड़ता था कामदेवने ही अश्वरूप बना लिया है, अपने सुन्दर वय, बल, रूप, गुण और गतिसे वह समस्त भुवनको मोहित करता था। उसपर मुक्तामण्यादि रत्नोंसे जटित सुन्दर जीन आस्तीर्ण थे, मनोहर लगामें लगी थीं। श्रीरामचन्द्रजीका अश्व उनकी इच्छाके अनुसार चलता हुआ ऐसा शोभित होता था मानो आभूषणरूपी तारों और पीताम्बररूपी विद्युत्से युक्त रामरूपी मेघको देखकर मयूर नाच रहा हो। जिस अश्वपर रामचन्द्रजी विराजमान थे, शारदा भी उसका वर्णन नहीं कर सकती थीं।

रामचन्द्रजीके सुन्दर रूपको देखते हुए भगवान् शंकरको परमानन्द हुआ। उस समय उनको अपने पन्द्रह नेत्र बड़े ही प्रिय लगे। लक्ष्मीपति विष्णु स्नेहसहित रामको देखकर लक्ष्मीसहित मोहित हो उठे। ब्रह्माजी श्रीरामकी शोभा देखकर बड़े प्रसन्न हुए, परंतु आठ ही नेत्र जानकर पछताने लगे। कार्तिकेय बारह नेत्रसे श्रीरामको बड़े उत्साहसे देख रहे थे। इन्द्र सहस्त्र नेत्रसे सप्रेम रामको देखते हुए गौतमके शापको अपना परम हित मानने लगे। तब देवता भी इस सम्बन्धमें इन्द्रकी बड़ाई कर रहे थे। दोनों राजसमाज बड़ा प्रसन्न था। दोनों ओरसे दुन्दुभि बज रही थी, देवता फूल बरसा रहे थे, सुवासिनी स्त्रियोंको बुलाकर रानी सुनयना परछनके लिये मंगलसाज सजा रही थीं। अनेक तरहसे थाली सजाकर सुन्दरी लोग तरह-तरहके भूषण-वस्त्रोंसे सुसज्जित एवं अलंकृत होकर गान करती हुई चलीं। उनके कंकण-किंकिणी, नूपुर आदिके सुन्दर शब्द हो रहे थे। उनकी गतिको देखकर कामगज भी लजा जाते थे। नभमें देवताओंकी ओरसे और नगरमें पुरवासियोंकी ओरसे अनेक मांगलिक बाजे बज रहे थे। इन्द्राणी, ब्रह्माणी, रुद्राणी आदि देवांगनाएँ सुन्दर वेश बनाकर रनिवासमें आकर मिल गयीं और सबके साथ मंगलगान करने लगीं। हर्षमें विभोर होनेके कारण किसीने कुछ नहीं जाना और मिल-जुलकर सब ब्रह्मरूप रामचन्द्र दूलहका परछन करने चलीं। निशान और मधुरगान सुनकर देवता पुष्पवर्षा करते थे। आनन्दकन्द दूलहको देखकर सब हृदयसे प्रसन्न हुईं। सबके नेत्रकमलोंमें आनन्दाश्रु और अंगमें पुलकावलि छा गयी। दूल्हा रामको देखकर सीताकी माता सुनयनारानीको जो आनन्द हुआ, उसे सहस्त्रों शेष और शारदा भी सैकड़ों कल्पोंमें नहीं कह सकते थे। मंगल जानकर रानीने हठसे

नयनजलको रोका और मुदित मनसे आरती की, सब भाँति वेदाचार और कुलाचारका व्यवहार किया। वेद, बिरदावली, जयकार, शंख तथा दुन्दुभि आदिकी ध्वनि और गान हो रहे थे। मार्गोंमें सुन्दर पटोंके पाँवड़े पड़ने लगे। आरती, अर्घ्यदानके पश्चात् रामचन्द्र भी मण्डपमें आकर श्रीदशरथजीके समाजसहित विराजमान हुए। ब्राह्मण शान्तिपाठ पढ़ने लगे। अर्घ्य देकर रामजीको आसनपर बिठलाया गया, फिर आरती हुई, भूषण-वसनादिकी निछावर हुई। ब्रह्मादि देवता भी ब्राह्मणके रूपमें आकर कौतुक देख रहे थे।

नाई, बारी, भाट, नट आदि भी निछावर पाकर प्रसन्न हो आशीष दे रहे थे। जनक-दशरथ दोनों ही समधी वैदिक-लौकिक रीति करके यथाविधि मिले। मिलते हुए दोनों समधियोंको देखकर कविलोग उपमा खोजने लगे, परंतु कहीं भी कोई उपमा उन्हें नहीं मिली, अन्तमें यही निश्चय हुआ कि इनके समान ये ही हैं। देवता कहने लगे—हमलोगोंने बहुत ब्याह देखे, सुने, परंतु सब साज-समाजसहित समान समधी आज ही देखे। देवताओंकी बातोंको सुनकर सब लोगोंने अनुमोदन किया। मण्डपकी रचना भी बड़ी ही विचित्र तथा सुन्दर थी। वसिष्ठजीकी पूजा जनकजीने इष्टदेवके समान की। विश्वामित्रकी पूजाकी रीति अवर्णनीय ही थी। इसी तरह वामदेव आदि ऋषियोंकी भी पूजा हुई, पश्चात् महाराज दशरथजीकी भी पूजा जनकजीने परमेश्वर समझकर की। हाथ जोड़कर राजाने अपने आपकी सराहना की। सब बारातियोंकी भी राजा जनकने समधीके समान ही पूजा की। सबको यथोचित आसन दिया गया। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तथा इन्द्रादि लोकपाल सूर्य आदि जो तत्त्वज्ञ थे, वे विप्रवेषमें कौतुक देख रहे थे। जनकने उन सबका बिना पहचाने ही पूर्ण सम्मान किया। श्रीरामचन्द्रजीने सबको पहचानकर उनका मानस पूजन किया। सबके लोचन चकोरके समान रामचन्द्रके मुखचन्द्रकी छवि-सुधाका पानकर प्रमुदित थे। वसिष्ठजीके आज्ञानुसार शतानन्दने श्रीजनक-कुमारीको लानेको कहा। पुरोहितकी आज्ञा सुनकर रानी प्रसन्नतासे विप्रवधुओं और कुलवृद्धाओंसे कुलाचार कराके मंगलगीत गाने लगीं। उमा, रमा आदि देवांगनाओंका जो कि स्वभावसे ही परम सुन्दरी और षोडशवार्षिकी थीं, बिना पहचाने ही रानीने बड़ा आदर किया। सबके साथ सोलह सिंगार करके गाती हुई सुन्दरी सीताको लेकर मण्डपकी ओर चलीं। उस वनितावृन्दमें सीता ऐसी शोभित हुईं, जैसे छविरूपा ललनाओंके बीचमें कमनीय शोभा विराजती हो—*'सोहति बनिता बृंद महुँ सहज सुहावनि सीय। छबि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय॥'* सीताकी शोभा अवर्णनीय है; क्योंकि उनकी मनोहरता बहुत है और कविकी मति छोटी है। रूपराशि और परमपवित्र सीताको आते देख सबने उन्हें मनमें प्रणाम किया। पुत्रोंसहित राजा दशरथ भी सीताको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। मंगल-गान, पुष्पवर्षा आदिके साथ दोनों ओरके सब कुलाचार किये गये। ब्राह्मणलोग गौरी-गणपतिकी पूजा करने लगे। देवता प्रकट होकर पूजा लेने लगे और आशीष देने लगे। मधुपर्क आदि जो मंगलद्रव्य जिस समय आवश्यक होता था। उसी समय परिचारक लोग स्वर्णपात्रमें सब उपस्थित कर देते थे। भगवान् सूर्य अपने कुलकी रीतियाँ कहते थे और वे सब आदरपूर्वक की जा रही थीं। इस प्रकार देवताओंकी पूजा कराके मुनियोंने सीताजीको सुन्दर सिंहासनपर आसीन कराया। श्रीसीताजी और श्रीरामजीका एक-दूसरेको देखना और उनका परस्पर प्रेम मन-बुद्धि तथा वाणीसे अगोचर विषय है। उसे प्रकट नहीं किया जा सकता।

श्रीजनकजीकी पट्टमहिषी सुनयनारानीकी जो कि जानकीकी माता थीं, महिमाको कौन कह सकता है? उन्हें मानो विधाताने सुयश, सुकृत, सुख और सुन्दरता आदि शुभ गुणोंको ही एकत्रित करके बनाया हो। समयानुसार वे जनकजीके वामभागमें विराजमान हुईं। सुवर्णके कलश जिनपर रत्नके कटोरे रखे थे और जो पवित्र सुगन्धित मंगलमय जलसे भरे थे, श्रीरामके सामने लाकर राजा-रानीने रखे। मुनिगण मंगलवाणी बोल रहे थे। राजा-रानी दोनों ही दूल्हा रामको देखकर प्रेमसे उनके उन पवित्र चरण-पंकजका प्रक्षालन करने लगे, जो चरणपंकज श्रीशंकरजीके हृदयमें सदा विराजते हैं, जिनके एक बारके

स्मरणसे भी अन्तःकरण पवित्र हो जाता है, सकल कलिमल नष्ट होता है, प्रेम-पुलकावलियुक्त होकर राजा उन्हीं चरणोंको पखारने लगे, जिन्हें स्पर्श करके पातकमयी गौतमपत्नी पवित्र हो गयीं, जिनका मकरन्दरस गंगारूपमें शिवजीके सिरपर विराजता है, योगीजन जिन चरणपंकजमें अपने मनको मधुप बनाकर अभिमत प्राप्त करते हैं, भाग्यभाजन जनकने उन्हीं चरणोंको पखारा। नभ और नगर सर्वत्र जय-जयकार होने लगा।

दोनों कुलके गुरुओंने वरकन्या दोनोंकी हथेलियाँ मिलाकर शाखोच्चार किया। विधिपूर्वक पाणिग्रहण हुआ। राजा-रानी दोनों सुखमूल दूलहको देखकर इतने आनन्दित हुए कि हृदयमें हुलास और देहभरमें रोमांच हो आया। लोक, वेदके विधानानुसार राजाने कन्यादान दिया। जैसे हिमवान्ने शंकरको गिरिजा दी, सागरने विष्णुको लक्ष्मी दी, वैसे ही जनकने रामको जानकी दी। जनकजी रामचन्द्रकी सुन्दरमूर्ति देखकर विदेह हो गये। विधिवत् गाँठ जोड़ी गयी और भाँवरी होने लगी। चारों ओर जयध्वनि, वेदध्वनि, मंगलगान तथा वन्दियोंद्वारा गुणवर्णन और अनेक वाद्यध्वनि विस्तीर्ण हो गयी। उन्हें सुनकर प्रसन्न हो देवता कल्पवृक्षके पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। वरकन्याकी भाँवरी देखकर सबने नयनोंको सफल बनाया। सीता और रामके अंगकी सुन्दर छाया मणियोंके खम्भोंमें जगमगा रही थी। वह दृश्य ऐसा लगता था, मानो मदन और रति अनेक रूप धरकर विवाह देखने आये हैं और हृदयमें दर्शनकी लालसा बहुत है, संकोच भी है; इसीलिये कभी प्रकट होते हैं, कभी छिप जाते हैं। जनकजीके समान ही और दर्शक भी प्रेममें मग्न हो अपनेको भूल गये। मुनियोंने प्रमोदके साथ भाँवरी फिरवायी। नेगके साथ सब रीतियाँ पूर्ण की गयीं।

रामचन्द्रजी सीताजीकी माँगमें सिन्दूर देने लगे, वह शोभा बड़ी अलौकिक थी। मालूम पड़ता था कि श्यामल अहि अमृतके लोभसे जलजमें अरुण पराग भरकर चन्द्रमाको विभूषित करने चला है। अस्तु, वसिष्ठजीकी आज्ञासे वर-दुलहिन दोनों एक आसनपर विराजमान हुए। सुन्दर आसनपर विराजते हुए श्रीराम और जानकीको देखकर महाराज दशरथने पुलकित हो अपने सुकृत-सुरतरुको सफल समझा। रामविवाह मंगलमय महोत्सव सम्पूर्ण भुवनमें भरपूर हो गया। पश्चात् वसिष्ठजीकी सम्मतिसे जनकजीने माण्डवी, श्रुतकीर्ति और उर्मिला नामकी कुमारियोंको बुलाया।

माण्डवीको भरतसे, उर्मिलाको लक्ष्मणसे और श्रुतकीर्तिको शत्रुघ्नके साथ ब्याहा। सब वर और दुलहिनें अपने-अपने अनुरूप जोड़ पाकर संकोचसे उन्हें देखते हुए मनमें बड़े प्रसन्न हो रहे थे। जनकजीके मण्डपमें चारों सुन्दरी अपने-अपने सुन्दर वरोंके साथ ऐसी शोभित होती थीं, मानो जीवके हृदयमें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय—ये चारों अवस्थाएँ अपने स्वामियों विश्व, तैजस, प्राज्ञ एवं शुद्ध ब्रह्मके साथ शोभायमान हों। अवधपति वधुओंके साथ अपने चारों पुत्रोंको देखकर ऐसे प्रसन्न थे, जैसे यज्ञ, श्रद्धा, योग और ज्ञानक्रियाओंके साथ अर्थ, धर्म, काम और मोक्षको पाकर प्राणी प्रसन्न होता है। जिस विधिसे रामचन्द्रजीका विवाह हुआ, उसी तरह सभी भाइयोंका विवाह हुआ। इतना दहेज दिया गया कि स्वर्ण, मणि आदिसे मण्डप भर गया। विचित्र कम्बल, बहुमूल्य रेशमी वस्त्र, हाथी, रथ, घोड़े, दास-दासियाँ, कामधेनुके समान गायें तथा अनेक वस्तुएँ दहेजमें मिलीं, जिन्हें देख लोकपाल भी सिहरने लगे।

दशरथजीने सब स्वीकार किया और याचकोंको, जिसे जो अच्छा लगा वही दिया, जो बचा वह जनवासेमें आया। हाथ जोड़कर जनकजीने सब बारातियोंका सम्मान किया, महामुनियोंका पूजन किया। देवताओंको मनाकर हाथ जोड़कर वे सबसे कहने लगे—देवलोग भावसे सन्तुष्ट होते हैं, जैसे जलांजलिसे कोई सिन्धुको तुष्ट नहीं कर सकता, वैसे ही वस्तुसे हम आपलोगोंको तुष्ट नहीं कर सकते। इसी तरह महाराज दशरथसे हाथ जोड़कर राजा जनक बोले—राजन्! आपके सम्बन्धसे हम सब भाँति बड़े हो गये। राज-साजसहित मुझे आप अपना अक्रीत सेवक समझें। इन कन्याओंको अपनी परिचारिका समझकर पालना। मैंने बड़ी धृष्टता की है, जो इतनी दूरसे आपको बुला भेजा है, यह अपराध क्षमा करना। भानुकुलभूषण महाराज अवधेशने समधीका बड़ा सम्मान किया। दोनों राजाओंके हृदय प्रेमसे भरे थे, वाणी गद्गद हो रही थी,

इससे विनती नहीं की जा सकती थी।

राजा जनवासे चले, देवगण फूल बरसा रहे थे, दुन्दुभि, जयध्वनि, वेदध्वनि फैल रही थी, नभ और नगरमें कौतूहल हो रहा था। सखीगण मंगलगान करतीं हुईं मुनीशके आज्ञानुसार दूलह-दुलहिनको कोहबर ले गयीं। सीताजी बार-बार श्रीरामजीको देखती और सकुचाती थीं, परंतु मन नहीं सकुचाता था। प्रियतमके मुखचन्द्रकी छवि देखना ही चाहता था, प्रेमकी प्यासी आँखें मनोहर मछलीकी शोभाको हरती थीं, श्यामशरीर स्वभावसे ही सुहावना लगता था, अंगकी शोभा करोड़ों मनोजोंको लजवाती थी। महावर लगे हुए चरणारविन्द तो और भी सोहते थे, जिनमें मुनियोंके मन भौरोंके समान रमण करते थे। पवित्र पीताम्बर बालरवि और विद्युत्की ज्योतिको हरण करता था।

कटिमें सुन्दर किंकिड़ी तथा मनोहर कटिसूत्र और विशाल बाहुमें सुन्दर अंगद, कंकणादि भूषण शोभित होते थे। पीत यज्ञोपवीत बड़ी शोभा देता था। हाथकी मुद्रिका तो मानो चित्तको ही चुराती थी। ब्याहके साज सब सजे थे, विशाल उर:स्थलपर हृदयपर पहननेवाले आभूषण शोभा देते थे, पीत उत्तरीय कन्धेपर विराजता था, जिसके दोनों छोरोंमें मणि और मोती लगे हुए थे, कमलके समान नयन थे, कानोंमें सुन्दर कुण्डल थे, भालमें सुन्दर तिलक, मस्तकपर मनोहर मौर था, जिसमें मुक्ता, मणि आदि जटित थे। सब मंजुल अंग चित्त चुरानेवाले थे। पुर-नरनारि सुन्दर वरोंको देखकर नजर बचानेके लिये तृण तोड़ती थीं। आरती करती थीं और भूषण, वसन, मणि आदिको वारती थीं, सुरगण सुमन बरसाते थे, मागध सुयश सुनाते थे। कोहबरमें दूलह-दुलहिनोंको ले जाकर अति प्रीतिसे लौकिक रीति करके सुवासिनीगण मंगल गाती थीं। गौरीजी रामको और सरस्वतीजी सीताको लहकौर (वर-वधूका परस्पर ग्रास देना) सिखाती थीं, रनिवास हास-विलास-रसमें मग्न होकर जन्मको सफल मान रहा था। जानकीजी हाथकी मणियोंमें रूपनिधान श्रीरामकी प्रतिमूर्ति देखकर विरहभयसे भुजाको नहीं हिलाती थीं; क्योंकि हाथ हिलानेसे प्रियकी मूर्ति नहीं दिखेगी। उस समयके सीताजीके कौतुक, विनोद, प्रमोद और प्रेमका वर्णन नहीं हो सकता था। उसे तो सखीलोग ही जानती थीं। जिस समय वर और कुमारियोंको लेकर सखियाँ जनवासको चलीं, उस समय जिधर-तिधर 'ये चारों जोड़ियाँ चिरंजीवी रहें' की आशीष सुनायी पड़ती थी। योगीन्द्र, सिद्ध, मुनीन्द्र और देवताओंने दुन्दुभि बजायी, पुष्पवर्षाकर सबने जय-जय कहा। वधूटियोंके साथ सब कुमार पिताजीके पास आये, उस समय जनवासमें शोभा, मंगल और मोद उमग आया। जनकजीके यहाँ बारातका विविध जेवनारोंसे स्वागत होता था। जनकजी स्वयं दशरथ तथा रामादि चारों भाइयोंके पाँव धोते थे। भोजनके समय स्त्रियाँ गाती थीं। समय पाकर गालियाँ भी सुहावनी लगती हैं। पान देकर अवधेशकी मिथिलेशने पूजा की।

श्रीरामविवाहोत्सव बड़ा ही अद्भुत है, ऋषियों एवं कवियोंने अनेक प्रकारसे उसका वर्णन किया है। महात्मा तुलसीदासजीके शब्दोंके आधारपर उपर्युक्त संक्षिप्त वर्णन किया गया है। इसके वर्णन-श्रवणसे प्राणियोंकी मंगलकामनाएँ अनायासेन सफल होती हैं।

प्रात: प्रार्थना

(श्रीजगदीशप्रसादजी तिवारी)

हे प्रभो! दिन आज का, सबसे मधुर-सुन्दर बने।
सब का भला कल्याण हो, सुख शान्ति से रहँ सब जने॥
अपने लिये सब के लिये, कल्याणकारी मैं बनूँ।
तन-मन तथा धन से सदा उपकार करता मैं चलूँ॥
मुझ में न कोई रोग हो, न शोक हो सन्ताप हो।
सत्कर्म मैं करता रहूँ, मुझसे न कोई पाप हो॥
मन-बुद्धि सारी इन्द्रियाँ, निर्मल बनें, चित शान्त हो।
जीवन मेरा सन्मार्ग पर, चलता रहे नहीं भ्रान्त हो॥
भगवन्! मुझे दो शक्ति ऐसी, कष्ट मैं सब के हरूँ।
पूजा बनें सब कर्म मेरे, विश्व की सेवा करूँ॥

शिवतत्त्वकी महिमा और शिवाराधन

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

'शिव' शब्द नित्य, विज्ञानानन्दघन परमात्माका वाचक है। यह उच्चारणमें बहुत ही सरल, अत्यन्त मधुर और स्वभावतः शान्तिप्रद है। अखण्ड आनन्दको सब चाहते हैं। 'शिव' शब्दका अर्थ कल्याणमय आनन्द है। जहाँ आनन्द—कल्याण है, वहीं शान्ति है। परम आनन्दको ही परम मंगल और परम कल्याण कहते हैं; अतएव 'शिव' शब्दका अर्थ परम मंगल, परम कल्याण समझना चाहिये। अतः आनन्ददाता, परम कल्याणरूप शिवको शंकर कहते हैं। 'शम्' आनन्दको कहते हैं और 'कर' से करनेवाला समझा जाता है; अतएव जो आनन्द करता है, वही 'शंकर' है। ये सब लक्षण उस नित्य, विज्ञानानन्दघन परम ब्रह्मके ही हैं।

इस प्रकार रहस्यको समझकर शिवकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उपासना करनेसे उनकी कृपासे उनका तत्त्व समझमें आ जाता है। जो पुरुष शिवतत्त्वको जान लेता है, उसके लिये फिर कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता। शिवतत्त्वको हिमालयपुत्री भगवती पार्वती यथार्थरूपसे जानती थीं। इसलिये छद्मवेशी स्वयं शिवके बहकानेसे भी वे अपनी साधनासे तिलमात्र नहीं टलीं। इस सन्दर्भका उमा-शिवका संवाद बहुत ही उपदेशप्रद और रोचक है।

एकमात्र शिवतत्त्वमें निष्ठा रखनेवाली पार्वती शिव-प्राप्तिके लिये घोर, घोरतर, घोरतम तप करने लगीं। माता मेनाने स्नेहकातरा होकर 'उ' (वत्से!) 'मा' (ऐसा तप न करो) कहा, इससे उनका नाम 'उमा' हो गया। उन्होंने सूखे पत्ते खाना भी छोड़ दिया था, अतः उनका 'अपर्णा' भी नाम हो गया; उनकी कठोर तपस्याको देख-सुनकर परम आश्चर्यान्वित हो ऋषिगण भी कहने लगे कि 'अहो, इसको धन्य है, इसकी तपस्याके सामने दूसरोंकी तपस्या कुछ भी नहीं है।'

पार्वतीकी इस तपस्याको देखनेके लिये एक समय स्वयं भगवान् शिव जटाधारी वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें तपोभूमिमें आये और पार्वतीके द्वारा फल-पुष्पादिसे पूजित होकर उसके तपका उद्देश्य शिवसे विवाह करना है, यह जानकर कहने लगे—

'हे देवि! इतनी देर बातचीत करनेसे तुमसे मेरी मित्रता हो गयी है। मित्रताके नाते मैं तुमसे कहता हूँ, तुमने बड़ी भूल की है। तुम्हारा शिवके साथ विवाह करनेका संकल्प सर्वथा अनुचित है। तुम सोनेको छोड़कर काँच चाह रही हो, चन्दन त्यागकर कीचड़ पोतना चाहती हो। हाथी छोड़कर बैलपर मन चलाती हो। गंगाजल परित्यागकर कुएँका जल पीनेकी इच्छा करती हो। सूर्यका प्रकाश छोड़कर तुम खद्योतको और रेशमी वस्त्र त्यागकर चर्म पहनना चाहती हो। तुम्हारा यह कार्य तो देवताओंकी संनिधिका त्यागकर असुरोंका साथ करनेके समान है। उत्तमोत्तम देवोंको छोड़कर शिवपर अनुराग करना सर्वथा लोकविरुद्ध है।'

'थोड़ा सोचो तो सही, कहाँ तुम्हारा कुसुम-सुकुमार शरीर और त्रिभुवनकमनीय सौन्दर्य और कहाँ जटाधारी, चिताभस्मलेपनकारी, श्मशानविहारी, त्रिनेत्र, भूतपति महादेव! कहाँ तुम्हारे घरके देवतालोग और कहाँ शिवके पार्षद भूतप्रेत! कहाँ तुम्हारे पिताके घर बजनेवाले सुन्दर बाजोंकी ध्वनि और कहाँ उस महादेवके डमरू, सिंगी और गाल बजानेकी ध्वनि! न महादेवके माँ-बापका पता, न जातिका। दरिद्रता इतनी कि पहननेको कपड़ातक नहीं है। दिगम्बर रहते हैं, बैलकी सवारी करते हैं और बाघका चमड़ा ओढ़े रहते हैं; न उनमें विद्या है और न शौचाचार ही है। सदा अकेले रहनेवाले, उत्कट विरागी, मुण्डमालाधारी महादेवके साथ रहकर तुम क्या सुख पाओगी?'

पार्वती और अधिक शिव-निन्दा न सह सकीं। वे तमककर बोलीं—'बस, बस, अब रहने दो; मैं और अधिक सुनना नहीं चाहती। मालूम होता है, तुम शिवके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते। इसीसे यों मिथ्या प्रलाप कर रहे हो। तुम कोई धूर्त हो, ब्रह्मचारीके रूपमें यहाँ आये हो। शिव वस्तुतः निर्गुण हैं, करुणावश ही वे सगुण होते हैं। उन सगुण और निर्गुण—उभयात्मक शिवकी जाति

कहाँसे होगी? जो सबके आदि हैं, उनके माता-पिता कौन होंगे और उनकी उम्रका ही क्या परिमाण बाँधा जा सकता है? सृष्टि उनसे उत्पन्न होती है, अतएव उनकी शक्तिका पता कौन लगा सकता है? वे ही अनादि, अनन्त, नित्य, निर्विकार, अज, अविनाशी, सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणाधार, सर्वज्ञ, सर्वोपरि, सनातनदेव हैं। तुम कहते हो, महादेव विद्याहीन हैं। अरे, ये सारी विद्याएँ आयी कहाँसे हैं? वेद जिनके निःश्वास हैं, उन्हें तुम विद्याहीन कहते हो? छिः! तुम मुझे शिवको छोड़कर किसी अन्य देवताका वरण करनेको कहते हो। अरे, इन देवताओंको, जिन्हें तुम बड़ा समझते हो, देवत्व-प्राप्ति कहाँसे हुई? यह उन भोलेनाथकी ही कृपाका तो फल है। इन्द्रादि देवगण तो उनके दरवाजेपर ही स्तुति-प्रार्थना करते रहते हैं और बिना उनके गणोंकी आज्ञाके अन्दर घुसनेका साहस नहीं कर सकते। तुम उन्हें अमंगलदेव कहते हो? अरे, उनका 'शिव'—यह मंगलमय नाम जिनके मुखमें निरन्तर रहता है, उनके दर्शनमात्रसे सारी अपवित्र वस्तुएँ भी पवित्र हो जाती हैं, फिर भला स्वयं उनकी तो बात ही क्या? जिस चिता-भस्मकी तुम निन्दा करते हो, नृत्यके अन्तमें जब वह उनके श्रीअंगोंसे झड़ती है, उस समय देवतागण उसे अपने मस्तकोंपर धारण करनेको लालायित होते हैं। बस, मैंने समझ लिया, तुम उनके तत्त्वको बिल्कुल नहीं जानते। जो मनुष्य इस प्रकार उनके दुर्गम तत्त्वको बिना जाने उनकी निन्दा करते हैं, उनके जन्म-जन्मान्तरोंके संचित किये हुए पुण्य विलीन हो जाते हैं। तुम-जैसे शिव-निन्दकका सत्कार करनेसे भी पाप लगता है। शिव-निन्दकको देखकर भी मनुष्यको सवस्त्र स्नान करना चाहिये; तभी वह शुद्ध होता है। बस, अब मैं यहाँसे जाती हूँ। कहीं ऐसा न हो कि तुम फिरसे शिवकी निन्दा प्रारम्भकर मेरे कानोंको अपवित्र करो। शिवकी निन्दा करनेवालेको तो पाप लगता ही है, उसे सुननेवाला भी पापका भागी होता है।' यह कहकर उमा वहाँसे चल दीं। ज्यों ही वे वहाँसे जाने लगीं, वटुवेषधारी शंकरने उन्हें रोक लिया। वे अधिक देरतक पार्वतीसे छिपे न रह सके; पार्वती जिस रूपका ध्यान करती थीं, उसी रूपमें वे उनके सामने प्रकट हो गये और बोले—'मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो।'

पार्वतीकी इच्छा पूर्ण हुई; उन्हें साक्षात् शिवके दर्शन हुए। दर्शन ही नहीं, कुछ कालमें शिवने पार्वतीका पाणिग्रहण भी कर लिया।

जो पुरुष उन त्रिनेत्र, व्याघ्राम्बरधारी सदाशिव परमात्माको निर्गुण-निराकार एवं सगुण-निराकार समझकर उनकी सगुण-साकार दिव्य मूर्तिकी उपासना करता है, उसीकी उपासना सच्ची और सर्वांगपूर्ण है। इस समग्रतामें जितना अंश कम होता है, उतनी ही उपासनाकी सर्वांगपूर्णतामें कमी है और उतना ही वह शिवतत्त्वसे अनभिज्ञ है।

महेश्वरकी लीलाएँ अपरम्पार हैं, वे दया करके जिनको अपनी लीलाएँ और लीलाओंका रहस्य जनाते हैं, वे ही जान सकते हैं। उनकी कृपाके बिना तो उनकी विचित्र लीलाओंको देख-सुनकर देवी, देवता एवं मुनियोंको भी भ्रम हो जाया करता है, फिर साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या है? परंतु वास्तवमें शिवजी महाराज हैं बड़े ही 'आशुतोष'! उपासना करनेवालोंपर वे बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। रहस्य को जानकर निष्काम-प्रेमभावसे भजनेवालोंपर प्रसन्न होते हैं, इसमें तो कहना ही क्या है? सकाम-भावसे अपना मतलब साधनेके लिये जो अज्ञानपूर्वक उपासना करते हैं, उनपर भी आप रीझ जाते हैं। भोले भण्डारी मुँहमाँगा वरदान देनेमें कुछ भी आगा-पीछा नहीं सोचते। जरा-सी भक्ति करनेवालेपर ही आपके हृदयका दयासमुद्र उमड़ पड़ता है। इस रहस्यको समझनेवाले आपको व्यंग्यसे 'भोलानाथ' कहा करते हैं। परंतु इस विषयमें गोस्वामी तुलसीदासजीकी कल्पना बहुत ही सुन्दर है। वे कहते हैं—

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद-बड़ाई भानी॥
निज घरकी बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिवकी दई संपदा देखत, श्री-सारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुखकी नहीं निसानी।
तिन रंकनकौ नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी॥

दुख-दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी॥
प्रेम-प्रसंसा-बिनय-ब्यंगजुत, सुनि बिधिकी बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत-मातु मुसुकानी॥

(विनय-पत्रिका ५)

ऐसे भोलेनाथ भगवान् शंकरको जो प्रेमसे नहीं भजते, वास्तवमें वे शिवके तत्त्वको नहीं जानते; अतएव उनका मनुष्य-जन्म लेना ही व्यर्थ है। इससे अधिक उनके लिये और क्या कहा जाय। अतएव मनुष्य-जन्मको सार्थक करनेके लिये आवश्यक है कि नीचे लिखे साधनोंको समझकर यथाशक्ति उन्हें काममें लानेकी चेष्टा की जाय—

(क) पवित्र और एकान्तस्थानमें गीताके छठे अध्यायके श्लोक १०वें से १४वें तकके अनुसार भगवान् शिवकी शरण होकर—

(१) भगवान् शंकरके प्रेम, रहस्य, गुण और प्रभावकी अमृतमयी कथाओंका उनके तत्त्वको जाननेवाले भक्तोंद्वारा श्रवण करके मनन करना एवं स्वयं भी सत्-शास्त्रोंको पढ़कर उनका रहस्य समझनेके लिये मनन करना और उनके अनुसार आचरण करनेके लिये प्राणपर्यन्त प्रयत्न करना चाहिये।

(२) भगवान् शिवकी शान्त मूर्तिका पूजन-वन्दनादि श्रद्धा और प्रेमसे नित्य नियमित करना चाहिये।

(३) भगवान् शंकरमें अनन्य प्रेम होनेके लिये विनयभावसे रुदन करते हुए गद्गद वाणीद्वारा स्तुति और प्रार्थना करनी चाहिये।

(४) '**ॐ नमः शिवाय**'—इस मन्त्रका मनके द्वारा या श्वासोंके द्वारा प्रेमभावसे गुप्त जप करना चाहिये।

(५) उपर्युक्त रहस्यको समझकर प्रभावसहित यथारुचि भगवान् शिवके स्वरूपका श्रद्धा-भक्तिसहित निष्काम-भावसे ध्यान करना चाहिये।

(ख) व्यवहारकालमें—

(१) स्वार्थको त्यागकर प्रेमपूर्वक सबके साथ सद्व्यवहार करना चाहिये।

(२) भगवान् शिवमें प्रेम होनेके लिये उनकी आज्ञाके अनुसार फलासक्तिको त्यागकर शास्त्रानुकूल यथाशक्ति यज्ञ, दान, तप, सेवा एवं वर्णाश्रमके अनुसार जीविकाके कर्मोंमें लगे रहना चाहिये।

(३) सुख, दुःख एवं सुख-दुःखकारक पदार्थोंकी प्राप्ति और विनाशको शंकरकी इच्छासे हुआ समझकर उनमें पद-पदपर भगवान् सदाशिवकी दयाका दर्शन करना चाहिये।

(४) रहस्य और प्रभावको समझकर श्रद्धा और निष्काम प्रेमभावसे यथारुचि भगवान् शिवके स्वरूपका निरन्तर ध्यान होनेके लिये चलते-फिरते, उठते-बैठते, उन शिवके नामजपका अभ्यास सदा-सर्वदा करना चाहिये।

(५) दुर्गुण और दुराचारको त्यागकर सद्गुण और सदाचारके उपार्जनके लिये हर समय कोशिश करते रहना चाहिये।

मनुष्य कटिबद्ध होकर उपर्युक्त साधनोंको ज्यों-ज्यों करता जाता है, त्यों-त्यों उसके अन्तःकरणकी पवित्रता, रहस्य और प्रभावका अनुभव तथा अतिशय श्रद्धा एवं विशुद्ध प्रेमकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जाती है। इसलिये कटिबद्ध होकर उपर्युक्त साधनोंको करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। इन सब साधनोंमें भगवान् सदाशिवका प्रेमपूर्वक निरन्तर चिन्तन करना सबसे बढ़कर है। अतएव नाना प्रकारके कर्मोंके बाहुल्यके कारण उनके चिन्तनमें एक क्षणकी भी बाधा न आये, इसके लिये विशेष सावधान रहना चाहिये। यदि अनन्य प्रेमकी प्रगाढ़ताके कारण शास्त्रानुकूल कर्मोंके करनेमें कहीं कमी आती हो तो कोई हर्ज नहीं; किंतु प्रेममें बाधा नहीं पड़नी चाहिये; क्योंकि जहाँ अनन्य प्रेम है, वहाँ भगवान्का चिन्तन (ध्यान) तो निरन्तर होता ही है और उस ध्यानके प्रभावसे पद-पदपर भगवान्की दयाका अनुभव करता हुआ मनुष्य भगवान् सदाशिवके तत्त्वको यथार्थरूपसे समझकर कृतकृत्य हो जाता है, अर्थात् परमपदको प्राप्त हो जाता है। अतएव भगवान् शिवके प्रेम और प्रभावको समझकर उनके स्वरूपका निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर चिन्तन होनेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

नीतिका एक महत्त्वपूर्ण श्लोक

(पं० श्रीशिवनारायणजी शास्त्री)

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति॥

नीतिशास्त्रका कहना है—जो दूसरेकी स्त्रियोंको माताके समान, दूसरेके धनको पत्थरके ढेलेके समान और सब प्राणियोंको अपने समान देखता है, वास्तवमें वही देखता है, जो इससे विपरीत देखता है, उसे आसुरी प्रकृतिका बिना सींग और पूँछवाला साक्षात् पशु ही समझना चाहिये। धर्मशास्त्रने पर-स्त्री-गामी पुरुषको महापापी और अधर्मी बतलाया है, इसलिये हिन्दुओंमें परम्परासे यह धर्म चला आता है कि वे दूसरेकी स्त्रीको भूलकर भी बुरी दृष्टिसे नहीं देखते, इसीलिये पृथ्वीके अनेक धुरन्धर विद्वान् भारतीय सभ्यताको संसारकी आदि सभ्यता तथा सम्पूर्णरूपसे देव-सभ्यता मानते और इसकी प्रशंसा किया करते हैं। जिन लोगोंका इसमें विश्वास नहीं है, उनके मनमें राजकुमार लक्ष्मणके मुखसे निकले हुए निम्नलिखित शब्द अवश्य ही विस्मय और भक्ति उत्पन्न कर देंगे। श्रीरामने जब लक्ष्मणको जानकीद्वारा डाले हुए वस्त्राभूषणोंमेंसे केयूर और कुण्डल इत्यादि पहचाननेके लिये कहा, तब लक्ष्मणने कहा—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

'मैं इन केयूरोंको नहीं पहचानता; क्योंकि ये हाथके गहने हैं। मैं इन कुण्डलोंको भी नहीं पहचान सकता; क्योंकि ये कानके भूषण हैं। मैं तो सिर्फ पैरोंके दोनों नूपुरोंको पहचानता हूँ; क्योंकि मैं नित्यप्रति जानकीमाताके चरणोंकी ही वन्दना किया करता था।' कैसा सुन्दर चरित्र है! पुराण और इतिहासमें इस विषयकी सैकड़ों आख्यायिकाएँ भरी हैं, हम यहाँ उनमेंसे केवल एक-दो ही आख्यायिकाएँ पाठकोंके सामने रखते हैं।

भगवान् श्रीरामचन्द्र राजा जनककी पुष्पवाटिकामें घूम रहे हैं, उसी समय श्रीजानकीजी भी वहीं आती हैं, अकस्मात् श्रीराम जनकनन्दिनी सीताको देखकर लक्ष्मणसे कहते हैं—'भाई! इस कन्याका विवाह हमारे साथ होगा!' लक्ष्मणने पूछा कि—'आपने यह कैसे जाना?' भगवान् रामचन्द्रजीने उत्तर दिया कि—'इसमें हमारा मन साक्षी है।' उस समय प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे जो कुछ कहा था, उसका हिन्दी-साहित्यके सम्राट् गोस्वामी तुलसीदासजी इस प्रकार वर्णन करते हैं—

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइहिं न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥

'रघुकुलमें उत्पन्न पुरुषोंका यह सहज स्वभाव ही है कि उनका मन कदापि कुपन्थपर नहीं जाता, फिर मुझे तो अपने मनका पूर्ण विश्वास है, मैंने स्वप्नमें भी किसी दूसरेकी स्त्रीकी ओर नहीं देखा।' यह है प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी धार्मिक मर्यादा!! इसी ढंगपर राजा दुष्यन्तने शकुन्तलाके विषयमें अपने मनकी साक्षी दी थी, जो कविशिरोमणि कालिदासके शब्दोंमें इस प्रकार है—

'सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।'

शुद्ध हृदय और शुद्ध आचरणवाले लोगोंकी चित्तवृत्ति ही सन्देहयुक्त विषयके निर्णय करनेमें प्रमाणस्वरूप हुआ करती है। अर्थात् ऐसे सज्जनोंका खयाल कभी अन्यथा या मिथ्या नहीं होता।

एक समय भगवान् व्यासदेवके आदेशसे वीरवर अर्जुन इन्द्रसे कुछ विद्या सीखनेके लिये स्वर्गमें गये, वहाँ इनकी परीक्षाके लिये इन्द्रने उर्वशी अप्सराको उनके पास भेजा, उर्वशी कुछ तो स्वभावसे ही सुन्दरी थी, फिर उसने अलंकार आदिसे अपनेको सजा-धजाकर अर्जुनका मन डिगानेके लिये प्रस्थान किया और आधी रात्रिके समय वह अर्जुनके स्थानपर पहुँची। अर्जुन भीतरकी सांकल लगाये ध्यानमें मग्न बैठे थे। उर्वशीने दरवाजा खटखटाया। अर्जुन उठे, किंवाड़ खोले, देखते हैं कि—एक परम रूपवती स्त्री दरवाजेपर खड़ी है। उसे देखते ही अर्जुनने उससे कई प्रश्न कर डाले और कहा—

तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? और यहाँ इस समय क्यों आई हो? यह सब मुझे बतलाओ, किंतु इतना तुम्हें याद रखना चाहिये कि पवित्राचरण कुरुवंशियोंका मन किसी दूसरेकी स्त्रीमें कदापि नहीं जाता!

उर्वशीने अर्जुनको लुभानेके लिये बड़े-बड़े हावभाव दिखाये और कहा—'मेरे सदृश स्त्री मर्त्यलोकमें तो क्या स्वर्गलोकमें भी दूसरी नहीं है।' अर्जुनने कहा कि 'मैं तो अभीतक यही जानता था कि संसारमें मेरी माता कुन्तीके समान रूपवती और कोई स्त्री है ही नहीं और इसीसे मुझको यह बड़ा भारी अभिमान था कि मैं एक रूपवती आदर्श देवीका पुत्र हूँ। यदि आप मेरी माता कुन्तीसे भी अधिक रूपवती हैं, तो अच्छी बात है; ईश्वर मेरा जन्म आपके गर्भसे करता तो मैं अपनेको और भी धन्य मानता। पर आप जिस आशामें यहाँ आयी हैं, यह अर्जुनसे कभी स्वप्नमें भी पूरी नहीं हो सकती; क्योंकि उसके पूर्ण करनेमें तो हमारा कुल ही सर्वथा कलंकित हो जायगा और मैं सदाके लिये नरकका कीड़ा बनकर अपने सच्चे मानव-जन्मसे हाथ धो बैठूँगा। बस, मेरा तो आपसे इतना ही कहना काफी होगा कि—

हम क्षत्रीकुल-पूत इन्द्रके अन्तेवासी।
कुल कलंक मत देहु मातु! हम भारतवासी॥

अर्जुनके मुखसे इतना सुनकर बेचारी उर्वशी अपना-सा मुँह लेकर वहाँसे वापस लौट गयी। पाठको! कुलकी मर्यादा और अपने आदर्शकी पवित्रता रखनेके लिये अर्जुनने धार्मिकताका जो उच्च आदर्श दिखलाया है, उसे आप कभी न भूलें। भाइयो! इस प्रकार अपने पवित्र आदर्शकी रक्षा करके ही तो भारतवासी महान् ज्ञानी और शूरवीर बनते थे, जिनके सामने सब देश सिर झुकाते थे। शोकके साथ लिखना पड़ता है कि आज बहुतसे भारतवासी विजातियोंकी संगति और कुशिक्षाके प्रभावसे अपने इस पवित्र आदर्शसे गिरकर कामके पंजेमें पड़ आसुरी प्रकृतिके साक्षात् पशु बन गये हैं, आज विलासप्रियताने प्रायः प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें स्थान कर लिया है, कहाँ तो हमारा इतना ऊँचा आदर्श और कहाँ आजकी गिरी हुई दशा!

परद्रव्येषु लोष्टवत्

हमारा शास्त्र कहता है—धन-जैसी बुरी चीज और नहीं। इसके प्राप्त करनेमें दुःख, रक्षामें दुःख और नाशमें दुःख है। धन चिन्ताका आगार और आफतोंका घर है। यह जिनके पास होता है, उनकी चिन्ताओंका कोई पार नहीं रहता। वे दिन-रात इसीके फेरमें पड़े रहते हैं और उनकी जिन्दगी सदा खतरेमें रहती है। अधिक क्या—सगे नातेदार और स्वयं पुत्रतक धनीकी मरण-कामना किया करते हैं। ग्रेगरी नामक विद्वान्ने कहा है—'धनकी प्राप्तिसे हमें उतनी खुशी नहीं होती, जितना कि उसके नाशसे हमें दुःख होता है।' इसी प्रकार प्लटार्कका कथन है कि—जिनके पास धन होता है, उन्हें उससे कष्ट ही अधिक होता है। ऐसे अनर्थोंके मूल धनको अज्ञानी विषयी पुरुषोंके सिवा और कौन पसन्द करता है? थोड़ी देरके लिये यह भी मान लें कि संसारका काम चलानेके लिये धनकी बड़ी आवश्यकता है, इसलिये वह अच्छी चीज है, तथापि यह तो मानना ही होगा कि वह धन न्यायोपार्जित होना चाहिये। पराया धन चोरी-जोरी या बेईमानीसे हड़प जाना तो महा अनर्थ और पापका मूल है। दूसरेके धनका हरण करना तो बड़ी बात है, हरणका विचार भी मनमें लाना अनर्थ है। जो ऐसा विचार किया करते हैं, उनके दोनों लोक बिगड़ जाते हैं। यहाँ लोक-निन्दा होती और दण्ड मिलता है। यदि यहाँ किसी तरह बच भी गये, तो वहाँ तो किसी तरह बच ही नहीं सकते। हमारी प्रत्येक अच्छी-बुरी इच्छाओंको भी नोट करनेवाला हमारे अन्दर ही मौजूद है। वह हमारे हर एक गुप्तसे गुप्त कामपर भी नजर रखता है। वेद हमें आज्ञा देते हैं—**'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्'** तुम किसीका धन मत चाहो। महात्मा विदुरने कहा है—'पराया धन हरण करने, पर-स्त्रियोंसे व्यभिचार करने और विश्वासी मित्रोंके साथ विश्वासघात करनेसे मनुष्य नष्ट हो जाता है।' धम्मपदमें लिखा है—जो हिंसा करता है, मिथ्या भाषण करता है, जो दूसरोंकी चीजको उनके दिये बिना अपहरण करता है, वह इस

लोकमें ही अपने हाथसे अपनी जड़ खोदता है। अगर धनकी लालसा ही हो तो स्वयं उद्योग करना चाहिये। उद्योगी और परिश्रमीके पास लक्ष्मी दौड़कर आती है। बहुत धन भाग्यमें न भी हो, तो भी उद्योगी दरिद्री नहीं रह सकता। इसलिये भूलकर भी पराये धनपर मन न चलाना चाहिये।

आत्मवत् सर्वभूतेषु

इसका अर्थ यह है कि हमें सभी जीवोंको अपने समान समझना चाहिये, पराये प्राणोंको भी अपने प्राणोंके समान समझना चाहिये। दूसरोंको कष्ट पहुँचाते समय इस बातका ख्याल अवश्य रखना चाहिये कि यदि हमें कोई ऐसा ही कष्ट दे, हमारी हत्या करे, तो हमारा क्या हाल हो? यदि मनुष्य यह विचार अपने हृदयमें रखे, तो उससे कभी किसीकी हत्या न हो और किसी तरहका कोई भी जुल्म न हो।

शेख सादीने कहा है—

जेरे पायत गर बिदानी हाले मोर।
हमचो हाले तस्त जेरे पाये पील॥

तुम्हारे पाँवके नीचे दबी चींटीका वही हाल होता है, जो हाथीके पाँवके नीचे दब जानेपर तुम्हारा हो सकता है। दूसरेके दुःखकी अपने दुःखसे तुलना किये बिना, हमें उसके दुःखका पता नहीं लग सकता।

समदर्शी होनेके उपाय

वेदान्तके अनुसार समदर्शिता ही परमानन्दकी सीढ़ी है। चित्तकी समता ही 'योग' है। जब समान दृष्टि हो गयी, तब 'योगसिद्धि' में बाकी ही क्या रहा? जब मनुष्यको इस बातका ज्ञान हो जाता है कि समस्त जगत् और जगत्‌के प्राणियोंमें एक ही चेतन आत्मा है, छोटे-बड़े, नीच-ऊँच सभी शरीरोंमें एक ही ब्रह्मका प्रकाश है, तब उसकी नजरमें सभी समान हो जाते हैं। जब वह राजा-महाराजा, अमीर और गरीब, मनुष्य और पशु-पक्षी, हाथी और चींटी, सर्प और मगर सबमें एक ही चेतन आत्माको व्यापक देखता है, तब उसके दिलमें एकसे राग और दूसरेसे विराग, एकसे विरोध और दूसरेसे प्रणयका भाव रह नहीं जाता, उस समय उसे न कोई शत्रु दीखता है और न कोई मित्र। इस अवस्थामें पहुँचनेपर, वह न किसीको अपना समझता है, न पराया। इसी समय उसे स्त्री-पुरुष, शत्रु-मित्र, सर्प-पुष्पहार और सोना-मिट्टीप्रभृतिमें कोई अन्तर नहीं मालूम होता। इस अवस्थामें उसके अन्तःकरणसे दुःखोंका घटाटोप दूर होकर, परमानन्दका प्रकाश छा जाता है। इस समय उसे जो आनन्द होता है, उसको कलमसे लिखकर बताना असम्भव है। स्वामी शंकराचार्यजी महाराज कहते हैं—

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम्॥

हे मनुष्य! यदि तू शीघ्र ही मोक्ष या विष्णुत्व चाहता है, तो शत्रु-मित्र, पुत्र-बन्धुओंसे विरोध और प्रणय मत कर, यानी सबको एक नजरसे देख, किसीमें भेद न समझ। मतलब यह कि यदि मोक्ष, मुक्ति या परमानन्द चाहते हैं तो सब जगत्‌में अपने ही आत्माको देखिये, एकको अपना और दूसरेको पराया, एकको शत्रु और दूसरेको मित्र न समझिये। समस्त जगत्‌में एक ही आत्मा व्यापक है। भिन्न-भिन्न घड़ोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारका जल—किसीमें गुलाबजल, किसीमें गंगाजल और किसीमें जूँठनका जल भरा रहनेपर भी सबमें एक ही सूर्यका प्रतिबिम्ब पड़ता है, सबमें एक ही सूर्य दीखता है; उसी तरह मनुष्य, पशु-पक्षी और मगरमच्छप्रभृति जगत्‌के सभी प्राणियोंमें एक ही चेतन ब्रह्मका प्रतिबिम्ब या प्रकाश है। भिन्न-भिन्न प्रकारके शरीरों या उपाधियोंके कारण सबमें एक ही आत्मा होनेपर भी अलग-अलग आत्मा दीखते हैं। परंतु इस प्रकार भिन्न-भिन्न शरीरोंमें भिन्न-भिन्न आत्माओंका होना अज्ञानियोंको ही मालूम होता है; जो तत्त्ववेत्ता और पूर्ण ज्ञानी हैं, अथवा जो आत्मतत्त्वकी तहतक पहुँच गये हैं, उन्हें सभी शरीरोंमें एक ही आत्मा दीखता है। वे समझते हैं कि जो आत्मा मुझमें है, वही समस्त जगत् और जगत्‌के प्राणियोंमें है। बकरीके शरीरमें जो आत्मा है उसे बकरी, हाथीके शरीरमें जो आत्मा है उसे

हाथी और मनुष्यके शरीरमें जो आत्मा है उसे मनुष्य कहते हैं। यह कहना उन शरीरोंके सम्बन्धसे है। जिन-जिन शरीरोंमें आत्मा प्रवेश कर गया है, उन्हीं-उन्हीं शरीरोंके नामसे वह पुकारा जाता है। शरीरों या उपाधियोंका भेद है; आत्मामें कोई भेद नहीं। नदी, तालाब, झील, बावड़ी, झरना, सोता और कुआँ—इन सबमें एक ही जल है; नाम अलग-अलग हैं। दीपक, मशाल, चिराग और अग्नि सबमें एक ही अग्नि है, नाम अलग-अलग हैं। पृथ्वी एक ही है, पर उसके नाम अलग-अलग हैं। किसीको 'नगर', किसीको 'गाँव', किसीको 'ढानी' और किसीको 'घर' कहते हैं, पर है तो सब धरती ही। ताना-बाना एक ही सूतके दो नाम हैं, पर है दोनोंमें सूत ही। वन एक ही है, उसमें अनेक वृक्ष हैं और उनके नाम तथा जातियाँ अलग-अलग हैं। बीजसे वृक्ष होता है और वृक्षसे बीज होता है, अतः बीज वृक्ष है और वृक्ष बीज है। दोनों एक ही हैं, पर नाम अलग-अलग हैं।

इसी प्रकार सबमें एक ही चेतन आत्मा है, भिन्न-भिन्न प्रकारके शरीरोंके कारण नाम अलग-अलग हो गये हैं। भ्रमके कारण असली बात मनुष्यकी समझमें नहीं आती। मृगमरीचिकामें जल नहीं है, भ्रमवश मनुष्यको जल दीख पड़ता है और वह कपड़े उतारकर तैरनेको तैयार हो जाता है। रस्सी रस्सी है, साँप नहीं, पर अँधेरेमें वही रस्सी साँप-सी दीखती है, जिससे डरकर मनुष्य उछलता और भागता है। इसी तरह जबतक मनुष्यके हृदयमें अज्ञानरूपी अन्धकार रहता है तबतक उसे औरका और दीखता है। अज्ञानके दूर होनेपर उसे स्पष्ट पता लग जाता है कि वास्तवमें सारे जगत्में एक ही ब्रह्म व्यापक है—प्रत्येक शरीरमें एक ही चेतन आत्मा है। बिहारीजीने कहा है—

मोहन मूरति श्यामकी अति अद्भुत गति जोइ।
बसत सुचित अन्तर तऊ प्रतिबिम्बित जग होइ॥

श्यामकी मोहिनी मूरतिकी गति अति अद्भुत है, वह सुन्दर हृदयमें रहती है तो भी उसका प्रतिबिम्ब सारे जगत्में पड़ता है। महाकवि नजीर कहते हैं—

ये एकताई ये एकरंगी, तिस ऊपर यह कयामत है।
न कम होना न बढ़ना और हजारों घटमें बँट जाना॥

ईश्वर एक है और एक रंग है—निर्विकार और अक्षय है, उसमें रूपान्तर नहीं होता और वह घटता-बढ़ता भी नहीं; लेकिन अचम्भेकी बात है कि वह घट-घटमें इस तरह प्रकट होता है, जिस तरह एक सूर्यका प्रतिबिम्ब सैकड़ों जलाशयोंमें दिखायी देता है।

यह निश्चय रखना चाहिये कि जीवात्मा और परमात्मामें निस्सन्देह कोई भेद नहीं है। दोनोंमें एक ही आत्मा है। जीवकी उपाधि अन्तःकरण है और परमेश्वरकी उपाधि माया है। जीवकी उपाधि छोटी है, परमात्माकी बड़ी है; इसीसे ईश्वरका सर्वज्ञत्व आदि धर्म जीवमें नहीं पाये जाते। गंगाकी बड़ी धारामें नाव और जहाज चलते हैं, हजारों मगरमच्छ और करोड़ों मछलियाँ तैरती हैं तथा किनारेपर लाखों लोग स्नान करते हैं, पर वही गंगाजल अगर एक गिलासमें भर लिया जाय, तो उसमें न तो नाव और जहाज होंगे, न मगरमच्छ और मछलियाँ होंगी और न किनारेपर लोग स्नान ही करते होंगे। परंतु वस्तुतः गंगाकी बड़ी धारामें जो जल है, वही जल इस गिलासमें है। वह गंगाका बड़ा प्रवाह है और गिलासमें थोड़ा-सा जल है। जिस तरह दोनों जलोंके एक होनेमें सन्देह नहीं; उसी तरह जीवात्मा और परमात्माके एक होनेमें सन्देह नहीं। सारांश यह कि जीवात्मा, परमात्मा और समस्त जगत्में एक ही ब्रह्म है। जो इस बातकी तहतक पहुँच जायगा, वह किससे वैर और प्रीति करेगा? जबतक मनुष्य इस बातको अच्छी तरह नहीं समझ लेता और यह बात उसके हृदयपर अंकित नहीं रहती कि जो आत्मा मेरे शरीरमें है, वही जगत्के और प्राणियोंके शरीरोंमें है तभीतक वह एकको अपना और दूसरेको पराया, एकको शत्रु और दूसरेको मित्र समझा करता है। कैवल्योपनिषद्में लिखा है—

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत्।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं स त्वमेव त्वमेव तत्॥

जो ब्रह्म सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और नित्य है, वह तू ही है और तू वही है।

कष्ट और दुःखसे मुक्त होनेकी कला

[सच्चा प्रेम त्यागमें है]

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गतांक सं० १० पृ०-सं० ८९८ से आगे]

एक पुरानी बात है—रूस और जापानके युद्धकी। एक बुढ़िया माताजी थीं। उनके एक ही पुत्र था। चूँकि उस बुढ़ियाका अन्य कोई परवरिश करनेवाला नहीं था, इसलिये उसका पुत्र देशके लिये मरनेवालोंकी सेनामें भर्ती नहीं हो पा रहा था। यह अच्छी बात है अथवा बुरी बात है, यह अलग बात है। माँने आत्महत्या कर ली और कमाण्डरको चिट्ठी लिख दी कि मैं इसलिये मर रही हूँ कि मेरा बेटा देशके लिये मर सके। मैं उसकी मृत्युमें बाधक थी। अब बताइये, स्वयं मरे और बेटेको मरनेके लिये भेज दे, यह कोई माँका काम है? परंतु, यही तो माँका काम है। उसने अपने मरणमें अनुकूलता देखी।

एक माँने लक्ष्मणको वनमें भेज दिया और भरतके लिये एक माँने कितना षड्यन्त्र रचा! भाव ही तो है। एक बड़ी सुन्दर बात 'गीतावली' में आयी है। भरतने देखा कि ऊपर तीव्र गतिसे कोई चीज जा रही है। उन्होंने देखा कि पहाड़ लेकर कोई जा रहा है। उन्होंने सोचा कि कोई राक्षस होगा। उन्होंने बाण संधान किया, मारा। हनुमान्जी 'राम-राम' करते धराशायी हो गये। भरतजीने 'राम' का नाम सुना तो दौड़े और उन्हें अपनी बाँहोंमें भर लिया तथा जीवनदान दिया। हनुमान्जी खड़े हो गये। भरतजीने पूछा—आप कौन हैं? हनुमान्जीने पूरा वृत्तान्त बताया। कहा—इस प्रकारसे लक्ष्मणजीको शक्ति लग गयी है। मैं इस पर्वतको लेकर जा रहा हूँ। इसपर संजीवनी औषधि है। रात्रि व्यतीत होनेसे पूर्व मुझे वहाँपर पहुँचना है। अब भरतजीके दुःखका पार नहीं। उन्होंने सोचा कि मैं कितना बड़ा नालायक हूँ। रामको वन भेजनेमें तो कारण था ही, अब लक्ष्मणको बचानेके लिये जो साधन हो रहा था, उसमें भी मैं बाधक बन गया। भरतजीने कहा—हनुमान्जी! आप पर्वतसहित मेरे बाणपर सवार हो जाइये; मैं आपको अभी श्रीरघुनाथजीके पास भेजता हूँ। हनुमान्जीने कहा—प्रभो! इसकी आवश्यकता नहीं है, आपके आशीर्वादसे थोड़ी ही देरमें मैं इसे लेकर पहुँच जाऊँगा। उस समय वहाँपर शत्रुघ्नजीके साथ माता सुमित्रा भी आयी हुई थीं। सूरदासजीने इस प्रसंगपर बहुत लिखा है। जब माता सुमित्राने सुना कि लक्ष्मण रामके काम आ गया तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे प्रसन्नचित्तसे बोलीं—आज मेरी कोख सफल हो गयी। मेरा बेटा आज रामके काम आ गया। उसका जीवन सफल हो गया। मैं धन्य हो गयी। वे शत्रुघ्नसे बोलीं—बेटा! अब तुम्हारी बारी है। लक्ष्मणने तो अपना जीवन सफल कर लिया। अब तुम हनुमान्के साथ जाओ और अपना जीवन धन्य करो। रामके लिये अपना जीवन बलिदान करो। वहाँपर कौसल्याजी भी आयी हुई थीं। कौसल्याजीने कहा—हनुमान्! रामसे कह देना कि लक्ष्मणको साथ लेकर गया था, साथ लेकर ही आये; नहीं तो अयोध्यामें मत आये। ऐसी हैं दोनों माताएँ। हनुमान्जीने कहा—न तो शत्रुघ्नजीको जानेकी आवश्यकता है और न ही राम अकेले आयेंगे। राम तो सीतासहित लक्ष्मणको साथ लेकर हमलोगोंके साथ आयेंगे। माता! आप लोग आशीर्वाद दें। अब यहाँपर सुमित्राको लक्ष्मणके मरनेमें सुख और शत्रुघ्नको मरने भेजनेमें सुख तथा रामको बिना लक्ष्मणके जीवित न आनेकी बात कहते हुए कौसल्याको सुख है। यह क्या चीज है? यह त्याग है और यह प्रतिकूलतामें अनुकूलताका अनुभव है। यही प्रेम है।

यह बहुत समझनेकी बात है। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ त्याग होता ही है। प्रेम-प्रेम हम नाम सुनते हैं और प्रेमके नामपर भोग ले लेते हैं। प्रेम तो खिलता है त्यागमें। प्रेमका वृक्ष लहलहाता है, जब त्यागरूपी बीज होता है। अगर त्याग नहीं है तो प्रेम कोई वस्तु नहीं है, और यदि त्याग है तो कहीं प्रतिकूलता है ही नहीं। इसलिये जो भगवत्प्रेमी होते हैं, वे नित्य हँसते हैं। यदि कभी रोते हैं तो उस रोनेमें भी हँसना है। वह रोता कभी नहीं है। वह निरन्तर अपने-अपने प्रभुको हँसते हुए देखता है। हँसता रहता है, उस हँसनेमें यदि अपना रोना कारण हो तो भी। यह बड़ी विचित्र बात है। रोता है परंतु हँसता है, यदि उसके रोनेसे प्रेमास्पद प्रसन्न हैं। वह बड़ी पीड़ाका अनुभव करता है प्रेमास्पदके वियोगमें। अगर प्रेमास्पद उस पीड़ामें सुखी हैं, प्रसन्न हैं, हँसते हैं तो वह उस पीड़ाको मान लेता है—मान नहीं लेता है, दीखता है, उसे अनुभव होता है कि यह ब्रह्मानन्दसे बढ़कर सुखकर है; क्योंकि यह प्यारेको

सुख देनेवाली है।

यह चीज हम संसारमें प्रयोग करके देख सकते हैं। आप घरमें अपने भाईके लिये, मुहल्लेमें अपने पड़ोसीके लिये, गाँवमें अपने गाँववालोंके लिये त्याग करके देखिये। उनके सुखके लिये अपने सुखोंका बलिदान कीजिये। उनके दुःखोंको अपना दुःख बनाकर ले लीजिये। तब देखिये प्रेम-सुख बढ़ता है या नहीं। आज जगत्में यह छीना-झपटीका संघर्ष क्यों है? इसलिये कि अपना सुख चाहते हैं चाहे पड़ोसी, देशवासी, राष्ट्रवासी, विश्ववासी मर जायँ। इससे सब दुःखी होंगे, सुख कहीं नहीं रहेगा और यदि यह चाहें कि हमारा सुख दुःखियोंकी सम्पत्ति बन जाय, हमारे भोग जहाँ भोग नहीं हैं उनके अधिकारकी वस्तु बन जाय, हमारा त्याग उनके सुखका साधन बन जाय तब प्रेम ही प्रेम होगा। जगत्में प्रेमकी नदी बहेगी, इस लौकिक जगत्में भी किन्ही 'वाद' से काम नहीं होगा। रूसमें 'वाद' है—कम्यूनिज्म (साम्यवाद), परंतु क्या कोई सरकार रह सकी है? लेनिनको उन्होंने गालियाँ दीं, बोस्कीको मार डाला गया, स्टेलिनके मरनेके बाद उसको लोगोंने गालियाँ दीं और जो उनके खास लोग थे, उनको जेलमें डाल दिया गया। मोरो टोवके लिये कहा जा रहा है कि शायद मरवा दिया गया। यह क्या चीज है? जहाँपर राग-द्वेष है, जहाँ अपनेको छिपानेकी इच्छा है, वहाँ उस 'वाद' का नाम चाहे प्रेमवाद रखें, ब्रह्मवाद रखें, साम्यवाद रखें अथवा समाजवाद रखें—वह वाद होगा, वाद और वाद होगा; पीड़ा देनेवाला, विनाश करनेवाला। असली वाद जो है, वह है—सच्चा प्रेम। भगवान्के लिये त्याग करनेका प्रेम। वह प्रेम जिस दिन विश्वमें खिलेगा उस दिन विश्व सुखी होगा, नहीं तो ये वाद (Ism) पलटते रहेंगे। नये-नये 'वाद' आयेंगे और इन 'वादों' में जगत् जलता रहेगा। कुछ भला नहीं होगा।

भगवत्प्रेमको सामने रखकर, भगवान्को सामने रखकर अपने जीवनमें नित्य-निरन्तर अनुकूलताका अनुभव कीजिये। नित्य-निरन्तर त्यागद्वारा भगवान्के प्रेमको अर्जन करते रहिये। अपना सारा सुख केवल भगवान्की प्रसन्नतामें विलीन कर दीजिये। भगवान्की प्रसन्नता ही सुख है। इसके सिवाय कोई सुख नहीं है। यही हमारा उद्देश्य हो, यही ध्येय हो। जीवनमें करना क्या है? केवल भगवान्को प्रसन्न करना है। सारे कार्य भगवत्प्रीत्यर्थ हों; अपना कार्य रहे ही नहीं। भगवान्ने पाँच बातें कही हैं—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(गीता ११।५५)

कोई अपना कार्य रहे ही नहीं। इन्द्रियोंसे, मनसे, बुद्धिसे सारा भगवान्का काम होता रहे—मत्कर्मकृत और भगवान्की परायणता हो तथा भगवान्की भक्ति हो। जगत्में मन कहीं फँसा न रहे, आसक्ति न रहे और निर्वैर रहे—जगत्में जब सबमें भगवान् हैं तो वैरी कौन? सारे भूतोंमें निर्वैरता आ जाय। यह अनन्य भक्तिका स्वरूप भगवान्ने बताया और कहा कि जो ऐसा भक्त है, वह मुझको ही पाता है। वह तो प्राप्त है ही।

हमारा कोई कर्म जबतक हम अपने किसी भौतिक सुख या अन्य सुखके लिये करते हैं तबतक अनुकूलता-प्रतिकूलताका बोधक होता है। हमारी सभी प्रतिकूलता आज अभी मिट सकती है यदि हम भगवान्की अनुकूलताके अनुकूल हो जायँ। होगा वही और होता वही है, हमारे चाहनेसे भाग्य पलटता नहीं है। हमारे चाहनेसे दुःख मिटता नहीं है। कौन मरना चाहता है? कौन बीमार होना चाहता है? कौन निर्धन बनना चाहता है? कौन अधिकारशून्य रहना चाहता है? परंतु क्या सबको मिलता है? होगा वही जो भगवान्ने रच रखा है। चाहे रोकर भोग लो, सहन करके भोग लो, भाग्य मानकर भोग लो, माया मानकर उसको अलग कर दो अथवा भगवान्की प्रसन्नता देखकर उसमें प्रसन्न होते हुए उसे सिर चढ़ा लो। सर्वोत्तम बात है—भगवान्की प्रसन्नता मानकर उसको सिर चढ़ाओ। मौत आये तो धारणा करें—भगवन्! आप मौतके रूपमें आये हैं या आपने मौत भेजी है, बड़ा अच्छा, हम आपका आलिंगन करेंगे।

'मृत्युः सर्वहरश्चाहम्।' (गीता १०।३४)

भगवान्ने कहा—मृत्यु मैं हूँ। मौत बनकर भगवान् आये। हम आलिंगन करेंगे। आपको हृदयसे लिपटा लेंगे। आप मौतके रूपमें आकर क्या करेंगे? हमें नया जीवन देंगे? अपने धाममें ले जायँगे। अपने पास रखनेके लिये आप इस मौतरूपी सन्देशको लेकर आये हैं। इस रूपको आप पलट देनेके लिये आये हैं और वह रूप देंगे, जो आपके चरणोंमें रह सकता है। बड़ा सौभाग्य है मेरा। भगवन्! आपकी बड़ी कृपा है कि आप अपने पास रखना चाहते हैं। यदि मृत्युके समय उपर्युक्त भाव कर लें तो आप अवश्य-अवश्य भगवान्के पास पहुँच जायँगे। भगवान् आपको अपने पार्षदोंमें रखेंगे। यह बिलकुल सत्य बात

है। मृत्युके समय यदि यह बात मनमें आ जाय कि भगवान् मुझे लेने आ रहे हैं। अपने पास ले जा रहे हैं और अपने सेवकोंमें स्थान देंगे। अब उन्होंने मुझे अपना लिया है तो निश्चित मानिये कि आप भगवान्के साथ जायँगे और भगवान्के पार्षद बन जायँगे। बृहदारण्यकोपनिषद्में आया है कि अगर कोई मृत्युको निर्वाण मान ले तो उसकी मुक्ति हो जाती है। और, यदि कोई रोगको तप मान ले तो उसको तपका फल मिलता है। यह सिद्धान्त है कि मरनेके समय जहाँ मन रहता है, उसीके अनुसार गति होती है। इसलिये जब मौत आये तब उसे भगवान् समझिये। दुःख आये तो उसे भगवान् मानिये। पीड़ा आये तो उसे भगवान्का मंगलमय विधान या भगवान्के प्रेमकी वस्तु मानिये। जितनी-जितनी भी संसारके दुःखकी स्थितियाँ हैं, जिनका नाम हमने दुःख रख छोड़ा है वे दुःख नहीं हैं। उसीको यदि हम त्यागके रूपमें लें तो सुखी हो जायँगे।

एक व्यक्ति जिसने सब कुछ त्याग दिया और एक जिसे लूट लिया गया—वे दोनों एक-से हैं। जिसका लुटा, वह रोता है और जिसने त्याग दिया, वह हँसता है। यद्यपि दोनोंकी स्थिति एक-सी है। इसलिये स्थितियोंमें कुछ नहीं रखा है। यह मनकी अनुकूलता और प्रतिकूलतामें है। अगर आप मनसे भगवान्की प्रत्येक विधिको, प्रत्येक विधानको सुखपूर्वक, आनन्दपूर्वक स्वीकार करें तो कोई स्थिति, कोई अवस्था दुःखका दर्शन नहीं करा सकती। दुःख पास नहीं आयेगा; क्योंकि भगवान्का मंगलभरा, प्रसन्न श्रीमुख हमारे सामने नित्य हँसता हुआ रहेगा। हम बड़े आनन्दसे उस श्रीमुखको देखेंगे। हम भगवत्प्रीत्यर्थ जियेंगे और भगवत्प्रीत्यर्थ ही मरेंगे। जीना-मरना सब भगवान्के लिये रहेगा। इस प्रकारकी हमारी स्थिति जब हो जायगी तब कुछ रहेगा नहीं। परंतु जबतक नहीं है तबतक ऐसी कल्पना कीजिये। ऐसी भावना कीजिये। इस प्रकारकी धारणा कीजिये कि यहाँपर हमारे लिये जो कुछ हो रहा है—यह सारा-का-सारा हमारे मंगलके लिये हो रहा है। और, यह सब क्या हो रहा है? यह सब भगवान्की लीला है।

यहाँ संसारमें दो ही चीजें हैं। एक जो कुछ है, वह भगवान् हैं और दूसरा जो हो रहा है, वह भगवान्की लीला है। फिर, हम कौन हैं? हम उस लीलाके पात्र हैं। हम भी उस लीलामें सम्मिलित हैं। हमारा बड़ा सौभाग्य है कि हम लीलामें शामिल हैं। भगवान् हमको भी लेकर खेलते हैं। हम भी उनके नाट्यके एक अभिनेता हैं। हमें भी साथ ले लिये हैं और खेला रहे हैं। कभी कोई स्वाँग दे देते हैं, कभी कोई। बड़ा अच्छा है। हम तो यही मानें कि भगवन्! बड़ा अच्छा, सुन्दर खेला रहे हैं, जो चाहे सो खेल खेलाओ। परंतु प्रभो! आप साथ रहो और आपके लिये हम खेलते रहें। बस, फिर कोई बात नहीं, कहीं भी जायँ। जो प्रेमी भक्त होता है, वह मुक्ति आदि नहीं चाहता है। वह चाहता है कि उनका संग बना रहे—

कुटिल करम लै जाहिं मोहिं जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ-अंडकी नाईं॥

(विनय-पत्रिका १०३)

कहीं भी जायँ कोई आपत्ति नहीं है। कहीं तो जाना ही है। उनके विधानसे बाहर जाना नहीं है। बाहर कुछ है नहीं, वह भेजेंगे कहाँ? रखेंगे अपनेमें ही। कहीं भी रखें परंतु सामने रहें। फिर कोई आपत्ति नहीं। यदि नरकमें रहें तब भी आप हमारे साथ रहें। और रहते हैं—रहते हैं। बस, फिर कोई बात ही नहीं। इस प्रकारसे नित्य-निरन्तर अपनेको भगवान्में रखे रहिये। फिर यहाँ-वहाँ सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द है।

यह जो विवेचन हुआ, इसमें प्रश्न यह था कि जिस समय पीड़ा हो, उस समय यह भगवत्प्रीत्यर्थ है मानें अथवा यह पीड़ा हमको नहीं है। इस पीड़ाके दुःखको कैसे मिटायें? इसका प्रारम्भिक उत्तर यह था कि या तो वेदान्तकी दृष्टिसे उस पीड़ाके द्रष्टा बन जाइये। यह मानिये कि आपमें पीड़ा नहीं है। लोग कहेंगे कि यह सब कहनेकी बात है। ऐसा होता थोड़े है? परंतु, ऐसा ही होता है। जबतक आप इस पीड़ाके द्रष्टा नहीं हैं, भोक्ता हैं तबतक आपकी पीड़ा उत्तरोत्तर बढ़ती रहेगी और मानसिक क्लेश अधिक रहेगा। परंतु जब आप उसके भोक्ता न रहकर द्रष्टा बन जायँगे, उसी समय आपकी पीड़ा प्रशान्त होने लगेगी और मानसिक क्लेशका तो नाश हो जायगा। दूसरी दृष्टिसे, जब पीड़ा हो उस समय आप इस प्रकारकी धारणा कीजिये कि यह प्रियतम-प्रेमास्पद प्रभुकी प्रसन्नताका साधन है। बस, आपकी पीड़ा कम हो जायगी। उस समय आप यह निरन्तर अनुभव करेंगे कि पीड़ा घट रही है और मानस-क्लेश तो मिट ही जायगा।

इस प्रकारसे आप द्रष्टा बनकर अथवा भगवत्प्रीतिके पात्र बनकर अपनी सारी प्रतिकूलताओंको अनुकूलतामें बदल सकते हैं और प्रत्येक दुःखकी स्थितिमें परम सुखी हो सकते हैं। यह प्रयोग करके अनुभव कर सकते हैं। यह केवल कहने-सुननेकी बात नहीं है। [समाप्त]

श्रेष्ठ जीवन-निर्माणकी पद्धति

(डॉ० श्रीजयनारायणजी मल्लिक, एम०ए०, साहित्याचार्य)

सच्चरित्रता मानवताका प्रतीक है और चरित्र-रक्षा मनुष्योंका प्रथम कर्तव्य है।

जीवनकी सबसे अधिक मूल्यवान् वस्तु चरित्र है। भोजन और भोगकी प्रवृत्तियाँ तो पशुप्रभृति सभी प्राणियोंमें भी वर्तमान हैं; क्योंकि भोजनके बिना सृष्टि चलेगी कैसे और यौन-प्रवृत्तिके बिना सृष्टि बढ़ेगी कैसे?

प्रकृतिने सृष्टिका क्रम चलानेके लिये भोजन तथा यौन-प्रवृत्तियाँ प्राणिमात्रमें भर दी हैं। पशु-जगत्में तो इन्हीं दोनों प्रवृत्तियोंसे काम चल जाता है, पर मनुष्य सामाजिक प्राणी है, वह बुद्धि और ज्ञानसे काम लेता है, उसे सामाजिक नियमोंका उल्लंघन करना नहीं है।

चरित्र-बलका ही नाम धर्म है। चरित्र गवाँ देना ही पाप है। प्राचीन भारतमें शिक्षाका लक्ष्य केवल चरित्र-निर्माण ही था। जब छात्र गुरुकुलसे घर जाने लगते थे, तो उन्हें '**मातृदेवो भव, पितृदेवो भव**' आदि उपदेश दिये जाते थे, जो चरित्र-निर्माणके मुख्य आधार थे। इसी प्रकार सत्य, धर्म, ब्रह्मचर्य और अहिंसा, चरित्र-निर्माणके ये चार स्तम्भ हैं।

अनादिकालसे संसारमें दो प्रकारकी सभ्यता पनपती आयी है, एक आर्य-सभ्यता या प्राच्य सभ्यता, दूसरी पाश्चात्य सभ्यता (Semitic civilization)। दोनों सभ्यतावाले यह मानते हैं कि मानव जड़ और चेतन—शरीर और आत्मा, दोनोंका समन्वय है। पर शरीर और आत्मा इन दोनोंमें प्रधानता किसकी है, इस प्रश्नपर दोनोंमें मतभेद है। पाश्चात्य विद्वान् मानते हैं कि शरीरकी ही प्रधानता है; क्योंकि संसारके सारे सम्बन्ध, जैसे—माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री-पुत्र, मित्र-शत्रु—सभी शरीरसे ही सम्बद्ध हैं। असंख्य आत्मा चारों ओर घूम रहे हैं, कौन किसको पहचानता है; शरीर ही परिचयका मुख्य कारण है। पर प्राच्य मत आत्माको ही प्रधान मानता है; क्योंकि आत्माके निकल जानेसे शरीरको कोई पूछता-छूतातक नहीं है, वह शवके रूपमें निश्चेष्ट पड़ा रहता है। शरीर तो परिधानमात्र है, जिसके जीर्ण-शीर्ण होनेपर आत्मा उसे छोड़कर दूसरा परिधान धारण कर लेता है। पाश्चात्य सभ्यता भौतिक सभ्यता है, जिसका आधार विज्ञान, राजनीति और अर्थ है। प्राच्य सभ्यता आध्यात्मिक सभ्यता है, जिसका आधार दर्शन, साहित्य और आचारशास्त्र है। पाश्चात्य सभ्यता बहिर्मुखी एवं स्थूल-शरीर तथा जगत्की सुख-सुविधासे सम्बन्ध रखनेवाली है। प्राच्य सभ्यता अन्तर्मुखी एवं आत्माके अभ्युत्थान तथा अन्वेषणसे सम्बद्ध है। यह सोचती है—

'कोऽहं कस्त्वं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः।'

शरीरकी खुराक अन्न है और आत्माका भोजन ज्ञान। पाश्चात्य सभ्यता सार्वजनिक चरित्रपर अधिक जोर डालती है। उसके विचारसे 'मैं क्या खाता हूँ, क्या पीता हूँ, किसको प्यार करता हूँ, किससे कैसा सम्बन्ध रखता हूँ, इससे संसारका क्या सम्बन्ध है? मैं देशके लिये, समाजके लिये, राष्ट्रके लिये क्या करता हूँ, संसार यह देखे और इसीपर मेरा मूल्यांकन करे।' इसके विपरीत आर्य-सभ्यता वैयक्तिक चरित्रपर तथा धर्माचरणपर विशेष जोर डालती है और कहते हैं कि जीवनका लक्ष्य केवल सुख-भोग ही नहीं है, केवल द्रव्योपार्जन और यौनसन्तुष्टि ही नहीं है, पर धर्म और मोक्ष भी है। वस्तुतः जीवनका लक्ष्य अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष है। उसे शरीर और आत्मा—जड़ और चेतन दोनोंकी तृप्ति देखनी होगी। सृष्टिकी रक्षा और सृष्टिके विकासके लिये भोजन और भोग—दोनों आवश्यक हैं, उसी प्रकार आत्माके अभ्युत्थानके लिये धर्म, अनुशासन, चरित्ररक्षा, सत्य, संयम एवं अहिंसा अतीव आवश्यक हैं। वैध और समुचित मार्गसे परिश्रम और ईमानदारीके साथ द्रव्योपार्जन बुरा नहीं है; क्योंकि परिवारका भरण-पोषण, समाजकी रक्षा, मानवताकी सेवा और भगवत्कैंकर्य बिना धनके समुचितरूपसे नहीं हो सकता। पर धनका उपार्जन वैधरूपसे ईमानदारी और परिश्रमसे होना चाहिये; जुआ, चोरी और डकैतीसे नहीं।

साम्यवाद कहता है—'सारा धन सरकारका है, योग्यताके अनुसार उपार्जन करो और आवश्यकताके अनुसार उसका उपभोग।' प्राच्य सभ्यतामें धर्मशास्त्रके अनुसार हमलोग भी यही कहते हैं कि धन किसी विशेष व्यक्तिकी सम्पत्ति नहीं है, सारा धन भगवान्का है। भगवान्की सम्पत्ति, भगवान्का वैभव बढ़ाना हमारा कर्तव्य होता है। पर भगवत्-सम्पत्तिका दुरुपयोग हम नहीं कर सकते। भोग-विलासमें, मदिरा-पान या मादक द्रव्योंके सेवनमें, व्यर्थ और निरर्थक कामोंमें, व्यभिचार और हिंसामें धनका दुरुपयोग सर्वथा त्याज्य है। शक्तिका एक कण भी, समयका एक क्षण भी, धनका एक छोटा-सा अंश भी निरर्थक कामोंमें गँवाना एक महान् अपचार है। भगवत्-सम्पत्तिका उपयोग केवल भगवत्कैंकर्यमें हो सकता है, व्यर्थ और अनिष्ट कार्योंमें नहीं। हमें अपनी योग्यता और सामर्थ्यके अनुसार वैध मार्गसे भगवान्की सम्पत्तिको बढ़ाना है और अपनी आवश्यकताके अनुसार प्रसादके रूपमें भगवान्की सम्पत्तिसे अपना अंश ग्रहण करना और उसका सदुपयोग करना है। परिवारका भरण-पोषण, राष्ट्र और देशका विकास तथा मानवताकी सेवा, सब कुछ भगवत्कैंकर्य है। प्रत्येक नर-नारीका शरीर परमात्माका मन्दिर है; क्योंकि प्रत्येक प्राणीके शरीरमें परमात्मा अन्तर्यामिरूपसे वर्तमान हैं।

अतः मानवताकी सेवा भगवत्कैंकर्य है। मानवताके तीन अभिशाप हैं—गरीबी, रोग और अशिक्षा। इन्हें दूर करनेकी चेष्टा भगवान्की सेवा है। किसी मनुष्यकी निन्दा करना, किसीका अनिष्ट सोचना, किसीका दिल दुःखाना, किसीको रुलाना अन्तर्यामी भगवान्की अवहेलना है। हमारा अन्तःकरण भी भगवान्का मन्दिर है, अतः अपने अन्तःकरणको भगवान्का मन्दिर समझकर स्वच्छ और पवित्र रखना, वहाँ वासनाकी गन्दगी और कलुषित विचार नहीं रहने देना अन्तर्यामी भगवान्की सेवा है। अन्तर्यामी भगवान् सर्वत्र विराजमान हैं, अतः हमें पाप तथा दुराचारके लिये कहीं भी एकान्त स्थल नहीं मिल सकता, जहाँ हम छिपकर पाप कर सकें। भगवान्की सत्तामें विश्वास रखना ही सच्चरित्रताका मुख्य कारण है। जब हमने अपने-आपको भगवान्के श्रीचरणोंमें सौंप दिया तब फिर हमारा तन-मन-धन, सब कुछ भगवान्का हो गया, फिर अपने समय, शक्ति और धनके दुरुपयोग करनेका क्या अधिकार है? इनका सदुपयोग केवल मानवताकी सेवा और भगवत्कैंकर्यमें हो सकता है। भगवन्निमित्त भगवत्कैंकर्य समझ कर्तव्यकी प्रेरणासे जो कुछ भी किया जाय, वह सब भगवान्की सेवा है। भोग-वासना तथा स्वार्थसे प्रेरित कर्म हमारे लिये बन्धन हैं। जबतक हम निःस्वार्थ, निर्लिप्त और अनासक्त होकर कर्म नहीं करेंगे, तबतक मोक्ष मिलना दुर्लभ है। भगवान्ने जिसको जिस परिस्थितिमें रखा है, उसके अनुकूल आचरण भगवत्कैंकर्य है; यथा—किसानोंके लिये हल जोतना, छात्रोंके लिये विद्याध्ययन, कलाकारोंके लिये कलाकी कृति, नारियोंके लिये गृह-कार्य—रसोई बनना, बच्चोंका लालन-पालन, व्यापारी-वर्गोंके लिये व्यापार, राज-कर्मचारियोंके लिये शासन तथा प्रजाकी रक्षा—सब कुछ भगवत्कैंकर्य है। अनेक जन्मोंके कर्मोंका रस पीकर वासना इतनी बलवती हो गयी है कि विषय-भोगकी सामग्रीके निकट आनेपर वह अँगड़ाई लेने और नाचने भी लगती है—

इंद्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥

(रा०च०मा० ७।११८।११-१२)

शास्त्र पढ़कर हम शास्त्रार्थमें भले ही विजयी हो जायँ, लम्बी-लम्बी वक्तृता भी झाड़ दें, पर धर्मशास्त्र और उपनिषदोंके पन्ने चाट जानेपर भी आचरणकी समस्याका समाधान नहीं होता। वासना विषय-भोग-सामग्रीके निकट पण्डितजीको, महात्माजीको तथा नेताजीको नचाना शुरू कर देती है। वे बेचारे क्या करें?—

श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि॥
जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जस न नसावा॥
मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा॥
चिंता साँपिनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया॥

(रा०च०मा० ७।७०(ख), ७१।२-४)

प्राच्य सभ्यता सदासे यही मानती आयी है कि हमारे

आचरणकी पवित्रता, हमारी सच्चरित्रता ही उन्नतिका मूल आधार है—'**आचारः प्रथमो धर्मः।**' जबतक हमारा वैयक्तिक चरित्र पवित्र न होगा, तबतक हम राष्ट्रीय जीवन और देशके नेतृत्वमें सफल नहीं हो सकते। चरित्र-निर्माणके बिना नेताओं एवं बड़े-बड़े पदाधिकारियोंके हाथोंमें शक्ति आनेपर भी वे शक्तिका सदुपयोग नहीं कर पाते। भारतके सभी राष्ट्रीय एवं आध्यात्मिक नेता धर्माचरण एवं चरित्र-रक्षापर ही जोर डालते हैं। अगर हम अपना चरित्र-निर्माण नहीं कर सके तो हमारा सारा अध्ययन व्यर्थ चला गया।

चरित्र-निर्माणका सबसे अधिक उपयुक्तकाल विद्यार्थी-जीवन या ब्रह्मचर्यावस्था है। जीवनका प्रथम पचीस वर्ष विद्याध्ययन और चरित्र-निर्माणके लिये रखा गया है। यदि प्रथम पचीस वर्षोंमें ज्ञानार्जन तथा चरित्र-निर्माण नहीं हो सका तो हमारा सारा जीवन ही व्यर्थ चला गया। प्रत्येक विद्यार्थीको ब्रह्मचारी होना आवश्यक है। कामोत्तेजक पदार्थोंका दर्शन तथा श्रवण, मदिरा, तम्बाकू तथा अन्य मादक द्रव्योंका सेवन, लड़कियोंसे एकान्तमें प्रेमालाप, शृंगार-रसकी कविताका पठन-पाठन इत्यादि सर्वथा त्याज्य हैं। लड़के-लड़कियोंको कभी एकान्तमें मिलनेका अवसर ही नहीं देना चाहिये। मौका ईमानका सबसे बड़ा दुश्मन है। विद्यार्थी-जीवनमें शुद्ध सात्त्विक आहार, पवित्र आचरण, व्यायाम, शुद्ध वातावरणमें रहना, ब्रह्मचर्य, विद्याध्ययन, गुरुकी सेवा, सत्य, सदाचार और अहिंसा कर्तव्य है। ब्रह्मचर्यकी मधुमयी स्वर्ण-रश्मियाँ आर्य-संस्कृतिको उद्भासितकर पाश्चात्य देशोंमें भी अपनी किरणें विकीर्ण कर रही हैं। आजके बच्चे कल देशके कर्णधार होंगे। यदि वे सच्चरित्र न हो सके, यदि वे बचपनसे ही आलसी, कमजोर, चोर, लालची, दुराचारी एवं अनुशासनहीन हो गये तो वे राष्ट्रका एवं देशका भार कैसे सँभाल सकेंगे?

तिमिरमयी रजनीमें मानवता पिच्छल पथपर जा रही है। दोनों ओर खाइयाँ हैं। पाश्चात्य संसार विज्ञानके द्वारा बाह्य-प्रकृतिपर विजय प्राप्तकर गर्वसे इठलाता हुआ प्रकृतिके अन्तरालमें छिपी अनन्त शक्तियोंको गुलाम बनाना चाहता है, पर वह अपनी अन्तःप्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेकी चेष्टा नहीं कर रहा है। प्रकृतिका विजेता मानव अपनी इन्द्रियों और वासनाओंका गुलाम बन गया है। अपनी अन्तःप्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेका एकमात्र साधन चरित्रनिर्माण है।

मानव-जीवनका लक्ष्य क्या है? दुःखकी निवृत्ति और सुखकी प्राप्ति, पर यह हो कैसे? अन्धकारमें मानवता भटक रही है, उसे प्रकाश और बलकी आवश्यकता है। व्याकुल मानवताके पथ-प्रदर्शनके लिये चरित्र-निर्माण एक प्रकाश-स्तम्भ है और जीवनके कंटकाकीर्ण-पथपर यही उसका सम्बल है। उसकी साधना प्रयत्नपूर्वक करनेकी आवश्यकता है।

दुनिया भोग-लालसाके शिखरपर चढ़नेके लिये तेजीसे दौड़ रही है। विज्ञान नये-नये चमत्कार दिखा रहा है। राजनीति और अर्थशास्त्र भौतिक तथा आर्थिक जीवनका विश्लेषण कर रहे हैं, किंतु उस दीपककी ओर किसका ध्यान है, जो मानव-शरीरके अन्तर्गत जल रहा है? जीवनमें त्याग और तपस्या, स्नेह और बलिदान-युक्त चरित्रकी जितनी आवश्यकता है, उतनी भोगवासनाकी नहीं। इस समय पददलित मानवताके पथ-प्रदर्शनके लिये चरित्र-बल प्रकाश और शान्ति प्रदान करेगा। **[क्रमशः]**

'परम सनेही सखा नन्ददुलारे'

(वैद्य श्रीभँवरेश्वरजी मिश्र 'श्यामसखा')

परम सनेही सखा नन्ददुलारे।
रहत सदा सखन संग सब दिन, सखा पुकारत कहि-कहि प्यारे।
खेलत खेल सकल नाना विधि, नाचत प्रेम मगन मतवारे॥
धेनु चरावत, वेनु बजावत, वृन्दा विपिन कालिन्दि किनारे।
कौतुक करत, नित्य सखियन संग, गो, गोपिन के प्राण पियारे॥
घर घर प्रबिसि खात दधि माखन, माखन के प्रिय चाखनहारे।
श्याम सखा प्रेमरस सींचत, बाल सखा नयनन के तारे॥

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

दूसरोंके साथ मैं-मेरेका सम्बन्ध न रखकर केवल सेवाका सम्बन्ध रखे। सेवाके लिये ही सम्बन्ध रखनेसे वह सम्बन्ध बन्धनकारक नहीं होगा। समय, समझ, सामग्री और सामर्थ्यको केवल सेवामें ही खर्च करना है।

अपने लिये कर्म करनेसे शरीरमें अहंता-ममता दृढ़ होते हैं और दूसरोंके लिये कर्म करनेसे अहंता-ममता शिथिल होते हैं। दूसरोंके साथ केवल सेवाका सम्बन्ध रखनेका परिणाम है—सम्बन्ध-विच्छेद। चाहे मैं-मेराका सम्बन्ध न रखे, चाहे सेवाका सम्बन्ध रखे, दोनोंका परिणाम एक ही है—सम्बन्ध-विच्छेद। दोनों ही साधन हैं।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' (गीता २।४७)

'कर्तव्य-कर्म करनेमें ही तेरा अधिकार है, फलोंमें कभी नहीं।'

तात्पर्य है कि हमारा दूसरोंकी सेवा करनेका अधिकार है, सेवा लेनेका नहीं। कर्तव्य अपना है, अधिकार दूसरेका। जैसे, माता-पिताकी सेवा करना पुत्रका कर्तव्य है और माता-पिताका अधिकार है।

× × ×

जो कुछ करता है, केवल अपने लिये करता है, वह साधक नहीं होता, प्रत्युत संसारी होता है। चाहे संसारके लिये करो, चाहे प्रकृतिके लिये करो, चाहे भगवान्के लिये करो, पर अपने लिये मत करो। संसारके लिये करना भौतिक साधना (कर्मयोग) है, प्रकृतिके लिये करना आध्यात्मिक साधना (ज्ञानयोग) है और भगवान्के लिये करना आस्तिक साधना (भक्तियोग) है।

आपका उद्देश्य परमात्माकी प्राप्ति हो तो आप संसारको सत्य मानो, असत्य मानो, अनिर्वचनीय मानो, साधन हो सकता है। संसारकी सत्ता नहीं बाँधती, इसकी महत्ता, स्वार्थबुद्धि, लेनेकी इच्छा ही बाँधनेवाली है। यदि संसारको सत्य मानो तो उसकी वस्तुओंसे संसारकी सेवा करें। कर्मसे सेवा तेज है, सेवासे पूजा तेज है। दूसरेकी सुख-सुविधाके लिये कर्म करनेसे कल्याण हो जाता है—यह भौतिक साधना है। सड़कपर काँटा पड़ा हो तो उसको एक तरफ कर देना भौतिक साधना है। सबको भगवत्स्वरूप मानकर पूजन बुद्धिसे उनकी सेवा करें तो **'वासुदेवः सर्वम्'** का अनुभव हो जायगा। बन्धन लेनेसे होता है। त्यागनेसे बन्धन खुल जाता है।

सरोवरमें डुबकी लगाओ तो मनों जल ऊपर रहनेपर भी अपने ऊपर भार नहीं आयेगा। परंतु अपना मानकर घड़ा कन्धेपर लोगे तो भार हो जायगा। भार अपना माननेमें है।

कल्याण त्यागसे होता है, वेदान्त पढ़नेसे नहीं।

× × ×

विचार करना चाहिये कि अबतक कितने वर्ष बीत गये, उसमें हमने क्या किया? यदि यही गति रही तो आगे कब काम पूरा होगा? यदि नहीं कर सकते तो गति बदलो। हम प्रतिक्षण मर रहे हैं। एक-एक श्वासको कीमती समझो।

× × ×

परिवार-नियोजन भारतवर्षके लिये बड़ी घातक चीज है। भारतमें जितने तरहका अन्न, फल, जड़ी-बूटी आदि पैदा होती हैं, उतनी किसी देशमें नहीं। यहाँ सूर्यकी कई तरहकी किरणें पड़ती हैं। यहाँ छः ऋतुएँ होती हैं, जो अन्य जगह नहीं होतीं। शूरवीर, सती, ब्रह्मचारी, राजा, सन्त-महात्मा आदि जैसे इस देशमें हुए, उतने अन्य देशमें नहीं।

× × ×

करनेसे ही बन्धन हुआ है। करना सर्वथा छोड़ दो तो तत्त्वकी प्राप्ति हो जायगी। करनेसे प्रकृतिके साथ सम्बन्ध होता है। भगवान् भी अवतार-कालमें प्रकृतिकी सहायतासे ही क्रिया (लीला) करते हैं। जो सब देश-कालादिमें परिपूर्ण है, उस परमात्माकी प्राप्तिके लिये क्या करना? करनेसे तो हम उनसे दूर होते हैं। परमात्मा अप्राप्त नहीं हैं। करनेमें लगे रहनेसे उनका अनुभव नहीं होता। गीतामें भी **'एवं विदित्वा'** (२।२५) कहा है, **'एवं कृत्वा'** नहीं कहा।

श्रोता—परंतु मनुष्य कर्म किये बिना रह सकता ही नहीं—**'न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्'** (गीता ३।५)

स्वामीजी—प्रकृतिके परवश होनेसे ही करना पड़ता है। कोई रेलपर चढ़ जायगा तो उसे जाना ही पड़ेगा। परंतु प्रकाशमें क्या क्रिया होती है? अतः शान्त, चुप हो जाओ तो तत्त्वका अनुभव स्वतः हो जायगा।

× × ×

सभी ग्रन्थोंमें गीताकी वाणी विलक्षण है; क्योंकि यह भगवान्‌की वाणी है! भगवान् अनादि हैं। उनका सिद्धान्त बहुत विलक्षण है। वह सिद्धान्त है—**'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७।१९) 'सब कुछ वासुदेव ही है'। मनका लगना और न लगना—ये दो अवस्थाएँ तभीतक हैं, जबतक एक परमात्माके सिवाय दूसरी सत्ताकी मान्यता है। **'वासुदेवः सर्वम्'** का अनुभव करनेके लिये मन-वाणी-शरीरसे सबका आदर करें, सबका सुख चाहें। किसीका भी बुरा न चाहें।

यदि त्रिलोकीकी सेवा करना चाहते हो तो बुराई न करो, न सोचो, न सुनो, न कहो। बुराई छोड़नेसे भलाई स्वतः होगी। स्वतः होनेवाली चीज ही सदा रहती है। सद्‌गुण-सदाचार नित्य हैं। आसुरी सम्पत्तिको हटानेसे दैवी सम्पत्ति स्वतः प्रकट होगी। भलाईमें जो कमी है, उसीका नाम बुराई है।

हमें संसार स्वतः स्वाभाविक दीखता है। वास्तवमें परमात्मा स्वतः-स्वाभाविक हैं, संसार नहीं। संसार परतः है। परमात्मा प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता, प्रत्युत प्रमाण उससे सिद्ध होते हैं। परमात्मासे प्रकाशित होनेवाली वस्तु परमात्माको कैसे प्रकाशित करेगी?

जबतक त्यागी है, तबतक त्याग नहीं हुआ। त्याग होनेपर त्यागी नहीं रहता।

× × ×

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'—इसमें खास बात है ***'दूसरो न कोई'*** अर्थात् अनन्य भावसे भगवान्‌को अपना मानें। एक भगवान्‌के सिवाय किसीको भी अपना न मानें। केवल भगवान्‌को ही अपना माननेकी सामर्थ्य मनुष्यमें ही है, देवता आदिमें नहीं। गीतामें आया है कि देवता भी भगवान्‌के चतुर्भुज रूपको देखनेके लिये नित्य लालायित रहते हैं (११।५२), फिर भी वे देवता बने बैठे हैं। भगवान्‌की प्राप्तिमें अन्यका आश्रय ही बाधा है। देवताओंमें अनन्यता नहीं है। आपकी इच्छा भी देवताओंकी इच्छा-जैसी है। अनन्यता भी भगवान्‌से माँगो। भूख न लगे तो भूखकी भूख तो लगनी चाहिये कि भूख कैसे लगे? तभी वैद्यके पास जाते हैं। ऐसे ही अनन्यताकी भूख लगनी चाहिये कि अनन्यता कैसे हो?

सन्त-महात्मा वही बात कहते हैं, जो हम कर सकते हैं। शास्त्र, धर्म, सन्त-महात्मा और भगवान्—ये कभी किसीके विमुख नहीं होते।

खोज करो तो गलती अपनी ही निकलेगी, भगवान्‌की नहीं। जबतक दूसरेकी गलती दीखती है, तबतक हमारी बड़ी भारी गलती है। दूसरोंकी तरफ देखे ही नहीं। भागवत, एकादश स्कन्धमें कदर्य ब्राह्मणकी कथा आती है। लोग उसपर पेशाब भी कर देते तो उसको लोगोंकी गलती न दीखकर अपनी ही गलती दीखती थी। जबतक दूसरेकी कमी दीखती है, तबतक अपनी बड़ी भारी कमी है।

× × ×

ज्ञानकी पहली भूमिका 'शुभेच्छा' तो आपमें है। कमी दूसरी भूमिका 'विचारणा' की है। प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक करो, सुचारु रूपसे करो। किसीको किंचिन्मात्र भी दुःख न हो। किसीके मनके विरुद्ध काम न हो। हृदयमें किसीका बुरा सोचना छोड़ दो। इससे आध्यात्मिक मार्गमें बड़ी उन्नति होगी।

मीठा बोलण, निंव चलण, पर अवगुन ढक लैण।
पाँचों चंगा नानका, हरि भज, हाथां दैण॥

सत्संग सुननेवालोंसे लोग अच्छे बर्तावकी आशा रखते हैं। अमृतका प्रसार करो, विषका नहीं। भला होनेके लिये बुराईका त्याग आवश्यक है।

सबकी सेवा करें, आशा किसीसे न रखें। आशा पूरी होनेपर मोहमें फँस जायँगे और आशा पूरी न होनेपर क्रोधमें फँस जायँगे।

पीपल-वृक्षका वैज्ञानिक महत्त्व

(मेजर श्रीमनोहरलालजी)

आज विज्ञान इस निष्कर्षपर पहुँचा है कि दुनियाका एकमात्र पीपल ही ऐसा वृक्ष है, जो दिन-रात चौबीसों घण्टे ऑक्सीजनका उत्सर्जन करता है तथा कार्बनडाई ऑक्साइडको ग्रहण करता है। इससे बड़ा मानवोपकारी कौन हो सकता है?

पीपलके पेड़का मूल (Origin) भारत-भूमि है। यह पेड़ चिरायु है और कई हजार सालतक रहता है। आज मुम्बईमें एक पेड़ ३००० वर्षसे अधिक पुराना है। श्रीलंकामें एक पेड़ २८८ ईसा पूर्व (B.C.) का है, इसे भारतसे ले जाया गया था। वह पेड़ आज सबसे पुराना है और उसे पैतृक वृक्ष कहकर उसकी पूजा की जाती है। समुद्रसे ५००० फीट (१५२४ मीटर)-की ऊँचाईतक पीपलके पेड़को सहज रूपसे लगाया जा सकता है।

भारतसे यह पेड़ ले जाकर संसारके बहुत सारे मुल्कोंमें लगाया गया है, जैसे—यूनाइटेड स्टेट्स (United States), साउथ केलीफोर्निया (Southern California), फ्लोरीडा (Florida), हवाई (Hawaii), इजराइल (Israel) और संसारके कई ट्रापिकल (Tropical) क्षेत्र। भगवान् बुद्धने पीपलके पेड़के नीचे तपस्या की थी और उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था। बौद्ध-धर्मके प्रायः सभी मन्दिरोंमें पीपलका वृक्ष पाया जाता है।

भगवान् कृष्णने गीतामें पीपलको अपनी विभूति कहा है—'**अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्**' वृक्षोंमें मैं पीपलका वृक्ष हूँ। हिन्दुओंमें पीपलको जलसे सिंचित करना एक धार्मिक कर्म माना जाता है और यह मरणाशौचकी निवृत्तिकर पवित्रता प्रदान करता है। पीपलका पेड़ कई प्रकारकी औषधियोंके निर्माणमें काम आता है। इस पेड़के गुणोंसे प्रभावित होकर सन् १९८७ ई० में भारत सरकारने इसपर एक विशेष डाक टिकट जारी किया था।

आयुर्वेदके अनुसार पीपल मधुर, कषाय और शीतल है। इसके अनुपान-भेदपूर्वक सेवनसे कफ, पित्त और दाह नष्ट होते हैं। इसके फलके सेवनसे रक्त-पित्त, विष, दाह, शोथ एवं अरुचि आदि दूर होते हैं। इस वृक्षकी कोमल छाल एवं पत्तेकी कली पुरातन प्रमेह रोगमें अत्यन्त लाभप्रद है। पीपलके फलका चूर्ण अत्यन्त क्षुधावर्धक है। पीपलके पत्तेकी भस्मका शहदके साथ सेवन कफ रोगोंमें लाभकारी होता है। इसके अतिरिक्त अन्य कई व्याधियोंके उपचारमें भी पीपल वृक्षके महत्त्वका संकेत आयुर्वेदमें दृष्टिगोचर होता है।

इसको ध्यानमें रखकर हमें अधिक-से-अधिक पीपलके वृक्ष लगाने चाहिये, जिससे हम कार्बनडाई ऑक्साइडके दुष्परिणामोंसे सुरक्षित रह सकें और जीवनदायिनी ऑक्सीजनसे स्वास्थ्य-लाभ एवं दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें तथा पर्यावरणको सुधारनेमें सहयोगी बनें। शास्त्रोंमें कहा गया है कि पीपलके वृक्षको बिना प्रयोजनके काटना अपने पितरोंको काट देनेके समान है। ऐसा करनेसे वंशकी हानि होती है। यज्ञादि पवित्र कार्योंके उद्देश्यसे इसकी लकड़ी काटनेसे कोई दोष न होकर अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। पीपल सर्वदेवमय वृक्ष है, अतः इसका पूजन करनेसे समस्त देवता पूजित हो जाते हैं—

छिन्नो येन वृक्षाश्वत्थश्छेदिता पितृदेवताः।
यज्ञार्थं छेदितेऽश्वत्थे ह्यक्षयं स्वर्गमाप्नुयात्॥
अश्वत्थः पूजितो यत्र पूजिताः सर्वदेवताः॥

बालगोपालका बालहठ

मैया, मैं तौ चंद-खिलौना लैहौं।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं॥
सुरभी कौ पय पान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं।
ह्वैहौं पूत नंद बाबा कौ, तेरौ सुत न कहैहौं॥
आगैं आउ, बात सुनि मेरी, बलदेवहि न जनैहौं।
हँसि समुझावति, कहति जसोमति नई दुलहिया दैहौं॥
तेरी सौं, मेरी सुनि मैया, अबहिं बियाहन जैहौं।
सूरदास ह्वै कुटिल बराती, गीत सुमंगल गैहौं॥

(सूरसागर)

[चित्र० : कै०ना० त्रिवेदी]

संत-उद्बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

यदि हम संकल्पों और क्रियाओंसे कर्तापनका भाव हटा लें अथवा जोड़ें ही नहीं तो फिर उनसे होनेवाले फलोंको भी हमें नहीं भोगना पड़ेगा। कारण, जो कर्ता है, वही भोक्ता है। यदि हम 'मैं कर्ता हूँ' इस भावको मिटा दें, तो 'मैं भोक्ता हूँ' यह भाव भी अपने आप मिट जाय। और सब प्रकारकी चाहोंका त्याग कर दें तथा स्वाभाविक उठनेवाले संकल्पों और क्रियाओंमें रस लेना छोड़ दें तो कर्तृत्वभाव भी स्वतः मिट जाय।

कर्ताभाव और भोक्ताभावका मिट जाना ही जीवन्मुक्ति है। अतः भोगसुखों एवं उनकी कामनाओंका त्याग करो, तुरंत शान्ति मिलेगी। यह बात परम सत्य है।

सबके हृदयमें संकल्प स्वाभाविक ही होते हैं और उन संकल्पोंके अनुसार क्रिया भी स्वाभाविक ही होती है। यदि हम उनसे अपनापन नहीं जोड़ें और न ही उनसे किसी प्रकारके सुखकी चाह करें, तो वे हमारे बन्धनका कारण नहीं हो सकते। परंतु हम उनसे अपनापन जोड़ लेते हैं, जिससे रागकी उत्पत्ति हो जाती है। और उनसे सुखकी चाह कर लेते हैं, जिससे कामनाओंकी उत्पत्ति होती है।

राग और कामनाओंके कारण अनेक प्रकारके दोष हमारे जीवनमें आ जाते हैं और भोगोंमें हमारी प्रवृत्ति हो जाती है। जिसके कारण जो नहीं करना चाहिये वह भी हम करने लग जाते हैं और जन्म-मरणके चक्करमें पड़ जाते हैं। मनुष्य-जन्म तो मुक्त होनेके लिये ही मिलता है।

सिद्धान्तरूपसे कोई भी 'गैर' नहीं है, कोई 'और' नहीं है। किसी-न-किसी नाते सभी अपने हैं और सभीमें अपने प्रेमास्पद हैं। इस सत्यको स्वीकार करना प्रत्येक साधकके लिये अनिवार्य है। जहाँ कहीं जो कुछ बुराई दिखायी देती है, उसका कारण केवल अपनी ही भूल है। अपने सत्यको अपने द्वारा न मानना ही अपनी भूल है।

यदि जीवनमें भूल न होती तो हृदयमें स्वभावसे सतत प्रीतिकी गंगा लहराती और जीवन आनन्दविभोर हो जाता। वे सभीके अपने हैं, उन्हींमें प्रीति होती है, वे ही प्रीतिके अधिकारी हैं। व्यक्तियोंके साथ तो सद्भाव ही रह सकता है। व्यक्तिको प्रीतिसे भिन्न भी कुछ चाहिये। इस कारण वह बेचारा प्रीतिका पान नहीं कर पाता। पर यह रहस्य किन्हीं इने-गिने अकिंचन, निरभिमानी, प्रभुविश्वासी, शरणागत साधकोंको ही स्पष्ट होता है।

बुराईरहित होना सत्संगसे साध्य है। भलाई सीखी नहीं जाती, बुराईरहित होनेसे भलाई स्वतः अभिव्यक्त होती है। बुराईरहित होनेसे ही भलाई व्यापक होती है। अपनी भलाईका भास हो जानेपर भी भलाई भलाई नहीं रह जाती, सूक्ष्म रूपसे बुराईका जन्म हो जाता है, उसका अन्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

यह तभी सम्भव होगा जब साधक सजगतापूर्वक आत्मनिरीक्षण करे और अपनेको समर्पणकर शान्त हो जाय। शान्तिसम्पादनसे अहं शुद्ध होता है और फिर स्वतः साधकमें उसकी बनावटके अनुसार साधना होने लगती है। इस दृष्टिसे समर्पणपूर्वक शान्त रहना बहुत ही आवश्यक है।

अपने द्वारा अपनेको समझा-बुझाकर बुराईरहित कर लेना बहुत बड़ा पुरुषार्थ है। यदि यह कह दिया जाय कि मानवजीवनका यह अन्तिम पुरुषार्थ है, तो अत्युक्ति न होगी। अपनी बुराई देखनेका ज्ञान अपनेमें है, पर असावधानीके कारण उसका उपयोग हम दूसरोंकी बुराई देखनेमें करते रहते हैं, जिसका बहुत बड़ा भाग अपनी कल्पना ही होता है, वास्तविक नहीं। वास्तविक बुराईका ज्ञान तो अपने सम्बन्धमें ही सम्भव है और उसीसे साधक सदाके लिये बुराईरहित होकर सभीके लिये उपयोगी हो जाता है।

जीवन सभीके लिये उपयोगी हो जाय, यही मानवकी वास्तविक माँग है। इस माँगकी पूर्ति अवश्य होती है। अचाह हुए बिना जीवन उपयोगी हो नहीं सकता। अचाह होनेकी स्वाधीनता अपनेको प्राप्त है। अचाह होना ही जीवनमें मृत्युका अनुभव करना है। जीवनमें मृत्युका अनुभव होनेपर अविनाशी, स्वाधीन जीवनकी प्राप्ति होती है।

अचाह होनेके लिये बलका सदुपयोग, ज्ञानका आदर एवं आस्था-श्रद्धा-विश्वासमें निर्विकल्पता अनिवार्य है। बलके सदुपयोगमें प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग निहित है और ज्ञानके आदरमें अवस्थातीत जीवनकी प्राप्ति है और विकल्परहित विश्वाससे आत्मीय सम्बन्ध, अखण्ड स्मृति तथा अगाध प्रियताकी प्राप्ति होती है। प्रियतासे ही जीवन प्रेमास्पदके लिये उपयोगी सिद्ध होता है।

सत्यको स्वीकार करना प्रत्येक साधकके लिये अनिवार्य है। सत्यको स्वीकार करनेपर सफलता अवश्यम्भावी है, इसी सद्भावनाके साथ सभीको बहुत-बहुत प्यार! ॐ आनन्द!!

आजकी आवश्यकता—गोरक्षा एवं गोसंवर्धन

(मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)

[गतांक सं० १० पृ०-सं० ९२१ से आगे]

भगवान् श्रीकृष्णकी गोवंशके प्रति आत्मीयताका वर्णन करते हुए श्रीबिल्वमंगलजी महाराजने श्रीकृष्णकर्णामृत ग्रन्थमें कहा है—

गोपालाजिरकर्दमे विहरसे विप्राध्वरे लज्जसे
ब्रूषे गोधनहुंकृतैः स्तुतिशतैर्मौनं विधत्से विदाम्।
दास्यं गोकुलपुंश्चलीषु कुरुषे स्वाम्यं न दान्तात्मसु
ज्ञातं कृष्ण तवाङ्घ्रिपङ्कजयुगं प्रेमाचलं मञ्जुलम्॥

भाव यह है कि हे प्रभो! तुम ब्रजकी कीचमें तो विहार करते हो, पर ब्राह्मणोंके यज्ञमें पहुँचनेमें आपको लज्जा आती है। गायोंके हुँकार करनेपर, बछड़ोंके हुँकार करनेपर उनके हुँकारवाली भाषाको आप समझ लेते हो और बड़े-बड़े ज्ञानी स्तुति करने लग जाते हैं तो चुप खड़े रह जाते हो। उनको उत्तर नहीं देते और ये बछड़े जब हुँकार भरते हैं, बस तुरंत दौड़े हुए आप उनके पास चले जाते हो और उनको गलेसे लगा लेते हो। हे कृष्ण! मैं जान गया आप और किसी तत्त्वका आदर नहीं करते, तुम तो केवल प्रेमका ही आदर करते हो, जिसके हृदयमें प्रेम है, उसीसे तुम रीझ जाते हो।

अब ठाकुरजीका गोप्रेम क्या है, इसे ध्यानसे सुनें। गो-रस-प्रेम गो-प्रेम है, गव्य पदार्थोंसे प्रीति ही गोप्रीति है। हम गायके प्रति तो प्रेम रखें, किंतु गव्य पदार्थोंसे हमारी प्रीति न हो? गव्य माने; दूध, दही, घी, गोमय, गोमूत्र। यदि हमारी गव्यसे प्रीति नहीं है तो गोसे प्रीति भी नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णकी गव्य पदार्थोंमें प्रीति है। ठाकुरजीके घरमें दूध, दही, माखन-मिस्त्रीकी कमी नहीं, पर इसके बाद भी गव्य पदार्थोंसे उनकी जो प्रीति है, उस प्रीतिके कारण ठाकुरजी चोरी करके भी खाते हैं।

और ऐसी अद्भुत गोप्रीति है भगवान्की, अभी ठाकुरजी चार बरसके हुए और चार सालके ठाकुरजी रूठ गये, क्यों रूठ गये? बोले, 'बाबा! अब मैं बड़ो है गयो, मैं गैया चराऊँगौ। अरे लाला! ग्वारियाका लाला हैके गैया ही चरावेगौ और का करैगौ। एक पण्डितजी कथामें कहते थे, अरे ग्वारियाको छोरो हैके, गैया ही चरावेगौ का कलेक्टर बनैगौ?

लाला अभी तू नेक छोटो है, नेक बड़ो है जा, फेर गय्या चराइयो।' तब ठाकुरजी रोना बन्द नहीं कर रहे थे। यह निश्चित किया गया कि सखा-मण्डलीके साथ ठाकुरजीको गो-वत्सचारणके लिये नियुक्त किया जाय, चार सालके ठाकुरजी गैया चरानेके लिये, गोसेवाके लिये रो रहे हैं। ये ठाकुरजीकी गोप्रीति है।

वे बछड़े चराते हैं और बछड़े कैसे चराते हैं, उसका भी भागवतमें वर्णन है; बछड़ोंकी मालिश करते हैं, बछड़ोंके साथ खेलते-कूदते हैं, हरी-हरी घास उखाड़-उखाड़कर बछड़ोंको अपने हाथसे खिलाते हैं, बछड़े खूब घास चर लेते हैं, प्रसन्न हो जाते हैं, जमुनाजीका जल पी लेते हैं, बछड़े जब बैठ जाते हैं, तब ठाकुरजी बैठते हैं, इतनी प्रीति करते हैं, कुछ कलेऊ लेकर आते हैं किंतु, बछड़े जब खा लें, पी लें तब ठाकुरजी कलेऊ करते हैं।

अब ठाकुरजी पाँच वर्षके पूरे हो गये और छठे वर्षमें प्रवेश किया। छः वर्षके भगवान् रोने लग गये और इतना रोये कि भगवान्का रोना ही बन्द न हो, खिलौने सामने रखे, तो सब उठाके फेंक दिये, गोदमें मैया लेती तो गोदसे उतरकर भूमिमें लोट जाते। सब शृंगार बिगाड़ लिया। अब मैया-बाबा सब पूछ रहे हैं, 'लाला कुछ बताय तो सही अपने मनकी तू क्यों रोय रह्यो है?' रोते-रोते हिचकी बँध गयी ठाकुरजीकी और बोले, 'बाबा! अब मैं माखन खाय-खाय मोटो है गयो हूँ, बड़ो है गयो हूँ, सो मैं गय्या चराऊँगौ।' अरे राम-राम! सवेरेसे गय्या चराइबे कूं रोय रह्यो है, पहले ही बताय देतो। देख लाला, हम गोपालक हैं, हमारो धर्म गो-सेवा है, हम गउअनकी सेवा करे हैं, पर हमारे हिन्दू धर्ममें समस्त कार्य मुहूर्त सूं किये जायँ। पुरोहितजीको बुलावेंगे, वे पंचांग देखेंगे, पत्रा देखेंगे, मुहूर्त बतायेंगे कि गोसेवाका, गोचारणका अमुक मुहूर्त है, तब तुम्हारे हाथ गोपूजनपूर्वक गोचारण सम्पन्न कराया जायगा।

ठाकुरजी बोले, बुलाओ पुरोहितजीको, अभी मुहूर्त दिखाओ। वे पुरोहितजी, पुरोहितजी रो रहे थे नाम लेके,

तबतक शांडिल्यजी खुद ही आ गये। पुरोहितजीने पूछी कि 'लाला कैसे रोय रह्यो है? आप मुहूर्त देख दो, गैया कबसे चराना शुरू करें'।

तुरंत उन्होंने पंचांग खोला और बोले अरे बाबा, तुम्हारे लाला तो मुहूर्त देखके ही रोयो है। बोले आज कार्तिक शुक्ल अष्टमी है, गोपाष्टमी है, आज तो गोमाताका पूजन करके गोचारण करना चाहिये, आजसे श्रेष्ठ दूसरी कोई तिथि गोचारणकी नहीं है, तुम्हारौ लाला तो मुहूर्त देख के ही रोयो है। अब तो ठाकुरजीने प्रेमसे गोपूजन करके गोचारण प्रारम्भ किया। गोचारणके कालमें ही भगवान् पद-त्राण धारण नहीं करते, पैरमें जूता, चप्पल भगवान् धारण नहीं करते, इसलिये धारण नहीं करते कि 'हम गैया चरा रहे हैं'—इस सामान्य बुद्धिसे प्रभु क्रिया नहीं कर रहे हैं। गाय हमारी उपास्य देवता, इष्ट देवता हैं, यह गय्या चराना गो-उपासना है—यह मानकर भगवान् कर रहे हैं और उपासना जूता-चप्पल पहनकर नहीं की जाती, इसलिये भगवान् बिना पदत्राणके गोचारण करते हैं, गायोंके झुण्डके पीछे चलते हैं, क्यों चलते हैं गायोंके झुण्डके पीछे, इसलिये कि गोमाताकी चरणरज हमारे ऊपर पड़े और मैं पवित्र हो जाऊँ, तो क्या भगवान्में कोई अपवित्रता आ गयी है क्या? नहीं-नहीं भगवान्में कोई अपवित्रताकी सम्भावना नहीं है, पर वे परम पावन, पतित पावन श्रीकृष्ण भी गोचरणरजसे अभिषेकके पश्चात् निरतिशय पावनताका अनुभव अपने आपमें करते हैं, वनमाला, पोशाक, मुकुट-मुरली सब गोरजमयी हो जाती है।'

गाय खूब हरित-हरित घास चरके सन्तुष्ट हो करके जलपान करके जब बैठ जाती है तब ठाकुरजी बैठते हैं, तबतक ठाकुरजी खड़े ही रहते हैं, बैठते नहीं हैं। जब गाय बैठ जाती तब ठाकुरजी छाक आरोगते और गाय विश्राम करती तबतक ठाकुरजी खड़े हो जाते। कृष्णावतारमें जो अद्भुत गोभक्तिका आदर्श भगवान्ने प्रस्तुत किया है, वह तो अपने आपमें अनुपम है। श्रीकृष्ण की गोभक्ति श्रीकृष्णकी ही गोभक्ति है। वे गायोंके पीछे-पीछे जाते हैं और गायोंके पीछे-पीछे ही लौटते हैं, मुरली सुनाते हैं गायोंको। कालियनागका दमन करते हैं। कालियह्रदको शुद्ध करते हैं तो किसलिये? गायोंके लिये। कालिय-ह्रदका जल पान करके मृत्युको प्राप्त हुई गायोंको जीवनदान देते हैं। कहाँतक कहें, गायोंके लिये दावानलपान करते हैं, गायोंकी रक्षाके लिये ही बड़े-बड़े असुरोंका वध करते हैं; गायोंकी रक्षाके लिये ही गिरिराज गोवर्धनको अपनी कनिष्ठिकाके अग्रभागपर धारण करते हैं।

भगवान्से पूछा ब्रजवासियोंने, सखाओंने कि 'कन्हैया तू देख सांची-सांची बता हम सखानमें ते कोऊ तुम ते बड़ो है, कोऊ चार-छः महीने छोटो है हम में तो वो सामर्थ्य नहीं, तुममें इतनी सामर्थ्य कहाँसे आ गयी, जो तुमने गोवर्धन उठा लिया? तो ठाकुरजीने कहा, 'गो-सेवाके पुण्यसे हमने गोवर्धन उठा लिया।'

फिर भगवान् मथुरा जाते हैं, वहाँ कंस-वधके पश्चात् वसुदेवजी पूजन करवाते हैं। यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ, तब गोदान हुआ फिर सांदीपनिजीके आश्रममें पढ़ने गये, तब गोसेवा करते थे और द्वारका-लीलामें तो स्पष्ट वर्णन है कि १३०८४ गायोंका दान प्रतिदिन द्वारकाधीश करते हैं, सींग स्वर्णमंडित, खुर रजतमंडित, पूँछमें मोती और जवाहरात पिरोये हुए सुन्दर रेशमी झूल। इतना गोदान नित्य करते तो स्वयं भगवान्के पास कितना गोवंश होगा? भगवान्की सम्पूर्ण ब्रज-लीलामें गाय ही प्रधान है। बृहत्पराशरस्मृतिमें लिखा है—

शृंगमूले स्थितो ब्रह्मा शृंगमध्ये तु केशवः।
शृंगाग्रे शंकरं विद्यात् त्रयो देवाः प्रतिष्ठिताः॥

गायके सींगके मूल भागमें ब्रह्माजी रहते हैं, मध्यमें भगवान् केशव और सींगके अग्रभागमें शंकरजी रहते हैं; तीनों देवता गोमातामें प्रतिष्ठित हैं।

गायसे भिन्न त्रिदेव नहीं हैं। आदिगऊ सुरभिसे इनका प्राकट्य कहा गया है। धर्मका जन्म गायसे है; क्योंकि धर्म जो है, वह वृषभ-रूप है और गायके पुत्रको ही वृषभ कहा जाता है। नील वृषभके रूपमें धर्म प्रकट हुआ है। अन्नकी प्रसूतिके लिये ही धर्मने धारण किया वृषभका रूप; क्योंकि बिना वृषभके खेती सम्भव नहीं है। उत्तम अन्न उसीसे उत्पन्न होता है। महापातकी जीव भी श्रद्धासे गोवंशकी सेवा करने लग जाय तो पापोंसे रहित हो जाता है और गोलोकमें जाकर वह सुशोभित होता है। गोसेवा करनेवालेको गोलोककी प्राप्ति होती है।

गायका स्मरण करके, गायको नमस्कार करके जो गायकी प्रदक्षिणा करता है, उसने मानो सात द्वीप और सात

समुद्रवाली पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर ली। जो गायको केवल चारा डाल दे, जल पिला दे अथवा नित्य ग्रास अर्पित करे तो वह सौ अश्वमेधके समान पुण्य प्राप्त करता है—

संस्पृशन् गां नमस्कृत्य कुर्यात् ताञ्च प्रदक्षिणम्॥
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
तृणोदकादिसंयुक्तं यः प्रदद्यात् गवाह्निकम्।
सोऽश्वमेधसमं पुण्यं लभते नात्र शंसयः।
गवां कण्डूयनं स्नानं गवां दानसमं भवेत्॥

(बृहत्पराशरस्मृति)

गायकी पीठपर हाथ फेर दिया, बढ़ियासे उसको खुजोरा कर दिया, उसको मक्खी-मच्छरसे बचानेके लिये आपने गोशालामें धुआँ कर दिया तो नित्य ऐसा करनेवालेको नित्य कपिला गायके दानका पुण्य प्राप्त होता है। गोदान करनेवाला तो जीवनमें कुछ ही दान करेगा, लेकिन निष्काम भावसे गोसेवा करनेवाला तो नित्य गोदानका पुण्य पाता है।

महर्षि पाराशर कह रहे हैं अपने शिष्य सुव्रतसे—हे वत्स सुव्रत! उसको पाप कहाँसे स्पर्श कर सकता है, उसके घरमें कहाँसे अमंगल हो सकता है, जहाँ गाय प्रसन्न होकर निवास करती हो, बछड़ों और बछियोंके साथ उस घरमें कभी अशुभ-अमंगल होता ही नहीं, जहाँ गाय परिवारके सदस्यकी तरह निवास करे।

महर्षि पाराशर कह रहे हैं कि ब्रह्माजीने एक ही कुलके दो भाग कर दिये—एक भाग गाय और एक भाग ब्राह्मण, इसलिये गाय और ब्राह्मण दोनोंकी एक ही श्रेणी है; क्योंकि ब्राह्मणमें मन्त्र प्रतिष्ठित हैं और गायोंमें हविष्य प्रतिष्ठित है।

गोभिर्यज्ञाः प्रवर्तन्ते गोभिर्वेदा प्रवर्धिताः।
गोभिर्वेदा समुद्गीर्णा सषडङ्गपदक्रमाः॥

गायोंमें ही सारे यज्ञोंकी प्रतिष्ठा है, गाय नहीं रहेगी तो सृष्टि भी नहीं रहेगी; इसलिये गायके बिना सृष्टिकी कल्पना नहीं की जा सकती। वेदोंकी स्थिति भी गायमें ही है। छः अंगोंके सहित वेदकी उत्पत्ति गायसे ही है, ऐसा पुराणोंमें लिखा है। **[क्रमशः]**

भ्रष्टाचार इस प्रकार रुक सकता है

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०, पी-एच० डी०)

स्थान-स्थानपर भ्रष्टाचारको लेकर दुःख प्रकट किया जा रहा है। कहीं खाद्यान्नोंमें मिलावट, कहीं रिश्वत, कहीं ब्लैकमार्केट है तो कहीं पक्षपात, झूठे विज्ञापन, चोरी, छल, कपट या धोखेबाजीके नये-नये ढंग देखनेमें आ रहे हैं।

बाजारमें शुद्ध दूध, घी, आटा, दही मिलना असम्भव-सा हो गया है। सर्वत्र निम्नकोटिकी वस्तुओंकी मिलावट है। हमारे देशके व्यापारी यह नहीं समझते कि व्यापार ईमानदारी और शुद्ध वस्तुओंको बेचनेसे ही पनपता है। चोर-बाजारी, कर न चुकाना, अवैध व्यापार करना, कम तौलना, मूल्य अधिक बताकर फिर हुज्जत करके कम करना, अच्छा नमूना दिखाकर घटिया देना, असलीमें नकली मिला देना, ग्राहकको ठगनेका प्रयत्न—ये व्यापारिक भ्रष्टाचारके अनेक उदाहरण हैं।

समाचारपत्रोंमें आये दिन भ्रष्टाचारके समाचार छपते रहते हैं।

लोग भ्रष्टाचार क्यों करते हैं?

बिना मेहनत रुपया बना लेनेका व्यसन या चसका बुरा है। एक बार जिस व्यक्तिको मुफ्तखोरी, कामचोरी, धोखेबाजीकी लत पड़ जाती है तो उसका मन फिर किसी स्थायी कामोंमें नहीं लगता। वह मुफ्तमें ही रुपयेका मालिक बनकर गुलछर्रे उड़ाना चाहता है।

कुछ व्यक्ति अपनेको अपनी हैसियत या सामाजिक स्तरसे ऊँचा दिखानेमें शान समझते हैं। अन्दरसे खोखले रहते हुए भी बाहरसे ऐसा लिफाफा बनाये रखना चाहते हैं कि समाज धोखेमें रहे। कुछ ऐसे हैं जिनकी नशेबाजी, कामुकताकी तृप्ति, फैशन, विलासिता आदिकी आदतें अनियन्त्रित रूपसे बढ़ी हुई हैं। नैतिक आमदनी तो सीमित रहती है। कुछ ऊपरी आमदनी पैदाकर इन बढ़े हुए खर्चोंकी पूर्तिके लिये उनका मन कुलबुलाया करता है। वे सदा ऐसी तरकीबें सोचा करते हैं कि आमदनीके नये जरिये निकाल लें, जिनसे उनकी टीपटाप और बढ़ी हुई इच्छाओंकी पूर्ति होती रहे।

नैतिक और ईमानदारीसे आयवृद्धि करना आजके बेरोजगारीके युगमें बड़ा कठिन है। फिर मनुष्य श्रमसे जी

चुराता है और बिना मेहनत आनन्द लूटना चाहता है। वह अपनी बुद्धि उन उपायोंकी खोज करनेमें लगाता है कि श्रम कम-से-कम करना पड़े, या हो सके तो बिलकुल ही मेहनत न पड़े, पर आय दुगुनी हो जाय। इस कार्यमें वह मर्यादा और औचित्यकी सीमाओंको पार कर जाता है। क्षणिक भोग और लालचसे उसकी विवेक-बुद्धि भ्रमित हो उठती है।

भ्रष्टाचारका सामाजिक कारण मिथ्या प्रदर्शनकी भावना, झूठी शान, वासनापूर्ति या फैशनकी सनक और अनावश्यक तृष्णा है। भ्रष्टाचारीके मनमें अनावश्यक लोभ बना रहता है, जो उसे अवैध तरीकोंकी ओर ढकेलता है। कुछमें चोरीकी अपराधवृत्ति स्वाभाविक होती है। कुछ आनन्दी जीव होते हैं, जो शराब-पान, वेश्यागमन और होटलके वासना-मूलक पदार्थोंके इच्छुक होते हैं। कुछ अनाप-शनाप खर्चमें ही अपनी अहंतुष्टि कर पाते हैं। ये सब मानसिक दृष्टिसे रोगी होते हैं।

फजूलखर्ची, विलासिता और आरामतलबी हमारे इस दिखावटी समाजका एक बड़ा दुर्गुण है। यह केवल अमीर और पूँजीवादी वर्गतक ही सीमित नहीं, प्रत्युत मध्यवर्ग और मजदूरवर्ग, क्लर्क और बाबूवर्गतकमें पाया जाता है।

जितनी आज अपने-आपको अमीर दिखानेकी थोथी प्रवृत्ति पायी जाती है, उतनी पहले कभी नहीं पायी गयी। लोग अपनी ईमानदारीकी कमाईसे सन्तुष्ट नहीं हैं; वे तो एकाएक कम-से-कम समयमें अमीर बन जानेके उपाय (जो प्राय: अनैतिक होते हैं) सोचा करते हैं। वे सट्टा करते हैं, जुआ खेलते हैं, दूसरोंको तरह-तरहसे धोखा देते हैं, ठगते हैं, भ्रष्टाचार करते हैं और रिश्वत उड़ानेका प्रयत्न करते हैं।

शहरोंमें दिखावा और झूठी शान दिखानेकी दुष्प्रवृत्ति सर्वत्र पायी जाती है। आप उसे सड़कोंपर, गलियोंमें, पार्कोंमें, मन्दिरोंमें और सबसे अधिक विवाह-शादियोंके अवसरपर देख सकते हैं। पोशाकका दिखावा और शान कदाचित् सबसे अधिक बढ़ी हुई है। युवक और युवतियोंमें अपने-आपको सजाने, विविध शृंगार करनेकी भावना अनियन्त्रित रूपसे बढ़ती ही चली जा रही है। लोग अपनी आयसे बहुत अधिक व्यय कर दूसरोंपर शान जमाते हैं और उसका दुष्परिणाम व्यावसायिक दिवालियापन, धोखेबाजीके अनेक मुकदमे, विविध अपराध मिल रहे हैं, जिनमें लोगोंको बेईमानी और दूसरोंको ठगनेपर भारी सजाएँ होती हैं।

बाहरी लिफाफा अच्छा रहे। हम अमीर और पूँजीवाले दिखायी दें, यह बहुरूपियापन आज हमारे समाजको भ्रष्टाचारकी ओर आकृष्ट कर रहा है। धोखेबाज दूसरोंपर झूठी शान जमानेमें लगे हुए हैं। वे एक खास किस्मके स्टाइलसे रहना चाहते हैं, खूबसूरत कोठियोंमें निवास करते हैं, दावतें देते हैं, पान-सिगरेटका दौर-दौरा रखते हैं और इन सबके खर्चे पूरे करनेके लिये भ्रष्टाचार ही उन्हें एक सीधा-सा रास्ता दिखायी देता है।

एक वर्ग अन्दरसे गरीब है, पर दिखाता है अमीरी। यह निम्न मध्यवर्ग हर तरीकेसे अपनी गरीबीको छिपानेका उपक्रम करता है। वे व्यक्ति कमानेसे पूर्व ही अपनी आमदनी खर्च कर चुकते हैं। उनपर कभी पंसारीका तो कभी कपड़ेवालेका कर्ज चढ़ा ही रहता है। बिजलीके बिल जमा नहीं हो पाते। मकानका किराया चढ़ा रहता है; किंतु फिर भी वे मित्रोंकी दावतें करेंगे और लेन-देनमें कभी कमी न करेंगे। वे मित्र और सम्बन्धी कबतक ऐसे व्यक्तिके साथ रहते हैं? केवल तब ही तक, जबतक वह ऋण इतना नहीं हो जाता कि अदायगीकी सीमासे बाहर हो जाय। जहाँ वह ऋणमें फँसा कि ऐसे 'खाऊ-उड़ाऊ' व्यक्ति उड़ जाते हैं और इस ऋणग्रस्त व्यक्तिसे घृणा करते हैं। फिर उसे कोई नहीं पूछता। कर्ज उसे पेटमें रख लेता है।

हम फैशनके दास बन गये हैं। हम दूसरोंके नेत्रोंसे देखते हैं। दूसरोंके दिमागोंसे सोचते हैं। जैसा दूसरोंको पसन्द है, हम वही करते हैं। हम वह नहीं करते जो वास्तवमें हमारी सच्ची स्थिति है, हैसियत है या जो हमारी आमदनी है। हम अन्धविश्वासोंके गुलाम हैं। जैसा देने-दिलानेका रिवाज है, हम वैसा ही करनेपर तुल जाते हैं, जब कि हमारे पास पैसा होता ही नहीं और हम अपना घर भी दूसरोंके यहाँ गिरवी रख देते हैं। हम स्वतन्त्ररूपसे विचार नहीं करते, अपना आगा-पीछा नहीं सोचते। हम जिस वर्गमें हैं, उससे इस वर्गकी बड़ी हैसियतका अन्धानुकरण करते हैं। समाज तो दो दिन वाहवाही करके अलग हो

जाता है। हम उम्रभर कर्जमें डूबे रहते हैं। हमारे मनमें यह गलत धारणा बन गयी है कि हम यदि ऐसे कपड़े पहनेंगे, ऐसा बनाव—शृंगार करेंगे, सोसाइटीके रस्मों-रिवाजोंका पालन करेंगे, तभी हमें सम्मान्य समझा जायगा। हम मूर्खतामें फँसकर अपनेसे ऊँची आय, हैसियत, संचित पूँजी और ऊँची स्थितिवाले लोगोंके समान जीवन बितानेकी इच्छा करते हैं।

इस प्रकार अनेकानेक समझदार और पढ़े-लिखे व्यक्तितक कर्ज, दुःख, बेबसी, आत्महत्या, उत्तेजना, अपराध और भ्रष्टाचारकी ओर बढ़ते हैं। खानेकी वस्तुओंमें मिलावट, दूसरोंसे रिश्वत, भोली-भाली जनताको धोखेबाजीसे छलते हैं, अनेक तरीकोंसे ठगते हैं। झूठे विज्ञापन करते हैं, डकैती और हत्यासे भी नहीं चूकते। बार-बार चोरी करनेसे वह हमारी आदतमें शुमार हो जाती है। एक भ्रष्टाचारीको बने-ठने देखकर दूसरे भी वैसा ही रंग बदलते हैं। वे भी उन्हीं अनैतिक तरीकोंको अपनाते हैं। एक भ्रष्टाचारी दूसरेको भ्रष्टाचारी बनाता है।

भ्रष्टाचारीका धन आठ-दस वर्ष ठहरता है, ग्यारहवाँ वर्ष लगते ही समूल नष्ट हो जाता है।

अन्यायोपार्जित धन विषके समान होता है। जो अनैतिक और गंदे तरीकोंसे धन कमाते हैं, उनके चारों ओर विष-ही-विष है।

सन्त टाल्सटाय धनके साथ जुड़ी हुई अनेक बुराइयोंके कारण धनको पाप मानते थे। उनकी पत्नी खाने, उड़ाने, चाटने और दिखावटी जीवनको पसन्द करती थी। वह हमेशा नये-नये फैशन और नयी-नयी माँगें पेश किया करती थी। इस तरह दोनोंके स्वभावकी असमानताके कारण उनका जीवन कलुषित बन गया था। यदि और कोई कम आत्म-विश्वासका व्यक्ति होता तो पत्नीको खुश करनेके लिये वह भी भ्रष्टाचारी बन सकता था। दुनियाको छल, कपट और धोखेबाजीसे लूटनेका षड्यन्त्र कर सकता था; किंतु टाल्सटायको भ्रष्टाचारसे बड़ी घृणा थी। उन्होंने सत्य और नैतिकताका सन्मार्ग न छोड़ा। बयासी वर्षकी उम्रमें पत्नीके कलहसे तंग आकर गृह-त्याग किया।

सच है, धन जिनका चाकर है, वे बड़भागी हैं। जो धनके चाकर हैं, वे अभागे हैं।

तमाम पवित्र चीजोंमें धन कमानेकी पवित्रता सर्वोत्तम है।

भ्रष्टाचारका जिम्मेदार हमारा समाज है

भ्रष्टाचारके लिये किसे दोष दें? व्यक्तिको या समाजको? आप कहेंगे व्यक्ति ही मिलावट करता है, रिश्वत लेता है, चोरी, छल, ठगी, धोखेबाजी करता है। इसलिये व्यक्ति ही इस अपराधका जिम्मेदार है, व्यक्तिका ही दोष है।

हम कहते हैं कि भ्रष्टाचारका दोषी व्यक्ति उतना नहीं है, जितना समाज है। समाज व्यक्तिको निरन्तर प्रभावित किया करता है। प्रत्येक समाजमें कुछ निश्चित कायदे-कानून और बँधी हुई रस्मे हैं। व्यक्तिको उन्हींका पालन करना पड़ता है। जिन रस्म और रिवाजोंका समाजमें मान होता है, जिन बातोंको अच्छा और बुरा माना जाता है, समाजका प्रत्येक व्यक्ति उन्हींको स्वभावतः ग्रहण करना चाहता है। उन्हींको धारण करनेमें गौरवका अनुभव करता है।

समाजमें कुछ व्यक्ति तो सादा जीवन व्यतीत करते हैं, पर कुछ दम्भी ऐसे भी होते हैं, जिनके घरमें तो भूजी भाँग नहीं होती, पर वे अपने आपको बड़ी टीपटापसे दिखाते हैं, कृत्रिम बनाव-शृंगार रखते हैं—बाहर कुछ, अन्दर कुछ और रहते हैं। ये साज-शृंगार करते हैं तो समाज इन्हें मान देता है। समाजमें ये लम्बी नाक निकालकर चलते हैं। इनकी टीपटाप और विलासको देखकर साधारण स्तरके व्यक्ति भी इनकी नकल करते हैं। लुभावने जीवनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। समाजमें सब कुछ अनुकरणसे ही चलता है। एकके बाद दूसरा, बस, यह लुभावना जीवन ही सर्वत्र परेशान कर रहा है।

उदाहरणके तौरपर हम राजनीतिक जगत्‌में कार्य करनेवाले लोकप्रिय मन्त्रियोंके जीवनको ले सकते हैं। उन्होंने जनताकी सेवाका व्रत धारण किया था। सादा जीवन और कम-से-कम वेतन—यही उनका आदर्श था। कुछ दिनोंतक तो वास्तवमें उनका ऐसा ही जीवन चला, किंतु फिर वे भी उसपर निर्भर न रहे। उनके भी खर्चे बढ़ गये। टीपटाप और दिखावा शुरू हो गया। नयी-नयी कारोंकी मॉडलें बदलने लगीं। उनको भी अपने प्रचार-प्रोपेगेंडाके लिये रुपयेकी जरूरत पड़ने लगी। वे अपने

लिये स्थायी आयका प्रबन्ध करनेकी सोचने लगे। यह दिखावा और आत्म-विज्ञापन करनेके लिये उन्हें फालतू धनकी जरूरत पड़ी। बस, उन्होंने भी भ्रष्टाचारमें हिस्सा लेना प्रारम्भ कर दिया। इस रिश्वत तथा ऊपरकी आमदनीसे कुछ व्यक्तियोंने अल्पकालमें लाखोंकी कोठियाँ खड़ी कर लीं, अपने आदमियोंको सरकारी नौकरियोंमें प्रविष्ट करा दिया और मिनिस्टरीमेंसे निकल जानेपर आमदनीका सिलसिला जमा लिया।

समाजमें टीपटापसे रहनेवाले बड़े आदमियोंका विलासिता और फैशनसे भरा हुआ जीवन कम आयवालोंके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न करता है। वह अपनी सीमित आमदनीमें अपने खर्चे पूरे कर नहीं पाता। अतः उसके मनमें अतृप्ति बनी ही रहती है। आज जिसे देखिये, वही आय कम होनेकी शिकायत इसीलिये करता है; क्योंकि वह अपनी हैसियत तथा सामाजिक स्तरमें नहीं रहना चाहता, बल्कि अपनेसे बड़ों, अमीरों, जागीरदारों, सामन्तों या राजाओंके जीवनका असफल अनुकरण करता है।

भ्रष्टाचार रोकनेके लिये सुझाव

हम कह आये हैं कि भ्रष्टाचार एक सामाजिक रोग है। समाज ही इस रोगका निराकरण कर सकता है। यदि समाज प्रयत्न करे तो बहुत जल्दी भ्रष्टाचार समाप्त हो सकता है।

समाजमें ऐसे अवसर बन्द कर देने चाहिये, जिनमें कम आयवालोंको बड़ोंके अनुकरण और ईर्ष्याके अवसर मिलते हैं, या अनावश्यक मिथ्या प्रदर्शनके खर्चे बढ़ते हैं। विवाहोंमें अनापशनाप दिखावा, लेन-देन, ठहराव, दहेजका प्रदर्शन आदि दूसरोंको और भी अधिक व्यय करनेको प्रेरित करते हैं। एक दस हजार व्यय करता है, तो दूसरा उसे नीचा दिखानेके लिये पन्द्रह हजारकी योजनाएँ बनाता है। तीसरा कुछ और टीपटाप और प्रदर्शनकी तरकीबें सोचता है। लानत है, उस सामाजिक अनुकरणपर, जो हमें सजीव सत्यसे वंचित रखे। अपनी असलियत न प्रकट करने दे, अथवा वास्तविकता खोलते हुए मनमें लज्जाका भाव पैदा कर दे।

दहेज या तो दिया ही न जाय अथवा चेकद्वारा दिया जाय, जिसका प्रदर्शन तनिक भी न हो। विवाहमें कन्याकी शिक्षा, योग्यता, सच्चरित्रता और स्वास्थ्य ही मुख्य है। धन तो नितान्त गौण है। दहेजका प्रदर्शन ही न किया जाय, तो फिर उसके देनेमें कौन गर्वका अनुभव करेगा?

आज हम नारी-जीवनको देखते हैं, तो उसमें भी समाजका ही कसूर पाते हैं। हर एक युवती बढ़िया-बढ़िया राजसी वस्त्र, अधिकाधिक नवीन रंग तथा आकर्षक प्रिंट्सकी साड़ियाँ और नयी डिजाइनोंके आभूषण क्यों चाहती है? नये फैशन क्यों बनाती है? मुँहपर क्रीम, पाउडर, सुर्खी इत्यादि क्यों लगाती है? अपनेको सुन्दर दिखानेमें क्यों इतनी तल्लीन है?

इसका कारण वह यह समझती है कि समाजमें इन्हीं वस्तुओंके प्रयोगसे वह सम्माननीय समझी जायगी। वह यही समझती है कि पत्नीका सजीधजी फैशनमें होना ही सौभाग्यकी बात है। वह बेचारी ऐसे समाजमें रहती है, जिसमें अधिक-से-अधिक फैशन बनाना उत्तम समझा जाता है और अर्द्धनग्न रहनेमें पाश्चात्त्य देशोंकी अन्धाधुन्ध नकल की जाती है। समाज इन फैशनों, इन सौन्दर्य-प्रसाधनोंको महत्त्व देता है। सम्मानसे देखता है।

समाजका सम्मान पानेकी भूखमें वह बेचारी जीवनकी अनेक उपयोगी और आवश्यक वस्तुओंका प्रयोग बन्द कर देती है। शुद्ध घीके स्थानपर डालडा और दूधके स्थानपर चायका प्रयोग करती है, पर सौन्दर्य-प्रसाधनों, वस्त्रों, फैशनोंमें दिल खोलकर व्यय करती है। दोष उस समाजका है जो गलत मूल्योंसे व्यक्तियोंको नापता है और मिथ्या-प्रदर्शनकी ओर गुमराह करता है।

जनताका मन चीजोंको गहराईसे नहीं सोचता। वह तो कच्चा मन रखता है। ऊपरी दिखावेसे ही प्रभावित हो जाता है। वह भी व्यक्तिका मूल्यांकन बाह्य प्रदर्शनसे ही करने लगता है। अतः जरूरत इस बातकी है कि समाज ऐसे मिथ्या-प्रदर्शनपर रोक लगाये।

युवक-युवतियाँ समाज और सरकारद्वारा सिनेमा-अभिनेता और अभिनेत्रियोंको सम्मानित होते देखते हैं। अभिनेत्रियोंके सजे हुए फोटो बड़ी शानसे छपते हैं। अखबार उनके रोचक-वृत्तान्त छाप-छापकर जनताका ध्यान उनकी ओर आकर्षित करते हैं। युवक अभिनेत्रियोंके चित्रोंसे सुसज्जित अखबारोंको लिये फिरते हैं। घर तथा दफ्तरोंमें दीवारोंपर उनके चित्र या कैलेण्डर सजावट और सम्मानके लिये लगाये जाते हैं। जब युवक या युवती

जनताद्वारा दिये गये इस सम्मानको देखते हैं, तब कन्याएँ स्वयं भी वैसी ही बनना चाहती हैं। इन्हें गुमराह करनेका अपराध उन लोगोंका है, जिन्होंने गलत मान दे-देकर कच्चे दिमागोंको बुरे रास्तेपर डाल दिया है।

समाजने टी०वी० और सिनेमाको सार्वजनिक जीवनमें बहुत मान दिया। सिनेमा हमारे दैनिक जीवनका एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया। कच्चे दिमागोंके विद्यार्थियोंने टी०वी० और सिनेमामें रोमांस और एडवेन्चरके चित्र देखे। उन्हींका अनुकरण किया। फलस्वरूप यह वर्ग कामुक और रोमांटिक बन गया। विद्यार्थियोंमें अनुशासनहीनता, फैशनपरस्ती, कामुकता और गुण्डागर्दीकी भावना फैल गयी।

आवश्यकता यह है कि टी०वी० और सिनेमाको घृणाकी दृष्टिसे देखा जाय, अभिनेत्रियोंको अधिक मान न दिया जाय। मनुष्यकी सच्चरित्रता, विद्वत्ता, भलमनसाहत, उद्योग आदिको ही मान दिया जाय। जो-जो व्यक्ति जीवनमें सदाचार, संयम, सद्व्यवहार, त्याग, तपस्या, सादगी और सरलतासे जीवन-यापन करके ऊँचे उठे हैं, उन्हींको समाजकी ओरसे सम्मान दिया जाय। इस प्रकार सही दिशाओंमें सोचने-विचारने और चलनेको प्रोत्साहित किया जाय। यदि समाज सत्यता और शीलगुणको सम्मान देगा तो जनता रुपयेके मोहसे हटकर मानवोचित सद्‌गुणोंके विकासकी ओर ही श्रम करेगी। उसकी विचारधारा उच्च नैतिक आदर्शोंकी ओर चलेगी। हमें समाजको नयी शिक्षा देनी होगी।

सच्ची शिक्षाका समूचा उद्देश्य समाजको ठीक कार्योंमें रत कर देना ही नहीं, बल्कि उन्हें ठीक कार्योंमें रस लेने लायक बना देना है। समाजको शुद्ध बना देना है।

सब शुद्धताओंमें धनकी शुद्धता सर्वोत्तम है; क्योंकि शुद्ध वही है, जो धनको ईमानदारीसे कमाता है; वह नहीं, जो अपनेको मिट्टी और पानीसे शुद्ध करता है।

एक विचारकने लिखा है, निस्सन्देह ऐसे बहुत आदमी हैं जो अन्यायी, बेईमान, धोखेबाज, अत्याचारी, फरेबी, झूठे, रिश्वतखोर, भ्रष्टाचारी बनकर धनवान् हुए हैं और आज समाजमें सम्मानके पात्र बने हुए हैं। सच जानिये, ऐसे व्यक्ति सुखी और तृप्त नहीं हो सकते। क्या वे इस दौलतके अत्यल्पांशका भी आनन्दसे उपभोग कर सकते हैं?

नहीं, कदापि नहीं। उनकी अन्तरात्मा उन्हें दिनभर और रातभर झिड़की, पीड़ा, संताप और यन्त्रणा देती रहती है।

सामाजिक वातावरण बदलनेकी जिम्मेदारी विद्वानों, विचारकों, लेखकों, सम्पादकों, कवियों, समाजसुधारकों, राजनीतिक नेताओं और सन्तोंकी है। ये लोग अपने विचारों, पत्रों और लेखोंद्वारा समाजमें नयी-नयी विचारधाराएँ फैलाते हैं और जनताको विचारकी नयी विधियाँ सिखाते हैं। उचित-अनुचितका विवेक सिखाते हैं। अपने तर्कोंसे कुछ विशेष निष्कर्षोंपर पहुँचते हैं। विवेक कुछ खास व्यक्तियोंका गुण है, चन्द बुद्धिशालियोंकी निजी सम्पत्ति है। यदि यह उपदेशक-वर्ग समाजके मूल्योंको सांसारिकतासे हटाकर नैतिकताकी ओर ले जाय तो बड़ा लाभ हो सकता है।

वे सम्पादक, जो फिल्मोंके माध्यमसे कामुकता और शृंगारका प्रचार कर रहे हैं, जनताके शत्रु हैं। जो उच्छृंखल स्त्रियोंके आकर्षक-आकर्षक चित्र पत्रोंमें मुखपृष्ठोंपर छाप-छापकर युवकोंको विषय-वासनाकी ओर ढकेल रहे हैं, समाजका बड़ा अहित कर रहे हैं। अपने पत्रोंद्वारा वे जिस व्यक्तिको मान देंगे, शेष आदमी भी वैसे ही बनेंगे। अतः उन्हें चाहिये कि मानव-जातिके नैतिक जीवन-स्तरको ऊँचा उठानेवाले आदर्श पुरुष और नारी-रत्नोंको सम्मान दें। अपने पत्रोंमें उन आदर्श व्यक्तियोंके ही वृत्तान्त, घटनाएँ, कहानियाँ छापें, जिनमें दूसरोंको ऊँचा उठानेयोग्य आदर्श बातें हों। गन्दे साहित्य, रोमांटिक किस्से-कहानियों और निम्न कोटिके साहित्यको पढ़-पढ़कर जनता भ्रष्टाचारकी ओर भटक गयी है। साहित्यका पतन राष्ट्रके पतनका द्योतक है। सच्चा साहित्य वही है, जो मनुष्यका हित करे अर्थात् उसका नैतिक उत्थान करे। विवेकको जाग्रत् करे। मानसिक स्वास्थ्यके लिये विवेक वैसा ही है, जैसा शरीरके लिये स्वास्थ्य। विवेक जाग्रत् होनेसे मनुष्य उचित-अनुचितका अन्तर स्वतः समझने लगता है। सम्पादकोंको ऐसा साहित्य प्रकाशित करना चाहिये, जिससे विवेक जाग्रत् हो और जनता देवत्वकी ओर चले। लेखक ऐसे सात्त्विक साहित्यकी रचना करें, जिससे मनुष्य संयमका पाठ पढ़ें, अपनी सीमित आयमें अपना गुजारा करें और सन्तुष्ट रहना सीखें। अपनी आवश्यकताओं, वासनाओं और तृष्णाओंको न बढ़ने दें। इस प्रकारकी विचारधारा फैलानेसे सात्त्विक वायुमण्डल बनेगा और उसमें निवास करनेसे समाज भ्रष्टाचार स्वतः त्याग देगा।

संतचरित—

संतशिरोमणि श्रीरूपकलाजीकी भक्ति-साधना

(डॉ० श्रीरामजिआवनदासजी, एम०ए०, पी-एच०डी०)

वैष्णवरत्न रूपकलाजी न केवल रामकथावाचक थे, बल्कि अयोध्याके उच्चकोटिके पहुँचे हुए सन्तोंमेंसे एक थे। आपकी आध्यात्मिक उपलब्धियों एवं प्रभुकी असीम कृपानुभूतियोंकी चर्चा जब होती है तो आपके जीवनमें घटित अनेक अद्‌भुत एवं चमत्कारिक घटनाओंके चित्र मानस-पटलपर स्पष्ट रूपसे उभरने लगते हैं।

गृहस्थजीवनमें अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वोंका निर्वाह करते हुए, कर्मचेष्टाओंमें प्रवृत्त होते हुए भी निष्काम, निरासक्त रूपसे भगवद्‌भजन एवं भक्ति-साधनामें लीन होकर प्रभुके समीप बैठा जा सकता है—भक्ति-रसमें डूबा जा सकता है, इसके ज्वलंत उदाहरण हैं श्रीरूपकलाजी महाराज। उन्होंने अपनी भक्ति-साधनाके बलपर अपनी भौतिक कायामें कुछ इस प्रकारकी परिस्थितियोंको निर्मित कर लिया था कि वे स्वयं आध्यात्मिक उत्कर्षके प्रतीक बन गये। भक्तिमें शक्तिको चरितार्थ करनेवाले श्रीरूपकलाजी अनेक ऐसे सन्तोंमेंसे एक हैं, जिनमें अटूट श्रद्धा, अविरल भक्ति तथा अनवरत भगवन्नाम-जपके कारण परमात्माका आविर्भाव सम्भव हो सका।

श्रीरूपकलाजीका पूरा नाम श्रीसीतारामशरण भगवान् प्रसाद था। यह सुखद संयोग ही कहा जायगा कि आप निरन्तर अपने जीवनमें प्रभु श्रीसीतारामके 'शरण' में ही रहे और फलतः भगवान्‌के अनुपम 'प्रसाद' के अधिकारी बने। आपका जन्म बिहारमें श्रावण-कृष्ण नवमीको सन् १८४० ई० में हुआ था। श्रीभक्तमालमें लिखित उनकी संक्षिप्त जीवनीके अनुसार उनके पिता मुन्शी तपस्वीराम भक्तमालीजी स्वामी रामचरणदासजीके शिष्य थे। श्रीरूपकलाजी २२ वर्षकी अवस्थामें सन् १८६३ ई० में ३० रु० पर पटनाके सब-इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स पदपर नियुक्त हुए, कालान्तरमें आपने शाहाबाद, गया, चम्पारण, सारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा आदि जिलोंमें कार्यरत होते हुए पूर्णिया नार्मल स्कूलमें हेडमास्टर पदको सुशोभित किया। सन् १८६७ ई० में १०० रु० पर डिप्टी इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स बने और मुंगेरमें लगभग १२ वर्षोंतक कार्यरत रहे। सन् १८७८ ई० में वेतनवृद्धि हुई और २०० रु० पाने लगे। सन् १८८१ ई० में भागलपुर गये और सन् १८८४ ई० में आपकी उन्नति गजटेड पोस्ट पर ३०० रु० मासिकपर हुई। सन् १८८६ ई० में आप पटना आ गये। इस प्रकार अपनी कार्यकुशलता, निष्ठा एवं लगनके कारण आपने सरकारी सेवामें अपनी दक्षता प्रमाणित की। विलक्षण बात यह थी कि आपके सारे कार्य फलेच्छारहित, राग-द्वेष एवं अभिमानरहित होते थे, जिन्हें गीताके अनुसार सात्त्विक कर्म कहा जाता है। परिणामतः आपकी छवि एक 'सात्त्विक कर्मयोगी' की बनी।

इसके साथ ही श्रीरूपकलाजीने समय निकालकर गोस्वामी तुलसीदासद्वारा रचित श्रीरामचरितमानसका नियमित पाठ, सत्संग, भजन-कीर्तन एवं भगवन्नाम-जपका आश्रय लिया। श्रीरामकथामें विशेष रुचि एवं श्रद्धाके कारण उनका जीवन भक्ति-प्रधान बना। स्वयं राममय होते हुए आप एक उच्चकोटिके मानस-मर्मज्ञके रूपमें पूजित हुए। भक्ति-साधना इतनी प्रगाढ़ हुई कि आप आकर्षणके केन्द्र बन गये और अनेक भक्तों, सन्तों और गृहस्थोंके लिये प्रेरणाके स्रोत बने। उनके सम्पर्कमें जो भी आया, उसने भी रामकथा-मन्दाकिनीमें डुबकी लगायी और रसविभोर होते हुए प्रभुके शरणमें गया। आपके राममय जीवनके अनेक ऐसे दृष्टान्त हैं, जिनसे यह प्रमाणित हो चुका है कि आप निरन्तर प्रभुके सान्निध्यमें ही अधिकांश समय व्यतीत करते थे। श्रीरामकथामें आपकी अटूट श्रद्धा थी और साथ ही प्रभु श्रीराममें अटल विश्वास। वे कहा करते थे—

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥

और

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

इतना ही नहीं—

बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥

कालान्तरमें आपकी भक्ति-साधना इतनी गहरी हुई कि आप अध्यात्मके चरमोत्कर्षपर पहुँच गये, जहाँसे आपने अपने 'सात्त्विक ज्ञान' का ज्ञान हम सबको कराया और बार-बार गाया—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

यही है गीताके अनुसार 'सात्त्विक ज्ञान'। इस प्रकार आप रसिक भक्ति उपासनामें आध्यात्मिक ज्ञानके प्रतीक बने। शनैः-शनैः सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होते गये और प्रभुके प्रति अनन्य भक्तिकी पराकाष्ठासे आपने पूर्णता प्राप्त की, जो अपने-आपमें कर्मयोग एवं ज्ञानयोगकी सुखद परिणति ही कही जायगी। ऐसे ही समयमें जब आपमें कर्म, ज्ञान एवं भक्तिका सुन्दर समन्वय स्थापित हुआ, तभी आपके जीवनमें एक निर्णायक मोड़ आया।

बात अक्टूबर १८९३ ई० की है। एक अद्‌भुत घटना घटी। श्रीरूपकलाजी महाराजको एक विलक्षण अनुभूति हुई—एक आत्मानुभव—प्रभुकी असीम कृपानुभूति। एक दिन प्रातः आपको बाढ़-जिला पटनाके एक स्कूलमें निरीक्षण-हेतु इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स, मि० स्टैग साहबके साथ जाना था। प्रभुके ध्यानमें निमग्न होनेके कारण आप स्टेशन नहीं पहुँच सके। जब पहुँचे तब गाड़ी जा चुकी थी। स्टेशनमास्टरसे भेंट हुई। दूसरे दिन जब इंस्पेक्टर मि० स्टैग लौटकर आये तब श्रीरूपकलाजी उनसे मिलने गये और क्षमा-याचना की कि देर हो जानेके कारण गाड़ी छूट गयी और वे बाढ़ उनके साथ न जा सके। इंस्पेक्टर साहब अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए और उनसे पूछा कि उनका मिजाज तो ठीक है न और उन्होंने कहा कि आप ऐसा क्यों कह रहे हैं, जबकि आप बराबर हमारे साथ थे, बाढ़ स्कूल भी गये, वहाँ निरीक्षण-कार्य भी सम्पन्न किया और अपने हस्ताक्षर भी किये। मि० स्टैगने अपने अर्दलीको बुलाया और पूछा कि क्या श्रीरूपकलाजी कल हम लोगोंके साथ बाढ़ स्कूल नहीं गये थे? अर्दलीने कहा कि आप तो हजूरके साथ-साथ थे और अपना हस्ताक्षर भी बनाया है।

बस, फिर क्या था! भक्त श्रीरूपकलाजी इतने भाव-विह्वल हो गये कि रोने लगे। सबकुछ समझमें आ गया। तत्काल हाथ जोड़कर इंस्पेक्टर साहबसे प्रार्थना की कि अब उन्हें कार्यमुक्त कर दें तो अति कृपा होगी। इंस्पेक्टर साहबने बहुत समझाया कि आप अवकाशपर चले जायँ लेकिन कार्यमुक्त होनेकी बात छोड़ दें, पर वे कहाँ माननेवाले थे। ३० वर्षोंसे भी अधिक सरकारी नौकरी करनेके पश्चात् सन् १८९३ ई० में उन्होंने अपने पदसे इस्तीफा दे दिया और दृढ़ निश्चय किया कि अब मैं प्रभु श्रीरामकी नगरी श्रीअयोध्याजी जाऊँगा और सरकारी सेवा त्यागकर युगल सरकार श्रीसीतारामकी सेवामें लग जाऊँगा। इसी आशयसे आप श्रीअवधधाम पधारे; क्योंकि उक्त आत्मानुभवने उन्हें आन्दोलित कर दिया था, बेचैन कर दिया था अपने प्रभुकी 'साँवरी मूरति मोहिनी मूरति' के दर्शनके लिये। आप भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी पंक्तियोंको अक्सर गाया करते थे और लोगोंको सुनाया भी करते थे—

बलि साँवरी सूरति मोहनी मूरति, आँखिन को तनि आप दिखाओ।

श्रीअयोध्या नगरीमें अनुकूल वातावरण एवं सुप्रसिद्ध सन्तोंके बीच अपनेको पाकर आप श्रीसीतारामजीके युगल स्वरूप और मंगल मूरति मारुतनन्दन श्रीहनुमान्‌जीके ध्यान और नाम-रटनमें लीन हो गये। श्रीसीतारामजी एवं श्रीहनुमान्‌जीके प्रति अटूट श्रद्धा, भक्ति एवं समर्पण भावके बलपर उन्होंने अपने-आपको अध्यात्मके उच्चतम शिखरपर स्थित पाया। यह वही स्थिति है जब भक्तिकी पराकाष्ठा प्रभुके प्रति प्रेमरसका परिपाक करके प्रेमकी उच्चतम स्थिति जाग्रत् करती है।

श्रीरूपकलाजी महाराजकी भक्ति-साधना इस प्रकारकी थी, जिसके कारण आगे चलकर वे एक उच्चकोटिके माधुर्योपासक सन्तके रूपमें पूजित हुए। अनेक बार उनके जीवनमें अयोध्या आनेके पूर्व और बादमें भी ऐसी स्थितियाँ बनीं, जब वे प्रभुके चिन्तनमें अपनी सुध-बुध खो बैठते थे और इष्टका आविर्भाव स्वतः उनपर अथवा उनके लिये हुआ, जिसका उल्लेख अनेक पुस्तकोंमें हुआ है। इतना ही नहीं आपने अनेक श्रद्धालुओंका भी उद्धार किया। आप लोगोंसे कहा करते थे—

रामकथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥

इसी अटल विश्वासके आधारपर आप लोगोंके संशयरूपी पक्षियोंको उड़ानेमें समर्थ हुए और उनमें प्रभुके प्रति श्रद्धा, विश्वास, अनन्य भक्ति और समर्पण भाव जाग्रत् करनेमें सफल हुए। साथ ही निर्मल भक्ति-धारा प्रवाहित करते हुए नाम-जपकी महत्ताको भी आपने प्रमाणित किया।

श्रीअयोध्याजीमें श्रीरूपकला कुंज मन्दिर आज भी रूपकला घाट, श्रीरामकी पौड़ीपर स्थित है, जहाँ अनवरत

'जय सियाराम जै जै हनुमान्' का संकीर्तन-क्रम चलता रहता है।

४ जनवरी १९३२ ई० को श्रीरूपकलाजीकी अन्तिम यात्रा सम्पन्न हुई। इसका उल्लेख श्रीरघुवंशभूषणशरणजीद्वारा रचित 'श्रीरूपकलाप्रकाश' में मिलता है—'चार जनवरीके सुबहसे ही मालूम नहीं क्यों; श्रीरूपकलाजीके मुखारविन्दसे केवल 'राम' ही शब्द गूँजे हुए स्वरमें निकलता था।............एक बजे रात्रिमें 'राम-राम' उच्चारण करनेके अनन्तर उन्होंने कहा—*'प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन'*, इतना ही कहकर वे चुप हो रहे और कुछ प्रार्थना करने लगे।' इस प्रकार रात्रि ३ बजे परम पद प्राप्त किये। ऐसे परम पूज्य सन्तशिरोमणि श्रीरूपकलाजी महाराजको शत-शत दण्डवत् प्रणाम। श्रीरूपकलाजीकी वाणीका एक अंश यहाँ दिया जा रहा है—

धन्य धन्य जे ध्यावही, चरण-चिन्ह सियराम के।
धनि धनि जन जे पूजही, साधु संत श्रीधाम के॥
तजि कुसंग सत्संग नित, कीजिय सहित विवेक।
सम्प्रदाय निज की सदा, राखिये सादर टेक॥
देह खेह बद्ध कर्म महँ, पर यह मानस नेम।
कर जोड़े सम्मुख सदा, सादर खड़ा सप्रेम॥
तन मन धन सब वारि, मन चित हिय अति प्रेम ते।
सम्मुख आखिन चारि, चितइये राजिवनयन छबि॥
आपु सहित सब धूर, विषय वासना तनु ममत।
कर्म मनन मजदूर, आपन करता 'मैं' नहीं॥
सरन सुखद निष्ठा अचल, अति अनन्य व्रत नेम।
पिय सुभाव स्तुति मगन, नयन चारि सुख प्रेम॥
प्रियतम तुम्हरे सामने, काहू की न बसाय।
अनहोती पिय करि सकौ, होनिहार मिट जाय॥
प्रियतम तुम्हरे छोह ते, शान्त, अचञ्चल, धीर।
वचन-अल्प, अति प्रिय, मृदुल, शुद्ध, सप्रेम, गँभीर॥
श्रीजानकि-पद-कंज सखि, करहि जासु उर ऐन।
बिनु प्रयास तेहि पर द्रवहि, रघुपति राजिवनैन॥

आडम्बर एवं आवश्यकता

(डॉ० श्रीरघुनाथजी महापात्र, एम० ए०, पी-एच० डी०)

दैनन्दिन जीवन-यापनके लिये हमारी कुछ आवश्यकताओंका पूरा होना अनिवार्य है। यथा—भोजनके लिये अन्न, शरीरके लिये वस्त्र, रहनेके लिये घर, किंतु इन्हें शरीरकी आवश्यकतामात्र न मानकर इनमें काफी कुछ आडम्बरका समाहार हम इसलिये करते हैं कि हमारे इर्द-गिर्द रहनेवाले लोग इनके माध्यमसे हमसे प्रभावित हों। जीनेके लिये खाना, पहनना एवं गृहका निर्माण करना तो ठीक है, किंतु खाने या जिह्वाकी लालसा पूरी करनेके लिये ही जीना, लोगोंको अपनी शान दिखानेके लिये पहनना एवं बाहरसे हमारे मकानको देखकर लोग हमारी प्रशंसा करेंगे—ऐसा सोचकर मकानको बड़े आकारमें दृश्यमान होने योग्य बनाना—इनका कोई अर्थ ही नहीं है।

शरीर स्वस्थ, सबल एवं कार्यक्षम रह सके, इस उद्देश्यसे आवश्यक भोजन करनेकी बात विज्ञ लोगोंने कही है—इसके लिये शास्त्रोंमें भी विधान है। प्रायः यह देखा गया है कि आवश्यकतासे अधिक मात्रामें तथा जिह्वाके स्वादके लिये भोजन करनेके कारण लोग बीमार होते हैं। उसी प्रकार वस्त्र-धारणका मूल लक्ष्य है—लज्जा-निवारण, यह सादे सूती कपड़ोंसे सम्भव है। अत्यन्त मूल्यवान् एवं आँखोंको आकर्षित करनेवाले विकृत रंगोंके कपड़ोंके पहननेकी आखिर क्या आवश्यकता है? रसोई बनाने, रहने, सामान रखने, भगवान्‌की पूजा करने आदिके लिये एक मकानकी जरूरत है, बड़ा हो सकता है छोटा भी—हमारी आर्थिक स्थिति इसका निर्णय करेगी। खुली हवाका गमनागमन हो सके, ऐसा मकान ठीक है। उसे बाहर और भीतरसे आडम्बरपूर्ण ढंगसे सजानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हम सोचते हैं कि हमारे आडम्बरपूर्ण मकानको देखकर लोग हमारी प्रशंसा करेंगे—किंतु सच्चाई यह है कि वे हमारी प्रशंसा नहीं करते। इसके विपरीत हम स्वयं यदि निम्न वित्तश्रेणीके हों तो वे हमारे प्रति ईर्ष्याभावका पोषण करते हैं एवं यदि उच्च वित्तश्रेणीके हों तो वे हमारे प्रति घृणाभावका पोषण करते हैं कि इसने मेरे घरकी तुलनामें आखिर क्या मकान बनाया है?

वस्तुतः घरकी आवश्यकता क्या है और कितनी है, इसे ठीक तरह समझ लेना चाहिये। आवश्यकतासे अधिक वस्तुएँ हों तो उनकी सँभालके लिये अधिक शक्ति एवं अर्थ-व्ययकी जरूरत होती है। खुद हम न सँभाल सकें, उससे अधिक हों तो हमें दूसरोंपर निर्भर होना पड़ता है। जितनी अधिक मात्रामें दूसरोंपर निर्भर रहना पड़ेगा, हमारी अशान्ति उतनी अधिक अनुपातमें बढ़ेगी। कारण यह है कि कोई दूसरा व्यक्ति हमारे मनके अनुसार तो कभी भी पूरी तरह नहीं कर सकता। स्वयं अपने सारे कामोंको कर सकनेपर मनको जो शान्ति मिलती है, उसकी तुलना हो ही नहीं सकती।

आधुनिक विज्ञानने हमें अनेक प्रकारकी सुविधाएँ प्रदान की हैं। हम उनका व्यवहार करें, उपयोग करें—यह तो ठीक है, किंतु उनका उपभोग यह ठीक नहीं है तथा उनके वशमें होना उचित नहीं है। फैशनके लिये या लोगोंको दिखानेके लिये उनका व्यवहार करनेसे हमें कोई लाभ नहीं होता, वरन् शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक क्षति ही होती है।

पैदल चलकर जानेयोग्य रास्तेके लिये साइकिल, मोटर-साइकिल या कारका व्यवहार करनेके पीछे मानसिकता क्या होती है? इसपर हमने सोचा है क्या? खुली हवामें बैठकर पढ़ने, काम करनेके बदले बन्द मकानके भीतर फैन लगाकर या एयर कण्डिशनर लगाकर बैठनेका औचित्य क्या है? ऐसा करनेसे हम प्राणवायु कम करते हैं। वस्तुतः जो शरीर जितनी अधिक मात्रामें गर्मी, वर्षा, शीत सह सके, वह उसी मात्रामें स्वस्थ रहेगा। बनावटी परिवेशमें रहकर क्या हम शरीरको कमजोर नहीं बनाते? हमारे ऋषि-मुनियोंने कहा है—'मैं सौ वर्षोंतक देख सकूँ, सौ वर्षोंतक जीवित रहूँ, सौ वर्षोंतक सुन सकूँ, सौ वर्षोंतक बातचीत कर सकूँ एवं सौ वर्षोंसे अधिक आयु यदि मेरी हो तो भी ऐसी ही स्थिति बनी रहे।' इसका तात्पर्य यही है कि हम जीवन धारण करते हैं निरोग जीवन-यापन करनेके लिये। दवाकी कोई आवश्यक होनी ही नहीं चाहिये। यदि किसी कारण कभी शरीर अस्वस्थ हो जाय तो दवाका व्यवहार अवश्य करना चाहिये।

कहनेका तात्पर्य यह है कि हम 'आडम्बर' कभी भी न करें। आडम्बरके अन्तरालमें 'छलना' छिपी रहती है। छलनासे कभी भी शान्ति न तो आती है, न मिलती है। हमारा भीतर और बाहर एक होना चाहिये। आडम्बरका अर्थ है कि हमारे मनके भीतर कोई आशा, कोई इच्छा छिपी हुई है—यह आशा और इच्छा हमारी शत्रु है। उसे पहचानना चाहिये और उसे परास्त करना चाहिये।

महर्षि व्यासदेवने 'भारतसावित्री' के नामसे जो चार श्लोक लिखे हैं—वे हमारे जीवनके मार्गदर्शक बनें—ऐसा प्रयत्न हमें करना चाहिये—

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे॥

अर्थात् मनुष्य इस जगत्में हजारों माता-पिताओं तथा सैकड़ों स्त्री-पुत्रोंके संयोग-वियोगका अनुभव कर चुके हैं, करते हैं और करते रहेंगे।

हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥

प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें हर्षके अवसर हजारों बार उपस्थित होते हैं, भयके अवसर भी सौ-सौ बार आते हैं, किंतु इन परिस्थितियोंमें प्रतिदिन मूढ़ लोग ही आविष्ट (हर्षित या व्यथित) होते हैं, पण्डित लोग आविष्ट नहीं होते।

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥

मैं दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकार-पुकारकर कह रहा हूँ, किंतु कोई मेरी बात सुनता नहीं। धर्मसे मोक्ष तो सिद्ध होता ही है; अर्थ और काम भी सिद्ध होते हैं तो भी लोग उसका सेवन क्यों नहीं करते!

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥

कामनासे भय, लोभ अथवा प्राण बचानेके लिये भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये, कारण जीवनमें धर्म ही नित्य है, सुख-दुःख अनित्य हैं; इसी प्रकार जीवात्मा ही नित्य है और उसके बन्धनका हेतु अनित्य है।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवान्के शरण हो जाइये

सप्रेम हरिस्मरण! कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि आप धीरे-धीरे भगवान्में प्रेम बढ़ायें। भगवान्में तभीतक अधिक प्रेम नहीं होता, जबतक कि हमारा मन सांसारिक विषयोंमें फँसा रहता है। जब हम संसारके भोगोंको भगवान्से भी ऊँचा स्थान देने लग जाते हैं, तब भगवान् हमें कैसे अपनायें, वे हमारे सामने कैसे प्रकट हों। अतः पहले भगवान्के महत्त्वको समझना और उसपर मनन करना चाहिये। संसारके सभी पदार्थ नाशवान् तथा मलिन हैं। भगवान् ही परम सुन्दर, नित्य, अविनाशी, परमप्रेमी तथा अत्यन्त दयालु हैं। उनके इन गुणोंका चिन्तन कीजिये। जब मन यह अच्छी तरह समझ लेगा कि संसारके विषय अत्यन्त घृणित हैं और भगवान् ही सबसे श्रेष्ठ हैं तो वह निश्चय ही भगवान्की ओर अग्रसर होगा। इसके लिये आप भगवान्के नामोंका जप करें। भगवान्के गुणोंकी चर्चा और उनका चिन्तन करें, उनकी लीलाओंकी कथा-वार्ता पढ़ें और सुनें। इससे भगवान्का महत्त्व समझमें आयेगा और प्रेम भी बढ़ेगा।

भगवान् बड़े दयालु हैं, उनकी दया सबपर बरसती रहती है, वे सबको अपनानेके लिये सदा उत्सुक रहते हैं। कोई उनकी ओर एक पग भी चले तो वे सौ पग आगे बढ़कर उससे मिलने आते हैं। अतः आपको भगवान्पर कभी सन्देह नहीं करना चाहिये। वे आपको अपना सब कुछ बना लेंगे। आप उनके हो तो जाइये। अपनेको उनकी शरणमें डाल दीजिये और रो-रोकर प्रार्थना कीजिये—'भगवन्! मैं जैसा भी हूँ, आपका हूँ। मेरे सारे पाप-ताप हर लीजिये और मुझे अपना पावन प्रेम प्रदानकर मुझे कृतार्थ कीजिये।' इस प्रकार आर्तभावसे पुकारते रहनेसे कभी-न-कभी आपकी सुनवायी भी होगी ही। आपको हिम्मत नहीं हारनी चाहिये। आप भगवान्से नाता जोड़िये। वे स्वयं ही अपनी ओर आपको खींचेंगे। शेष सब प्रभुकी दया।

(२)

भगवान्में सच्चे विश्वासका स्वरूप

आपका कृपापत्र मिला। आपको पहले भगवान्पर श्रद्धा-विश्वास था, पर अब वह श्रद्धा-विश्वास कम मालूम होता है, सो ठीक ही है। पहले लौकिक स्थिति आपके मनके अनुकूल थी और आपकी कामना सफल होती थी, इससे आपका श्रद्धा-विश्वास था। अब स्थिति प्रतिकूल है और कामनाकी पूर्ति नहीं हो रही है, इसलिये आपका श्रद्धा-विश्वास घट रहा है। सच्ची बात तो यह है कि वास्तवमें आपका भगवान्में सच्चा विश्वास हुआ ही नहीं था। ईश्वरमें सच्ची श्रद्धा, सच्चा विश्वास तभी हुआ मानना चाहिये जब उनके मंगल-विधानमें श्रद्धा हो; फिर वह विधान देखनेमें चाहे जितना भयंकर हो, चाहे जितनी कठोर-से-कठोर विपत्तियोंसे भरा हो, चाहे जैसे अत्यन्त दुःखों, अभावों, क्लेशों, अपमानों और असफलताओंसे पूर्ण हो। भयंकर-से-भयंकर प्रतिकूलतामें भी जहाँ यह दृढ़ निश्चय रहता है कि 'भगवान्ने यह जो कुछ मुझे दिया है सो निश्चय ही मेरे कल्याणके लिये है' तभी सच्चे श्रद्धा-विश्वासका पता लगता है। ऑपरेशनमें कष्ट तो होता ही है, परंतु जिसको अपने रोगका ज्ञान है और डॉक्टरपर विश्वास है, वह बड़े-से-बड़े ऑपरेशनके सफलतापूर्वक हो जानेपर प्रसन्न होता है एवं डॉक्टरका कृतज्ञ होता है; क्योंकि वह जानता है कि इससे मेरे रोगका नाश हो जायगा। इसी प्रकार भगवान्में श्रद्धा-विश्वास रखनेवाला पुरुष बड़ी-से-बड़ी लौकिक काट-छाँटमें भी परम प्रसन्न होता है और जैसे रोगी रोगनाशकी भावनासे प्रसन्न होकर डॉक्टरको धन्यवाद देता है, वैसे ही वह विश्वासी पुरुष भी भगवान्का कृतज्ञ होकर उनका नित्य दास बन जाता है। ऊपरसे देखनेमें बड़ी भयानक ऐसी घटनाओंसे उसका विश्वास जरा भी हिलता नहीं, बल्कि बढ़ता है। यह सत्य है कि ऐसा विश्वास होना हँसी-खेल नहीं है। भगवान्का भजन और भगवत्प्रार्थना करते-करते अन्तःकरणकी मलिनताका नाश होनेपर ही इस प्रकारका विश्वास उत्पन्न होता है।

भगवान्में ऐसा अटल विश्वास होनेपर किसी भी स्थितिमें मनुष्य हताश, निराश, उदास और विषादग्रस्त नहीं होता। वह सदा सुखी और प्रसन्न रहता है। उसका यह निश्चय रहता है कि चाहे जैसे भी भयानक रूपमें आये, मेरे समीप आती है मेरे भगवान्की कृपा ही। इसलिये वह कभी निषिद्ध पथपर पैर भी नहीं रखता। उसके जीवनमें शान्ति, क्षमा, अहिंसा, सरलता, साधुता, निर्भयता, निश्चिन्तता, उदारता, प्रेम, आनन्द और प्रसाद आदि दिव्य भावरत्नोंका

भण्डार खुल जाता है। वह स्वयं तो इनको अपने अन्तर्बाह्य धारण करके कृतार्थ होता ही है, सहज ही दूसरोंमें भी वितरण करके उनके जीवनको भी कृतार्थ करता है। भगवान्पर श्रद्धा-विश्वास रखनेवाले ऐसे पुरुष ही धन्य हैं।

आप ऐसी चेष्टा कीजिये, जिससे आपको भगवान्की केवल कृपामयी मूर्तिमें और भगवान्के मंगलमय विधानमें विश्वास हो। ऐसा हो जायगा तो आपको आज जो प्रतिकूल स्थितिमें श्रद्धा-विश्वासकी कमी मालूम होती है, वह नहीं होगी और आप सदा प्रत्येक स्थितिमें सुख-शान्तिका अनुभव कर सकेंगे। अन्यान्य उपायोंसे सफलता होती न दीखे तो अपनी असमर्थता जतलाकर भगवान्से ही प्रार्थना कीजिये कि 'हे नाथ! आप ही अपनी कृपाशक्तिसे मुझे अपनी कृपामयतामें और मंगलमय विधानमें विश्वास प्रदान कीजिये।' आपकी सच्ची और सतत प्रार्थना होगी तो भगवान्की कृपाशक्ति आपको यह वरदान अवश्य देगी। शेष प्रभुकृपा।

(३)

मुक्ति और भगवत्सेवा

सप्रेम हरिस्मरण! आपके पत्रका उत्तर बहुत विलम्बसे जा रहा है। दूसरे कार्योंमें लगे रहनेसे इधर ध्यान देनेका अवसर न मिला। अतः कितने ही पत्रोंके उत्तरमें देर हो गयी। इसके लिये मनमें विचार न करेंगे।

(१) आपके प्रश्नका उत्तर इस प्रकार है—भागवतमें पाँच प्रकारकी मुक्ति बतायी गयी है—सार्ष्टि, सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य तथा सायुज्य। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—भगवान्के समान ऐश्वर्यसे युक्त होना 'सार्ष्टि मुक्ति' है। भगवान् जहाँ भी रहें उनके समीप रहनेका सौभाग्य प्राप्त हो, यह 'सामीप्य मुक्ति' है। भगवान्के धाममें रहनेका स्थान प्राप्त होना ही 'सालोक्य मुक्ति' है। भगवान्का जैसा स्वरूप है, वैसा ही अपना भी हो जाना 'सारूप्य मुक्ति' है तथा भगवान्के स्वरूपमें लीन होकर उनसे एकाकारता प्राप्त कर लेना, यह 'एकत्व' या 'सायुज्य मुक्ति' है।

(२) यद्यपि इन सबमें किसी-न-किसी रूपमें भगवत्सांनिध्य प्राप्त रहता है और भक्त भगवान्का मिलन-सुख चाहते ही हैं, तथापि इन सबमें आत्मसुखको ही प्रधानता दी गयी है। भगवान्के समान ऐश्वर्य, लोक, रूप तथा उनका सामीप्य पाकर जो स्वयं सुखी होना चाहता है, वह मोक्षका पात्र है। किंतु जो अपने सुखको महत्त्व नहीं देता, जो भगवान्को सुख पहुँचाकर ही सुखी होता है, उसके लिये उनकी सेवा ही सबसे बड़ी वस्तु है। अतएव '**दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।**' प्रेमी भक्तजन देनेपर भी इन मुक्तियोंको ग्रहण नहीं करते। मुक्तिमें भोग है और सेवामें त्याग, इसलिये सेवाका ही स्थान ऊँचा है।

(३) जहाँ मुक्तियोंका भी तिरस्कार हो जाता है, ऐसी सेवाका आदर्श हैं—गोपियाँ '**यथा व्रजगोपिकानाम्**' (नारदभक्तिसूत्र) उनका सारा जीवन ही सेवामय है। उनका चलना-फिरना, सोना-जागना, उठना-बैठना, खाना-पीना, वस्त्राभूषण धारण करना आदि सब कुछ श्रीकृष्णके ही लिये है। वे श्रीकृष्णको सुख पहुँचाकर उन्हें आनन्दित देखकर ही सुखी होती हैं। प्रियतमका सुख ही उनका सुख है। वे अपनेको श्रीकृष्णकी सेवापर न्यौछावर कर चुकी हैं। जहाँ तन, मन, प्राण, आत्मा और उससे होनेवाले सारे कार्यकलाप भगवान्को समर्पित हो जाते हैं, वहीं सच्ची सेवा बन पाती है। शेष सब प्रभुकी कृपा है।

(४)

धनाभावमें भी श्राद्ध सम्पन्न हो सकता है

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला 'जीवच्छ्राद्धपद्धति' के सम्बन्धमें आपने आशंका व्यक्त की कि इस कार्यको वे ही व्यक्ति पूरा कर सकते हैं, जो आर्थिक दृष्टिसे सम्पन्न हों। आपकी यह बात उचित नहीं है, कारण अपने शास्त्रोंमें सब प्रकारके विधान हैं, जिस व्यक्तिके पास अर्थाभाव हो, वह अपनी परिस्थितिके अनुसार फूल-मालाकी जगह फूलकी एक पत्ती चढ़ाकर भी अपना कार्य पूरा कर सकता है। श्राद्धमें धोती-गमछेकी जगह एक सूत्र चढ़ानेसे भी कार्य पूरा हो सकता है। वार्षिक श्राद्धोंमें तो यहाँतक लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति आर्थिक दृष्टिसे अभावग्रस्त हो तथा वास्तवमें भोजनकी भी व्यवस्था नहीं हो तो वह केवल भगवान् सूर्यके समक्ष अपने हाथ ऊँचे करके भगवान्से अपनी असमर्थताकी प्रार्थना कर दे, इतने मात्रसे उसका श्राद्ध पूरा हो जायगा। उसे श्राद्ध करनेका पूरा फल प्राप्त हो जायगा, परंतु यह भी लिखा है कि '**वित्तशाठ्यं न समाचरेत्**' अर्थात् धन रहते हुए कंजूसी न करे। परमात्मप्रभु सर्वान्तर्यामी हैं, वे सबकी परिस्थितियोंको समझते हैं और जानते हैं, अतः उनसे कुछ छिपाया नहीं जा सकता। शेष प्रभुकृपा।

(५)

वृद्ध व्यक्तिको भी युवती स्त्रीके साथ एकान्तमें नहीं रहना चाहिये

[एक व्यक्तिका पत्र सम्पादकके नामसे प्राप्त हुआ, जिसमें उनकी भावना है कि इस पत्रको कल्याणमें प्रकाशित कर दिया जाय। अतः उनके पत्रको यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है—]

धर्मशास्त्रोंमें आदर्श जीवनचर्याके लिये जो कल्याणकारी सूत्र दिये गये हैं, उनमें यह भी बताया गया है कि साधकको किसी भी युवती स्त्रीसे एकान्तमें नहीं मिलना चाहिये; क्योंकि इससे कामवासना स्फुरित होनेकी पूरी सम्भावना रहती है। इस सम्बन्धमें मनुस्मृतिका एक वचन है—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

(मनु० २।२१५)

अर्थात् पुरुष युवती माता, बहन तथा पुत्रीके भी साथ कभी एकान्तमें न रहे; क्योंकि बलवान् इन्द्रिय-समूह विद्वान्‌को भी अपने वशमें कर लेता है।

शास्त्रका यह वचन अक्षरशः सत्य है, इस सम्बन्धमें मुझे जो अनुभव हुआ, वह मैं लिख रहा हूँ—

मेरी आयु ७१ वर्ष है। मैं रामनाम बैंक चलाता हूँ। स्वयं रामनाम नित्य लिखता हूँ एवं रामनामका जप भी करता हूँ एवं दूसरोंको भी प्रेरित करता हूँ। घटना लगभग दो महीने पूर्वकी ही है। मैं प्रातः ४.३० बजे अपने घरके आँगनमें शारीरिक व्यायाम कर रहा था। ऊपरकी मंजिलसे एक युवती गोदीमें एक बालकको लिये नीचे आयी। राम-राम करनेके बाद मैंने उससे पूछा कि वह कहाँ जा रही है? वह बोली, 'बच्चा रो रहा था, इसे ही टहलाने बाहर जा रही हूँ।' मैंने उससे कहा कि अभी रातका अँधेरा है, उसे अकेले बाहर नहीं जाना चाहिये। मैंने उसके बच्चेकी ओर देखा और उससे कहा, 'राम-राम बोलो।' बार-बार रामनाम बोलनेका उसे अभ्यास कराता रहा। मेरी दृष्टि उस युवतीके मुखकी ओर भी चली गयी। वह युवती सुन्दर थी एवं उसके सौन्दर्यका आकर्षण मेरे मनमें बढ़ता गया। मैं अपने मुखसे तो रामनाम बोल रहा था, किंतु मेरा मन उसके सौन्दर्यके प्रति आकर्षित हो रहा था। कुछ समय इसी क्रियामें बीत गया। वह युवती भी लज्जासे मुख नीचे किये चुपचाप खड़ी रही। अचानक मेरा विवेक जागा कि अरे! यह तो मेरी पुत्री-सदृश है और इसकी गोदका पुत्र मेरे दौहित्र-जैसा। मैंने अपने मनको डाँटा। मुझे मुखमें राम बगलमें छुरीवाली बात याद आ गयी। मैंने उस युवतीसे कहा कि बेटी! तुम अपने कमरेमें जाओ, वह चली गयी।

मुझे इस घटनापर बहुत ग्लानि होती रही। कल्याणमें पढ़ा था कि हमें पापको छुपाना नहीं चाहिये। अतः मैंने यह घटना अपनी धर्मपत्नी और परिवारके सदस्योंको सुनायी एवं उस युवतीको बुलाकर परिवारके सामने उससे क्षमा माँगी। अपने ऊपर भी क्षोभ हुआ कि मेरे चित्तमें अभी भी काम-वासनाओंके कीटाणु विद्यमान हैं। भगवान् रामसे प्रार्थना है कि मेरे मनको निर्मल करनेकी दया करें।

शरण में आये हैं हम तुम्हारी, दया करो हे दयालु भगवन्।
मिटा दो मनकी वासनाएँ दया करो हे दयालु भगवन्॥
न हममें साधन न हममें भक्ति। न हममें बल है न हममें शक्ति॥
तेरे दर के हैं हम भिखारी दया करो हे दयालु भगवन्।
मिटा दो मनकी वासनाएँ दया करो हे दयालु भगवन्॥

उपर्युक्त प्रार्थनाको मैं दिनमें अनेक बार दोहराता रहता हूँ और आशा करता हूँ कि मेरे राम मेरे ऊपर दया अवश्य करेंगे।

भगवान्‌से एक और प्रार्थना है कि यह संसार उसकी मायाके अनन्त आकर्षणोंसे भरा पड़ा है। कुछ सुन्दर रूप देखनेमात्रसे उनके सौन्दर्यके प्रति हमारा मन आकर्षित होता है, फिर हमारा मन भगवान्‌के नामका कुछ क्षणोंके लिये चिन्तन छोड़कर उस रूपके चिन्तनमें लग जाता है। अतः भगवान्‌से मेरी प्रार्थना है कि मुझे ऐसी वस्तुएँ दिखा, जिनमें मेरा सच्चा हित हो एवं मेरा भगवत्प्रेम बढ़े। यहाँ एक बात युवा वर्गसे कहनी है कि जब वृद्ध व्यक्तिका मन युवती स्त्रीके क्षणिक संसर्गसे चलायमान हो सकता है, तो उनकी इन्द्रियाँ तो और सबल होती हैं, अतः उन्हें अपने ऊपर संयम रखनेके लिये इस बातका विशेष ध्यान रखना चाहिये कि वे एक क्षणके लिये भी युवती स्त्रीके साथ एकान्तमें न रहें।—**अमृतलाल गुप्ता**

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६७, शक १९३२, सन् २०१०-११, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १।५ बजेतक	बुध	आर्द्रा सायं ४। २७ बजेतक	२२दिसम्बर	राष्ट्रिय पौषमासारम्भ।
द्वितीया दिनमें ११। ४५ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु दिनमें ३।४३ बजेतक	२३ ,,	भद्रा रात्रिमें १०। ५५ बजेसे, कर्कराशि दिनमें ९। ५३ बजेसे।
तृतीया ,, १०।५ बजेतक	शुक्र	पुष्य ,, २। ३९ बजेतक	२४ ,,	भद्रा दिनमें १०। ५ बजेतक, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत चन्द्रोदय रात्रि ८। २९ बजे, मूल दिनमें २। ३९ बजेसे।
चतुर्थी प्रात: ८।६ बजेतक पंचमी रात्रिशेष५।५५ बजेतक	शनि	आश्लेषा ,, १। १७ बजेतक	२५ ,,	सिंहराशि दिनमें १। १७ बजे।
षष्ठी रात्रिमें ३।३७ बजेतक	रवि	मघा दिनमें ११।४५ बजेतक	२६ ,,	भद्रा रात्रिमें ३। ३७ बजेसे, मूल दिनमें ११। ४५ बजेतक।
सप्तमी ,, १।१४ बजेतक	सोम	पू० फा० ,, १०।६ बजेतक	२७ ,,	भद्रा दिनमें २। २५ बजेतक, कन्याराशि दिनमें ३। ४१ बजेसे।
अष्टमी ,, १०।५४ बजेतक	मंगल	उ० फा० प्रात: ८।२५ बजेतक	२८ ,,	अष्टकाश्राद्ध।
नवमी ,, १०।४१ बजेतक	बुध	हस्त ,, ६।४८ बजेतक चित्रा रात्रिशेष ५।२० बजेतक	२९ ,,	तुलाराशि रात्रि ६। ४ बजसे, पूर्वाषाढ़ नक्षत्रमें सूर्य रात्रि ५। ४१ बजे, अन्वष्टका श्राद्ध।
दशमी ,, ६। ३९ बजेतक	गुरु	स्वाती ,, ४।४ बजेतक	३० ,,	भद्रा प्रात: ७। ४० बजेसे रात्रि ६। ३९ बजेतक।
एकादशी सायं ४।५३ बजेतक	शुक्र	विशाखा रात्रिमें ३।८ बजेतक	३१ ,,	वृश्चिकराशि रात्रि ९। २२ बजेसे, सफला एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी दिनमें ३।२७बजेतक	शनि	अनुराधा ,, २।३१ बजेतक	१ जनवरी	सन् २०११ ई० प्रारम्भ, शनिप्रदोषव्रत, मूल रात्रिमें २। ३१ बजेसे।
त्रयोदशी ,, २।२४ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा ,, २।१८ बजेतक	२ ,,	भद्रा दिनमें २। २४ से रात्रिमें २। ७ बजेतक, धनूराशि रात्रिमें २। १८ बजेसे, मास शिवरात्रिव्रत।
चतुर्दशी ,, १।५० बजेतक	सोम	मूल ,, २।३५ बजेतक	३ ,,	मूल रात्रिमें २। ३५ बजेतक, श्राद्धादिकी अमावस्या।
अमावस्या ,, १। ४६ बजेतक	मंगल	पू० षा० ,, ३।२२ बजेतक	४ ,,	भौमवती अमावस्या।

सं० २०६७, शक १९३२, सन् २०११, सूर्य दक्षिणायन-उत्तरायण, हेमन्त-शिशिर-ऋतु, पौष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २।१४ बजेतक	बुध	उ०षा० रात्रिशेष ४।४० बजेतक	५ जनवरी	मकरराशि दिनमें ९।४२ बजे, चन्द्रदर्शन।
द्वितीया ,, ३।१३ बजेतक	गुरु	श्रवण ,, ५। २५ बजेतक	६ ,,	× × × ×
तृतीया सायं ४। ३८ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा अहोरात्र	७ ,,	भद्रा रात्रिशेष ५।३२ बजेसे, कुम्भराशि रात्रि ७।२९ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रि ७।२९ बजेसे।
चतुर्थी रात्रिमें ६।२७ बजेतक	शनि	धनिष्ठा प्रात: ८।३४ बजेतक	८ ,,	भद्रा रात्रिमें ६। २७ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी ,, ८।३२ बजेतक	रवि	शतभिषा दिनमें ११ बजेतक	९ ,,	× × × ×
षष्ठी ,, १०।४३ बजेतक	सोम	पू० भा० ,, १।३७ बजेतक	१० ,,	मीनराशि प्रात: ६।५७ बजेसे, अन्नरूपाषष्ठी (बंगाल)
सप्तमी ,, १२।४९ बजेतक	मंगल	उ० भा० सायं ४।११ बजेतक	११ ,,	भद्रा रात्रिमें १२। ४९ बजेसे, उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें सूर्य रात्रि ६।१८ बजे, मूल सायं ४।११ बजेसे।
अष्टमी ,, २।४१ बजेतक	बुध	रेवती रात्रिमें ६।३६ बजेतक	१२ ,,	भद्रा दिनमें १।४५ बजेतक, मेषराशि रात्रिमें ६। ३६ बजे, पंचक समाप्त रात्रि ६।३६ बजे, बुधाष्टमी पर्व।
नवमी रात्रिशेष ४।१२ बजेतक	गुरु	अश्विनी ,, ८।४३ बजेतक	१३ ,,	मूल रात्रिमें ८।४३ बजेतक।
दशमी ,, ५। १४ बजेतक	शुक्र	भरणी ,, १०।२३ बजेतक	१४ ,,	वृषराशि रात्रिशेष ४। ४१ बजेसे, मकरसंक्रान्ति रात्रिमें १२।३१ बजे, उत्तरायण प्रारम्भ, खरमास समाप्त, शिशिर-ऋतु प्रारम्भ।
एकादशी ,, ५।४८ बजेतक	शनि	कृत्तिका ,, ११।३७ बजेतक	१५ ,,	भद्रा सायं ५।३१ से रात्रिशेष ५।४८ बजेतक, पुत्रदा एकादशीव्रत (स्मार्त्त) पोंगल, खिचड़ी, सौरमाघमासारम्भ।
द्वादशी ,, ५।४८ बजेतक	रवि	रोहिणी ,, १२।२० बजेतक	१६ ,,	पुत्रदा एकादशीव्रत (वैष्णव)।
त्रयोदशी ,, ५।२० बजेतक	सोम	मृगशिरा ,, १२।३३ बजेतक	१७ ,,	मिथुनराशि दिनमें १२। २६ बजेसे, सोमप्रदोषव्रत।
चतुर्दशी ,, ४।२१ बजेतक	मंगल	आर्द्रा ,, १२।१७ बजेतक	१८ ,,	भद्रा रात्रिशेष ४।२१ बजेसे।
अमावस्या रात्रिमें ३ बजेतक	बुध	पुनर्वसु ,, ११।३७ बजेतक	१९ ,,	भद्रा दिनमें ३।४१ बजेतक, कर्कराशि सायं ५।४७ बजेतक, स्नान-दान-व्रतकी पूर्णिमा, माघस्नानारम्भ।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६७, शक १९३२, सन् २०११, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १।१६ बजेतक	गुरु	पुष्य रात्रिमें १०।३६ बजेतक	२० जनवरी	मूल रात्रिमें १०। ३६ बजेसे।
द्वितीया ,, ११।१८ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा ,, ९।१९ बजेतक	२१ ,,	सिंहराशि रात्रिमें ९। १९ बजेसे, राष्ट्रिय माघमासारम्भ।
तृतीया ,, ९।५ बजेतक	शनि	मघा ,, ७।४९ बजेतक	२२ ,,	मूल रात्रिमें ७।४९ बजेतक, भद्रा दिनमें १०।११ से रात्रिमें ९।५ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत चन्द्रोदय रात्रि ८। २३ बजे।
चतुर्थी ,, ६।४६ बजेतक	रवि	पू०फा० ,, ६।११ बजेतक	२३ ,,	कन्याराशि रात्रिमें ११। ४५ बजेसे।
पंचमी सायं ४।२४ बजेतक	सोम	उ० फा० सायं ४।२७ बजेतक	२४ ,,	श्रवण नक्षत्रमें सूर्य रात्रिमें ७। २६ बजेसे।
षष्ठी दिनमें २।४ बजेतक	मंगल	हस्त दिनमें २।५२ बजेतक	२५ ,,	भद्रा दिनमें २। ४ बजेसे रात्रिमें १२। ५८ बजेतक, तुलाराशि रात्रिमें २। ६ बजेसे।
सप्तमी ,, ११।५१ बजेतक	बुध	चित्रा ,, १।२० बजेतक	२६ ,,	अष्टकाश्राद्ध, गणतन्त्रदिवस, स्वामी श्रीरामानन्दाचार्य जयन्ती।
अष्टमी ,, ९।५१ बजेतक	गुरु	स्वाती ,, १२।२ बजेतक	२७ ,,	वृश्चिकराशि रात्रिशेष ५। १५ बजेसे, अन्वष्टकाश्राद्ध।
नवमी प्रातः ८।५ बजेतक	शुक्र	विशाखा ,, १०।५९ बजेतक	२८ ,,	भद्रा रात्रिमें ७। २४ बजेसे।
दशमी ,, ६।४२ बजेतक एकादशी रात्रिशेष ५।४२ बजेतक	शनि	अनुराधा ,, १०। १७ बजेतक	२९ ,,	भद्रा प्रातः ६।४२ बजेतक, मूल दिनमें १०।१७ बजेसे, षटतिला एकादशीव्रत (स्मार्त्त)।
द्वादशी ,, ५।१० बजेतक	रवि	ज्येष्ठा ,, ९।५९ बजेतक	३० ,,	धनूराशि दिनमें ९।५९ बजेसे, षट्तिला एकादशीव्रत (वैष्णव)।
त्रयोदशी ,, ५।९ बजेतक	सोम	मूल ,, १०।१० बजेतक	३१ ,,	मूल दिनमें १०।१० बजेतक, भद्रा रात्रिशेष ५।९ बजेसे, सोमप्रदोषव्रत।
चतुर्दशी ,, ५।४० बजेतक	मंगल	पू० षा० ,, १०।५० बजेतक	१ फरवरी	भद्रा सायं ५।२४ बजेतक, मकरराशि सायं ५।८ बजेसे, मासशिवरात्रिव्रत।
अमावस्या अहोरात्र	बुध	उ० षा० ,, १२ बजेतक	२ ,,	मौनी अमावस्या, श्राद्धादिकी अमावस्या।
अमावस्या प्रातः ६।३९ बजेतक	गुरु	श्रवण ,, १।३९ बजेतक	३ ,,	कुम्भराशि रात्रिमें २।४१ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें २।४१ बजेसे, स्नान-दानकी अमावस्या।

सं० २०६७, शक १९३२, सन् २०११, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ८।६ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा दिनमें ३।४३ बजेतक	४ फरवरी	चन्द्रदर्शन।
द्वितीया दिनमें ९।५६ बजेतक	शनि	शतभिषा रात्रिमें ६।७ बजेतक	५ ,,	× × × ×
तृतीया ,, १२।० बजेतक	रवि	पू० भा० ,, ८।४१ बजेतक	६ ,,	भद्रा रात्रिमें १।६ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मीनराशि दिनमें २।२ बजेसे, धनिष्ठा नक्षत्रमें सूर्य रात्रिमें ९।३९ बजेसे।
चतुर्थी ,, २।१० बजेतक	सोम	उ० भा० ,, ११।१८ बजेतक	७ ,,	मूल रात्रिमें ११। १८ बजेसे, भद्रा दिनमें २। १० बजेतक।
पंचमी सायं ४।१५ बजेतक	मंगल	रेवती ,, १।४६ बजेतक	८ ,,	मेषराशि रात्रिमें १। ४६ बजेसे, वसन्तपंचमी, तक्षक-पूजा, सरस्वती-पूजन, पंचक समाप्त, रात्रिमें १। ४६ बजे।
षष्ठी रात्रिमें ६।४ बजेतक	बुध	अश्विनी ,, ३।५७ बजेतक	९ ,,	मूल रात्रिमें ३। ५७ बजेतक, श्रीशीतलाषष्ठी (बंगाल)।
सप्तमी ,, ७।३० बजेतक	गुरु	भरणी रात्रिशेष ५।४६ बजेतक	१० ,,	भद्रा रात्रिमें ७। ३० बजेसे, रथसप्तमी, अचलासप्तमी।
अष्टमी ,, ८।३१ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका अहोरात्र	११ ,,	भद्रा दिनमें ८।० बजेतक, वृषराशि दिनमें १२।६ बजेसे, भीष्माष्टमी।
नवमी ,, ९।० बजेतक	शनि	कृत्तिका प्रातः ७।४ बजेतक	१२ ,,	× × × ×
दशमी ,, ८।५७ बजेतक	रवि	रोहिणी ,, ७।५३ बजेतक	१३ ,,	मिथुनराशि रात्रिमें ८।३ बजेसे, कुम्भसंक्रान्ति रात्रिमें ११।१४ बजेसे।
एकादशी ,, ८।२६ बजेतक	सोम	मृगशिरा ,, ८।१३ बजेतक	१४ ,,	भद्रा दिनमें ८।४१ से रात्रिमें ८। २६ बजेतक, जया एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी ,, ७।२४ बजेतक	मंगल	आर्द्रा ,, ८।३ बजेतक	१५ ,,	कर्कराशि रात्रिमें १। ३७ बजेसे, भीष्मद्वादशी।
त्रयोदशी ,, ६।० बजेतक	बुध	पुनर्वसु ,, ७।२८ बजेतक	१६ ,,	प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी सायं ४।१५ बजेतक	गुरु	पुष्य ,, ६।३४ बजेतक आश्लेषा रात्रिशेष ५।१९ बजेतक	१७ ,,	भद्रा सायं ४।१५ से रात्रिमें ३।१४ बजेतक, मूल प्रातः ६।३४ बजेसे, सिंहराशि रात्रिशेष ५। १९ बजेसे, व्रतपूर्णिमा।
पूर्णिमा दिनमें २।१३ बजेतक	शुक्र	मघा ,, ३।५२ बजेतक	१८ ,,	मूल रात्रिमें ३।५२ बजेतक, स्नान-दानादिकी माघीपूर्णिमा, माघ-स्नान समाप्त।

कृपानुभूति

बाबा भोलेनाथ और माँ गौरीकी असीम कृपा

[नामजपका चमत्कार]

वैसे तो मेरी अबतककी जिन्दगीमें हजारों ऐसी घटनाएँ घटी हैं, जिनमें परम कृपालु भगवान्ने अपनी उपस्थिति मेरे और मेरे परिवारके सामने दर्ज की है, उन्हींमेंसे एक घटना मैं आपके सामने प्रस्तुत कर रही हूँ। यह बात सन् २००९ ई०के जून माहकी है। भगवान् केदारनाथ और बद्रीनाथका बुलावा हमारे लिये आया तो मैं, मेरी बहन, मेरे माता-पिता, बुआ और उनकी बेटी हम छः लोग अपनी मारुती वैनमें यात्राके लिये निकल पड़े। अगले दिन हरिद्वारसे निकलते हुए हम गौरीकुण्ड पहुँच गये। रास्तेकी थकावट बहुत थी तो हम उस रातको एक होटलमें रुक गये और अगले दिन सुबह कुण्डमें स्नान करके यात्राके लिये चल पड़े। पूरे रास्ते हम सब माँ गौरी और केदारनाथ भगवान्के नामका जप करते रहे। यहाँ मैं आपको एक बात बताना चाहूँगी कि जिस गाड़ीसे हम सब गये थे, उसे गौरीकुण्डकी एक पार्किंगमें चढ़ाई शुरू करनेसे पहले ही रख दिया गया था। भोले बाबाकी कृपा और माँ गौरीके आशीर्वादसे भगवान् केदारनाथके बहुत अच्छी तरह दर्शन हुए। बाबा भोलेकी नगरीमें पहुँचकर हमें एक आत्मिक सन्तुष्टि महसूस हुई, जिसे मैं शब्दोंमें बयान नहीं कर सकती। अगले दिन हमने अपनी उतराई शुरू कर दी, समयके अभावके कारण हमारा प्रोग्राम था कि हम उसी दिन गौरीकुण्डसे निकल जायेंगे; क्योंकि आगे हमें बद्रीनाथ भी जाना था, परंतु उतराईमें हमें काफी समय लग गया और शामके चार बज गये, पर फिर भी मेरे पिताजीने कहा कोई बात नहीं जितना रास्ता सम्भव हो सकेगा, चलनेकी कोशिश करेंगे। इसलिये पिताजी पार्किंगसे गाड़ी लेने चले गये और हम होटलसे सामान लेने। पिताजी गाड़ी स्टार्ट करके जैसे ही थोड़ा आगे आते हैं, वैसे ही क्या देखते हैं कि जिस जगह हमारी गाड़ी खड़ी थी, वहीं एक बहुत बड़ा पत्थर गिर गया है। ऐसा लगा जैसे वह पत्थर हमारी गाड़ीके हटनेका इन्तजार कर रहा था, अगर वह पत्थर हमारी गाड़ीपर गिर जाता तो हमारी पूरी गाड़ी चकनाचूर हो जाती।

पिताजी उसके बाद गाड़ी लेकर होटलके आगे आये और हमारे साथ गाड़ीमें सामान रखवाने लगे, इतनेमें हम क्या देखते हैं कि वर्षा शुरू हो गयी है और वह भी बहुत तेज, पर हमारा प्रोगाम वहाँसे निकलनेका तब भी नहीं बदला। फटाफट सारा समान गाड़ीमें रखकर जैसे ही हम सब गाड़ीमें बैठे तो पता चला हमारी गाड़ी जो अबतक ठीक तरह चल रही थी, अचानक बन्द हो गयी है और ज्यादा परेशानीकी बात तो यह थी कि वहाँ कोई मैकेनिक भी नहीं था। यह सब देखकर मन बड़ा खिन्न हुआ, परंतु हम सबमें एक विश्वास जरूर था कि भगवान् जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं। इसलिये हम सब बाबा भोले और माँ गौरीका नाम-जप किये जा रहे थे, फिर सबकी सलाहसे एक बात तय हुई कि आज रात यहीं गुजारते हैं, फिर सुबह देखेंगे कि क्या करना है। जैसे-तैसे हम सबने रात गुजारी और जैसे ही भोर हुई पिताजी इस आशामें गाड़ीके पास गये कि शायद कुछ समझ आ जाय कि आखिर गाड़ीमें हुआ क्या है, इसी आशामें पिताजीने जैसे ही गाड़ी स्टार्ट करनेकी कोशिश की तो क्या देखते हैं कि गाड़ी एकदम स्टार्ट हो गयी; जैसे कोई चमत्कार हो गया हो एक रातमें! पिताजी जब हमें इस बातकी खुशखबरी सुनाने आ रहे थे, उसी समय उन्हें कुछ लोग मिले, जिन्होंने बताया कि जिस समय हम अपनी गाड़ी स्टार्ट करनेकी कोशिश कर रहे थे, उसी समय दो गाड़ियाँ वहाँसे निकल गयी थीं; पर बारिशकी वजहसे रास्तेमें बहुत ज्यादा लैंड स्लाइडिंग हुई थी और इसकी वजहसे जो दो गाड़ियाँ वहाँसे निकली थीं वे चकनाचूर हो गयीं और उनमें बैठे आठ लोगोंकी मृत्यु हो गयी। पिताजी यह सब सुनकर जैसे ही होटल पहुँचे, पूरा किस्सा हम सबको सुनाया, तब हमें समझमें आया कि माँ गौरीने हमपर कितना बड़ा उपकार किया है। अगर हम भी उस समय निकल गये होते तो क्या होता? और इसीलिये हमारी गाड़ी उस समय स्टार्ट नहीं हो रही थी और रात बीत जानेपर चमत्कारिक रूपसे स्टार्ट हो गयी थी। हम सब तो एक ही बात मानते हैं कि यह सब नाम-जपकी महिमा थी, जिसने हमें मृत्युके द्वारसे वापस भेजा। आज भी उस घटनाको मनसे सोचकर हमारा दिल दहल जाता है कि अगर हम लोग भी उस समय निकल गये होते तो क्या होता और जब माँ गौरी और बाबा भोलेकी कृपाके बारेमें सोचते हैं तो आँखोंसे प्रेमके आँसू निकल आते हैं।—**पूर्वा शर्मा**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

महिमा रामायणकी

बात पुरानी है। स्थान उत्तर भारतका कोई गाँव। नाम अज्ञात है, अत: कथानायक अनामधारी नामसे जाने जायँगे। अनामधारी एक कृषकपरिवारमें पैदा हुए थे। शिक्षाके नामपर केवल हिन्दी पढ़ना एवं लिखना जानते थे। वे अपने छोटे परिवारके साथ शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। अधिकका चाह नहीं थी। अपने साधारण कृषिव्यवसायसे सन्तुष्ट थे। पत्नी एवं सन्तानें आज्ञाकारी थीं। इस तरह जीवन चलता रहा। अनामधारी जब ५० वर्षके हुए तो अचानक अस्वस्थ हो गये। पूर्वजन्मके किसी अभिशापसे वे व्याधियोंसे घिर गये। बहुत दिनोंतक औषधिसेवनके बाद भी स्वस्थ नहीं हुए। वैद्य-हकीमोंने क्षयरोगका लक्षण बताया। उस जमानेमें क्षयरोगका कोई उपचार नहीं था।

अनामधारीकी सारी जमापूँजी उनके उपचारार्थ खर्च हो चुकी थी। अब तो दोनों वक्तकी रोटियोंके लिये कठिन संघर्ष करना पड़ रहा था। ऐसी ही दयनीय परिस्थितियोंमें अचानक एक दिन रात्रिविश्रामके बाद जगनेपर अनामधारीने देखा कि उनके शरीरका आधा भाग लकवेका शिकार हो गया है। उन्होंने अनुभव किया कि शरीरका आधा भाग निर्जीव हो चला है, एक पैर तथा एक हाथने काम करना बन्द कर दिया है। उनकी आँखोंसे अश्रुधारा बह चली। उन्होंने लक्षण विचार किया कि उनका अन्त समय आ गया है। शरीरका आन्तरिक भाग क्षयरोगके फलस्वरूप खोखला हो चुका था। अब चलना-फिरना भी बन्द। अपनी असहाय स्थितिपर बड़ा तरस आया उन्हें। अपने मनमें तत्काल कुछ निर्णय लिया, कुछ वैसा ही जैसा एक जीवनसे निराश व्यक्ति करता है।

गाँवके बाहर बगीचेमें एक जीर्ण-शीर्ण मन्दिर था। वह शिवालय था या श्रीहनुमान्‌जीका मन्दिर अथवा भगवान् श्रीरामका स्थान, इसका पता नहीं है। हाँ, वह था एक मन्दिर ही, जिसमें दर्शनार्थी यदा-कदा ही पहुँच पाते थे। किसी प्रकार अनामधारी घिसटते-घिसटते उस मन्दिरमें पहुँचे। मन्दिरके मुख्य द्वारपर अपने आपको निढाल छोड़ दिया और बड़े ही करुण स्वरमें ईश्वरको पुकारा—हे प्रभु! मुझे मेरे किस जन्मकी सजा मिल रही है, इसका ज्ञान तो मुझे नहीं है, पर निश्चय ही यह किसी बहुत बड़े अपराधका परिणाम है। अब तो जीवन एकदम पराश्रित हो गया है। यदि मुझे दिया गया दण्ड पूरा हो गया हो तो मृत्युलोककी परम्पराका निर्वाह कीजिये और मेरे प्राण तत्काल हर लीजिये। इस लोकमें रहनेकी अवधि अब और न बढ़ाइये। बिना आपकी अनुमतिके जब पत्ता भी नहीं हिलता है तो प्राणवायु भी बिना आपकी इच्छाके इस अधम शरीरको कैसे मुक्त करेगा? अस्तु, मेरे सारे अपराधोंको क्षमादान दें एवं इस मिट्टीकी कायासे मुक्त करें।

ठीक उसी क्षणसे अनामधारी उस मन्दिरके द्वारपर धरना देकर बैठ गये। एक तरहसे उन्होंने आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिन तो केवल पानी पीते रहे, उसके बाद वह भी छोड़ दिया। प्राण त्यागनेका इससे अच्छा उपाय उन्हें नहीं सूझ रहा था।

कुछ दिन बाद सुबहका समय था। भगवान् भास्करकी प्रथम किरणें मन्दिरके द्वारसे टकराकर अनामधारीके चेहरेको प्रज्वलित कर रही थीं। ठीक उसी समय अनामधारीने देखा कि गेरुआ वस्त्रधारी एक तेजस्वी पुरुष उनकी ओर चला आ रहा है, जिसके तपका प्रभाव उसके देदीप्यमान चेहरेपर अंकित था। अनामधारीको क्षणभरके लिये लगा कि निश्चय ही कोई देवदूत उन्हें लेने आ रहा है। मुसकराता हुआ संन्यासी आते ही बिना किसी पूर्व परिचय और भूमिकाके पूछ बैठा—और सुनाओ भाई अनामधारी! अब आपका स्वास्थ्य कैसा है? अनामधारी आश्चर्यचकित, मेरा नाम इस दिव्य पुरुषको कैसे पता चला, फिर मेरे स्वास्थ्यकी खबर इन महापुरुषको कैसे पता चली! जबकि मेरे स्वजनोंने भी मेरी अस्वस्थतासे ऊबकर सहानुभूतितक प्रकट करना बन्द कर दिया है। कुछ इसी तरहके विचारमें मग्न अनामधारी तत्काल कुछ उत्तर न दे पाये। देवतुल्य संन्यासीके मधुर शब्द जब दुबारा उनके कानोंमें पड़े, तब उनकी चेतना लौटी। अनामधारी शुष्क एवं हताश स्वरमें बोले—प्रभो! जब आपको इस अकिंचनका नाम एवं व्याधि दोनोंका हाल मालूम है तो यह भी तो मालूम ही होगा कि मैं क्या चाहता हूँ? मेरे समक्ष प्राणत्यागके अलावा अब दूसरा कोई चारा नहीं है। पृथ्वीका भार बनकर अब और नहीं रह सकता। मेरे उद्धारका कुछ उपाय बतायें।

मैं दिग्भ्रमित हूँ। आगन्तुक स्वामीकी मधुर वाणी पुनः उनके कानोंमें रस घोलने लगी, उन्होंने कहा—अनाम! तुम्हें मैं एक औषधि देना चाहता हूँ, जिसे मैंने हिमालयमें भटककर इकट्ठा किया है। इसे तुम संजीवनी ही समझो। क्या तुम पुनः स्वस्थ होना चाहते हो? अनामने कहा—प्रभु! अब मेरे दिन पूरे हुए मालूम पड़ते हैं तथा सारे वैद्य, हकीमोंने जवाब दे दिया है, अब औषधिकी जगह मुक्तिका ही उपाय बताइये, जिससे इस अधम शरीरसे छुटकारा मिले। संन्यासीने बड़े स्नेहसे उनके सिरपर हाथ फेरा और कहा—अनाम! जब तुमने जानेका फैसला कर ही लिया है तो मैं तुम्हें रोक नहीं रहा हूँ, फिर भी चाहता हूँ तुम मेरी औषधिका सेवन करो, सस्ती तो है ही, प्रभुप्रसाद समझकर ही सेवन कर लो। कम-से-कम जितने दिन और रहना है, उतने ही दिन कुछ कम पीड़ाके साथ जीवित रह सको। संन्यासीके वक्तव्यमें इतनी मिठास तथा स्पर्शमें इतना स्नेह था कि इनकार नहीं कर सके। संन्यासीने अपने झोलेसे औषधिकी २१ पुड़िया निकालकर दी। उन पुड़ियोंको देते हुए भगवा वस्त्रधारीने कहा—यह २१ दिनोंकी औषधि है, इसे गंगाजलके साथ सेवन करना है। प्यास लगनेपर केवल गंगाजल ही पीना है, अन्य कुछ नहीं। इतना कहकर स्वामीजी चल दिये। कुछ दूर गये होंगे कि पुनः वापस आ गये और बोले—अनाम! औषधि तुमने ले ली, लेकिन इसका मूल्य नहीं चुकाया और न ही परामर्शशुल्क दिया और तुम यह तो जानते ही हो कि बिना पारिश्रमिक दिये किसी वैद्यकी दवा कार्य नहीं करती है। अनामकी चिन्ता बढ़ गयी। आँखोंसे अश्रुपात होने लगा। अनामने कहा—प्रभो! मुझे इसी बातकी आशंका थी कि कहीं आप फीस न माँग बैठें और वही हुआ। मेरे पास शुल्क देनेके लिये तो कुछ भी नहीं है और इस हालतमें बिना मूल्य चुकाये आपकी औषधि कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? महात्माने कहा—तुम्हें इसके बदलेमें मेरा एक कार्य करना पड़ेगा। अनामने कहा—वह क्या है महात्मन्! जो मैं इस हालतमें भी कर सकता हूँ। महात्माने कहा—तुम्हारे पास कोई कार्य तो है नहीं। इस तरह तुम्हारे पास समयका अभाव भी नहीं है। हमारा काम यह है कि तुम्हें प्रतिदिन रामायणका पाठ करना है और वह किसी भी हालतमें २१ दिनमें कम-से-कम पाँच बार पूरी रामायणका पाठ समाप्त हो जाना चाहिये, अधिक-से-अधिक जितना तुम कर सको। बोलो, मेरे इस कार्यको कर सकोगे? यही मेरी फीस है, दवा एवं सलाह दोनोंकी। अनामधारी महात्माके पैरपर सिर रखकर पानीके अभावमें आँसुओंसे ही उनके पैरे धोने लगे और अवरुद्ध कंठसे बोले—प्रयत्न करूँगा भगवन्! आशीर्वाद देकर वे देवदूत जिधरसे आये थे, उधर ही चले गये।

अनामधारी प्रतिदिन नियमसे एक पुड़िया औषधि एवं साथमें गंगाजलका सेवन करने लगे। रामायणके नामपर बाबा तुलसीकृत श्रीरामचरितमानसका पाठ करने लगे। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, उनके शरीरमें स्फूर्ति आने लगी। निर्जीव हाथ-पैरोंमें वे ताकत महसूस करने लगे। अब उन्हें रामायण-पाठमें इतना रस आने लगा कि २१ दिनमें ५ की जगह ७ बार रामायणका पाठ कर डाला। २१वें दिन उन्हें ऐसा लगा, जैसे उनका पुनर्जन्म हुआ हो। नाममात्रकी पुड़िया, जिनमें किसी देवस्थलीकी भभूत थी, समाप्त हो चुकी थी। अनामका गंगाजलसेवन एवं रामायण-पाठ निरन्तर जारी रहा। लोगोंने आश्चर्यसे उनको स्वस्थ होते देखा। वैद्योंको समझ नहीं आया कि यह कैसा चमत्कार है!

अनामको हरिचिन्तनमें रस आने लगा। प्रतिदिन बिना रामायण-पाठके उनका दिन अधूरा रहता। इसके बाद वे पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गये और शेष जीवन रामायण एवं श्रीरामकी महिमाका प्रचार करते रहे। इस प्रकार वह आस्था एवं विश्वासका उदाहरण बनकर ९० वर्षकी आयुमें ब्रह्मलीन हुए। जबतक जिन्दा रहे ५० वर्षके बादकी शेष आयु उन्हीं देवदूत महात्माका दिया हुआ प्रसाद मानते रहे एवं पूरे देशमें हर तीर्थस्थानोंमें उन महात्माको खोजते रहे, पर अफसोस अन्तिम समयतक उन्हें अपने जीवनदाता संन्यासीका पुनः दर्शनलाभ नहीं हो सका। स्वयं प्रभु ही रामायणकी महिमाका उनसे प्रचार करानेके लिये सम्भवतः इस रूपमें आये थे।—**बालमुकुन्द मिश्र**

(२)

इंसानके रूपमें देवता

बात करीब ३७ साल पुरानी सन् १९७३ ई० माघ कृष्ण ११ सं० २०३० की है। मुझे किसी कार्यवश ग्राम नेछवा, जिला सीकर जाना था। एक पड़ोसी भाईने कहा कि रींगससे तथा सीकरसे रात्रि १० बजेतक सालासर जानेवाली बसें मिलती रहती हैं। मैं सीकर रात्रि ९ बजे पहुँच गया, पर बसस्टैण्डपर पूछताछ करनेपर ज्ञात हुआ कि इस सर्दीमें ७ बजे शामके बाद सालासर रूटपर कोई

बस नहीं है। सर्दी बढ़ती जा रही थी। मेरे पास ओढ़नेको कोई चादर या गर्म जर्सी आदि कुछ भी नहीं थी, न कोई सीकरमें जान-पहचान ही थी कि किसीके घर जाकर रुका जाय। इस प्रकार सोचते-सोचते रात्रिके ११ बज गये। सर्दी भी अपना रंग दिखाने लगी। अब क्या करूँ क्या न करूँ? इसी उधेड़बुनमें चिन्तामग्न होता रहा।

उसी समय सालासर स्टैण्डपर चार आदमी घर जानेकी तैयारी कर रहे थे। तीन व्यक्ति तो उठ-उठकर अपने-अपने घरोंको चल दिये। चौथे सज्जनने मेरी तरफ देखकर कहा 'भाईजी के विचार है, कहाँ जानेको बैठे हो? इस वक्त रातमें यहाँसे कोई साधन नहीं है। आप इस सर्दीमें कहाँ रहेंगे। उठिये, मेरे घरपर चलिये।' मैंने कहा—भाई! मैं आपको नहीं जानता, आप मेरेको नहीं जानते, फिर मैं आपके यहाँ कैसे चलूँ?

मेरे मनमें दुविधा हो रही थी कि यह अपरिचित न जाने कैसे चरित्रवाला आदमी हो। सो, मैं उन्हें शंकाकी दृष्टिसे देख रहा था। मुझे भय भी लग रहा था। न जाने कैसा हादसा हो जाय। फिर भी उनके आग्रहपर भगवान्‌को यादकर उनके साथ हो लिया। रातको १२ बजे उस कड़ाकेकी सर्दीमें उन्होंने घर ले जाकर मुझे चाय पिलायी। भोजनके लिये बहुत आग्रह किया, अच्छे बिस्तरपर सोनेका इन्तजाम किया। सुबह चाय पिलाकर मेरा सामान हाथमें लेकर बस-स्टैण्डतक पहुँचाकर विदा किया। मैं तो आज भी उस घटनाको नहीं भूला हूँ कि इन्सानोंके रूपमें देवता ही धरतीपर निवास करते हैं। बादमें ज्ञात हुआ कि वे एक स्थानीय प्रतिष्ठित स्वर्णकार हैं, मैं तो जीवनभर उन्हें कभी भूल नहीं सकता; बस भगवान्‌से उनके दीर्घ जीवनकी कामना करता हूँ।—**राधेश्याम**

(३)

माँ भगवतीने प्रार्थना सुनी

कभी-कभी जीवनमें कोई ऐसी घटना हो जाती है, जिसमें ईश्वरकृपाकी प्रत्यक्ष अनुभूति होती है।

हमारी शादी २१ अप्रैल १९९५ ई० को हुई थी। शादीके सवा वर्ष पश्चात् पुत्र-रत्नकी प्राप्ति भी हुई। मैं एक मध्यमवर्गीय परिवारसे हूँ एवं सामान्यतया सब प्रकारसे ईश्वर-कृपा थी, लेकिन पतिदेवके कुछ शौक जैसे—धूम्रपान आदि मुझे विचलित कर देते थे। यद्यपि यह बहुत ज्यादा भी नहीं था, लेकिन था प्रतिदिन एवं मदिरा-सेवनसे भी उन्हें परहेज नहीं था, साल-छः महीनेमें कभी किसी अवसरपर लेते थे। यद्यपि घरमें कुछ नहीं लेते थे एवं वे मेरी भावनाओंका बहुत सम्मान भी करते थे, परंतु मुझे ये सब चीजें सिर्फ नापसन्द ही नहीं; वरन् संस्कारविरुद्ध होनेसे असहनीय थीं। अतः अन्तर्मनमें तूफान-सा मचा रहता था। मेरी चिन्ताका एक कारण यह भी था कि लगभग ५-६ वर्षपूर्व शरीरमें कोलस्ट्रॉलका स्तर ज्यादा होनेकी वजहसे उनको उच्च रक्तचापकी शिकायत हो गयी थी। मैं अपनी तरफसे उनको टोकती भी थी, समझाती भी थी। लेकिन कभी घरमें तनाव हो जाता था, तो कभी हँसी-मजाकमें ही बात उड़ जाती थी। मैं स्वयंको बहुत ही असहाय एवं विवश महसूस करती हुई घुटनभरी जिन्दगी जी रही थी।

बात २००९ ई० के आश्विन मासके नवरात्रकी है। प्रथम नवरात्रको अचानक ही मेरे पतिका अपने एक बहुत ही घनिष्ठ मित्र (भ्रातृसम)-के साथ माँ वैष्णों देवी दर्शनका प्रोग्राम बना। मैं घरपर ही हमेशाकी तरह नवरात्र-उपवास रखकर भगवतीकी स्तुति-आराधना कर रही थी। इन सब बातोंको लेकर न जाने क्यों मैं इतनी ज्यादा विक्षिप्त-सी हो गयी थी कि अश्रु-प्रवाहके कारण पूजा-अर्चना भी ठीकसे नहीं कर पा रही थी। मेरी भगवतीसे कभी मूक एवं कभी वाणीसे यही विनती थी कि 'सब प्रकारसे तुम्हारी कृपा होनेके बावजूद मनमें ये अशान्ति क्यों? तुम्हारे लिये तो कुछ भी दुष्कर नहीं है, पर मैं तो विवश हूँ। जगज्जननि! तुम्हें तो सिर्फ इतना करना है कि इनके दिमागमें ऐसी बुद्धि उत्पन्न कर दो जिससे ये स्वयं ही इन चीजोंसे नफरत करने लगें।'

प्रार्थना करते वक्त मुझे नहीं मालूम था कि भगवती मेरी विनती अक्षरशः सुन रही हैं। मुझे यह जानकर अत्यन्त हार्दिक सुखद आश्चर्य तब हुआ जब जगज्जननीका दर्शन-लाभ कर आनेके बाद सर्वप्रथम मेरे पतिने मुझे लिखित पेपरका वह संकल्प सौंपा, जिसमें जीवनमें कभी भी इन तामसिक चीजोंका सेवन न करनेकी बात लिखी थी। इस प्रकार देवीकी प्रेरणासे बड़ी ही सहजतासे मेरे दिलका बोझ हल्का हो गया। आँखोंमें आँसू भरे हुए अत्यन्त रोमांचके साथ रुँधे हुए कण्ठसे भगवतीके चरणोंमें सिर नवाकर बस एक ही बात मुखसे प्रस्फुटित हुई—धन्य हो भगवती! ये कैसा बेतारका तार! कोटि-कोटि नमन।—**श्रीमती वन्दना शर्मा**

मनन करने योग्य

(१)

जरूरतमन्दकी मदद

अफ्रीकामें एक छोटा-सा देश है बासुतोलैंड! यहाँका अधिकांश भाग घने जंगलोंसे घिरा हुआ है। इन्हीं जंगलोंके बीच कावु गाँवमें बिसाऊ नामक युवक रहता था। वह जंगलमें शिकार करके ही अपना गुजारा करता था। एक दिन बिसाऊ जंगलमें शिकार करने गया। शिकारकी तलाशमें वह काफी दूर निकल गया। इस बीच दोपहर हो गयी। बिसाऊ बुरी तरह थक गया था। भूख-प्याससे बेहाल होकर वह जंगलके भीतर बढ़ता गया। चलते-चलते वह सासे नामक शहरमें पहुँच गया। वहाँ उसे एक हवेली दिखायी दी। बिसाऊने दरवाजा खटखटाया तो एक गोरा साहब निकलकर बाहर आया। ग्रामीण वेशभूषावाले एक काले युवकको देख उसने गुस्सेसे पूछा—क्या बात है? बिसाऊ सहम गया। बोला—साहब! प्याससे दम निकला जा रहा है। पानी पिलाकर रहम कीजिये।

पर गोरे साहबको दया नहीं आयी। उन्होंने उसे अपमानितकर बाहर निकाल दिया। बिसाऊ किसी तरह गिरते-पड़ते अपने घर पहुँचा।

कई महीने बादकी बात है। एक दिन वे ही गोरे साहब जंगलमें शिकार खेलने गये, पर उस दिन उन्हें कोई शिकार नहीं मिला। जंगलमें भटकते-भटकते वह बिसाऊके गाँवमें पहुँच गये। तबतक रात हो चली थी। वे एक झोपड़ीके सामने पहुँचे। वह झोपड़ी बिसाऊ की थी। गोरे साहबने आवाज लगायी। बिसाऊ बाहर निकला। जैसे ही उसकी नजर उनपर पड़ी, वह उन्हें पहचान गया, पर गोरे साहब उसे पहचान नहीं पाये। उन्होंने बिसाऊसे रातभरके लिये आश्रय माँगा। बिसाऊ तुरंत तैयार हो गया।

उसके पास जो भी रूखा-सूखा था, उसीसे गोरे साहबकी सेवा की। गोरे साहबको सोनेके लिये अपना बिस्तर दिया और खुद जमीनपर सोया। सुबह हुई तो साहबने बिसाऊको धन्यवाद दिया और शहरका रास्ता पूछा। बिसाऊने कहा—चलिये, मैं आपको छोड़ आता हूँ।

साहबकी हवेलीके पास पहुँचकर बिसाऊने वापस जानेकी इजाजत माँगी। गोरे साहबने कहा—तुमने मेरा इतना आदर-सत्कार किया, अब मुझे भी कुछ आतिथ्य करने दो। चलो, चलकर मेरे साथ नाश्ता करो।

बिसाऊ बोला—साहब! आप मेरी सेवाके बदलेमें मेरा सत्कार करना चाहते हैं? यह ठीक नहीं है। फिर उसने पुरानी बात साहबको याद दिलायी और कहा—साहब! जरूरतमन्द व्यक्तिकी मदद हमेशा करनी चाहिये। जरूरतमन्दकी मदद ईश्वरकी सेवा है। यही इन्सानी धर्म भी है। इतना कहकर बिसाऊ अपने गाँवकी ओर चल पड़ा। गोरे साहबका सिर शर्मके मारे झुक गया।

(२)

अहंकार विकासमें बाधक

एक मूर्तिकारने अपने बेटेको भी मूर्तिकला ही सिखायी। दोनों हाटमें जाते और अपनी-अपनी मूर्तियाँ बेचकर आते। बापकी मूर्ति डेढ़-दो रुपयेकी बिकती, पर बेटेकी मूर्तियोंका मूल्य केवल आठ-दस आनेसे अधिक न मिलता। हाटसे लौटनेपर बेटेको पास बैठाकर बाप उसकी मूर्तियोंमें रही त्रुटियोंको समझाता और अगले दिन उन्हें सुधारनेके लिये कहता। यह क्रम वर्षोंतक चलता रहा। लड़का समझदार था, उसने पिताकी बातें ध्यानसे सुनीं और अपनी कलामें सुधार करनेका प्रयत्न करता रहा। कुछ समय बाद लड़केकी मूर्तियाँ भी डेढ़ रुपयेकी बिकने लगीं, बाप अब भी उसी तरह समझाता और मूर्तियोंमें रहनेवाले दोषोंकी ओर उसका ध्यान खींचता। बेटेने और भी अधिक ध्यान दिया तो कला भी अधिक निखरी। मूर्तियाँ पाँच-पाँच रुपयेकी बिकने लगीं। सुधारके लिये समझानेका क्रम बापने तब भी बन्द न किया। एक दिन बेटेने झुँझलाकर कहा 'आप! तो दोष निकालनेकी बात बन्द ही नहीं करते। मेरी कला अब तो आपसे भी अच्छी है, मुझे मूर्तिके पाँच रुपये मिलते हैं, जबकि आपको दो ही रुपये।' बापने कहा—'पुत्र! जब मैं तुम्हारी उम्रका था, तब मुझे अपनी कलाकी पूर्णताका अहंकार हो गया और फिर सुधारकी बात सोचना छोड़ दिया। तबसे मेरी प्रगति रुक गयी और दो रुपयेसे अधिककी मूर्तियाँ न बना सका। मैं चाहता हूँ वह भूल तुम न करो। अपनी त्रुटियोंको समझने और सुधारनेका क्रम सदा जारी रखो, ताकि बहुमूल्य मूर्तियाँ बनानेवाले श्रेष्ठ कलाकारोंकी श्रेणीमें पहुँच सको।'—श्रीमती उषा अग्रवाल

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये श्रीहरि-नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(ना०पूर्व० ४१। ११५)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवन्नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मंगलमय भगवान्के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय—भगवान्की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण-जप-कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष पंचानबे करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी। इस वर्ष विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं; उनके अनुसार तिरासी करोड़, इक्कीस लाख, बावन हजार मन्त्रके नाम-जप हुए हैं, यद्यपि पिछले वर्षकी अपेक्षा नाम-जपकी यह संख्या कम है तथापि भगवन्नाम-प्रेमी महानुभावोंने जपमें विशेष उत्साह दिखलाया है, आशा है, आगे और भी अधिक उत्साहसे नाम-जप होता रहेगा।

जपकर्ताओंकी सूचना अभीतक लगातार आ रही है, किंतु विलम्बसे सूचना आनेपर उसे प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। अतः जपकर्ताओंको जप पूरा होने (चैत्र शुक्ल पूर्णिमा)-के अनन्तर तत्काल सूचना प्रेषित करनी चाहिये, जिससे उनके जपकी संख्या प्रकाशित की जा सके।

आप महानुभावोंसे इस वर्ष पंचानबे करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा (वि० सं० २०६८)-तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्के प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं।

(१) जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनांक २१। ११। २०१० ई०) रविवार रखी गयी है। इसके बाद किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु

उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, वि० सं० २०६८ दिन सोमवार (दिनांक १८। ४। २०११)-को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

(२) सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

(३) एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

(४) संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीजीकी माला उत्तम होगी।

(५) यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रात:काल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

(६) बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

(७) संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रति मन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जनोंको जपकी संख्याके साथ अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिये।

(८) प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो, उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

(९) प्रथम सूचना प्राप्त होनेपर जपकर्ताको सदस्यता दी जाती है। द्वितीय सूचना भेजते समय सदस्य-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(१०) जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर प्रभावक बनते हैं।

(११) सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग, गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

प्रार्थी—

राधेश्याम खेमका

सम्पादक—'कल्याण'

'जप मन हरि को नाम'

भूल जग के विषयन कों, जप मन हरि को नाम॥
दीनबंधु हरि करुना-सागर, पतितन के विश्राम।
आपद-अंधकार महँ श्रीहरि पूरन-चंद्र ललाम॥
पाप-ताप सब मिटै नाम तें, नास होहिं सब काम।
जम के दूत भयातुर भागैं, सुनत नाम सुख-धाम॥
भाग्यवान जे जपत निरंतर नाम सदा निष्काम।
निरख सुखी सत्वर हों मूरति हरि की जग-अभिराम॥
भाग्यहीन जिन्ह के मन-मुख महँ बसत न हरि को नाम।
नरक-रूप जग जीवन तिन्ह को भूमि-भार अघ-धाम॥

[पद-रत्नाकर]

कल्याण

याद रखो—मनमें कभी बुरे विचार नहीं लाने चाहिये, साथ ही वाणीसे भी किसी बुरे शब्दका उच्चारण नहीं करना चाहिये। अश्लील, असत्य, अहितकर, व्यर्थ, अप्रिय, अपमानजनक, क्रोधभरी, दर्पपूर्ण, नास्तिकताका समर्थन करनेवाली, भय और अभिमानसे भरी वाणी कभी नहीं बोलनी चाहिये। ऐसी वाणीका उच्चारण करनेसे वहाँका वायुमण्डल दूषित होता है। जिसको लक्ष्यकर ऐसी वाणी बोली जाती है, उसपर तो बुरा असर होता ही है; जहाँतक वह ध्वनि जाती है, वहाँतकके प्राणियोंके मनोंपर भी वह बहुत बुरा प्रभाव डालती है। जैसे शूरताकी वाणीसे मनुष्यमें शूरता आती है, वैसे ही कायरोंकी भयभरी वाणी लोगोंको कायर बना देती है। रणवाद्य और चारणोंकी जोशीली कविताओं और सन्तोंकी वैराग्यकी वाणियोंका अद्भुत प्रभाव प्रत्यक्ष देखा जाता है।

इसी प्रकार शरीरसे—किसी भी इन्द्रियसे ऐसी कोई चेष्टा नहीं करनी चाहिये, जो वायुमण्डलको दूषित करनेवाली हो। सारांश यह कि मनको सदा शुद्ध संकल्पों और सत्-विचारोंसे भरे रखो, वाणीके द्वारा सदा सत्य, हितकर, मधुर और उत्तम वचन बोलो और शरीरसे सर्वदा-सर्वथा उत्तम क्रिया करो। इसीमें अपना और जगत्का हित है। इसी प्रकार जहाँ ऐसे शुद्ध मन, वाणी और शरीरवाले सज्जन महानुभाव रहते हों, उन्हींके समीप रहो और उन्हींका संग करो। न स्वयं बुरा वायुमण्डल पैदा करो और न बुरे वायुमण्डलमें निवास ही करो।

याद रखो—जो अपने मनमें वैरकी भावना रखता है, वह जगत्में अपने वैरी उत्पन्न करता है। जो प्रेमके संकल्प करता है, वह प्रेमियोंकी संख्या बढ़ाता है। जो भोगोंमें मन लगाता है—भोगोंमें रचा-पचा रहता है, वह लोगोंमें भोगासक्ति बढ़ाता है; जिसके मनमें शूरता है, वह शूरताका वातावरण उत्पन्न करता है; जो कायर है, वह कायरता फैलाता है; जो भक्त है, वह भक्तिका प्रसार करता है; जो अभक्त है, वह नास्तिकता फैलाता है; जो भयसे काँपता है, वह आसपास भयका विस्तार करता है; जो निर्भय रहता है, वह सबको निर्भय बनाता है; जो सुखी है, वह जगत्को सुखी करता है; जो रात-दिन शोक, दुःख और विषादमें डूबा रहता है, वह सबको ये ही चीजें देता है और जो भगवान्में प्रेम करता है, वह भगवत्-प्रेमियोंकी संख्या बढ़ाता है। अतएव सब विषयोंको सर्वदा दूरकर केवल भगवत्प्रेमसे ही हृदयको सर्वथा भर दो। कदाचित् ऐसा न कर सको तो मनमें सदा सात्त्विक शुद्ध आदर्श विचारोंका पोषण करो और उन्हींको बढ़ाओ। ऐसा करनेसे तुम्हारे आसपासका वायुमण्डल सात्त्विक बन जायगा। सात्त्विक विचारोंकी क्रमशः वृद्धि होते रहनेसे तुम्हारी संकल्पशक्ति बढ़ जायगी, फिर तुम अपने सद्विचारोंको बहुत दूरतक—लोगोंके हृदयकी गहराईतक पहुँचाकर सबको सात्त्विक बना सकोगे। तुम सुखी बनोगे और बिना किसी उपदेश-आदेशके स्वभावतः ही जगत्के बहुत बड़े भागको भी सुखी बना सकोगे।

वे सात्त्विक, आचरणीय, शुद्ध, सद्गुण ये हैं—अहिंसा, सत्य, शौच, दया, प्रेम, दान, क्षमा, संयम, त्याग, वैराग्य, निरभिमानिता, एकान्तप्रियता, कोमलता, सरलता, नम्रता, सेवाभाव, सहिष्णुता, स्वधर्ममें प्रेम एवं परधर्मके प्रति सम्मान, द्वेषहीनता, समता, सन्तोष, गुणग्राहकता, दोष-दृष्टिका अभाव, सुहृत्पन, ममता तथा अहंकारका अभाव, मान-बड़ाईकी सर्वथा अनिच्छा, सर्वभूतहित और भगवत्परायणता इत्यादि।

बस, मन-वाणी-शरीरसे निरन्तर सावधानी और लगनके साथ इन्हीं सब सद्गुणों और सत्य संकल्पोंको बढ़ाते रहो। स्वयं तर जाओगे और असंख्य प्राणियोंको तारनेमें सहायक होओगे। संसार भी तुम्हें भला कहेगा और परलोक भी तुम्हारा कल्याणमय होगा। **'शिव'**

अनन्त विश्रान्ति

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

एक बार विरोचनने बलिसे कहा था—पुत्र! एक ऐसा विस्तृत प्रदेश है, जिसके कोटरमें अपरिगणित सहस्र ब्रह्माण्ड समा जाते हैं और वस्तुतः उसमें समुद्र, पर्वत, वन, नदी, सरोवर, पृथ्वी, आकाश, पवन, चन्द्र, सूर्य, देव, दानव, भूत, यक्ष, स्थावर, चर, अग्नि, दिशा, ऊर्ध्व, अधः कुछ भी नहीं। वहाँ एक ही सर्वव्यापी स्वप्रकाश महान् राजा है। वह सर्वदा कूटस्थरूपसे मौनभावसे स्थित रहता है। उसके संकल्पमात्रसे एक मन्त्री बन गया है। वही सब कार्य करता है। वह ऐसा है कि दुर्घटको सुघट और सुघटको दुर्घट बनाया करता है। वह स्वयं न भोगता है न कुछ जानकारी रखता है, परंतु सब कुछ राजाके लिये ही करता है। राजा केवल एकान्तमें स्वस्थ विराजमान रहता है। बलिने बड़ी उत्सुकतासे पूछा—पिताजी! वह देश कहाँ है तथा कैसे प्राप्त हो सकता है और वह मन्त्री कैसा है, जगज्जालको अनायास जीतनेवाले हम लोग भी जिसे नहीं जानते? विरोचनने कहा—पुत्र! वह मन्त्री तुमसे क्या, देवता-असुर किसीसे भी आक्रान्त नहीं होता। वह इन्द्र, वरुण यमादि नहीं है। वह अमर-असुर दोनों ही नहीं है। उसपर किसीने भी विजय नहीं पायी। उसपर वज्र, चक्र, त्रिशूल आदि बड़े-बड़े प्रभावशाली शस्त्र व्यर्थ जाते हैं। वह सभी देवताओं और असुरोंको अपने वशमें रखता है। यद्यपि वह विष्णु नहीं है तथापि हिरण्यकशिपु आदि दैत्योंको भी उसने मार गिराया है। उसीके प्रसादसे पुष्पमय धनुष और बाणसे ही काम त्रैलोक्यविजयी हुआ है। क्रोध भी उसीके प्रसादसे विजयी होता है। देवासुर आदि अनेक संग्राम सब उसीके खेल हैं। वह मन्त्री केवल उसी राजाके द्वारा ही जीता जा सकता है, अन्यथा वह अचल है। पुत्र! यदि तुम उस जगत्त्रय-विजयीको जीत लो तो यथार्थ विजयी होगे। व्यामोहविहीन बुद्धिसे उसे जीत लेनेपर सब अपने-आप विजित हो जायँगे।

बलिने कहा—पिताजी! वह कौन है और कैसे जीता जायगा, कृपया स्पष्ट कहें। विरोचनने कहा—पुत्र! यद्यपि वह मन्त्री सर्वथा अजेय है, तथापि युक्तिसे ही वह वशमें होगा। जो युक्तिसे उस राजाका दर्शन कर लेते हैं, उनके लिये ही वह वश्य होता है। साथ ही यह भी बात है कि बिना मन्त्रीको वशमें किये राजाका दर्शन भी दुर्लभ है और जबतक राजा न दीखे, तबतक मन्त्रीपर आक्रमण नहीं हो सकता। इस तरह राजदर्शन और मन्त्रिवशीकरण दोनों ही अन्योन्याश्रय-से हैं, अतः अभ्यासद्वारा राजदर्शन और मन्त्रिपराजय—दोनोंके लिये समकालमें ही प्रयत्न करना चाहिये। शनैः-शनैः पुरुषार्थके द्वारा दोनों कार्य करके ही उस देशको प्राप्त कर सकोगे। उस प्रदेशमें सभी प्रशान्त और प्रमुदित ही रहते हैं। पुत्र! वह देश मोक्ष ही है। सर्वपदातीत भगवान् आत्मा ही वहाँके राजा हैं। उन्होंने ही मनरूप मन्त्री बना रखा है। उस मनके कारण ही यह सम्पूर्ण विश्व खड़ा है। उसके जीत लेनेपर शुद्ध परमानन्दसुधासमुद्र भगवान् ही सर्वत्र सर्वरूपसे परिलक्षित होते हैं। विषयोंके प्रति अनास्था ही उस मनके जीतनेकी परमोत्तम युक्ति है। ब्रह्मात्मभिन्न पदार्थोंकी सत्तामें विश्वास होनेसे ही उधर प्रीति और प्रवृत्ति होती है। अतः उसी आस्थाको मिटाना चाहिये। अनास्था भी बिना अभ्यासके नहीं होती। विषयोंमें अरतिका अभ्यास होनेपर क्रमेण अनास्था उत्पन्न होती है। जबतक विषयोंमें वैराग्य नहीं होता, तबतक प्राणी संसारके बीचमें भ्रान्त होते हैं। पुरुषार्थका सहारा लेना चाहिये। पुरुषार्थसे ही दैवपर भी विजय मिलती है, क्योंकि कभीका किया हुआ पुरुषार्थ ही दैव भी है।

आत्माका दर्शन अवश्य ही विषयोंसे अरति (वैराग्य) उत्पन्न करता है। प्रज्ञाकी कसौटीपर कसे हुए सुन्दर विचारसे आत्माको देखना चाहिये और साथ ही विषयोंसे वैराग्य उत्पन्न करना चाहिये। पहले चित्तको कुछ काल देहधारणोपयोगी नियमित योगमें लगाना चाहिये और अन्य कालमें शास्त्रविचार तथा गुरुशुश्रूषामें लगाना चाहिये। कुछ सावधान होनेसे गुरु-शुश्रूषा और शास्त्रचिन्तनमें चित्तका अधिक उपयोग करना चाहिये। भोगमें अल्प उपयोग करना चाहिये। चित्तके विक्षिप्त होनेपर शास्त्र-विचार, वैराग्याभ्यास, ध्यान और गुरुपूजामें चित्तका और अधिक उपयोग करना चाहिये। शनैः-शनैः पावन शास्त्रोक्तियोंसे चित्तरूपी बालकका लालन करना चाहिये। अन्तमें अभिनिवेश-शून्य होकर निर्मल चित्त परा-प्रज्ञाके द्वारा आत्मदर्शन और तृष्णात्याग करनेमें समर्थ होता है। भोगप्रपंचसे विरसता उत्पन्न होने और परापर तत्त्वके दर्शनसे परब्रह्ममें अनन्त विश्रान्ति प्राप्त होती है। प्रयत्नद्वारा परम पुरुषके दर्शनसे ही विषयोंसे सच्ची विरक्ति भी उत्पन्न होती है। आलस्य और प्रारब्धका बहाना छोड़कर भोगोंकी निकृष्टताका चिन्तन करना चाहिये। भोगविगर्हाके दृढ़ होनेपर विचार जागरूक होता है। इसी तरह विचारसे ही भोगगर्हा भी होती है, इनमें भी अन्योन्यसाधकता ही है। सन्तोंके संगमें विचार और भोगगर्हा सरलतासे मिलती है; क्योंकि वहाँ यही सब चलता रहता है। इस प्रकार विरोचनके उपदेशानुसार बलि विचारपरायण होकर आचार्य शुक्रकी सहायतासे परमपदमें प्रतिष्ठित हुए थे।

कर्मयोगकी सुगमता

[प्रश्नोत्तर-रूपमें]

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

शंका—बहुत-से भाई कहते हैं कि 'गीतामें श्रीभगवान्‌ने कर्मयोगकी प्रशंसा की है और ज्ञानयोगकी अपेक्षा कर्मयोगको सुगम बतलाया है। इतना ही नहीं; बल्कि यहाँतक कहा है कि कर्मयोगके बिना ज्ञानयोगका सफल होना कठिन है।' (गीता ५। ६) किंतु यह सुगमता समझमें नहीं आती। न तो वर्तमान कालमें ऐसे कर्मयोगी हैं और न उनके द्वारा किया हुआ कर्मयोगका आचरण ही देखनेमें आता है; क्योंकि कर्मोंमें फल और आसक्तिके त्यागका नाम कर्मयोग है, किंतु फल और आसक्तिका त्याग करके कर्म किस प्रकारसे होते हैं, इस बातको समझानेवाला या करके दिखलानेवाला ऐसा कोई नहीं दीखता, जिसको आदर्श मानकर हमलोग कर्मयोगके पथपर चल सकें। अतएव हम यह जानना चाहते हैं कि वास्तवमें बात क्या है? गीतामें जो कर्मयोग बतलाया है और जिसे सुगम कहा है, उसका सम्पादन तो बहुत ही कठिन प्रतीत होता है। यह कर्मयोग कथनमात्र है या सम्पादनयोग्य है? यदि सम्पादनके योग्य वास्तविक साधन हो तो उसके जाननेवाले और करनेवाले होने चाहिये और यदि कोई भी जाननेवाला और करनेवाला नहीं, तो फिर यह सुगम साधन कैसे है?

समाधान—ज्ञानयोगका प्रकरण अति गहन-दुर्विज्ञेय और अतिसूक्ष्म है; इससे सबके लिये उसका करना तो दूर रहा, समझना भी कठिन है। इसलिये उसकी अपेक्षा कर्मयोगका साधन सुगम बतलाया गया है; क्योंकि जबतक अन्तःकरण मलिन है, तबतक देहाभिमान है और देहाभिमानीसे ज्ञानयोगका साधन बनना अत्यन्त दुष्कर है। आसक्ति और स्वार्थत्यागरूप कर्मयोगका सम्पादन करनेसे जब अन्तःकरण पवित्र होता है, तब उसमें ज्ञानयोगके सम्पादनकी योग्यता आती है, परंतु कर्मयोगमें ऐसी बात नहीं है। कर्मयोगके साधनका आरम्भ तो देहाभिमानके रहते हुए ही अन्तःकरणकी मलिन अवस्थामें भी हो सकता है और उसके द्वारा पवित्र हुई बुद्धिमें भगवत्कृपासे स्वाभाविक ही स्थिरता होकर और भगवद्भावका उदय होकर भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। यही इसकी ज्ञानयोगकी अपेक्षा सुगमता और विशेषता है। इसलिये भगवान्‌ने गीताके अध्याय ५, श्लोक २ में कर्मयोगको श्रेष्ठ बतलाया है—'**कर्मयोगो विशिष्यते।**'

श्रीभगवान्‌ने आसक्ति और फल—दोनोंके त्यागको कर्मयोग बतलाया है (गीता २। ४८, १८। ९), कहीं सम्पूर्ण कर्मों और पदार्थोंमें केवल आसक्तिके त्यागको कर्मयोग कहा है (६। ४) और कहीं केवल सर्वकर्मफलके त्याग (१८। ११) या कर्मफल न चाहनेको (६। १) ही कर्मयोग कहा है, वास्तवमें इनमें सिद्धान्ततः कोई भेद नहीं है। फल और आसक्ति—दोनोंके त्यागका नाम ही कर्मयोग है। इसलिये दोनोंके त्यागको कर्मयोग कहना तो ठीक है ही, जहाँ कर्मों और पदार्थोंमें केवल आसक्तिका त्याग कहा है, वहाँ भी ऐसी ही बात है। कंचन, कामिनी, देह, मान-बड़ाई आदि पदार्थोंमें आसक्तिका त्याग होनेसे उन पदार्थोंको प्राप्त करनेकी इच्छाका यानी फलका त्याग स्वतः ही हो जाता है; क्योंकि फलकी इच्छाके उत्पन्न होनेमें आसक्ति ही प्रधान कारण है। कारणके त्यागमें कार्यका त्याग स्वतः ही हो जाता है। इसलिये पदार्थोंमें आसक्तिके त्यागसे फलका त्याग स्वतः हो जानेके कारण पदार्थोंमें आसक्ति न होनेको कर्मयोग कहना युक्तिसंगत ही है। अब रही केवल सर्वकर्मफलके त्यागकी या कर्मफल न चाहनेकी बात, सो कर्मफलके त्यागसे आसक्तिका त्याग हो जाता है और आसक्ति-त्यागसे कर्मफलका त्याग हो जाता है, अर्थात् एकके त्यागसे दूसरेका त्याग स्वभावतः हो जाता है। इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण पदार्थोंकी प्राप्तिकी इच्छाका त्याग ही फलकी इच्छाका त्याग है; इसीको स्वार्थ-त्याग कह सकते हैं। इस स्वार्थत्यागरूप धर्मके सेवनसे समस्त अनर्थोंकी मूलहेतु आसक्तिका शनैः-शनैः त्याग हो जाता है; इसलिये फलके त्यागसे स्वतः ही आसक्तिका त्याग हो जानेके कारण सर्वकर्मफलके त्याग या कर्मफल न चाहनेको कर्मयोग बतलाना भी युक्तिसंगत है।

यदि कोई कहे कि 'जब सर्वकर्मफलके त्याग या कर्मफलके न चाहनेको ही कर्मयोग कहते हैं, तब फिर श्रीभगवान्ने जगह-जगह कर्मफलके त्यागके साथ ही जो आसक्तिके त्यागकी बात कही है, उसकी क्या आवश्यकता है?' इसका उत्तर यह है कि कर्मफलके त्यागसे आसक्तिका त्याग होकर ही कर्मयोगकी सिद्धि होती है और आसक्तिका त्याग हुए बिना सर्वथा स्वार्थ-त्यागपूर्वक कर्म हो नहीं सकते। अतएव स्वार्थके त्यागसे आसक्तिका त्याग उसके अन्तर्गत ही समझ लेना चाहिये। असलमें दोनोंका त्याग ही कर्मयोग है। इस बातको स्पष्ट करनेके लिये 'आसक्तिसहित कर्मफलका त्याग ही कर्मयोग है' भगवान्का यह कथन युक्तियुक्त ही है।

प्रायः संसारके सभी मनुष्य मोहरूपी मदिराको पीकर उन्मत्तसे हो रहे हैं। उनमें कोई-सा ही समझदार पुरुष आत्माके कल्याणके लिये प्रयत्न करता है और प्रयत्न करनेवालोंमें भी कोई बिरला ही पुरुष उस परमात्माको पाता है (गीता ७।३)। ऐसी परमात्माकी प्राप्तिरूप अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषोंसे हमारी भेंट होनी भी दुर्लभ ही है। भेंट होनेपर श्रद्धाकी कमीसे हम उन्हें पहचान नहीं सकते। इसलिये वर्तमान कालमें ऐसे परमात्माको प्राप्त हुए योगी और ऐसे योगियोंद्वारा किये हुए आचरण यदि देखनेमें नहीं आते तो इसमें क्या आश्चर्य है?

भगवान्ने स्वयं भी (गीता ४।२)-में कहा है कि यह कर्मयोग बहुत कालसे नष्ट हो गया है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि उस कालमें इस योगको समझनेवाले बहुत लोग नहीं थे और इस समय भी बहुत नहीं हैं; क्योंकि सारे भूत-प्राणी राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे संसारमें मोहित हो रहे हैं। इसलिये परमात्माके बतलाये हुए इस कल्याणमय कर्मयोगके रहस्यको नहीं जानते। जिन पुरुषोंका स्वार्थत्यागरूप कर्मद्वारा पाप नष्ट हो गया है, वे ही पुरुष इस कर्मयोगके रहस्यको जानते हैं।

वस्तुतः आजकल परमात्माको प्राप्त हुए महापुरुषोंका अभाव है—ऐसा नहीं कहा जा सकता, परंतु श्रद्धाकी कमीके कारण हमें उनका दर्शन और परिचय प्राप्त नहीं होता है। ऐसी अवस्थामें जब कर्मयोगका आचरण करके बतलानेवाला हमें कोई नहीं दीखता तो कल्याणकी इच्छावाले पुरुषको भगवान्के बतलाये हुए उपदेशोंको ही आदर्श मानकर तदनुसार आचरण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। गीता तो हमें मार्गदर्शन कराती ही है।

गीतामें बतलाया हुआ कर्मयोग कथनमात्र नहीं है, सम्पादन करनेयोग्य है; किंतु उसके सम्पादनका तत्त्व न जानने तथा शरीर और संसारके पदार्थोंमें आसक्ति होने एवं श्रद्धाकी कमी होनेके कारण ही वह कठिन प्रतीत होता है, वास्तवमें कठिन नहीं है। भगवान्के कहे हुए वचनोंमें विश्वास करके उनके आज्ञानुसार स्वार्थके त्यागपूर्वक शास्त्रविहित कर्मोंका आचरण करते रहनेसे आसक्तिका नाश और कर्मयोगके तत्त्वका ज्ञान होता चला जाता है। इस प्रकार करते हुए जब आसक्तिका नाश और कर्मयोगके तत्त्वका ज्ञान हो जाता है, तब कर्मयोगका सम्पादन कठिन प्रतीत नहीं होता, कर्मयोगका साधन सरल हो जाता है।

कर्मोंमें सब प्रकारके फलकी इच्छाके त्यागका नाम ही स्वार्थत्याग है। स्वार्थत्यागयुक्त कर्मोंसे राग-द्वेषादि दुर्गुणोंका एवं राग-द्वेषादिसे होनेवाले दुराचारोंका नाश हो जाता है। अतएव मनुष्यको उचित है कि भगवान्के शरण होकर स्वार्थत्यागयुक्त कर्मोंका सम्पादन करे। किंतु इस बातपर विशेष ध्यान देना चाहिये कि कर्मोंमें स्वार्थत्याग किसका नाम है। हम मन, वाणी, शरीरद्वारा किसी भी शास्त्रविहित कर्मका अनुष्ठान करते हैं और उसका फल स्त्री, धन, पुत्र तथा शरीरका आराम आदि नहीं चाहते, इतनेमात्रसे ही स्वार्थका त्याग नहीं समझा जाता। इन सबका त्याग तो मनुष्य मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके लिये भी कर सकता है। अतएव इन सबके त्यागके साथ-साथ मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाका एवं स्वर्गादिके भोगकी इच्छाका भी सर्वथा त्याग करके उस त्यागके अभिमानका भी त्याग होनेसे सर्वथा स्वार्थत्याग समझा जाता है। त्यागका अभिमान त्याज्य वस्तुसे भी बढ़कर त्याज्य है।

हमलोग जितने कर्म करते हैं, उनमें सर्वप्रथम यही भाव मनमें उत्पन्न होता है कि इससे हमको क्या लाभ होगा। स्वाभाविक ही इस प्रकार हमारी बुद्धि स्वार्थकी ओर चली जाती है। अतएव क्रियाके आरम्भके समय जब स्वार्थबुद्धि उत्पन्न हो, तभी उसको बाधित कर देना चाहिये। हम जिसको लाभ समझते हैं, वह सांसारिक लाभ

वास्तवमें लाभ ही नहीं है। लाभ वही है जो वास्तविक हो और जिसका कभी अभाव न हो। ऐसा वास्तविक लाभ सांसारिक लाभोंके त्यागसे प्राप्त होता है, अतएव क्रियाके आरम्भके समय व्यक्तिगत भौतिक स्वार्थकी जो इच्छा उत्पन्न हो, उसको अनर्थका मूल समझकर तुरंत उसका त्याग कर देना चाहिये।

हमलोगोंमें भौतिक स्वार्थकी मात्रा इतनी बढ़ गयी है कि हम अपने असली स्वार्थको तो समझ ही नहीं पाते। इसके लिये हमें पद-पदपर परमेश्वरका स्मरण करके उनसे प्रार्थना करनी चाहिये, जिससे हम सदा सावधान रह सकें और अपना असली स्वार्थ वस्तुत: किस बातमें है—इसको समझकर अनर्थकारी भौतिक स्वार्थोंसे बच सकें।

जिन पुरुषोंने भगवान्‌के गुण, प्रभाव और तत्त्वको समझकर भगवान्‌की शरण ग्रहण कर ली है, उनके लिये तो कर्मयोगका यह तत्त्व और भी सुगम है। किंतु पुत्र, स्त्री, गृह, धन और देहादिमें प्रीति होनेके कारण इनकी प्राप्तिरूप स्वार्थकी इच्छाका त्याग होना कठिन है तथा मान-बड़ाईका त्याग तो इनसे भी अत्यन्त ही कठिन है। शरीर और संसारमें आसक्ति होनेके कारण संसारके पदार्थोंकी आवश्यकता प्रतीत होती है और आवश्यकताके कारण कामना होती है एवं कामनाकी पूर्तिके लिये मनुष्य कर्मोंका सम्पादन करता है। उनसे कामनापूर्ति न होनेपर वह याचनातक करनेको प्रवृत्त हो जाता है। अतएव इन सब अनर्थोंका मूल आसक्ति ही है, जिसे हम 'राग' कह सकते हैं। यह राग अनुकूलतामें होता है और सुखके देनेवाले पदार्थ ही मनुष्यको अनुकूल प्रतीत होते हैं। इससे प्रतिकूल दु:खदायी पदार्थोंमें द्वेष होता है और उस द्वेषसे वैर, ईर्ष्या, क्रोध, भय और संताप आदि अनेक दुर्भाव उत्पन्न होकर हिंसादि कर्मके द्वारा मनुष्यका पतन हो जाता है। अतएव सारे अनर्थोंके हेतु ये राग-द्वेष ही हैं। इन राग-द्वेषोंका कारण मोह (अज्ञान) है। भगवान्‌की कृपासे जब इस बातका रहस्य पूर्णतया मनुष्यकी समझमें आ जाता है, तब उसके राग-द्वेष क्षीण हो जाते हैं और क्षीण हुए राग-द्वेष श्रीपरमेश्वरके नाम, रूप, गुण और प्रभावके स्मरण एवं मननसे नष्ट हो जाते हैं। फिर मन और इन्द्रियाँ स्वाभाविक ही उसके अधीन हो जाती हैं। ऐसी अवस्थामें उसके द्वारा आसक्ति और स्वार्थके त्यागरूप कर्मयोगका सम्पादन बड़ी सुगमतासे होता है, जिससे वह परम आनन्द और परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है। यही कारण है कि ज्ञानयोगकी अपेक्षा कर्मयोग विशिष्ट माना गया है।

'मुरली अधर धरे मनमोहन'

(श्रीमती कृष्णा मजेजी)

मुरली अधर धरे मनमोहन, ठाढ़े यमुना तीर।
ज्यों-ज्यों मन पर चढ़त श्याम रंग, त्यों-त्यों हरते पीर॥
मधुर तान से हरते मोहन, जन-जन की सब पीर।
मनवा गा ले गीत प्रभू के, काहे होत अधीर॥
मुरली अधर धरे मनमोहन, ठाढ़े यमुना तीर।
ज्यों-ज्यों मन पर चढ़त श्याम रंग, त्यों-त्यों हरते पीर॥ १॥
वो ही सूरज वो ही धरती, वो ही मन्द समीर।
नाद ब्रह्म है वो मनमोहन, वो ही सरिता नीर॥
मुरली अधर धरे मनमोहन, ठाढ़े यमुना तीर।
ज्यों-ज्यों मन पर चढ़त श्याम रंग, त्यों-त्यों हरते पीर॥ २॥
काहे मनवा भ्रमवश हारा, काहे होत अधीर।
परम कृपाला वो नन्दलाला, वो ही हरते पीर॥
मुरली अधर धरे मनमोहन, ठाढ़े यमुना तीर।
ज्यों-ज्यों मन पर चढ़त श्याम रंग, त्यों-त्यों हरते पीर॥ ३॥

अनन्तश्री स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराजके उपदेश

(भक्त श्रीरामशरणदासजी)

(१) राजाकी तुम स्तुति तो करो, लेकिन उसकी आज्ञा न मानो, तो राजा तुमपर प्रसन्न थोड़े ही हो जायगा। इसी प्रकार भगवान्‌की तुम स्तुति तो करो, पर उनकी जो आज्ञाएँ हैं, उन्हें न मानो तो भगवान् तुमपर प्रसन्न नहीं होंगे।

(२) जब तुम मनुष्योंमें बैठो, तो भगवान्‌का कीर्तन करो और जब तुम अलग बैठो, तो भगवान्‌का स्मरण करो।

(३) आजकल यह चाल चल रही है कि कुछ लोग इधर-उधर बैठकर दूसरोंकी बुराई करते हैं। तुम्हें चाहिये कि अपने गाँव-नगरमें दस-बीस आदमी ऐसे बनाओ कि जिनसे तुम आपसमें बैठकर कथा-कीर्तन कर सको।

(४) जब तुम ईश्वरकी भक्ति करते हो तो तुम भोजनादिकी चिन्ता मत करो। यदि तुम भोजनादिकी चिन्ता करते हो, तो समझो ईश्वरके सच्चे भक्त नहीं हो, ईश्वरमें तुम्हारा सच्चा विश्वास नहीं है।

(५) जो बढ़िया चीज हो, उसे अपने मित्र भगवान्‌को दो अर्थात् हवन, यज्ञादिमें लगाओ। देखो, अगर तुम्हारा कोई मित्र है और तुम्हारे यहाँ विवाह है तो वह अपना सब काम छोड़कर तुम्हारे यहाँ आयेगा। इसी प्रकार तुम सब काम छोड़कर रोज भजन अवश्य करो।

(६) शास्त्रोंमें हजारों साधन भरे हुए हैं, लेकिन तुम्हें उनमेंसे जो अच्छा लगे, वही करना चाहिये। उसीसे तुम्हारा कल्याण होगा। औषधालयमें दवाइयाँ तो बहुत हैं, लेकिन जो तुम्हें रोग हो उसीकी दवा लेनी चाहिये।

(७) एक महात्माजी थे, वे गृहस्थ थे और खेतीका काम करते थे। एक दूसरे महात्माने उनका नाम सुना और वे इनके दर्शनको आये। आकर उन्होंने देखा कि वे गृहस्थ महात्मा खेतमें हैं और पौधोंको इधरसे उखाड़कर उधर लगा रहे हैं। ऐसा करते देखकर वे चकित हुए और उन्होंने मनमें कहा कि ये कैसे महात्मा हैं? इन्होंने उनसे पूछा कि ईश्वर कैसे मिलें? उन्होंने उत्तर दिया—

ईश्वरका क्या पावना?
इधरसे उखाड़कर उधरको लगावना।

अर्थात् मनको विषयोंसे हटाकर भगवान्‌में लगाओ, भगवान् मिल जायँगे।

(८) स्त्रियोंको कोरचा करके अर्थात् चोरी-छिपे दानादि देनेका अधिकार नहीं है। पतिसे पूछकर उन्हें धर्म-कर्म करना चाहिये।

(९) देखो, जिस प्रकार पहले-पहल घरमें बहू आती है तो उसके मुखको देखकर मुख-दिखायी देते हैं, रुपये देते हैं। इसी प्रकार भगवान्‌का स्वरूप मायारूपी परदेमें ढका होनेके कारण तुम्हें दिखायी नहीं दे रहा है। अगर भगवान्‌के दर्शन करना चाहते हो, तो उन्हें मुख-दिखायी दो अर्थात् उनके लिये सर्वत्याग कर दो।

(१०) गौ और गंगाजीकी बड़ी महिमा है। गंगा-पूजनका बड़ा फल है। गौ और गंगाको मिलनेपर प्रणाम करो।

(११) **प्रश्न**—क्या भगवन्नामसे ही कल्याण हो जायगा?

उत्तर—भगवन्नाम जपो, भगवन्नामसे ही उद्धार होगा। देखो—गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने भगवान्‌से कहा है—'भगवन्! मैं तो जन्म-जन्मान्तरोंसे ही नरकोंमें पड़ता आया हूँ, लेकिन अगर इस बार पड़ गया तो आपका ही नाम बदनाम होगा। यही सब कहेंगे कि भगवान्‌का नाम-जप करनेपर भी नरकमें गया।'

(१२) भगवान्‌की अनन्त मूर्ति हैं और अनन्त नाम हैं, भगवान्‌का निष्काम नाम जपो और यह प्रार्थना करो—'हे भगवन्! जिसमें हमारा कल्याण हो, वही हमारी बुद्धिमें प्रेरणा करो।' बैठकर और शुद्ध होकर जप करो, पहले सन्ध्या करो।

(१३) साधन-चतुष्टय-सम्पन्न ही ज्ञानका अधिकारी होता है। भक्तिका अधिकारी तो पापी-से-पापी भी होता है।

(१४) तुम आनन्द लेनेके लिये आये हो, दुःख भोगनेके लिये नहीं। विषयानन्द मत ग्रहण करो, ब्रह्मानन्द लो। अगर तुम्हारे ब्रह्मानन्दमें स्त्री विघ्न डालती है तो कोई परवाह मत करो, पुत्र विघ्न डालता है तो विचलित मत होओ। भगवान्‌पर अटूट विश्वास करते हुए भक्तिके पुनीत कार्यमें लगे रहो।

(१५) जिस प्रकार शरीरको रोज धोते हैं मैल साफ करनेके लिये, इसी प्रकार मनके मैलको सत्संग आदिसे धोते रहो। रामायण या गीताका पाठ करो। चाहे एक ही अध्याय पढ़ो, लेकिन उसके विचारों और उसपर अमल करो।

(१६) अगर तुम स्वयं तम्बाकू-बीड़ी पीते हो, तो अपने बच्चोंको कैसे इस व्यसनसे छुड़ा सकते हो? इसीलिये स्वयं दुर्व्यसनोंसे बचो।

(१७) गंगाजीपर जाकर किसीका अन्न नहीं खाना चाहिये। जो बने वहाँपर तो दान करना चाहिये।

(१८) साधु-ब्राह्मणोंको ऐसा होना चाहिये कि जैसे नौका। नौका आप भी तैरती है और इसमें बैठनेवालोंको भी पार कर देती है। साधु-ब्राह्मणोंको स्वयं भी धर्मानुसार जीवन जीना चाहिये तथा औरोंको भी प्रेरणा देनी चाहिये, सदुपदेश देना चाहिये।

[प्रेषक—श्रीधर्मेन्द्रजी गोयल]

शिक्षा और अधिकार

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

आजकल शिक्षा-प्रचारकी ओर लोगोंका ध्यान लगा है, लगना भी चाहिये। शिक्षासे ही जीवन यथार्थ मनुष्य-जीवन बनता है, परंतु जितना ध्यान परीक्षामें उत्तीर्ण होने तथा करानेका रहता है, उतना यथार्थ योग्यता बढ़ानेका नहीं। यही कारण है कि आजकल बहुत-से उपाधिधारी सज्जन उक्त विषयकी यथार्थ जानकारीसे शून्य ही पाये जाते हैं। परीक्षाके समय पाठ रटकर उत्तीर्ण होनेसे वास्तविक योग्यता नहीं बढ़ती, यह देखा जाता है। नकलसे उत्तीर्ण कर लेना तो सरस्वतीका अभिशाप और राष्ट्रका कलंक ही है।

परंतु यथार्थ सच्चा जीवन तो कोरी योग्यतासे भी नहीं बनता। आजकल कलाओंपर बड़ा जोर है; लेखन-कला, वक्तृत्व-कला और काव्य-कला आदिमें निपुण होनेकी बड़ी चेष्टा हो रही है। मेहनत करनेवाले पुरुष सफल भी रहे हैं। किसी भी विषयपर लेख लिखकर, वक्तृता सुनाकर या काव्य-रचनाकर वे लोगोंको कुछ कालके लिये मुग्ध और प्रभावित भी कर सकते हैं; परंतु वास्तविक अनुभव बिना, केवल कला उनके जीवनका केवल बाह्य प्रदर्शनमात्र होती है, निर्जीव शरीरकी भाँति उससे कोई प्रकृत लाभ नहीं होता। अनुभव-पुष्ट कला, ज्ञान और विज्ञान ही विश्वजनीन होते हैं, विश्वका मंगल-विधान करते हैं।

वेदान्तके परीक्षोत्तीर्ण विद्वान् वेदान्तपर लिखने और बोलनेमें प्रत्येक प्रक्रियाका सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर विवेचन कर देंगे; परंतु क्रियारूपमें उनके पास कुछ भी नहीं मिलेगा; वे स्वयं शोकसागरमें डूबे हुए मिलेंगे। उनका वेदान्त केवल अध्ययन, शास्त्रार्थ या लोक-प्रदर्शनकी वस्तु होगा। यही बात भक्ति एवं साधनाकी उपाधि धारण करनेवाले वक्तृत्व और लेखन-कलामें कुशल भक्त एवं साधक नामधारियोंमें मिलेगी। कार्यक्षेत्रमें भक्ति और साधना विषयोंमें ही मिलेगी; परंतु वक्तृता या लेखमें भक्ति एवं साधनाका स्रोत बहता हुआ दिखलायी पड़ेगा। यह बाह्य जीवन है। यह विडम्बनाका जीवन है, यह जीवनका अभिशाप है, वरदान नहीं।

तुलसी, सूर, दादू, कबीर, मीरा आदिकी रचनाओंमें और केवल कविताके भाव और सौन्दर्यकी दृष्टिसे काव्य-रचना करनेवालोंके महाकाव्योंमें यही बड़ा भारी अन्तर है। सम्भव है, इनकी कविता कलाकी दृष्टिसे तुलसी, सूरके टक्करकी हो या दादू, कबीर, मीरा आदिकी कविताओंसे बहुत बढ़ी-चढ़ी हो; परंतु दादू, कबीर, मीराका-सा हृदय और अनुभव इनमें कहाँसे मिलेगा?

ज्ञान, भक्ति, योग, वैराग्य, धर्म और विज्ञान आदि विषयोंमें इसीलिये गुरु और शिष्य दोनोंके अधिकारकी मुख्यता है। ये बाजारू चीजें नहीं हैं। इसीलिये ये सब विषय गुरुमुखसे पढ़नेके माने जाते हैं। लेख या व्याख्यानबाजीके नहीं। जबसे अनुभवरहित लोगोंने केवल किताबी ज्ञानके आधारपर इधर-उधरसे मसाला एकत्र करके लिखना और उपदेश देना शुरू किया, जबसे ये बाजारकी वस्तुएँ हो गयीं, तभीसे इनका महत्त्व कम हो गया; क्योंकि अनुभवशून्य लेखों और व्याख्यानोंके अनुसार आचरण करनेवालोंको कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, इससे उनकी श्रद्धा घट गयी। वाक्कला जीवन-कलाको तभी प्रभावित करती है, जब वह आचरणसे परिपालित और पुष्ट होती है।

वर्षों तपस्या और साधन करके गुरु-कृपा और भगवत्कृपासे जिन्होंने तत्त्वकी उपलब्धि की है, वे ही उस तत्त्वका उपदेश देनेके अधिकारी हैं और जो जप तथा साधनोंके द्वारा उस तत्त्वको पानेका सच्चा अभिलाषी है, वही गुरु और हरिका भक्त मनुष्य सुननेका अधिकारी है। आज प्रायः इन दोनोंका अभाव है, इसीसे असली लाभ नहीं होता है। नकली लाभ लाभ ही नहीं है; अन्ततः वह दुःखदायी होकर हानिकर रूप ले लेता है।

सभी बातोंमें दिखावापन आ जानेसे लोग केवल ऊपरकी बातें देखते हैं; क्योंकि वे भी भीतर प्रवेश करना नहीं चाहते। कौन-कैसा बोल सकता है, कैसा लिख सकता है, किसकी रचना कैसी होती है, इसी ओर लोगोंका ध्यान है, सच्चे अनुभवी हृदयकी खोज नहीं है। परंतु यह नियम है कि सच्चे अनुभवी बिना यथार्थ तत्त्वका पता नहीं लग सकता। जो जिस विषयका तत्त्वज्ञ होता है, वह चाहे दूसरे विषयमें बिल्कुल अनभिज्ञ हो, चाहे वह कलाकी दृष्टिसे रूखी भाषामें ही बोलता हो; परंतु उस तत्त्वका पता उसीसे लग सकता है। चित्रकार या स्वर्णकार अथवा अन्य कोई कलाकार चाहे शुद्ध संस्कृत या अंग्रेजीमें

अपने विषयका प्रतिपादन न कर सकता हो, चाहे उन विषयोंपर सुन्दर कविता न लिख सकता हो; परंतु उनकी विद्या सीखनेके लिये बड़े-बड़े विद्वानोंको भी उन अनुभवियोंके पास ही जाना पड़ेगा। बड़े-से-बड़े महाराजा और महान् कवि भी रोगकी चिकित्साके लिये अनुभवी वैद्यकी ही शरण लेंगे। वस्तुतः अनुभव ही बड़ा है, विद्या या कला उसके साथ हो तो सोना और सुगन्ध दोनों हैं। तुलसी, सूर आदिमें दोनों बातें थीं। उनकी कला अनुभवसे पली और परिपुष्ट थी।

परंतु जिसको अनुभव हो और विद्या न हो तो चाहे वह दूसरोंको उतना लाभ न पहुँचा सके, चाहे वह दूसरोंको आकर्षित न कर सके, पर उसको तो उस तत्त्वकी उपलब्धि हो ही गयी। अनुभवहीन विद्या या कला प्राणहीन शरीरके समान निरर्थक होती है। इसीलिये भगवान् श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि।
श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः॥

(११।११।१८)

जो पुरुष वेदको पूरा पढ़ गया—वेदमें पारंगत हो गया; परंतु जिसने परब्रह्मको नहीं जाना, उसे बाँझ गौको पालनेवालेके समान केवल परिश्रम ही हाथ लगता है। यही हाल अनुभवहीन विद्याका है। विद्या न होकर भी जिसके पास अनुभव हो—वस्तु हो, उसीकी सेवा करके, आदर करके उससे उस वस्तुको प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। कलाहीन समझकर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

मनुष्यको अनुभवकी प्राप्तिके लिये—तत्त्वकी उपलब्धिके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये और वास्तविक तत्त्वकी उपलब्धिके बाद ही उस तत्त्वके सम्बन्धमें कुछ बोलना या लिखना चाहिये। तभी उस बोलनेवालेका यथार्थ प्रभाव पड़ता है और उससे काम होता है। यदि ऐसा नहीं होगा और केवल कलाके नामपर अनुभवरहित लेखों, उपदेशों, वक्तृताओं और कविताओंकी शब्दाडम्बरभरी बाढ़ यों ही बहती रहेगी तो इसीके साथ अनुभवी पुरुषोंके वचनोंकी भी कोई कीमत नहीं रह जायगी और इसलिये उनका प्राप्त होना, पहचानना तथा समझना ही कठिन हो जायगा।

हर एक विषयपर हर एक-के बोलनेका अधिकार इसीलिये नहीं माना जाता था, परंतु आजकी दशा विपरीत है। आज तो महान् मिथ्यावादी सत्यपर, विषयी वेदान्तपर, कायर शूरतापर, व्यभिचारी ब्रह्मचर्यपर, असती पातिव्रत्यपर, स्वेच्छाचारी मर्यादापर, भोगी वैराग्यपर, असाधु साधुतापर और नास्तिक भक्तिपर लिखते तथा बोलते हैं। सभी क्षेत्रोंमें यही गड़बड़झाला हो रहा है। इसीलिये आज 'सब धान बाईस पसेरी' हो रहा है और अच्छे-बुरेकी पहचान प्रायः नष्ट हो चली है। सत्य धुँधला हो गया है; असत्य चमकता दिखलायी दे रहा है। परंतु निश्चय है—'यह असत्य निश्चय ही एक दिन अन्तमें नष्ट होगा' और **'सत्यमेव जयते'** का सिद्धान्त पुनः स्थापित होकर रहेगा।

कर्मसिद्धि और सफलताके लिये गीता

(डॉ० श्रीप्रभुनारायणजी मिश्र)

अर्जुन युद्धभूमिसे पलायन करना चाहता है। भागनेके पक्षमें वह अनेक तर्क देता है। यह युद्ध प्रतीकात्मक है। सम्पूर्ण जीवन ही एक प्रकारका युद्ध है, जो दो स्तरोंपर लड़ा जाता है—बाहरकी परिस्थितियोंसे और अन्दरकी अपनी ही वृत्तियोंसे। अर्जुन सामने उपस्थित कर्मसे भागना चाहता है, परंतु क्या सचमुच कर्मसे पलायन सम्भव है। गीता कहती है कि कर्मसे भागा ही नहीं जा सकता। अगर मनुष्य भाग रहा है तो वह भागनेका कर्म कर रहा है। लड़ रहा है तो लड़नेका कर्म कर रहा है। खाना, पीना, उठना, बैठना, सोना, जागना सब कर्म ही तो हैं। कर्मका करना तभी बन्द होता है, जब जीवन समाप्त हो जाय। एक भी क्षण कर्मके बिना व्यतीत नहीं होता—

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कर्म अपरिहार्य है। इस स्थितिमें व्यक्तिके सामने मात्र दो विकल्प बचते हैं—कर्मका चुनाव करना और कर्मके प्रति अपना दृष्टिकोण परिमार्जित करना। कभी-कभी कर्मका चुनाव करना भी अपने वशमें नहीं रहता। उदाहरणार्थ, यदि किसी जंगलमें एक शेर किसी व्यक्तिपर हमला कर दे तो उस व्यक्तिके पास दो ही विकल्प बचते हैं—लड़ना या भागना। यदि व्यक्ति ऐसे स्थानपर है, जहाँसे भागा ही नहीं जा सकता तो मनुष्यको मात्र लड़ना ही पड़ता है। विकल्पशून्यताकी स्थिति जीवनमें आती ही है। इसलिये कर्म एवं कर्मफलके

प्रति अपना दृष्टिकोण परिवर्तित करना ही उचित है। श्रीमद्भगवद्गीताका एक बहुत महत्त्वपूर्ण श्लोक है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

गीताका यह श्लोक सर्वाधिक उद्धृत श्लोकोंमेंसे एक है। इस श्लोकका निकटतम हिन्दी-अनुवाद होगा—'कर्मपर तुम्हारा अधिकार हो सकता है, फलपर कदापि नहीं। कर्मफलहेतु कर्म न करो, अकर्ममें भी तुम्हारी आसक्ति न हो।'

श्रीकृष्ण यह नहीं कहते कि कर्मपर तुम्हारा अधिकार है ही; वे कहते हैं कि कर्मपर तुम्हारा अधिकार हो सकता है। इस बातको थोड़ा गहराईसे समझनेकी आवश्यकता है। विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञानका विकास चाहे जितना क्यों न हो जाय, अन्तत: कर्म करनेके दो ही प्रमुख उपकरण अपने पास होते हैं। वे हैं—शरीर और मन। मनकी चंचलता और इसे नियन्त्रणमें रखनेकी कठिनाईसे सभी परिचित हैं। अर्जुन भी श्रीकृष्णसे कहता है कि मन बड़ा चंचल एवं बलवान् है। इसे वशमें रखना वायुको रोकनेकी भाँति अत्यन्त दुष्कर है। श्रीकृष्ण अर्जुनकी इस बातको स्वीकार करते हैं और कहते हैं—'**असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।**'

निश्चित रूपसे मन चंचल और कठिनाईसे वशमें आनेवाला है, परंतु वे अर्जुनका उत्साहवर्धन करते हुए कहते हैं कि मन अभ्यास और वैराग्यद्वारा वशमें आता है—

'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।'

अत: साररूपमें हम कह सकते हैं कि कार्य करनेके एक प्रमुख उपकरण मनपर प्राय: लोगोंका नियन्त्रण नहीं रहता। अब जरा शरीरपर ध्यान लायें। मन तो मन है, शरीर भी अपने नियन्त्रणमें नहीं है। हृदय, मस्तिष्क, गुर्दा आदि शरीरके महत्त्वपूर्ण अंग हमारी अनुमतिके बिना ही कार्य करते रहते हैं। कोई नहीं जानता कि ये कब कार्य करना बन्द कर देंगे। शरीर सर्वाधिक जटिल यन्त्र है। यह समयके साथ क्षरित तो होता ही रहता है, कभी-कभी अचानक कार्य करना भी बन्द कर देता है। एक गणनाके अनुसार शरीरके ठीक-ठीक कार्य करते रहनेकी सम्भाव्यता तीन अरबमें मात्र एक है। इतनी कम सम्भाव्यतापर शरीरका लगभग ठीक-ठीक कार्य करते रहना एक आश्चर्य है और इसका पूर्ण स्वस्थ रहना सचमुच चमत्कार। हम कोई भी कार्य करनेकी स्थितिमें तभी होते हैं, जब हमारा शरीर और मन दोनों सामान्य रूपसे ठीक-ठाक हों। यदि मन ठीक नहीं तो हम कार्य नहीं कर सकते हैं, यदि मन ठीक है परंतु शरीर बीमार है तो भी हम कार्य नहीं कर सकते। अत: कर्मपर हमारा अधिकार निश्चित रूपसे नहीं है। हम कर्म तभी कर सकते हैं, जब हमें शरीर और मनका सहयोग प्राप्त हो। अत: श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्मपर तुम्हारा अधिकार हो सकता है। कर्मपर तुम्हारा अधिकार है ही—यह मान्यता भ्रामक है। परंतु श्रीकृष्ण स्पष्ट कहते हैं कि कर्मफलपर तुम्हारा अधिकार कदापि नहीं है। क्यों? यदि हमने कर्म किया है तो फल मिलना ही चाहिये। कर्म-सिद्धान्तके अनुसार हर कर्म अपना फल देता है। कर्म कर्ताको ही फल देता है। कर्मके गणितमें निरस्तीकरणका नियम नहीं है, जैसे आपने यदि दस अच्छे और दस खराब कर्म किये तो कर्मफल शून्य नहीं होगा। दस अच्छे कर्मोंका दस अच्छा फल मिलेगा तथा दस खराब कर्मोंका दस खराब फल, परंतु फल कब प्राप्त होगा, फलका स्वरूप क्या होगा—यह बहुत बड़ा रहस्य है। कर्मोंकी गति सचमुच बड़ी गहन है। कृष्ण कहते हैं—'**गहना कर्मणो गतिः।**'

यदि कर्मसिद्धान्तके अनुसार हर कर्मका फल होता ही है तो श्रीकृष्ण यह क्यों कहते हैं कि फलपर तुम्हारा अधिकार कदापि नहीं है। ध्यान रखिये, सृष्टिमें कर्म करनेवाले आप अकेले नहीं हैं। सम्पूर्ण निसर्ग निरन्तर कुछ-न-कुछ कर्म कर रहा है। कर्मफल इन सारे कर्मोंके प्रभावसे निर्धारित होता है। यदि किसी वस्तुपर कई लोग कई दिशाओंसे बल लगा रहे हों तो वह वस्तु किसी एक बलविशेषकी दिशामें विस्थापित नहीं होगी, बल्कि वह सारे बलोंके परिणामीकी दिशामें जायगी। फलनिर्धारणमें आपद्वारा किये गये कर्मका योगदान रहता है, परंतु मात्र आपद्वारा किया गया कर्म ही फलको पूर्णत: निर्धारित नहीं करता। अन्य कर्मोंकी भी भूमिका होती है। जैसे किसी प्रतियोगितामें प्रथम स्थानपर कौन होगा—इसका निर्धारण प्रथम स्थान पानेवाला प्रतियोगी ही नहीं करता, अपितु सारे प्रतियोगियोंका प्रयास इसका निर्धारण करता है। इस कारण जहाँ कर्मसिद्धान्त अटल है, वहीं श्रीकृष्णका यह कथन कि फलपर आपका अधिकार नहीं है, पूर्ण सत्य है। यदि हमें सफल होना है तो हमें अपना ध्यान फलपर नहीं, अपितु कर्मकी परिपूर्णतापर रखना होगा। यदि हम फलपर ही मनको टिकाये रहेंगे तो इसके दो नुकसान होंगे—कर्म उत्तम प्रकारका नहीं होगा

तथा फल न मिलनेकी स्थितिमें कुण्ठा एवं विषाद उत्पन्न होंगे। अत: श्रीकृष्ण कहते हैं—कर्मफलहेतु कर्म न करो। कर्म-सिद्धान्तके अनुसार फल तो मिलना ही है—वह आप चाहें या न चाहें। कर्मफलहेतु कर्म न करनेसे फल न मिलनेसे उत्पन्न होनेवाली कुण्ठा, हताशा और विषादग्रस्तता-जैसी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ स्वत: समाप्त हो जाती हैं। श्रीकृष्ण यह भी कहते हैं कि अकर्ममें तुम्हारी रुचि न हो, अर्थात् अकर्मण्यता, आलस्य, प्रमाद आदिसे आप मुक्त रहें। अब आप ऐसे व्यक्तिकी कल्पना कीजिये जो निरन्तर कर्ममें लगा है, परंतु फलकी आशासे मुक्त है। कर्म-सिद्धान्तके अनुसार उस व्यक्तिको कर्मका फल तो प्राप्त होगा ही, कदाचित् यदि फल उसकी मर्जीका न हुआ तो वह कुण्ठित, निराश और हताश नहीं होगा। इसलिये फलकी आकांक्षाका परित्याग तथा निरन्तर क्रियाशील रहना अत्यन्त श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक स्थिति है। यह स्थिति प्राप्त करना कठिन है, परंतु असम्भव नहीं। स्मरण रखें, जीवनकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ कठिनाईसे ही प्राप्त होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति जीवनमें सफलता प्राप्त करना चाहता है। यहाँ यह दार्शनिक प्रश्न नहीं उठाया जा रहा है कि शान्ति और प्रसन्नता अधिक महत्त्वपूर्ण है या सफलता। गीतामें शान्ति और प्रसन्नताको बहुत महत्त्व दिया गया है। यह आवश्यक नहीं कि सफलता शान्ति और प्रसन्नता प्रदान करे ही, परंतु यह निर्विवाद है कि अशान्त व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता—**'अशान्तस्य कुतः सुखम्।'** गीतामें शान्ति प्राप्त करनेके अनेक सरल उपायोंका वर्णन है। सफलता निर्धारित करनेवाले तत्त्व तथा सफलताके प्रति उचित दृष्टिकोण भी गीताके विवेच्य विषयोंमें शामिल है। सफलता चाहते सभी हैं, परंतु सभी सफल नहीं होते। अत: सफलताके प्रति उचित तथा व्यावहारिक दृष्टिकोणका विकास अत्यन्त आवश्यक है। गीतामें कर्मसिद्धि और सफलताके पाँच कारण बताये गये हैं। कर्म करनेका क्षेत्र, कर्म करनेवाला, कर्म करनेका साधन तथा अनेक प्रकारके प्रयत्न और चेष्टाएँ कर्मसिद्धिके चार कारण हैं। यदि हम गलत क्षेत्रमें कार्य कर रहे हैं तो हमारी सफलता संदिग्ध हो जाती है। अत: सफलताके आकांक्षीको क्षेत्रका चुनाव बहुत सोच-विचारकर करना चाहिये। यदि कर्म करनेवाला पूरे मनोयोगसे कार्य नहीं कर रहा है तो भी परिणाम अनुकूल होना प्राय: सम्भव नहीं होता। सफलता कर्तापर भी निर्भर करती है। कर्ताकी एकाग्रता, समर्पण तथा कर्मका वेग परिणामको प्रभावित करता है। कर्ताद्वारा प्रयोगमें लाये जानेवाले साधनोंकी महत्ता स्पष्ट है। साधन भी कर्म, देश, काल तथा परिस्थितियोंके अनुसार होने चाहिये। सब कुछ होते हुए भी यदि चेष्टाएँ न की जायँ तो परिणाम आ ही नहीं सकता है। सफलताके लिये चेष्टा आवश्यक है। कभी-कभी यह भी देखनेमें आता है कि व्यक्तिने सारी सम्भव चेष्टाएँ कीं, परंतु सफलता उसे मुँह चिढ़ाती दूर खड़ी है; क्योंकि सफलतामें दैवी विधानकी भी भूमिका होती है; दैवी विधान सफलताका पाँचवाँ कारण है—**'दैवं चैवात्र पञ्चमम्।'**

दैव, भाग्य, प्रारब्ध, योग—नाम कुछ भी हो, एक ऐसी अदृश्य शक्ति अवश्य है, जिसकी भूमिका हमारे जीवनमें होती है। कभी-कभी हम बहुत हाथ-पाँव मारते हैं, परंतु कुछ नहीं पाते और किसी समय बिना चेष्टाके ही हमारे कार्य सफल हो जाते हैं। जब पाँचवाँ कारण अनुकूल रहता है तो सफलता अल्प प्रयत्नसे ही मिल जाती है, अन्यथा हमारे प्रयत्न निष्फल होते रहते हैं।

सफलता-असफलताका चक्र जीवनमें चलता रहता है। गीता इसके प्रति हमें सम्यक् दृष्टि प्रदान करती है। हमें सम्पूर्ण चेष्टाएँ करनी चाहिये, पूरा प्रयत्न करना चाहिये। इसके बाद कर्मफलके रूपमें हमें जो भी प्राप्त होता है, उसे प्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिये। जिसे प्राप्त करनेमें प्रसन्नताका अनुभव हो, उसे प्रसाद कहते हैं, परंतु इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि हम फिर प्रयत्न नहीं करेंगे या यदि कर्ममें त्रुटि रह गयी है तो उसका सुधार नहीं करेंगे। प्रसन्नता एवं निर्लिप्तताके साथ प्रयत्न गीताके दर्शनमें समाहित है। यदि हम दु:खी एवं कुण्ठित मनसे चेष्टा करते हैं तो हमारी यात्रा अशान्तिभरी होती है। इसके विपरीत यदि हम प्रसन्नतापूर्वक प्रयत्न करते हैं तो मंजिल न मिलनेपर भी यात्रा सुखद होती है। अशान्तिके साथ प्रयत्न करनेपर मंजिल प्राप्त होनेकी स्थितिमें भी यात्रा तो अशान्ति और दु:खभरी ही होती है। अत: हमें प्रसन्नतापूर्वक पूरा प्रयत्न करना चाहिये। अपनी कोशिश पूरी हो जानेपर तुरन्त तटस्थ हो जाना चाहिये और जो भी फल हमें परमात्मा दे, उसे कृतज्ञ भावके साथ प्रसादरूपमें स्वीकार करना चाहिये।

[प्रेषक—श्रीसंपतकुमारजी झँवर]

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

अनुकूल परिस्थिति मिले, प्रतिकूल न मिले—यह इच्छा कीट-पतंगसे लेकर ब्रह्माजीतक रहती है। परिस्थिति आने-जानेवाली है। वास्तविक तत्त्व सम है।

रुपयोंसे स्वाधीनता नहीं आती, प्रत्युत पराधीनता आती है। स्वाधीनता तब आती है, जब कोई इच्छा न रहे। मनचाही बात होनेपर राजी हो गये तो यह मनकी परतन्त्रता है। सर्वथा इच्छारहित होना ही असली स्वतन्त्रता है। राज्य, सम्पत्ति, योग्यता आदि सब 'पर' है। अपने जीनेकी इच्छा भी नहीं रहनी चाहिये। भगवान्‌की चाहमें अपनी चाह मिला दे। मरनेकी इच्छा कोई नहीं करता, पर जीता कोई नहीं रहता।

दूसरेके दुःखसे दुःखी होनेपर अपने दुःखसे दुःखी नहीं होना पड़ता। दूसरेके सुखसे सुखी होनेपर 'भोग' की इच्छा नहीं रहती और दूसरेके दुःखसे दुःखी होनेपर 'संग्रह' की इच्छा नहीं रहती।

कामना मिटनेसे ममता और अहंता—दोनों मिट जाती हैं। चाहरहित मनुष्यका हृदय कोमल होता है। चाहवालेका हृदय कठोर होता है।

राजनीति नरकोंमें जानेके लिये है—तपेश्वरी, फिर राजेश्वरी, फिर नरकेश्वरी। नीतिशास्त्रसे धर्मशास्त्र और धर्मशास्त्रसे मोक्षशास्त्र श्रेष्ठ है। मोक्षशास्त्र कल्याणके लिये है।

अपने लिये कुछ नहीं करना है। सब कुछ दूसरोंके लिये ही करना है। पंचकोश कहनेका तात्पर्य यही है कि यह प्रकृतिका है, हमारा नहीं है। जप, तप, ध्यान, समाधि आदि भी अपने लिये नहीं हैं। तीनों शरीर मेरे लिये नहीं है, फिर उनसे किये गये जप, तप आदि मेरे लिये कैसे हुए?

श्रोता—भजन क्या है?

स्वामीजी—जैसे बच्चा माँके बिना, प्यासा पानीके बिना रह नहीं सकता, ऐसे ही भगवान्‌के बिना रह न सके—इसका नाम भजन है।

जैसे करोड़पतिका लड़का पितासे दस-पन्द्रह हजार रुपये माँगता है तो वह अलग होना चाहता है, ऐसे ही भगवान्‌से कुछ माँगना उनसे अलग होना है।

भगवान् ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिको, साधु-संन्यासीको नहीं मिलते, प्रत्युत 'भक्त' को मिलते हैं। बालक माँपर अधिकार अपनेपनसे करता है, तपस्या, सामर्थ्य, योग्यतासे नहीं। तपस्यासे प्रेम नहीं मिलता, शक्ति मिलती है।

वर्ण और आश्रम मर्यादा रखनेके लिये हैं, अभिमान करनेके लिये नहीं।

× × ×

निष्काम होनेसे मनुष्य मुक्त, भक्त सब हो जाता है। भगवान्‌के साथ सम्बन्ध मानें तो कामना नहीं रहेगी। भगवान्‌से भी बढ़कर संसार हमें कुछ दे सकता है क्या?

जबतक संसारमें आसक्ति है, तबतक भगवान्‌में असली प्रेम नहीं है।

आप भगवान्‌के किसी मनचाहे रूपको मान लो और भगवान्‌के मनचाहे आप बन जाओ।

× × ×

तत्त्वज्ञान होनेके बाद दास्य, सख्य आदि भाव होते हैं। ये भाव चिन्मयके साथ होते हैं, जड़के साथ नहीं। जड़में दास्य, सख्य आदि भाव होनेसे कल्याण नहीं होता।

संसारका ज्ञान होनेसे ही वैराग्य होगा। जैसे गायके शरीरमें रहनेवाला घी काम नहीं देता, ऐसे ही सीखा हुआ ज्ञान काम नहीं देता।

पहले विवेकका आदर करो फिर ज्ञान, भक्ति सब हो जायँगे। अविवेकको दूर करनेका नाम विवेक है। अज्ञानको दूर करनेका नाम ज्ञान है। शरीर 'मैं' और 'मेरा' है—यह अविवेक है। शरीरके साथ मैं-मेरेका सम्बन्ध विवेक-विरोधी सम्बन्ध है। सम्बन्ध जोड़ना अथवा तोड़ना वर्तमानकी वस्तु है और इसमें कोई असमर्थ और पराधीन नहीं है।

× × ×

आप कैसे ही हों, अभी इसी क्षण मान लें कि मैं भगवान्‌का हूँ। यह भक्ति है। इसमें जड़ता नहीं है। जबतक सुख-आराम, मान-बड़ाई आदिकी चाहना रहेगी, तबतक जड़ता रहेगी। अतः *'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न*

कोई'—ऐसा मान लें तो जो भक्ति अन्तमें है, वह अभी हो जायगी। सख्य, दास्य आदि भाव भी अभी हो सकते हैं।

गीतासे मेरा सर्वप्रथम परिचय सं० १९७२ में (बारह वर्षकी अवस्थामें) हुआ था। गीताके विषयमें कोई मुझे सिखा दे, ऐसा न कोई व्यक्ति मिला, न कोई गीताकी टीका मिली। तिलकजीने 'कर्मयोगशास्त्र' लिख दिया, पर कर्मयोग क्या है—यह रहस्य बना ही रहा। गीताके विषयमें मैं अपनेको अनजान भी नहीं मानता और पूर्ण जानकार भी नहीं मानता; क्योंकि पूर्ण जानकार मान लेनेसे आगे उन्नति रुक जायगी। इसलिये मुझे अब भी गीतामें नयी-नयी बातें मिलती हैं।

जो थोड़ेमें ही सन्तोष कर लेते हैं और अपनेको पूर्ण मान लेते हैं, वे वास्तविक तत्त्वतक कैसे पहुँच सकते हैं? सन्तोष प्रारब्धमें करना चाहिये, नये कर्म अथवा साधनमें कभी नहीं। अल्पमें सन्तोष मत करो। जीवन्मुक्त मत बनो।

× × ×

जिस विषयमें कुछ जानते हैं, वहाँ 'विवेक' लगता है। जिस विषयमें कुछ भी नहीं जानते, वहाँ 'श्रद्धा' लगती है। शरीर बदल गया, पर मैं वही हूँ—इसमें विवेक काम करेगा। शरीरके साथ सम्बन्ध मानना अविवेक है। अविवेकपूर्वक जोड़ा गया सम्बन्ध तत्काल मिटता है। अविवेकको मिटाये बिना साधन शुरू ही नहीं होगा। अविवेकको मिटानेसे तत्काल सिद्धि होती है। विवेकका आदर न करनेका नाम 'अविवेक' है। विवेकका आदर करनेसे सभी साधन सुगम हो जायँगे।

भगवान् मेरे हैं—यह श्रद्धा है। भक्ति श्रद्धाप्रधान है। तात्पर्य है कि भक्तिमें विवेक होते हुए भी श्रद्धाकी प्रधानता है। कोई भी साधन विवेकके बिना नहीं है। विवेक तत्काल होता है, इसका टुकड़ा नहीं होता।

भगवान्में श्रद्धा करो और संसारका त्याग करनेमें विवेक लगाओ।

× × ×

परमात्मप्राप्तिकी अभिलाषा कम है, इसलिये यह कठिन दीख रही है। विचार करनेसे कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों सुगम दीखते हैं। गीतामें कर्मयोग और भक्तियोगको ज्ञानयोगकी अपेक्षा सुगम बताया गया है। रामायणमें ज्ञानको समझना सुगम और भक्तिका मार्ग सुगम बताया है[1] तथा ज्ञानका मार्ग कठिन और भक्तिको समझना कठिन बताया है।[2]

शालग्राम भगवान् हैं—यह समझना बड़ा कठिन है, पर श्रद्धा-विश्वास कर सकते हैं। अतः भक्तिमें समझना कठिन है, पर श्रद्धा-विश्वास करना सुगम है।

ज्ञानयोगमें पहले देहाभिमानका त्याग करना है। जीव, जगत् और ब्रह्मको बुद्धिका विषय बनायेंगे तो ज्ञानयोग कभी सिद्ध नहीं होगा।

प्रत्येक साधकके लिये खास बाधा है—सुख-लोलुपता। सुखासक्तिका त्याग किये बिना प्रत्येक साधन कठिन पड़ेगा।

कल्याण सुगमतासे, शीघ्र और हरेकका हो जाय—इसका मैं पक्षपाती हूँ, साधन चाहे कोई भी हो।

गीतामें सांख्ययोगसे कर्मयोगको श्रेष्ठ बताया गया है—**'तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते'** (गीता ५।२) और कर्मयोगसे भक्तियोगको श्रेष्ठ बताया है—**'श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः'** (गीता ६।४७)। ज्ञानयोग तथा कर्मयोग लौकिक हैं, भक्तियोग अलौकिक है। ज्ञान कठोर है, भक्ति बहुत कोमल है।

भगवान् कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९।३०)

'अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी भी अनन्य भक्त होकर मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।'

'अनन्यभाक्' का अर्थ है—अनन्य आश्रय। पतिव्रताकी तरह एकका ही आश्रय हो—***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'***। **'साधुरेव स मन्तव्यः'**—यह प्रभुसम्मत वाक्य है। अब एक परमात्माको ही प्राप्त करना है—यह **'सम्यग्व्यवसितो हि सः'** है।

१. 'निर्गुन रूप सुलभ अति' (मानस, उत्तर० ७३ ख)।
'कहहु भगति पथ कवन प्रयासा' (मानस, उत्तर० ४६।१)।
२. 'ग्यान पंथ कृपान कै धारा' (मानस, उत्तर० ११९।१)।
'सगुन जान नहिं कोइ'(मानस, उत्तर० ७३ ख)।

हमें दुःख क्यों होता है ?

(डॉ० श्रीरमेशमंगलजी वाजपेयी)

मनुष्यका सहज और महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, हमें शोक (दुःख) क्यों होता है ? प्रायः इसके स्वाभाविक उत्तर भी प्राप्त होते हैं। यथा—१. प्रतिकूलता प्राप्त होनेके कारण, २. अभावकी स्थितिके कारण, ३. मनके कारण, ४. कर्मके कारण अथवा ५. ईश्वर ही सुख-दुःखका दाता है—इस मान्यताके कारण। इनमें प्रथम तीन उत्तर मूल उत्तरके परिणामी-अंश हैं। चतुर्थ उत्तर, कर्मके कारण दुःख होता है और कर्मसे ही भाग्यका निर्माण होता है—यह व्यावहारिक पक्ष है। अन्तिम उत्तर, ईश्वरको सुख-दुःखका दाता मानकर उनपर आरोप लगाना है; जबकि ईश्वर न किसीको सुख देता है और न दुःख। ये सुख-दुःख तो अपने कर्मोंके अनुसार ही प्राप्त होते हैं। मानसमें उद्धृत है—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

उक्त पंक्तिके सापेक्ष लोग मानसकी अन्य पंक्तिको भी कहते हैं—

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥

और इस पंक्तिके अनुसार ईश्वरको ही सुख-दुःखकी स्थितियोंको देनेवाला ठहराते हैं; जबकि इसके गूढ़ार्थको अनदेखा कर दिया जाता है। प्रभुने सत् और असत्‌की रचना अपनी इच्छा-शक्तिसे कर रखी है। यह मनुष्यके विवेकपर निर्भर है कि वह किसे ग्रहण करे। मानव कर्ममें स्वतन्त्र है। कर्मोंके तदनुरूप फल हैं, जो जन्म-जन्मान्तरमें शेष होते हैं; यथा गीतामें कहा गया है—

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥

(गीता १३। २१)

अर्थात् प्रकृतिमें स्थित हुआ ही पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न हुए त्रिगुणात्मक सब पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका संग ही इस जीवात्माके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेमें कारण है।

स्पष्ट है, यहाँ ईश्वर अपनी इच्छासे अच्छा-बुरा फल नहीं दे रहा है; बल्कि उसने तो कर्मका विधान रच रखा है। अच्छे कर्मका अच्छा और बुरे कर्मका बुरा फल और कर्मोंके शेष फलोंका यथा अवसर समायोजन, यही विधान प्रभुने रच रखा है। यही ***'होइहि सोइ जो राम रचि राखा'*** का अभिप्राय है। यही शाश्वत सत्य है, शोक मनकी अनुभूति है। दूसरे शब्दोंमें शोक सांसारिक मनका विकार है। शोकसे सभी बचना चाहते हैं। कुरुक्षेत्रमें स्थित अर्जुनका प्रारम्भिक प्रश्न भी यही है—

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥

(गीता १। २९)

अर्थात् 'हे कृष्ण! (इस युद्धकी इच्छावाले खड़े हुए स्वजन समुदायको देखकर) मेरे अंग शिथिल हुए जाते हैं और मुख सूखा जाता है तथा मेरे शरीरमें कम्प एवं रोमांच भी होता है।' महान् शोककी अवस्थामें ऐसे ही शारीरिक लक्षण होते हैं। शोक व्यक्तिको दुर्बल बना देता है। उसमें दीनता, अवसाद और कायरता आ जाती है। उसे अपने कर्तव्य-अकर्तव्य (धर्म)-का ज्ञान नहीं रह जाता और उसका धैर्य नष्ट हो जाता है। दुर्बल मन विवेककी सतहका स्पर्श नहीं कर पाता। मन और विवेकके मध्य मोहका सुदृढ़ आवरण आड़े आता है। प्रबल विकारी आवेगोंके कारण मन घोर संशयमें पड़कर अपना धैर्य भी खो देता है। ऐसा व्यक्ति आत्महन्तातक बन जाता है। कुछ ऐसा ही विचार अर्जुनके मनमें भी आया था—

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥

(गीता १। ४६)

अर्थात् यदि मुझ शस्त्ररहित, सामना न करनेवालेको धृतराष्ट्रके शस्त्रधारी पुत्र रणमें मारें, तो वह मरना भी मेरे लिये अति कल्याणकारी होगा।

इतना ही नहीं, मोहजन्य शोकसे ग्रस्त प्राणी ईश्वरको भी क्षमा करनेको तैयार नहीं होता। श्रीरामचरितमानसमें वर्णित है कि राजा शीलनिधिकी कन्याको न प्राप्त कर सकनेके कारण महर्षि नारदने भगवान् विष्णुपर पर्याप्त क्रोध किया था। सम्बन्धित प्रसंगकी मानस-पंक्ति है—

देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥

शोकका कारण—तत्त्व-ज्ञानका बोध न होनेपर

अथवा उसकी विस्मृति होनेसे उत्पन्न मोह ही शोकका मूल कारण है। संसारमें जिसे हम अपना मानते हैं, उसके प्रति स्वाभाविक मोह उत्पन्न हो जाता है। सांसारिक मनकी यह मूल प्रवृत्ति है। तत्त्व-ज्ञानके अभावमें वह असत् (नाशवान्) सांसारिक विषय-वस्तुओंमें आसक्त हो जाता है। मोहमय मन अपने मोह-पात्रका संग चाहता है। इस मोहमें आसक्ति और कामना प्रमुख रूपसे विद्यमान रहती हैं। कामना प्रथमतः उन विषयोंके और अधिक संग रहने या भोगनेके लोभसे अतृप्त रहती है। अनन्तर काम्यको प्राप्त करने अथवा उसे अन्ततक साथ बनाये रखनेका प्रयास प्रारम्भ होता है। ऐसेमें विषयोंकी आपूर्ति न होने (विघ्न पड़ने)-पर क्रोध उमड़ता है। क्रोधसे मूढ़ता और अन्तमें शोक (दुःख)-की प्राप्ति होती है। यथा श्रीरामचरितमानसमें 'नारद-अभिमान' या 'नारदमोह'-का प्रसंग है। जिसमें सर्वप्रथम अभिमानकी जागृति है—

तब नारद गवने सिव पाहीं। जिता काम अहमिति मन माहीं॥

× × ×

करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी॥

अनन्तर, महर्षि नारद जब राजा शीलनिधिकी कन्या विश्वमोहिनीकी हस्त-रेखा देखते हैं (सांनिध्य पाते हैं), तो उनकी अभिमानजन्य आसक्ति जाग्रत् होने लगती है। वे सोचते हैं कि मेरा तपोबल सर्वोच्च है, अतः मैं राजकन्याका वरण करनेका अधिकारी हूँ।

इस आसक्तिसे नारदजीके मनमें काम-भाव पुष्ट होने लगा। अतः नारदजीके अब सारे प्रयास राजकन्याके वरण-लोभसे सम्पन्न होने लगे। किंतु नारदजीके गलत दिशामें किये गये सारे प्रयास व्यर्थ हो गये और निराश मनकी बड़ी दीन-हीन दशा होती है। प्रतिपल विकलता और शोक होता है। नारदजीकी भी ऐसी ही स्थिति थी—

मुनि अति बिकल मोहँ मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी॥

काम-विघ्नसे शोक होता है, साथ ही अभिमानके कारण विघ्नकर्तापर क्रोध भी आता है। नारदजीको इस शोकपूर्ण स्थितिमें लानेवाले (उनके काम-भावमें विघ्नकर्ता) और कोई नहीं, स्वयं उनके प्रभु श्रीविष्णु हैं, जिन्होंने नारदजीको अपना रूप न देकर कामप्रधान कपिका रूप दे दिया, जिसके कारण नारदमुनि विश्वमोहिनीका वरण न कर सके। काममें विघ्न पड़ते ही महर्षि नारदको

प्रचण्ड क्रोध हुआ। क्रोधमें अविवेक (मूढ़भाव) और अविवेकसे स्मरण-शक्ति भ्रमित हो जाती है; जिसके कारण व्यक्ति अनर्गल परुष वचन बोलने लगता है। यही नारदजीने किया। वे अपने प्रभु श्रीविष्णुको दुर्वचन कहने लगे।

अनन्तर प्रभुकी कृपासे जब नारदजीका चित्त शान्त हुआ, तो वे अत्यन्त शोकमें निमग्न हो गये।

मोहसे उत्पन्न होनेवाले दुःखप्रद आवेगोंमें तीन-आवेग प्रमुख हैं—काम, क्रोध एवं लोभ। यदि इन तीनों आवेगोंपर नियन्त्रण किया जाय, तो मोह स्वतः शान्त हो जाता है। गीतामें इन तीनोंको नरकका द्वार कहा गया है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

(गीता १६। २१)

अर्थात् 'काम, क्रोध तथा लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका नाश करनेवाले हैं अर्थात् अधोगतिमें ले जानेवाले हैं, जिनसे केवल दुःख ही प्राप्त होता है। अतः इन तीनोंको त्याग देना चाहिये।'

श्रीगीता (२। ६२-६३)-में स्पष्ट कहा गया है कि विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है और आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है। कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधसे संमोह (मूढ़भाव या अविवेक) उत्पन्न होता है और संमोहसे स्मृति-विभ्रम होता है। स्मृतिके भ्रमित हो जानेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञान-शक्तिका नाश हो जाता है और बुद्धिके नष्ट हो जानेसे पुरुष अपने स्थानसे गिर जाता है अर्थात् शोकपूर्ण स्थितिको प्राप्त होता है—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

अभिमानके धरातलपर मोह ही शोकका कारण है। अतः सब प्रकारके अभिमानका सर्वथा त्याग और सभी मोहपात्रोंपर ममत्वका अभाव—ये ही दो शोकसे बचनेके परम उपाय हैं। किंतु यह तभी हो सकता है, जब मनुष्यको प्रतिपल तत्त्व-ज्ञानका स्मरण रहे और वह भी प्रभुके अनन्यशरण होकर। यथा—मोह-जनित शोकसे पीड़ित होकर कुन्ती-पुत्र अर्जुन अपने प्रभु श्रीकृष्णसे पूछते हैं—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

(गीता २।७)

अर्थात् 'हे मधुसूदन! कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला और धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ, जो कुछ निश्चय किया हुआ कल्याणकारक साधन हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझे शिक्षा दीजिये।'

अनन्तर, शोक-निवारणके कल्याणकारी सदुद्देश्यसे भगवान् श्रीकृष्णने तत्त्व-ज्ञानका उपदेश किया। वे ही अमृत-वचन गीताके रूपमें हैं। सत् और असत् वस्तुका ज्ञान रखनेवाले कभी मोह अथवा मोहजन्य शोकको प्राप्त नहीं होते; क्योंकि वे जानते हैं कि असत् (नाशवान्) वस्तुका तो अस्तित्व ही नहीं है; फिर उसे खोनेका क्या शोक करना? इसीके सापेक्ष सत् (अविनाशी) वस्तुका कोई अभाव नहीं है; फिर उसके न मिल पानेकी चिन्ता कैसी? यथा—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(गीता २।१६)

आत्मा नित्य (सत्) और शरीर अनित्य (असत्) है तथा शरीरसे सम्बन्धित विषयभोग, सम्बन्ध (रिश्ते), सम्पत्ति, एषणाएँ एवं जगत् भी अनित्य (असत्) है, किंतु प्राणी शरीरको अपना मानकर अपने शरीरसे सम्बन्धित उक्त सभीका चिन्तन करता है; जो नाशवान् एवं क्षणभंगुर हैं। आत्मा कभी नहीं मृत होता, अपितु जैसे कुमार, युवा और जरा-अवस्थारूप स्थूल शरीरका विकार अज्ञानसे आत्मामें भासता है, वैसे ही एक शरीरसे दूसरे शरीरको प्राप्त होना रूप, सूक्ष्म-शरीरका विकार भी अज्ञानसे ही आत्मामें भासता है। इसलिये इस रहस्यको जाननेवाला (तत्त्वज्ञानी) स्थूल शरीरके मृत होनेपर न तो शोक करता है और न इस विषयमें मोहित होता है।

जगत्में मनुष्य अपने शरीर, माता-पिता, बन्धु, सन्तान, पत्नी, धन, सम्पत्ति, भवन-भूमि, सुहृद्-मित्र और परिवार आदिको अपना और कभी न छूटनेवाला मानकर उनपर ममत्व (अपनापन) प्रदर्शित करता है। यह ममता (मोह) ही शोकका कारण है। इससे बचनेके लिये युगसन्त श्रीरामकृष्ण परमहंसके विचार हैं कि 'इस जगत्में इस प्रकार रहो, जैसे किसी बड़े महलमें कोई दासी रहती है। वह महलके सभी सदस्योंके प्रति यथोचित कर्तव्यका निर्वाह बड़े प्रेमसे करती है। सभी उसे अपना मानते हैं; किंतु दासीके मनमें सदैव यह बात रहती है कि वह उस महलकी दासी है और कभी भी उसे उस घरको छोड़ना पड़ सकता है।' श्रीरामचरितमानसमें एतदर्थ प्रभु श्रीराम कहते हैं—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥

सभीके ममत्वको प्रभु-चरणोंसे जोड़ दो। मेरा कुछ है ही नहीं, जो कुछ है ईश्वरकी इच्छा-सृष्टि है। ऐसा सुनिश्चितकर स्थायी रूपसे ईश्वरकी शरण होनेसे उपर्युक्त सभीका वियोग (हानि, मृत्यु और अपयश भी) सहन हो जायगा तथा धैर्यके कारण शोक भी न होगा। इसी प्रकार गीता (१८।६६)-में प्रभु श्रीकृष्ण कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

अर्थात् 'सर्वधर्मों (सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रय)-को त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्माकी ही अनन्यशरणको प्राप्त हो। मैं तेरेको सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।'

इस प्रकार जो तत्त्ववेत्ता नहीं हैं, उनके लिये शोकसे बचनेहेतु 'प्रभुकी अनन्यशरण में जानेको' सरल उपाय कहा गया है। 'अनन्यशरणमें जाने' से तात्पर्य है—लज्जा, भय, मान, बड़ाई और आसक्तिको त्यागकर तथा शरीर एवं संसारमें अहंता-ममतासे रहित होकर केवल एक परमात्माको ही परम आश्रय, परम गति और सर्वस्व समझना तथा अनन्यभावसे अतिशय श्रद्धा-भक्ति और प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवान्के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूपका चिन्तन करते रहना एवं भगवान्का भजन-स्मरण करते हुए ही उनके आज्ञानुसार (शास्त्रोक्त) कर्तव्य-कर्मोंका निःस्वार्थ भावसे केवल परमेश्वरके लिये आचरण करना।

शोकनिवारणार्थ प्रभुकी 'अनन्यशरण' प्रमुख है। इससे मोह और अभिमानका विनाश होता है। आत्मादिक तत्त्व-बोध प्रभुकी अनन्यशरणमें जानेका मार्ग निर्मित करता है और तत्त्व-ज्ञान सत्संगके नियमित सेवनकी अपेक्षा रखता है; क्योंकि—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

(रा०च०मा० ७।६१)

बिना मोहको भगाये प्रभुकी अनन्यशरणमें जाना असंभव है और मानसिक सुख केवल प्रभुकी अनन्यशरणमें ही है। दुनियाके सम्बन्ध तो नदीमें तैरते फूलके समान हैं, जो कभी संयोगसे परस्पर मिल जाते हैं; किंतु काल (लहरों)-की थपेड़ उन्हें कभी-न-कभी विलग अवश्य कर देती है—यही सत्य है, फिर कैसी चिन्ता? कैसा मोह? और किसीके वियोगमें शोक भी क्यों? चिन्ता करें सत्कर्मकी, मोह करें परमेशके सुन्दर स्वरूपका और शोक करें अपने दुश्चरित और परमेशको न भजनेका—इसीमें कल्याण है।

श्रीमद्भागवतमें सभी भागवत

(श्रीकपिलदेवजी तैलंग, एम०ए०, बी०एड०, साहित्यरत्न)

भगवदवतार श्रीवेदव्यासजीने सत्रह पुराणोंकी रचनाके पश्चात् भी जब आत्मतोष प्राप्त नहीं किया तो उन्होंने देवर्षि नारदजीके उपदेशसे भगवच्चरित्रगानके लिये श्रीमद्भागवतपुराणकी रचनाकर अपने मनस्तापको परिशान्त किया और पूर्ण संतोष प्राप्त किया।

श्रीमद्भागवतपुराण श्रीकृष्ण और उनके भक्तोंसे सम्बन्धित पुराण है। यह समस्त पुराणोंका हृदय है—ऐसा सन्तजन मानते हैं।

भागवतकी शाब्दिक व्युत्पत्ति भी **'भगवतः इदम् भागवतम्'** अर्थात् भगवान्से सम्बन्ध रखनेवाले जनोंका यह पुराण निश्चित होता है। जो भगवदीय हैं—वे ही भागवत हैं और भागवत उन भगवदीयोंका—भगवज्जनोंका पुराण है, इसीलिये तो भागवतमें सभी भागवत हैं।

पाण्डवगीतामें परमभागवतोंका स्मरण करते हुए कहा गया है—

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक-
व्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन्
पुण्यानिमान् परमभागवतान् नमामि॥

श्रीमद्भागवतमें इन भागवतोंका लीलाचरित वर्णित किया गया है। अतः भागवत भक्तोंका अत्यन्त समादरणीय पुराण है। भगवान् व्यास तो भगवान्के अवतार ही हैं। समस्त पुराण, महाभारत, ब्रह्मसूत्र, व्यासस्मृति आदि वेदव्यासजीकी ही कृतियाँ हैं। यदि व्यासजी कृपा नहीं करते तो इतने आर्षग्रन्थोंसे हमारी संस्कृति विहीन रह जाती।

भागवतके परम गायक श्रीशुकदेवजी तो भागवतशिरोमणि, वीतराग, परमहंस, अवधूतवेशधारी, परम आराध्या राधारानीसे दीक्षित तथा भागवतको अमृतद्रवमें परिणत करनेवाले परम योगी-विरागी हैं। उनके विषयमें वर्णित है—

तत्राभवद्भगवान् व्यासपुत्रो
यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः।
अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो
वृतश्च बालैरवधूतवेषः॥*

(श्रीमद्भा० १।१९।२५)

जो गोदोहनमात्र ही एक स्थानपर ठहरते थे, किंतु भागवतकथामें निरन्तर लीन रहे। ऐसे थे श्रीमद्भागवतके प्रवक्ता श्रीशुकदेवजी।

भागवतके श्रोता भी परमभागवत। अभिमन्युपुत्र परीक्षित्, जिनकी जनयित्री थीं देवी उत्तरा। वंश-परम्परा भी परमभागवत। अर्जुन श्रीकृष्णके सखा एवं शिष्य, जिन्हें भगवान्ने अपना विराट् स्वरूप दिखाया।

पाण्डवोंकी माता कुन्ती भी परमभागवत, जिन्होंने विचित्र वरदान माँगा—

विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

(श्रीमद्भा० १।८।२५)

और उत्तरा, जिनके उदरमें पाण्डवोंका वंशबीज पल रहा था, किंतु द्रौण्यस्त्र-विप्लुष्ट उस शिशुको भगवान्ने स्वयं उत्तराके उदरमें प्रविष्ट होकर ब्रह्मास्त्रसे संरक्षित किया। उस गर्भस्थ शिशुने श्रीकृष्णकी झाँकी देखी, जन्मके पश्चात् इनके दर्शनके लिये '**परितः ईक्षण**' के कारण वे परीक्षित् कहलाये। वे भी परमभागवत हुए, जिन्हें शुकदेवजी-जैसे परमज्ञानीने भागवतकथा श्रवण करायी। उत्तराके गर्भमें प्रविष्ट होकर भगवान् भी परीक्षित्के सहोदर-जैसे बने।

प्रह्लाद परमभागवतोंमें अग्रणी रहे, जिन्होंने दैत्यकुलमें उत्पन्न होते हुए भी स्तम्भमेंसे भगवान्को प्रकट कर दिखाया।

नारदजी भी परमभागवत हैं। जन-जनको भगवान्की भक्तिमें संलग्न करनेका मानो उन्होंने बीड़ा ही उठा लिया। उनके लिये कहा गया है—

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत्॥

(श्रीमद्भा० १।६।३९)

अहा! ये देवर्षि नारद धन्य हैं; क्योंकि ये शार्ङ्गपाणि भगवान्की कीर्तिको अपनी वीणापर गा-गाकर स्वयं तो आनन्दमग्न होते ही हैं, साथ-ही-साथ इस त्रितापतप्त जगत्को भी आनन्दित करते रहते हैं।

वे स्वयं अपने बारेमें बताते हुए कहते हैं कि मैं तीनों लोकोंमें बिना रोक-टोकके विचरण किया करता हूँ और भगवत्प्रदत्त स्वरब्रह्मसे विभूषित वीणाद्वारा भगवान्का यशोगान करता रहता हूँ—'**देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम्। मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम्॥**' (श्रीमद्भा० १।६।३३)

उद्धवजी तो महाभागवत हैं ही। जैसा कि विदुरजीने कहा है—'**तत्रोद्धवं भागवतं ददर्श॥**' (श्रीमद्भा० ३।१।२४) वे बृहस्पतिके परम शिष्य और श्रीकृष्णके परम सखा थे—'**बृहस्पतेः प्राक् तनयं प्रतीतम्।**' भगवान्ने स्वयं कहा है—'**नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः**' वे मुझसे अणुके बराबर भी न्यून नहीं हैं। (श्रीमद्भा० ३।४।३१)

अन्तमें परमभागवतोंकी श्रृंखलामें अन्य सभी भक्तोंको प्रणाम करते हुए राजा अम्बरीषकी भक्तिपद्धतिका वर्णन करना परम आवश्यक है। वे सप्तद्वीपवती पृथ्वीका परिपालन करते हुए भी राजा जनककी भाँति निरपेक्ष थे। भगवान् भी जिनके लिये स्वयंको भक्तोंके अधीन घोषित कर देते हैं—'**अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।**' वे भगवान्की तनुजा सेवा किया करते थे—'**करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु**' अपने हाथोंसे मन्दिरकी स्वच्छता करते थे। उनका मन कृष्णचरणोंमें, वचन कृष्णकीर्तनमें, कान भगवत्कथा-श्रवणमें, नेत्र भगवद्दर्शनोंमें और नासिका कृष्णचरणोंमें समर्पित तुलसी-गन्धके आघ्राणमें लगी रहती थी। अतः सब प्रकारसे यह सिद्ध होता है कि भागवतमें सभी भागवत हैं।

---

* उसी समय पृथ्वीपर स्वेच्छासे विचरण करते हुए, किसीसे कोई अपेक्षा न रखनेवाले व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजी महाराज वहाँ प्रकट हो गये। वे वर्ण अथवा आश्रमके बाह्य चिह्नोंसे रहित एवं आत्मानुभूतिमें सन्तुष्ट थे। बच्चों और स्त्रियोंने उन्हें घेर रखा था। उनका वेष अवधूतका था।

संत-उद्बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधक महानुभाव! अपने लक्ष्यकी प्राप्तिसे निराश हो जाना साधककी सबसे बड़ी भूल है। इस भूलके दो कारण होते हैं—एक तो साधक उसमें जो आंशिक गुण होते हैं, उनका अभिमान कर लेता है, यानी जब उसे यत्किंचित् साधन करते रहनेपर भी लक्ष्यकी प्राप्ति नहीं होती तो वह सोचने लगता है कि भगवान् सब किसीको थोड़े ही मिल जाते हैं। वे तो लाखोंमें किसी बिरले बड़भागीको ही मिलते हैं। चलो, अपनेको तो जितना लाभ हो गया, वही ठीक है। अनेकोंसे तो मैं अच्छा ही हूँ।

इस प्रकार अनेक साधक आंशिक गुणोंके आधारपर ही सन्तोषकर बैठ जाते हैं और साधनमें शिथिलता ले आते हैं। नहीं तो गुणोंके आधारपर साध्यकी प्राप्तिसे निराश हो जाना कोई समझदारीकी बात नहीं है।

आंशिक गुण तो कमोबेश सभीमें होते हैं, पूर्ण दोषी तो संसारमें कोई भी नहीं हो सकता। बल्कि विचारकर देखनेसे तो ऐसा मालूम होता है कि सभी मनुष्योंमें सभी गुण मौजूद हैं, अलबत्ता दोषोंके कारण वे दबे हुएसे रहते हैं।

यदि मनुष्य अपने दोषोंका परित्याग कर दे, तो गुण कहींसे लाने नहीं पड़ेंगे, वरन् दोषोंके मिटते ही स्वतः चमक उठेंगे। इस दृष्टिसे गुणोंका अभिमान करना तो वृथा ही है।

साधक जब साधन करते-करते थक जाता है और उसे सफलता नहीं मिलती, तो वह सोच बैठता है कि अरे भाई! मेरे-जैसे साधारण प्राणीको भगवत्प्राप्ति कैसे हो सकती है! जब बड़े-बड़े योगी हजारों वर्षोंतक प्रयत्न करके भी जिसको नहीं पा सके तो हम कलियुगी जीव भला कैसे पा सकेंगे! यह भी साधककी एक भूल ही है, नहीं तो अपने साध्यकी प्राप्ति तो मनुष्यका जन्मसिद्ध अधिकार है।

यदि भक्ति चाहते हो तो अपने जाने हुए असत्का त्याग करो। भक्ति भक्तके लिये तो रसरूप है ही, भगवान्के लिये भी रसरूप है। भक्ति स्वतन्त्र इसलिये है कि जगत्का आश्रय उसे नहीं चाहिये। भगवान्से भी उसे कुछ नहीं चाहिये।

भोगकी प्राप्तिका निकटतम काल जो होता है, वह बड़ा ही सुखकर प्रतीत होता है। परंतु सुखभोगसे शक्तिका ह्रास होता है, भोगसे अरुचि होती है और पराधीनताका जन्म होता है। मानवमें रसकी माँग है। रसके तीन स्रोत हैं—१-निष्कामतासे उदित शान्तरस, २-असंगतासे उदित अखण्डरस और ३-आत्मीयतासे उदित प्रियताका रस।

आत्मीयताको स्वीकार करनेपर प्रभुके लिये प्रियता उत्पन्न होती है। प्रियकी स्मृति अपने-आप आती है। इसीका नाम है भजन। भक्ति एक रस है, जो प्रियतासे उदित होता है। प्रियता आत्मीयतासे और आत्मीयता श्रद्धा और विश्वाससे होती है।

अतः श्रद्धा-विश्वासपूर्वक प्रभुसे आत्मीयता स्वीकार कर लेनेपर भक्तिका उदय होना स्वाभाविक है। भक्तिका वैधानिक उपाय है—निर्ममता, निष्कामता और आत्मीयता।

वैसे यह प्रभुकी मौज है कि किसीको किसी भी प्रकारसे अपनी भक्ति दें। यह तो उनकी बात हुई। साधककी ओरसे वैधानिक उपाय है—निर्ममता, निष्कामता और आत्मीयता अथवा अपनी असमर्थताके परिचयमें सर्वसमर्थकी महिमामें आस्था एवं उनपर निर्भरता।

साधकको अपने साध्यसे भिन्न जो भी दिखायी दे, उसे न तो अपना माने, न अपने लिये माने और न ही उसके पाने तथा बने रहनेकी कामना ही करे। कारण, अपना माननेसे उसमें ममता हो जायगी जो कि सभी दोषोंकी जननी है।

अपने लिये माननेसे भोग-वासनाओंका उदय होगा यानी उससे सुख-प्राप्तिकी आशा जगेगी और उनकी कामना करनेसे चित्तमें उनका चिन्तन होगा तथा उनको पानेके लिये सकाम कर्मोंमें प्रवृत्ति होगी। यदि सही करनेसे उनकी प्राप्ति नहीं होगी तो अज्ञानवश हमलोग गलत भी करने लग जायँगे। गलत करनेमें प्रधान हेतु कामना ही होती है।

प्रारब्धवश जो भी अपनेको मिला हो उसका, अपने साध्यके नाते वस्तु मिली हों तो उनका सदुपयोग करे और व्यक्ति मिले हों तो उनकी सेवा करे। बदलेमें उनसे किसी प्रकारके भी सुखकी आशा न करे और न ही उनका चिन्तन करे। यदि अपने-आप उनका चिन्तन होता हो तो उस चिन्तनका समर्थन तथा विरोध न करे, वरन् उससे असहयोग करे, यानी उस होनेवाले चिन्तनसे सम्बन्ध-विच्छेद कर ले।

जब वस्तु-व्यक्तिसे सम्बन्ध ही नहीं रहेगा तो कुछ कालमें चिन्तन अपने-आप बन्द हो जायगा। चिन्तनका कारण उनसे सम्बन्ध बनाये रखना ही है।

साधकको चाहिये कि वह अपने साध्यको अपना माने, उसमें आस्था और आत्मीयता करे तथा उसकी महिमामें विश्वास करे, जिससे उसकी प्रीति जाग्रत् होगी। फिर प्रेमास्पदका चिन्तन करना नहीं पड़ेगा, स्वतः होगा, बल्कि छोड़नेसे भी नहीं छूटेगा ॐ आनन्द!

इक्कीसवीं शताब्दी और श्रीमद्भगवद्गीता

(श्रीगोपीकृष्णजी डालमिया)

गीता साक्षात् श्रीभगवान्‌की वाणी है, जो धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें कर्तव्यपथसे च्युत हो रहे मोहग्रस्त अर्जुनको पुनः कर्तव्यमार्गपर लानेके लिये निःसृत हुई थी और तबसे पता नहीं कितनी पीढ़ियोंने अपने संशयके क्षणोंमें श्रीमद्भगवद्गीतासे जीवनकी राह पायी है। ये उपदेश आज भी प्रासंगिक लगते हैं। आज सारा संसार ही कुरुक्षेत्र बन गया है; विषम परिस्थितियों, परेशानियों और मार्गमें बाधाओंके पहाड़ देखकर लाखों-करोड़ों युवक-युवतियोंको पसीना आ रहा है, उनके हाथोंसे धनुष-बाण छूट रहे हैं। उत्साहहीनता और निराशाके कारण कइयोंने तो घुटने टेक दिये हैं। ऐसे निराश, हताश, परेशान और घबराये हुए व्यक्तिरूपी अर्जुनको ललकारते हुए श्रीकृष्णजी कहते हैं—हे अर्जुन! उठो और संघर्ष करो। '**तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।**'

ऐसे भी अनेक लोग हैं, जिन्होंने जटिल परिस्थितियोंके कारण जीवनकी कँटीली राहोंपर—गलत पथपर चलनेका निर्णय ले लिया है।

श्रीकृष्ण कहते हैं—अन्धी वासनाओंद्वारा धकेले जाने-वाले मार्गपर मत चलो। ज्ञानको—विवेकको अपना सारथी बनाओ और सत्कर्मकी राहपर चलो। ऐसे भी लोग हैं, जो जीवनभर मित्रों, सम्बन्धियोंके लिये खटते रहे—कष्ट उठाते रहे, लेकिन अपना काम निकल जानेके बाद वे सम्बन्धी अब उन्हें पूछते भी नहीं। कृतघ्नताके इस आघातसे व्यक्ति पीड़ित है, उसे क्रोध आता है। ऐसे लोगोंके लिये भगवान् कहते हैं जो तुमने किया बहुत अच्छा किया, गलत यह किया कि फलकी आशा की। कर्म करो, परंतु फलकी आशा मत करो। फलकी आशा की तो बहुत दुःखी होना पड़ेगा।

आज संसारमें बाजारवादकी हवा बह रही है। गलाकाट प्रतिस्पर्धा चल रही है। जीवित रहनेके लिये मनुष्यको संघर्षका सामना करना पड़ रहा है।

कुछ समझमें नहीं आता कि शिखरतक पहुँचनेकी होड़में मनुष्य कौन-सा उपाय करे? श्रीकृष्ण कहते हैं, अपनी प्रकृतिके अनुसार अपने कार्यक्षेत्रका चयन करो। सम्पूर्ण युक्ति, भक्ति और शक्तिके साथ उसमें जुट जाओ, परंतु साथ ही ईश्वरपर आस्था रखो। ईश्वरको अपना सारथी बनाओ। वे तुम्हें इतनी सद्‌बुद्धि और इतना साहस देंगे कि तुम स्वयं मँझधारमें फँसी हुई अपनी नावको बाहर निकालकर अपने गन्तव्यतक पहुँच जाओगे। यह बौद्धिक शक्तिका युग है। कृष्ण बुद्धिबलको दिव्य प्रकाश मानते हैं। उन्होंने केवल बुद्धिबलके सहारे, अपनी प्रज्ञा एवं चतुराईके बलपर बिना कोई शस्त्र उठाये, पाण्डवोंको महायुद्धमें विजय दिलायी। युद्धमें विजयके लिये श्रेष्ठतम शस्त्रोंके साथ-साथ तीक्ष्ण बुद्धि भी आवश्यक है।

इसलिये अपने-अपने क्षेत्रके लिये आवश्यक श्रेष्ठतम ज्ञान अर्जित करो। इक्कीसवीं शतीका यह संसार बहुत भौतिकवादी हो गया है। पश्चिममें आयी कामवासनाकी बाढ़में सभी सभ्यताएँ डूबती जा रही हैं। वासना और नग्नताका नृत्य हो रहा है। काम बुरा नहीं है। भारतमें कामको शिव माना गया है। धर्मके अविरुद्ध कामको भगवान्‌ने अपनी विभूति बताया है। वह सृष्टिका मूल है। काम जीवनके चार पुरुषार्थोंमें एक है, परंतु कामकी एक मर्यादा है। नदी तभी पूजनीय होती है, जब वह अपनी सीमामें रहे, अपनी मर्यादामें बहे। कामान्धता विवेकको नष्ट कर देती है। इसलिये कृष्ण कहते हैं—इन्द्रियोंके अश्वोंकी लगाम कसकर थामो, अन्यथा सफलताके शिखरपर पहुँचकर भी पतनके गर्तमें गिरनेमें देर नहीं लगेगी। भारतका दर्शन पलायनका दर्शन नहीं है। यह विजयका और ऐश्वर्य भोगनेका दर्शन है, परंतु विजय तो तभी प्राप्त होगी, जब हम कर्मसे भागेंगे नहीं। ऐश्वर्य तो तभी प्राप्त होगा, जब हम संघर्षसे मुँह मोड़ेंगे नहीं। कृष्ण स्वयं बाँसुरी बजाते थे। उनकी बाँसुरीकी मधुर तान सुनकर गोपियाँ-गोपाल सभी थिरकते आते थे। श्रीकृष्णने रास भी किया था और महारास भी, परंतु उनकी जीवन-यात्रा महारासपर ही समाप्त नहीं हो गयी थी। समय आनेपर उन्होंने गोपालोंके साथ गोवर्धनपर्वत भी उठाया था और आवश्यकता पड़नेपर उन्होंने सुदर्शन चक्र भी धारण किया था। कृष्ण शान्तिके दूत हैं और शक्तिके उपासक भी। मनुष्यका कर्तव्य क्या है? इसका बोध कराना ही गीताका केन्द्रीय विषय है। गीताका दर्शन जाति या धर्म-विशेषके लिये नहीं है। वह सार्वभौमिक है। लेकिन गीताका स्वर्णिम सूत्र क्या है? वह महामन्त्र गीताका अन्तिम श्लोक है। सार्थक, सकल और यशस्वी जीवनके लिये प्रत्येक मनुष्यको धनुर्धारी अर्जुन—कर्मवीर होना होगा। पुरुषार्थका धनुष धारण करो और सम्पूर्ण विवेक एवं शक्तिके साथ विश्वको कर्मक्षेत्र मानकर उसमें डट जाओ, परंतु साथ-ही-साथ ईश्वरका आशीर्वाद भी प्राप्त करो। कर्मवीर और प्रबल प्रतापी मनुष्यको भी अहंकाररहित होना चाहिये।

श्रेष्ठ जीवन-निर्माणकी पद्धति

(डॉ० श्रीजयनारायणजी मल्लिक, एम०ए०, साहित्याचार्य)

[गतांक संख्या ११ पृ०-सं० ९५७ से आगे]

आज मानव-जीवन अशान्त है। अनवरत संघर्षके बीच वह कुछ टटोल रहा है। वह शाश्वत शान्ति चाहता है। पर वह शान्ति उसे मिलेगी कैसे? पाश्चात्य संसार बाह्य-प्रकृतिपर तो विजय प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है, पर अन्त:प्रकृति उसे नचाती रहती है—काम, क्रोध, लोभ, मोहका वह गुलाम बन गया है। आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रको ठगना चाहता है—उसे हड़पना चाहता है। जीवनमें वैषम्य बहुत बढ़ गया है। प्राच्य जगत्की दशा भी अधिक सन्तोषप्रद नहीं है। वहाँ भी विद्या विवादके लिये, धन अभिमान और विलासिताके लिये तथा शक्ति दूसरोंको पीड़ा पहुँचानेके लिये एकत्र की जाती है, पर सारे अनर्थोंकी जड़ चरित्रहीनता है। यदि हम चरित्रवान् नहीं हो सके तो हमारा धन, शक्ति और विद्या भी व्यर्थ है। विद्वान्को चरित्रवान् होना चाहिये, विद्या तो एक प्रकाश है, उसकी सहायतासे सत्यका अन्वेषण करना चाहिये। जिसके हाथमें रोशनी है, वह यदि दूसरोंको गुमराह करे, वह यदि दूसरोंको सच्चा रास्ता नहीं दिखाये तो यह विद्याका दुरुपयोग होगा। एक मूर्ख यदि भूल करता है तो वह केवल अपने-आप नष्ट होता है, राष्ट्रकी विशेष क्षति नहीं होती। किंतु यदि एक पण्डित या नेता भूल करता है तो वह अपने साथ हजारोंको डुबो देता है; क्योंकि उसके अनुयायी हजारों हो जाते हैं। जितने पण्डित, नेता और शास्त्रज्ञ हैं, सभी चरित्रवान् होना आवश्यक समझते हैं, पर व्यावहारिक जीवनमें न जाने सत्यसे वे क्यों इतनी दूर चले जाते हैं।

चरित्रकी आवश्यकता मनुष्य-योनिमें विशेष है। यदि हमारे कर्म प्रवृत्ति तथा वासनाकी प्रेरणासे किये जाते हैं, तो हम पशुताकी ओर झुक जाते हैं। यदि हमारे कर्म कर्तव्य और विवेककी प्रेरणासे किये जाते हैं, तो हममें मानवताकी प्रधानता रहती है। मानवताकी सबसे बड़ी देन है—प्रवृत्तिके ऊपर विवेककी विजय। मानवता जब अपना कर्तव्य-ज्ञान भूलकर भोग-वासनाकी ओर झुक जाती है, तब उसका नाम हो जाता है, 'पशुता'; पर मानवता जब उलट जाती है, तब उसका नाम हो जाता है 'दानवता'। पशुता मानवताको भोग-वासनामें घसीटकर उसे कलंकित कर डालती है, पर दानवता तो मानवताका संहार ही कर डालती है। पशुता मानवताकी कमजोरी है। दानवता मानवताकी मौत। पशुता और दानवताके प्रभावसे मुक्त होनेका साधन है चरित्र-निर्माण। सच्चरित्र व्यक्ति कभी भी पशुता और दानवताके चंगुलमें नहीं पड़ता। फिर वासनाके ऊपर विजय केवल सच्चरित्रतासे ही सम्भव है, अन्यथा नहीं। सच्चरित्र व्यक्ति प्रलोभनोंके बीचमें पड़कर भी भ्रष्ट नहीं होता।

स्थूल-शरीरसे कर्म करनेपर अन्त:करणमें एक तरंग उठती है, मनमें एक विकार उत्पन्न होता है। यही तरंग, यही विकार सूक्ष्मशरीरका पोषक और वासनाका विकास करनेवाला है। वासना संचित कर्मोंकी पुत्री और क्रियमाण कर्मोंकी जननी है। हमारे व्यतीत जीवनके कर्मोंके अनुसार वासना तथा प्रवृत्तिकी रूपरेखा निर्मित होती है। यही वासना, यही प्रवृत्ति हमारे भविष्य-जीवनका पथ-प्रदर्शन करती है। कामिनी और कांचनके सान्निध्यसे हमारे हृदयमें हलचल होने लगती है, वासना अँगड़ाई लेती है और अन्तरात्मामें एक कम्पन—मधुर सिहरनका अनुभव होने लगता है। संसार-चक्रकी परिधिमें कर्मोंके पीछे वासना और वासनाके पीछे कर्म चलते रहते हैं। जिस प्रकार फलसे पेड़ और पेड़से ही फल होता है, उसी प्रकार वासना कर्म-संस्कारकी जननी है और पुत्री भी। बाह्य इन्द्रियोंके दमनमात्रसे वासना नहीं मरती। इस संघर्षमें वही सफल हो सकता है, जो चरित्रवान् है।

मानव सृष्टिका शृंगार है। उसके अन्दर परमात्माकी एक दिव्य ज्योति जल रही है, जो उसे निम्नस्तरसे ऊपर उठाकर सत्कर्मोंकी ओर प्रेरित करती है और जीवन-यात्रामें उसका पथ-प्रदर्शन करती है। जब जीवनकी आँधी उठती है और तूफानी हवामें उत्ताल-तरंग-माला-संकुल विश्व-पयोधि लहराने लगता है, तब भव-सागरके ज्वारमें एवं धूलिकणोंके वातावरणमें वह प्रकाश क्षीण और मटमैला हो जाता है। मानव-जीवनमें वह प्रकाश जितना ही जाज्वल्यमान रहेगा, मानवता उतनी ही प्रचुरमात्रामें उसके अन्तर्गत वर्तमान रहेगी। जब पशुता झाँकने लगती है, तब मनुष्य कर्तव्यनिष्ठा और ज्ञानको भूलकर इन्द्रियोंका दास बन जाता है और भोग-वासनाकी ओर पागलकी तरह दौड़ने लगता है। हमारे अन्तर्गत सदैव देवासुर-संग्राम हो रहा है। हमारे अन्दर जो

देवता है, वह हमें ऊपर उठानेकी चेष्टा करता है और एक दिव्य अलौकिक रश्मिमें हमें ओत-प्रोत करना चाहता है, पर हमारे जीवनमें जो दानव घुस गया है, वह देवताके साथ संघर्ष करके हमें नीचेकी ओर घसीट रहा है। इस संघर्षमें केवल सच्चरित्र व्यक्ति ही विजय प्राप्त कर सकता है। हमारे वैदिक-साहित्यमें बलिदानकी चर्चा आयी है। हमारे अन्दर जो पशु घुस गया है, जो पशुता मानवताका रक्तपानकर उसे कमजोर बना डालती है, हमें उस पशुताका बलिदानकर मानवताको सबल और निर्मल बनाना है। जगज्जननीके सामने निरीह पशुओंका बलिदान करना नहीं है। मनुष्यके अन्दर जो पशु घुस गया है और उसे पापकी ओर घसीट रहा है, उसी पशुका बलिदान करना है। सच्चरित्र व्यक्तिके अन्तर्गत पशुता कभी प्रवेश नहीं कर सकती। पशुतासे बचनेके लिये सच्चरित्र बनिये।

कामना ही माया है। यही जीवके सामने दो खिलौने— कामिनी और कांचन फेंक देती है, जिनसे मनुष्य जीवनभर खेलता रहता है। जबतक कामना नष्ट नहीं होती, तबतक अन्तरात्मामें ज्ञान-रश्मि नहीं छिटक सकती। कामनाको नष्ट करनेके लिये सच्चरित्र होना आवश्यक है। सच्चरित्र व्यक्ति कामिनी और कांचनका सदुपयोग करता है, दुश्चरित्र व्यक्ति इनका दुरुपयोग। दुश्चरित्रका जीवन चौपट हो जाता है।

हमारे मस्तिष्कमें अनन्त शक्तियाँ सोई हुई हैं। पाश्चात्य जगत्ने इन शक्तियोंको जगाकर इन्हें अन्धकारसे प्रकाशमें लानेकी चेष्टा की। फिर भी इनके जीवनमें एक विराट् हाहाकार है, भोग-लिप्साका नग्न नर्तन है, स्वार्थ और अशान्तिकी भीषण ज्वाला है। इन्होंने मस्तिष्ककी शक्तियोंको जगाया तो सही, पर उनका सदुपयोग करना नहीं सीखा। आर्य-जातिकी चिरन्तन प्रार्थना है—'**असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।**' असत्से सत्की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर तथा मृत्युसे अमरत्वकी ओर हमें ले चलें। अमरत्वकी ओर जानेका संकेत है कि हम दीर्घजीवी हों, हमारा शरीर स्वस्थ और सबल रहे—'**जीवेम शरदः शतम्।**'

अन्धकारसे प्रकाशकी ओर जानेका संकेत है कि हम विद्वान् हों—हम ज्ञान और विद्याका उपार्जन करें। विद्या ही प्रकाश है, अविद्या और अज्ञान ही अन्धकार। असत्से सत्की ओर जानेका संकेत है, सच्चरित्र होना—कोई बुरा काम नहीं करना। मनुष्यमें शरीर, मस्तिष्क और चरित्र—ये ही तीन प्रधान हैं। तीनों स्वस्थ और विकसित होने चाहिये। इन तीनोंमें चरित्रका स्थान सर्वप्रथम है (असत्-से सत्की ओर जाना)। विज्ञानके द्वारा हम प्रकृतिपर विजय प्राप्त कर लेते हैं—प्रकृति हमारी गुलाम बन जाती है और हमारा सारा काम कर देती है। चरित्र हमारी अन्तःप्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है और मनुष्यको देवत्व प्रदान करता है। दुश्चरित्र व्यक्तियोंके हाथमें शासन या आणविक शक्तिके आनेसे नर-संहार ही होगा, मानव-कल्याण नहीं हो सकता। शक्ति सच्चरित्रमें होनी चाहिये तभी विश्वका कल्याण होगा।

इसलिये वर्तमानमें हमारे राष्ट्रके हितमें भविष्यके बालक और बालिकाओंका चरित्र-निर्माण अत्यन्त आवश्यक है। इनके चरित्र-निर्माणपर ही हमारा राष्ट्र सुखी और समुन्नत हो सकता है। **[समाप्त]**

मोहनकी छबि

(श्रीराधेश्यामजी वर्मा 'श्याम')

मोहन की छबि मनहि समाई।
मोर पंख अति पावन भावन, अनुपम शोभा सीस सुहाई।
कानन कुण्डल चंचल जैसे, मृदु-मृदु हँसि-हँसि करत बड़ाई॥
उर बनमाला सदा सुगन्धित, मनहुँ सुगन्ध सकल भर लाई।
पीताम्बर दुति कतहुँ न देखी, भानु किरण नभ माँहि लजाई॥
मृदु मुसकान बखान करे को, उपमा महुँ नहिं सबद दिखाई।
चितवन चारु उदारु निहारूँ, कोटि मनोज न सरवरि पाई॥
अरुन नयन अरु भालतिलक प्रिय, लखि लघु भोर उदित अरुनाई।
कहे 'श्याम' घन स्याम बरन की, त्रिभुवन में नित महिमा छाई॥

आजकी आवश्यकता—गोरक्षा एवं गोसंवर्धन

(मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)

[गतांक सं० ११ पृ०-सं० ९६४ से आगे]

जो नास्तिक प्रकृतिके प्राणी हैं, वे गायके महत्त्वको सुन करके अर्थवाद-बुद्धिकी कल्पना कर लेते हैं। अर्थवाद माने गाय उपयोगी पशु है, इसलिये बढ़ा-चढ़ाकर महिमा कह दी गयी है, वास्तवमें इतनी महिमा है नहीं—ऐसा सोचनेवाले आज भी ऐसे तमाम लोग हैं, जो गायको कुछ भी नहीं मानते। नास्तिक शब्दका अर्थ क्या है—'**नास्तिको वेदनिन्दकः।**' वेदोंका मूल गाय है; क्योंकि हविष्यका आधार भी गाय है और मन्त्रका आधार भी गाय है, इसलिये जो वेदको नहीं मानते, वे गायको नहीं मानते, जिनके सिद्धान्तमें परलोक नहीं है, पुनर्जन्म नहीं है, वेदकी महिमा नहीं है; गायके प्रति विश्वास, निष्ठा और प्रीति नहीं है, वे ही नास्तिक हैं।

हमें एक बात स्मरण आती है अपने पूज्य धर्मसंघवाले गुरुजीकी। गुरुजीके पास पढ़ने जाते थे तो एक बार गुरुजीसे हमने पूछा—गुरुजी! सनातनधर्मी हिन्दूकी कोई सरल परिभाषा बताइये। गुरुजी हँसने लगे, बोले—जो परलोक-पुनर्जन्म न माने वह नास्तिक है और परलोक-पुनर्जन्मको माने, वह हिन्दू है। यदि ऐसी परिभाषाकी जाय तो ऐसे भी सम्प्रदाय हैं जो पुनर्जन्म एवं परलोकको मानते हैं, पर वेदको नहीं मानते, वे भी हिन्दू हो जायँगे—यह ठीक नहीं है। इसलिये गुरुजी पुनः बोले—'**हिन्दू**' शब्दका सरलार्थ यह है कि जिसकी गायमें श्रद्धा हो, गोबर-गोमूत्रमें श्रद्धा हो, वह हिन्दू है। गायके गोबर और गोमूत्रमें जिसको घृणाबुद्धि आये तो कहीं-न-कहीं वर्णसंकरताका दोष, दूषित रक्त उसमें आ गया है—ऐसा समझना चाहिये। इसलिये उसकी गायमें और गव्य-पदार्थोंमें श्रद्धा नहीं होती। गायका गोबर और गोमूत्र तो ऐसा होता है कि बुद्धि अपने-आप सात्त्विक हो जाती है। गायके गोबरसे लिपा हुआ घर हो, झोपड़ी हो, उसमें रहकर जो आनन्द आता है, बढ़िया रंग-रोगन चढ़ा हो, उस घरको देखकर वैसा आनन्द नहीं आता।

गायके गोबरसे लिपा-पुता घर देखकर चित्तमें अपने-आप सात्त्विकता आ जाती है। आप सोचिये, जिस गायके गोबर और गोमूत्रमें इतना सत्त्वगुण है, उससे लिपे हुए घरको देखकर हृदयमें सात्त्विक भाव उठने लग जाय तो कल्पना कीजिये कि गायके रोम-रोममें कैसी सात्त्विकता होगी! गायके शरीरसे एक विशिष्ट प्रकारकी सात्त्विकता प्रकट होती है। मनुष्य जो स्वाभाविक श्वास लेता है, उसके अनुसार २४ घण्टेमें २१,६०० श्वास होता है और १ मिनटमें १५ श्वास लेता है, किंतु गाय ११ श्वास या १० से कम श्वास लेती है। मनुष्य जब विकारग्रस्त (क्रोधादियुक्त) होता है तो प्रतिमिनट १५ से भी कई गुना अधिक श्वास लेने लग जाता है। अतः गायोंको निकट रखना चाहिये और गायोंके बीचमें रहना चाहिये; क्योंकि उससे विकार अपने-आप कम होते चले जायँगे। गायोंके निकट कुत्ता, बिल्लीको बिलकुल भी नहीं रखना चाहिये। कुत्ता और बिल्लीकी श्वासकी प्रक्रिया बहुत तेज होती है, इसलिये इनके शरीरमें तमोगुणके परमाणु प्रकट होते हैं और इनके निकट रहनेवाले लोगोंमें भी विकार बढ़ जाते हैं। गीताप्रेसके 'गो-अंक' (कल्याण)-में तो लिखा है कि गौशालाओंमें कुत्ता नहीं रहना चाहिये; क्योंकि गोवंश अस्वस्थ हो जायगा, गायका दूध कम हो जायगा, गायोंमें रोग उत्पन्न हो जायगा। योगसिद्ध कोई होना चाहता है तो गायोंके बीच रहकर यदि वह योगाभ्यास करे तो उसे योगसिद्धि शीघ्रातिशीघ्र होगी, उसे अपने मन और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनेमें बहुत सुगमता होगी।

गाय अपने-आपमें स्वराट् है। गायको सुशोभित करनेके लिये किसीकी आवश्यकता नहीं। स्वयं अपने-आपमें उसकी शोभा है। वस्तुतः गाय देखनेमें ही कितनी अच्छी लगती है, गाय प्रसन्नतासे बैठी हो, जुगाली कर रही हो, आप शान्तिसे गायपर त्राटक (बिना पलक झपकाये निरन्तर देखते रहनेकी क्रिया) कीजिये, अपने-आप आपके चित्तमें बड़ी प्रसन्नता होगी। गाय बहुत शान्ति और आनन्दमें रहनेवाली प्राणी है। इनका कुल अपने-आप तो सुशोभित होनेवाला है ही, गायोंसे ब्रजकी और ब्रजबिहारी श्रीकृष्णकी शोभा है, ऐसी गोमाता है।

आर्थिक समृद्धिका आधार गाय है। बिना गायके आर्थिक समृद्धि सम्भव नहीं है। जो गोसेवक है, वह स्वराट् हो जाता है। गायके गव्य पदार्थोंसे प्रभूत सम्पत्तिकी उसे प्राप्ति होती है, वह गायके द्वारा उत्तम अन्न (खेती

आदि) प्राप्त करता है। जो गायकी सेवा करता है, उसको श्रीकृष्णको प्राप्त करनेका भाव उत्पन्न हो जाता है। कहते हैं इसका कोई प्रमाण है क्या? बोले—हाँ, प्रमाण है, आदिपुराणमें भगवान् वेदव्यास कह रहे हैं, नित्य गोसेवा करनेवालेको श्रीकृष्णकी प्राप्ति हो जाती है—

'श्रीकृष्णः प्राप्यते विप्र नित्यं गोकुलसेवया।'

वेद-शास्त्रोंमें गायकी महिमा तो कम है, इससे भी अनन्तगुणा गायकी महिमा है, लेकिन पामर (नीच) मनुष्य गायको पशु मानते हैं। जो गायकी सेवा करते हैं, वे दरिद्र नहीं रहते।

हमने अपने बाल्यकालमें बड़े-बड़े लोगोंसे सुना है कि कोई जमाना ऐसा था, जब लड़का देखनेके लिये—घर-वर देखनेके लिये नाई और पुरोहितजी आते थे तो नाईको पुरोहितजीकी सेवाके लिये भेजा जाता था और परिवारका एकाध सदस्य भी साथ हो जाता था। नाईको सिखाकर रखा जाता था कि हम लोग तो इधर बातचीत करेंगे, तुम जाकर उनकी गोशाला देखकर आना, गोशालामें खूँटे गिन करके आना कि कितने खूँटे गड़े हैं, वह आकर धीरेसे बता देता था कि इतने खूँटे गड़े हैं। जब पता चला कि ४० खूँटे गड़े हैं, तब तो बोले—आँख मूँदकर बेटी दे दो इनके यहाँ, कोई चिन्ता नहीं। बिटिया और बच्चे खूब पुष्ट और आनन्दमें रहेंगे। ४० गैया हैं, दूध तो खूब होगा, तो उस समय लोग क्या करते—जैसे किसीके यहाँ २५ गायें हैं तो वे १० खूँटे और गाड़के रखते और उनमें रस्सी बाँधके रखते; क्योंकि जब नाई खूँटे गिनने जाय तो उसे संख्या कम न समझ आये। अधिक खूँटे होंगे तो ब्याह जल्दी हो जायगा। बड़े लोग कहते थे—ऐसी स्थिति हमने अपने जीवनमें देखी है कि जिनके यहाँ गोवंश नहीं होता था, उनके लड़केका विवाह नहीं होता था, भले ही वे सम्पन्न हों।

पहले समयमें गायसे ही सम्पत्ति आँकी जाती थी। कौन कितना धनाढ्य है, इसका अनुमान गायसे ही होता था। राजाओंकी समृद्धि भी गायसे देखी जाती थी। जिस राजाके पास जितना अधिक गोवंश होता था, वह उतना ही अधिक बड़ा राजा माना जाता था। ब्रजमें नन्दबाबासे भी बड़े वृषभानुजी माने जाते थे—राधारानीके पिताजी; क्योंकि उनके पास दो लाख गायें नन्दबाबासे ज्यादा थीं। गर्गसंहिता (गोलोकखण्ड)-में किसीके पास गायोंकी संख्याके आधारपर उसे विभिन्न पदवियोंसे सम्मानित करनेका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध है—

वृषभानु—जो १० लाख गायोंको पालता हो।

नन्द—जो ९ लाख गायोंको पालता हो।

उपनन्द—जो ५ लाख गायोंको पालता हो।

और भले ही चाहे व्यक्ति जितना सुखी-सम्पन्न हो, एक भी गाय जिस व्यक्तिके पास नहीं है, उसके जैसा दरिद्र दुनियामें कोई दूसरा नहीं है। इसलिये आप यदि दरिद्रतासे बचना चाहते हैं तो गाय पालें। हरेक व्यक्ति एक गाय घरमें कम-से-कम पाले। जिनको भगवान्ने गाँव, देहातमें जन्म दिया है, जिनके पास पर्याप्त जगह है, वे तो अवश्य ही गाय रखें, जिनको भगवान्ने ४-६ बीघा खेत दिया है, वे भी अवश्य गाय रखें। इतना ही नहीं; जो बहुत बड़े शहरोंमें रहते हैं, कई-कई मंजिलके फ्लैट बने होते हैं, उनमें रहते हैं, वहाँ वे बेचारे गाय नहीं रख पाते। तो जहाँ रहते हैं वहाँसे २०-२५ किलोमीटर दूर जाकर अपनी फैक्ट्री, कारखाना, उद्योग लगाते हैं तो उन लोगोंका भी कर्तव्य है कि अपनी समान विचारधारावाले लोगोंके साथ बैठकर एक ट्रस्ट गठित कर लें और शहरोंसे दूर क्षेत्रमें, जहाँ विशाल भू-खण्डकी उपलब्धि हो सके, वहाँ सुन्दर भारतीय देशी नस्लकी गायोंको रखें और सब लोग मिल-जुल करके उनका पालन-पोषण करें और यह निश्चय करें कि हमारे घरमें कोई उत्सव होगा तो वह उत्सव हम गौशालामें ही जाकर मनायेंगे। बच्चेका जन्म-दिन है तो उस दिन गायकी भिक्षा होगी, गौशालामें जाकर ग्वालोंका सत्कार किया जायगा, गोपूजन किया जायगा। चाहे जन्म-दिन हो, विवाह हो, मृत्यु हो, हर उत्सवको गौशाला और गौमातासे जोड़ दें तो इस तरहसे बार-बार जब वे अपने परिवारके साथ गौशालाओंमें जायेंगे तो उनमें उत्तम संस्कार पैदा होंगे, अब तो लोग बच्चेका जन्म-दिन है तो होटलमें जाते हैं; राम-राम, वहाँ जानेसे कोई संस्कार जगेंगे?

खाक-चौक (वृन्दावनमें एक स्थल है)-में महाराजजीके स्थानमें तो हमेशा ही गायें रहती थीं। १०-१५ गायें तो हमेशा रहती थीं। स्थान गायोंसे भरा रहता था। छोटी जगह थी, १०-१५ गायोंमें ही स्थान भर जाता था। एक बारकी बात है, बम्बईके कुछ लोग यहाँ आये, उसी समय गायें बाहरसे घूमकर आयीं, गायोंने अन्दर प्रवेश किया तो उनके छोटे बच्चे गायको देखकर ऐसे चिल्लाये, ज्यादा छोटे बच्चे नहीं ८-१० सालके थे, जैसे कोई सिंह आ गया हो। वे भागे और मन्दिरमें घुस गये। वहाँसे रोने-चिल्लाने लगे। यह देखकर महाराजजीको

बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बोले—गायोंको देखकर ये इतना क्यों डर रहे हैं? गायें तो आगे बढ़ गयीं, किंतु उन बच्चोंको तो बड़ी मुश्किलसे बाहर लाया गया। महाराजजी बोले—देखो, इनका दुर्भाग्य है, इन्होंने भारतवर्षमें जन्म लिया है और गायसे डरते हैं। तब उनके परिवारवालोंने बताया—महाराजजी! क्या बतायें, बम्बईमें कहाँ गाय? इन्होंने गाय देखी ही पहली बार है, तो डर तो लगेगा ही।

इसलिये यह अच्छा है कि बड़े शहरोंमें रहनेवाले समान विचारवाले लोग, जितना उनसे हो सके भू-खण्ड खरीदकर गौशाला खोलें। बहुत-सी गौशालाओंमें हमने देखा है कि कमेटी तो बड़ी-बड़ी बन जाती है, पर वे कमेटीवाले एक बार भी महीनेमें आकर गायकी खोज-खबर लेना अपना कर्तव्य नहीं समझते, ऐसी कमेटीसे क्या प्रयोजन, तो लोग जाकर वहाँ गायके मुखको देखें, गायका दर्शन करें, गायकी पीठपर हाथ फेरें और वे जितने गायसे जुड़े हुए लोग हैं, वे प्रतिज्ञा करें कि हम गायके ही दूध-दहीका सेवन करेंगे, गायके दूधसे बनी मिठाइयोंका ही अपने उत्सवोंमें प्रयोग करेंगे। ऐसा निश्चय करेंगे तो बहुत बड़ा लाभ हो जायगा, बहुत बड़े अंशमें गोरक्षा हो जायगी। बड़े उद्योगपति वैज्ञानिक पद्धतिसे गायकी सेवा करें, धार्मिक भावनाके साथ ही आर्थिक भावना उनमें हो तो भी कोई हर्ज नहीं है। हमारा अर्थशास्त्र कहता है कि गायसे बहुत बड़ी मात्रामें समृद्धिकी सम्भावना है। यह इतना अच्छा कार्य है कि इसमें घाटेका तो कोई काम है ही नहीं। ठीकसे किया जाय जो कोई प्रतिबन्ध नहीं है। कई कम्पनियाँ तो दूधसे बहुत बड़ी मात्रामें मुनाफा कमा रही हैं। उन्हें दूध दें। चरकसंहिता (सूत्र० २७। २१७)-में गायके दूधके दस गुणोंका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्।
गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः॥

अर्थात् गायका दूध स्वादिष्ट, शीतल, कोमल, चिकना, गाढ़ा, श्लक्ष्ण, लसदार, भारी और बाह्य प्रभावको विलम्बसे ग्रहण करनेवाला तथा मनको प्रसन्न करनेवाला होता है। देशी गायका तो गोबर भी उपयोगी है, मूत्र भी उपयोगी है। हर वस्तु उनकी उपयोगी है। देशी गायके दूधकी महिमाका वर्णन किया जाय, ठीकसे समाजमें उसको प्रचारित-प्रसारित किया जाय।

इस प्रकार गायको हम अपने हृदयमें बसा लें तो वह दिन दूर नहीं, जब गोवंशके वधका कलंक इस देशसे सर्वदाके लिये मिट जायगा। हम गायोंके बीचमें ही रहें। गाय मनुष्यकी सम्पूर्ण दरिद्रताको नष्ट कर देती है। अपनी सेवाके द्वारा वह अपने आश्रितके अर्थात् गोसेवकके सम्पूर्ण अज्ञान-अविद्याको दूर कर देती है। गाय माता है, गाय ही महान् तीर्थ है, गाय सारी अपावनताको दूर कर देती है। वह लक्ष्मीरूप है, इसलिये सारी दरिद्रताको दूर कर देती है। गाय सर्वतीर्थमयी है। सम्पूर्ण समृद्धि, श्री, लक्ष्मी गायके रूपमें ही सुरक्षित है। महाभारत अनुशासनपर्वमें गौकी महिमाके सम्बन्धमें कहा गया है—

गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किञ्चिदिहाच्युत॥
कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव।
गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं शिवम्॥
गावो लक्ष्म्याः सदा मूलं गोषु पाप्मा न विद्यते।
अन्नमेव सदा गावो देवानां परमं हविः।
स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ।
गावो यज्ञस्य नेत्र्यो वै तथा यज्ञस्य ता मुखम्॥
अमृतं ह्यव्ययं दिव्यं क्षरन्ति च वहन्ति च।
अमृतायतनं चैताः सर्वलोकनमस्कृताः॥

× × ×

गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः।
गावः कामदुहो देव्यो नान्यत् किञ्चित् परं स्मृतम्॥

महर्षि च्यवनने राजा नहुषसे कहा—अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले हे राजेन्द्र! मैं इस संसारमें गौओंके समान कोई धन नहीं देखता हूँ। वीर भूपाल! गौओंके नाम और गुणोंका कीर्तन तथा श्रवण करना, गौओंका दान देना और उनका दर्शन करना—इनकी शास्त्रोंमें बड़ी प्रशंसा की गयी है। ये सब कार्य सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाले और परम कल्याणकी प्राप्ति करानेवाले हैं। गौएँ सदा लक्ष्मीकी जड़ हैं। उनमें पापका लेशमात्र भी नहीं है। गौएँ ही मनुष्योंको सर्वदा अन्न और हविष्य देनेवाली हैं। स्वाहा और वषट्कार सदा गौओंमें ही प्रतिष्ठित रहते हैं। गौएँ ही सदा यज्ञका संचालन करनेवाली तथा उसका मुख हैं। वे विकाररहित दिव्य अमृत धारण करनेवाली और दुहनेपर अमृत ही देती हैं। वे अमृतकी आधारभूत हैं, सारा संसार उनके सामने नतमस्तक होता है। गौएँ स्वर्गकी सीढ़ी हैं, गौएँ स्वर्गमें भी पूजी जाती हैं, गौएँ समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवियाँ हैं, उनसे बढ़कर कोई दूसरा नहीं है। **[क्रमशः]**

भावानुरूप कार्य और क्रियाफल

(डॉ० श्रीविष्णुदेवजी झा)

प्राणी कर्मशील है। वह किसी भी क्षण बिना कार्य किये नहीं रह सकता—**'न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।'** (गीता ३।५) प्रायः वह कुछ-न-कुछ करता ही रहता है। स्वयम्भू प्रभुने मनुष्यकी इन्द्रियोंको बहिर्गामी बना दिया है, इसलिये प्रायः प्रत्येक मानव अपनी श्रोत्रादि इन्द्रियोंके माध्यमसे शब्दादि विषयोंका अनुभव करता रहता है, जिसके कारण उसका मन चंचल रहता है। अर्जुनने गीता (६।३४)-में भगवान् श्रीकृष्णसे कहा है—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

मन बहुत चंचल है। मनमें विभिन्न तरहके विचार उत्पन्न होते रहते हैं। लेकिन हमें सदैव शुभ भावना, शुभ कामना, शुभ संकल्प एवं सकारात्मक विचारको ही मनमें स्थान देना चाहिये। सकारात्मक सोचसे मन प्रसन्न रहता है। स्वास्थ्यपर इसका अच्छा प्रभाव दिखता है। मन प्रसन्न रहनेसे स्वास्थ्य ठीक रहता है। इसके विपरीत अगर हम नकारात्मक भाव या विचार रखेंगे तो मन सदैव उदास रहेगा। इसका सीधा असर स्वास्थ्यपर पड़ेगा और सेहत खराब हो जायगी। तरह-तरहकी बीमारियाँ स्वास्थ्य खराब कर दे सकती हैं। जीवन जीनेकी ललक समाप्त हो जायगी, जीवन भार हो जायगा। अतः अच्छे-अच्छे भावों एवं विचारोंको ही अपने मनमें स्थान दें। बुरे विचारोंकी जगह सद्विचारोंको लायें। बुरे विचार स्वतः अनादरित हो भाग जायँगे, अभ्याससे सब सम्भव है, संकल्प दृढ़ हो।

सदा प्रसन्न रहें। निर्मल मन होनेपर सभी दुःखोंका अभाव हो जाता है। प्रसन्नचित्त रहनेवाले पुरुषकी बुद्धि शीघ्र स्थिर हो जाती है। मनसहित सभी इन्द्रियाँ भी वशमें हो जाती हैं। (गीता २।६५)-में भी यही भाव व्यक्त किया गया है—

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

निःसन्देह आपके विचारोंका प्रभाव मनपर और सेहतपर पड़ता है। अतः अच्छा एवं पवित्र जीवन जीनेके लिये तथा स्वस्थ एवं प्रसन्न रहनेके लिये मनमें सकारात्मक भावका आना एवं रहना आवश्यक है। सकारात्मक विचारसे जीवनी-शक्ति बढ़ती है और प्रतिपल आप स्फूर्ति अनुभव करते हैं। आपकी गतिशीलता एवं क्रियाशीलतासे व्यक्तित्वमें निखार आयेगा। जीवन रोचक होगा। जीवनका उद्देश्य समझमें आयेगा। प्राणिमात्रकी सेवाकर आप अपनेको ईश्वरके समीप पायेंगे। जीवन अल्पकालका है। आयु सीमित है। सद्भाव, सद्विचार, परोपकारके साथ श्रेष्ठतम जीवन जीना और प्रभुको सदा साक्षी मानकर—समक्ष रखकर प्रभुके लिये ही कार्य करना जीवनका उद्देश्य होना चाहिये। पूरा ब्रह्माण्ड ईश्वरका विस्तृत स्थूल रूप है। तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है—***सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥*** समभावमें रहते हुए सदा प्रसन्न रहनेका अभ्यास करना चाहिये। न दुःख दो, न दुःख लो। इस दुनियामें क्षीर-नीर-विवेकी हंसकी तरह जीओ। परमपिताके संसारमें जो होता है अच्छा होता है, जो हुआ वह भी अच्छा हुआ और जो होगा, वह भी अच्छा होगा। सब कुछ ईश्वरके विधानके अनुसार ही समयसे होता है। बिना उनके इशारेके एक पत्ता भी नहीं हिलता है। अपने वशमें कुछ नहीं है। सत्कार्य करो और परिणाम ईश्वरपर छोड़ो। गीता (२।४७)-में भी भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

सकाम कर्म अर्थात् किसी कामनाको लेकर किया जानेवाला कर्म बन्धनका कारण होता है। शास्त्रोंमें कहा गया है कि किया हुआ शुभाशुभ कर्म अवश्य ही भोगना पड़ता है—**'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'** अतः शुभ और अशुभ दोनों ही प्रकारके कर्म बन्धनकारक हैं। वस्तुतः मनुष्य-जीवनकी सफलता इसीमें है कि कर्मोंको निष्काम भावसे करें अर्थात् जो भी कर्म करें, उसे प्रभुको अर्पण कर दें—

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्याऽऽत्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत्॥

(श्रीमद्भा० ११।२।३६)

महत्त्व सत्संगका

(श्रीगदाधरजी भट्ट)

सत्संगका सत् शब्द परमात्माकी सर्वत्र विद्यमानताका द्योतक है। प्रभु चिरन्तन, सत्-चित् और आनन्दमय हैं। सत्संगकी अवधारणाके मूलमें परम सत् (शक्तिमान्) ब्रह्म परमेश्वर ही हैं। प्रभु सच्चिदानन्द हैं, जिनका संग (सान्निध्य) ही जीवनका चरम लक्ष्य है। अनादिकालसे जीव स्थायी आनन्द एवं सुखके लिये भटक रहा है। परमानन्द सच्चिदानन्द परमात्माको प्राप्त करना ही उसका अन्तिम उद्देश्य है। हमारे शास्त्र पुकार-पुकारकर कहते हैं—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सङ्कीर्त्य केशवम्॥

(वि०पु० ६।२।१७)

सत्ययुगमें (भगवान्का) ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन और द्वापरमें पूजन करता हुआ पुरुष जो फल प्राप्त करता है, उसीको वह कलियुगमें भगवान्का कीर्तन-सत्संग करके ही प्राप्त कर लेता है। यहाँ सत्संग शब्द व्यापक अर्थमें प्रभुका गान, श्रवण, अर्पण, स्मरण, वन्दन एवं अर्हण (अर्चन) षड्भक्तिका द्योतक है—

यत्कीर्तनं यत्श्रवणं यदर्पणम्।
यद्वन्दनं यत्स्मरणं यदर्हणम्॥

(भगवन्नामकौमुदी)

जीव प्रभुका अंशरूप है, जिसे सत्-चित् और आनन्दकी अनुभूति होती है। तभी तो श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी।'*** तत्त्वज्ञानियोंका कथन है—**'जीवो ब्रह्मैव नापरः'** जीव और ब्रह्ममें कोई अन्तर नहीं है। प्रभुसे बिछुड़े जीवको उनसे सान्निध्य प्राप्त करनेका कलियुगमें सहज सरल साधन सत्संग है। सत्संगके सम्बन्धमें कहा गया है कि यह बुद्धिकी जड़ता हरता है, वाणीमें सत्यता घोलता है, पापका नाश करता है, मान, यश एवं उन्नति प्रदान करता है, चित्तको आनन्दित करता है। मनका आन्तरिक प्रमोद जब आनन्दके अतिरेकसे उद्वेलित होता है, तब अंग-अंगमें स्पन्दन होने लगता है। यह सत्संगकी परा स्थिति है। कहाँतक कहें—

सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।

कलियुगमें सत्संग-कीर्तन विशेष महत्त्व रखता है—**'कलौ सङ्कीर्त्य केशवम्।'** भगवान् नारदजीसे कहते हैं कि मेरे भक्त जहाँ संकीर्तन-गान करते हैं, वहाँ मैं निवास करता हूँ—**'मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद'** भगवन्नाम और लीलाओंका संकीर्तन होता है। नामका कीर्तन लीलाओंकी अपेक्षा अधिक सुगम और महत्त्वपूर्ण है। कलिकालमें तो जीवोंके लिये भगवन्नाम ही सबसे बड़ा सम्बल है, जो सत्संगका आधार है, संतोंका कथन है—

'कलिजुग केवल हरि गुन गाहा।' (संत तुलसीदास)

'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्' (नारदपुराण १।४१।११५)।

कलियुगमें हरिनाम—भगवन्नाम ही एकमात्र उद्धारक है। नामीसे नामकी महिमा अधिक है। भगवान्की अपेक्षा भगवन्नामने असंख्य पापियोंका उद्धार किया है। पापोंका प्रायश्चित्त करनेमें भी नाम-स्मरणकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है—

'प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरिस्मरणं परम्।'

भगवान्के नामोच्चारणका माहात्म्य देखें—अजामिल-जैसा पापी भी यमराजके पाशसे मुक्त हो गया। (भागवतपुराण) स्कन्दपुराणमें कहा गया है कि हर-हर नामोच्चारणके श्रवणमात्रसे नरकके असंख्य पापियोंको शिवधामकी प्राप्ति हुई। विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें कहा गया है कि हे भारत! यदि तुम पापोंसे भयभीत हो तो अन्य साधनोंका त्यागकर केवल भगवान् नारायणका सत्संग—संकीर्तन प्रारम्भ कर दो।

अतः केवल हरिकीर्तन ही समस्त पापोंके नाशका कारण है एवं अन्तमें प्रभुके सान्निध्यका साधन है। व्यापक रूपमें व्रत, हवन, यज्ञ, पाठ, रामायण, गीतापारायण, उपासना, जागरण, मन्त्रजप, संकीर्तन—ये सब सत्संगके ही दूसरे नाम हैं। ये अनुष्ठान घरमें हों या बाहर—सर्वत्र पवित्र वातावरणका सृजन करते हैं। पर्यावरण सुधारते हैं एवं

सुसंस्कारोंका निर्माण करते हैं, जो हमारी भारतीयताकी अस्मिता है। सत्संगसे अनेक आधि-व्याधि एवं दैहिक पापोंका शमन होता है।

चैतन्य महाप्रभु संकीर्तनको प्रभु-आराधनाका एकमात्र साधन मानते हैं। रामानुजजी रामनामको भगवन्नामका तारकमन्त्र स्वीकारते हैं। कबीर-जैसे निर्गुण संत अजपाजपको सत्संग मानते हैं। गीतामें जप (मौन-संकीर्तन)-को श्रेष्ठ यज्ञ माना गया है। मीरा तो श्रीकृष्णके सत्संगकी ही दीवानी थीं। भगवत्-अनुग्रह-मार्गके प्रवर्तक श्रीमद्वल्लभाचार्यने मन्दिरोंको घर एवं संकीर्तन (हवेलीसंगीत)-को प्रभुभक्तिके प्रमुख साधनके रूपमें मान्यता दी है। पुष्टिमार्गमें सेवा-समर्पणके साथ सत्संगकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

हम अहर्निश २४ घण्टेमें २१६०० श्वासें लेते हैं, एक-एक श्वासको सार्थक बनानेमें सत्संगका अनूठा योगदान है। हम सत्संगको अपनी लोकजीवनयात्रामें पाथेय और मार्गका सम्बल बनाकर मनुष्यजीवनको सफलता प्रदान करें; क्योंकि मनुष्य ही विधाताकी श्रेष्ठ कृति है। अत: उसकी पात्रता सिद्ध करें—

'न हि मानवात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।'

(महाभारत)

'जिअन मरन फलु दसरथ पावा'

(श्रीगौरीशंकरजी लाखोटिया, बी०ए० (ऑनर्स), एल-एल० बी०, साहित्यरत्न)

रावण आदि राक्षसोंके भारसे पीड़ित पृथिवीकी आर्त पुकार सुनकर श्रीब्रह्माजीने भगवान् श्रीहरिकी स्तुति की और कहा कि आप मनुष्यरूप धारणकर उस देवशत्रुका वध कीजिये।

इसपर श्रीभगवान्ने ब्रह्माजीसे कहा कि कश्यपकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर मैंने पहले ही उन्हें उनके पुत्ररूपसे उत्पन्न होनेका वर दे दिया था। इस समय वे पृथ्वीपर अयोध्याके राजा दशरथ होकर विद्यमान हैं। उन्हींके घर जाकर मैं रघुकुलमें श्रेष्ठ चार भाइयोंके रूपमें अवतार लूँगा।

कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरीं प्रगट नरभूपा॥
तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥

(रा०च०मा० १।१८७।३—५)

राजराजेश्वर महाराज दशरथ कितने शौर्यवान् राजा थे, इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि देवासुरसंग्राममें इन्द्र आदि देवताओंको भी उनकी सहायता लेनी पड़ी थी और इसी देवासुरसंग्राममें कैकेयीको दिये गये दो वरदानके रूपमें उनकी मृत्युके बीज भी बोये गये थे।

सर्वसुखसम्पन्न होते हुए भी मनस्वी नरेशको एक अभाव खटकता रहता था कि उनके वंशको चलानेवाला उनका पुत्र नहीं है। राजाने गुरु वसिष्ठजीको अपनी व्यथा सुनायी। महर्षि वसिष्ठजी तो त्रिकालदर्शी थे। उन्होंने राजाको आश्वासन दिया कि उनके चार पुत्र होंगे, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होंगे। वसिष्ठजीने लोकाचारकी दृष्टिसे राजासे शृंगीऋषिके द्वारा पुत्रकामेष्टियज्ञ करवाया, जिसके फलस्वरूप उन्हें चार पुत्रोंकी प्राप्ति हुई।

गुरु वसिष्ठजीने आनन्दसिन्धु सुखधाम ज्येष्ठ पुत्रका नाम राम और अन्य तीन राजकुमारोंके नाम भरत, शत्रुघ्न एवं लक्ष्मण रखे।

इस प्रकार वेद जिनका 'नेति-नेति' कहकर निरूपण करते हैं, शिवजी भी जिनका अन्त नहीं पाते; वे ही मन, वचन और कर्मसे अगोचर निरंजन ब्रह्म महाराज दशरथकी गोदमें बालक्रीड़ा करने लगे। उनके आँगनमें विचरने लगे।

निगम नेति सिव अंत न पावा॥
मन क्रम बचन अगोचर जोई। दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई॥

(रा०च०मा० १।२०३।८, १।२०३।५)

श्रीराम जब किशोरावस्थाको प्राप्त हुए तो एक दिन दशरथजीके द्वारपर भिक्षाकी झोली लेकर आ पहुँचते हैं, महामुनि विश्वामित्रजी। वे कहते हैं—हे राजन्! मेरे यज्ञोंमें मारीच और सुबाहु-जैसे राक्षस बड़ा उपद्रव मचाते रहते हैं, कृपया राम और लक्ष्मणको मुझे दो—

असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही॥

अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥

(रा०च०मा० १। २०७। ९-१०)

संकेतात्मक गूढ़ भाषामें ऋषिवर राजाको समझानेका प्रयत्न करते हैं कि राजन्! न तो मैं कोई साधारण भिक्षुक हूँ और न यह राम कोई साधारण क्षत्रिय राजकुमार। प्रेमसे एवं अति प्रसन्नतासे मोह, ममता एवं अज्ञानको त्यागकर इन दोनोंको मुझे दे दो। इसीमें इन राजकुमारोंका कल्याण है, इसीसे तुम्हें धर्म एवं सुयश प्राप्त होगा, तुम्हारी कीर्ति चारों ओर फैल जायगी—

'धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्यान॥'

(रा०च०मा० १। २०७)

एक तरफ पुत्र-स्नेह एवं दूसरी ओर ऋषि-कोपका भय। भय और ममताके जालमें बँधे राजा किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। अन्तमें ममता भयपर भारी पड़ी। अतिशय भयभीत राजाके मुखसे बरबस कुछ शब्द निकल ही पड़ते हैं—

'राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥'

(रा०च०मा० १। २०८। ५)

यह सुनते ही विश्वामित्रजी कुपित हो जाते हैं। शीघ्र ही गुरु वसिष्ठजी राजाको समझा-बुझाकर उनका संशय दूर करते हैं। विश्वामित्रजीको महान् निधियाँ मिलती हैं।

तत्पश्चात् श्रीराम ताटकाका वध करते हैं। राक्षस मारीच एवं सुबाहुका निर्दलन करते हैं। अहल्याका उद्धार करते हैं एवं जनकपुरीमें सीता-स्वयंवर—धनुष-यज्ञमें अप्रतिम शिव-धनुषको भंग करके राजराजेश्वर दशरथजीको जनकनन्दिनी जगज्जननी सीताका श्वसुर बननेका अपार यश प्रदान करते हैं।

सुअवसर देखकर एक दिन महाराज दशरथजी गुरु वसिष्ठजीके सम्मुख श्रीरामको युवराज बनानेकी अपनी चिर-संचित अभिलाषा प्रकट करते हैं। वसिष्ठजी तो स्वयं भी यही चाहते थे। उनकी आज्ञा मिलते ही श्रीरामचन्द्रजीके राजतिलककी तैयारियाँ होने लगती हैं। चारों ओर हर्षोल्लास छा जाता है। घर-घरमें आनन्दके बधावे बजने लगे। उसी वक्त कुबुद्धि मंथराकी कुचालसे कैकेयीको दुर्बुद्धिने धर दबोचा। कैकेयीने देवासुर-संग्राममें मिले दो वरदानरूपी प्राण-घातक बाण राजा दशरथपर चला दिये। प्रथम, भरतका राजतिलक। द्वितीय, रामको चौदह वर्षका वनवास।

'सुतहि राजु रामहि बनबासू।'

(रा०च०मा० २। २२। ६)

राजा स्तब्ध रह गये, सुध-बुध खो बैठे। फिर धीरज धरकर आँखें खोलीं एवं नम्रतासे कैकेयीके सामने अनुनय-विनय करने लगे, 'कैकेयी! मुझे भरतको राज्य देनेमें कोई कठिनाई नहीं है। श्रीरामको राज्यका लोभ है भी नहीं। मैं डंका बजाकर भरतको राज्य दे दूँगा। परंतु तुम्हारा दूसरा वरदान बड़ा टेढ़ा है। बड़ी अड़चनका वरदान माँगा है तुमने। सब कोई तो कहते हैं कि राम बड़े साधु हैं। तुम स्वयं भी रामकी बड़ी सराहना करती थी। अतः हँसी और क्रोध छोड़कर विवेकसे विचारकर वर माँगो, जिससे अब मैं नेत्र भरकर भरतका राज्याभिषेक देख सकूँ।'

'कैकेयी! मछली चाहे बिना पानीके जीती रहे। साँप चाहे बिना मणिके जीता रहे, पर मैं रामके बिना जीवित नहीं रह सकता।'

जिऐ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिऐ दुख दीना॥
कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाहीं॥

(रा०च०मा० २। ३३। १-२)

राजा फिर गिड़गिड़ाते हैं, कैकेयी! तू मेरा मस्तक माँग ले, मैं तुझे अभी दे दूँ, पर रामके विरहमें मुझे मत मार—

मागु माथ अबहीं देउँ तोही। राम बिरहँ जनि मारसि मोही॥

(रा०च०मा० २। ३४। ७)

राजा ने जब देखा कि रोग असाध्य है, तब वे अत्यन्त आर्तवाणीसे 'हा राम! हा राम! हा रघुनाथ!' कहते हुए सिर पीटकर जमीनपर गिर पड़े।

देखी ब्याधि असाध नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ॥

(रा०च०मा० २। ३४)

राजा व्याकुल हो गये, उनका सारा शरीर शिथिल पड़ गया, मानो हथिनीने कल्पवृक्षको उखाड़ फेंका हो। कण्ठ सूख गया, मुखसे बात नहीं निकलती। मानो पानीके बिना पहिना नामक मछली तड़प रही हो—

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता॥
कंठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीन बिनु पानी॥

(रा०च०मा० २। ३५। १-२)

भविष्यद्रष्टाके रूपमें दशरथजी विलाप कर रहे हैं—'यह कैकेयीकी उजाड़ी सुन्दर अयोध्या फिर भलीभाँति बसेगी और समस्त गुणोंके धाम श्रीरामकी प्रभुता भी होगी। सब भाई उनकी सेवा करेंगे और तीनों लोकोंमें श्रीरामकी बड़ाई होगी, किंतु कैकेयी! केवल तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरनेपर भी नहीं मिटेगा, यह किसी तरह नहीं जायगा।'

सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई॥
तोर कलंकु मोर पछिताऊ। मुएहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ॥

(रा०च०मा० २।३६।३—५)

व्याकुल राजा 'राम' 'राम' कहकर आह भर रहे हैं, जैसे कोई पक्षी पंख के बिना बेहाल हो। हृदयमें मनाते हैं कि सुबह हो ही नहीं। रामको कोई यह समाचार कहे ही नहीं। वे भगवान् सूर्यसे प्रार्थना करते हैं कि आप उदय ही न हों। उनके विलाप करते-करते ही सबेरा हो गया। सुमन्त्रके बतानेपर राजाने जब सुना कि श्रीरामचन्द्रजी पधारे हैं तो धीर धरकर नेत्र खोलते हैं। नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है, परंतु ब्रह्माको अपना स्व-निर्धारित कार्य करना था। श्रीराम स्थिति देख-समझकर दशरथजीको यह कहकर वहाँसे चल दिये कि आपकी आज्ञाका पालन करके और जन्मका फल पाकर मैं जल्दी ही अयोध्या लौट आऊँगा। आप चिन्ता मत कीजिये। कृपया आज्ञा दीजिये। मातासे विदा माँग आता हूँ। मातासे विदा माँगकर श्रीरामचन्द्रजी पितासे विदा लेने आते हैं।

अर्धमूर्च्छित राजाके मुँहसे शब्द निकलने बन्द हो गये हैं। विदाके शब्द उनके मुखसे कैसे निकलते? कुटिल कैकेयी फिर बीचमें आती है और कहती है—'हे रघुवीर! राजाको तुम प्राणोंके समान प्रिय हो। प्रेमवश दुर्बल हृदयके राजा शील और स्नेह नहीं छोड़ेंगे। पुण्य, सुन्दर यश और परलोक चाहे नष्ट हो जाय, पर तुम्हें वन जानेको वे कभी नहीं कहेंगे।'

नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िहि भीरा॥
सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ॥

(रा०च०मा० २।७९।३-४)

राजाको कैकेयीके ये वचन बाणके समान लगे। वे सोचने लगे, अब भी अभागे प्राण क्यों नहीं निकलते?

भूपहि बचन बान सम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे॥

(रा०च०मा० २।७९।६)

श्रीराम प्रस्थान कर गये। राजा मूर्च्छित हो गये। राजा सुमन्त्रके सामने विलाप कर रहे हैं। राम वनको चले गये, पर मेरे प्राण न जाने किस सुखके लिये शरीरमें टिक रहे हैं?

रामु चले बन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥

(रा०च०मा० २।८१।६)

एकनाथजी महाराज अपनी 'भावार्थरामायण' में राजा दशरथकी मन:स्थिति सुमन्त्रजीको इन शब्दोंमें बखान करते हैं।

श्रीरामजीके साथ मेरी मति चली गयी। श्रीरामके साथ मेरी चित्तवृत्ति चली गयी। अब रामके पास मेरे प्राण जाना चाहते हैं। हे सुमन्त्र! यह सत्य समझ लो कि मेरे प्राण भी श्रीरामके पास जायँगे।

राजाके प्राण अब अन्तिम आशाके धागेपर लटके हुए हैं। वे सुमन्त्रजीको रथ देकर यह कहकर वन भेजते हैं कि राम एवं लक्ष्मण तो दृढ़प्रतिज्ञ हैं, प्रणके पक्के हैं, वे शायद अब वापस नहीं आयेंगे, पर उनसे हाथ जोड़कर मेरी तरफसे विनती करना कि मेरी प्यारी बहू जनकदुलारी सीताको तो लौटा दें, जिससे मेरे प्राणोंको कुछ सहारा मिल जायगा। जीनेका कुछ बहाना मिल जायगा, नहीं तो मेरा मरण निश्चित है।

सुमन्त्रको वनसे खाली हाथ वापस आया देखकर महाराज तड़फड़ाते हुए कहते हैं, मैंने राजा होनेकी बात सुनाकर वनवास दे दिया, यह सुनकर जिस रामके मनमें हर्ष और विषाद नहीं हुआ, ऐसे पुत्रके बिछुड़नेपर भी मेरे प्राण नहीं गये, तब मेरे समान बड़ा पापी कौन होगा? हे सखा! मुझे भी वहीं पहुँचा दो, जहाँ श्रीराम, जानकी और लक्ष्मण हैं। नहीं तो मैं सत्यभावसे कहता हूँ कि मेरे प्राण अब चलना ही चाहते हैं।

नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहउँ सतिभाउ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। रामु लखनु सिय नयन देखाऊ॥

(रा०च०मा० २।१४९, २।१५०।२)

सुमन्त्रजी दशरथजीको सान्त्वना देते हुए कहते हैं कि

श्रीरामने कहा है कि बार-बार मेरी ओरसे पिताश्रीके चरण पकड़कर विनती करना कि मेरी चिन्ता न करें। उनकी आज्ञाका भलीभाँति पालन करके उनके चरणोंका दर्शन करने कुशलपूर्वक फिर लौट आऊँगा।

सुमन्त्रजीके वचन सुनते ही राजा पृथ्वीपर गिर पड़े। उनके प्राण कण्ठमें आ गये। कौसल्याजीने हृदयमें जान लिया कि अब सूर्यकुलका सूर्य अस्त होनेवाला है। फिर भी धीरज बँधानेका प्रयत्न करती हैं। मूर्च्छित राजाके बोल निकल रहे हैं—

कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू॥
कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही॥
(रा०च०मा० २। १५५। १-२)

श्रीरामके बिना जीनेकी आशा धिक्कार है। मैं उस शरीरको रखकर क्या करूँगा, जिसने मेरा प्रेमका प्रण नहीं निबाहा?

दशरथजीके मुखसे अन्तिम शब्द निकलते हैं—

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम॥
जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरनु सँवारा॥
(रा०च०मा० २। १५५, २। १५६। १-२)

अनमोल खजाना—आपके हाथ

(श्रीशान्तिदासजी बिन्नानी)

शीर्षक पढ़ते ही विचित्र-सा लगेगा कि लिखनेवालेने क्या कुछ बहककर ऐसा शीर्षक बना दिया—'अनमोल खजाना—आपके हाथ।' पर यह महज बकवास नहीं है। आप जैसे भी हों, जिस अवस्थामें हों मात्र अपनी सोच एवं विचारोंमें परिवर्तनकर जीवनको हर स्थितिमें एक सुखकर/लाभप्रद स्थितिमें महसूस करेंगे।

सर्वप्रथम आपके पास जो है, उसके लिये ईश्वरके प्रति कृतज्ञ बनिये कि उसने आपको इतना कुछ दे रखा है। प्रथम तो मानव-जन्म दिया—यह क्या उसकी हमारे ऊपर कम अनुकम्पा है? जरा देखिये तो सही, कैसे-कैसे प्राणी—गधा, कुत्ता, बैल, शूकर आदि जीव हैं, जो किस तरह जीवन जीते हैं। न उनमें विशेष सोच है, न अच्छा-बुरा समझनेकी क्षमता। क्या आप अपने जीवनके बदले ऐसे प्राणियोंका जीवन पसन्द करेंगे?

पुनः मानसिक सन्तुलनहेतु हमारे पास जो कुछ है, उसके लिये हमें देनेवाली सत्ता—ईश्वरका आभार मानना चाहिये कि हमारे ऊपर कितनी कृपा एवं दया करके उन्होंने हमें ऐसी वस्तुएँ दी हैं, जिनके हम पूरे अधिकारी शायद ही हों। हर मानवके पास कुछ-न-कुछ अपना कहनेके लिये है। होता यह है कि हमें जो उपलब्ध है उसे छोड़ हमारे पास जो नहीं है, उसपर हम ज्यादा दुःखी होते हैं। जो नहीं है उसका मानसिक दुःख, हमारे पास जो है उसके सुखको हमसे वंचित करता है। हम और दुःखी बन जाते हैं।

सुख-शान्तिकी प्राप्तिका अमोघ उपाय है—सन्तोष। जिसके पास यह पारसमणि है, वह कुछ न होते हुए भी शहंशाह है एवं जिसके पास सन्तोषरूपी पूँजीका अभाव है, वह चक्रवर्ती सम्राट् भी दीन ही समझा जायगा। उसकी तृष्णारूपी झोली अभी भी खाली है।

यहाँ यह अभिप्राय नहीं है कि कर्तव्य कर्म किया ही न जाय, उत्थान-उत्कर्षहेतु प्रयत्न ही न करे। जीवन है तो स्वकर्म/स्वधर्म करना ही चाहिये। बिना कर्मके गति नहीं। हमारे धर्मशास्त्र, धर्मग्रन्थ भी यही शिक्षा देते हैं। कर्म करते हुए ध्यान सदैव पूरी तरह निष्ठा एवं लगनसे कर्म करनेमें ही रहना चाहिये, फलपर ध्यान केन्द्रित नहीं रहे। कर्म करेंगे तो फल अवश्य होगा ही। हाँ, कर्मफल हमारे अधिकार एवं इच्छासे परे है।

अतः अपना स्वकर्म/स्वधर्म फलपर ध्यान दिये बिना पूरी ईमानदारीसे करना चाहिये। जो फल हमें प्राप्त हो, उसे अपने कर्मोंके विधानके अनुसार परमात्माका प्रसाद मानकर सहर्ष स्वीकार करना चाहिये एवं प्राप्त स्थितिमें सुधारहेतु निरन्तर प्रयत्न करते हुए यथास्थितिमें धैर्य एवं सन्तोषसे कामकर प्रसन्नताका अनुभव करना चाहिये कि हमने अपना कर्तव्य पूरी निष्ठा एवं लगनसे किया है। मानसिक सुख-शान्तिहेतु यह नुस्खा बहुत कीमती है।

संतचरित—

परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीधरस्वामीजी महाराज

(श्री आर०एन० शास्त्री, एम०ए०, बी०एड०)

कुछ समय पूर्वकी बात है, भाग्यनगर (हैदराबाद)-में पतकिवंशके अगस्त्यगोत्रोत्पन्न श्रीनारायणराव और कमलाबाई नामक देशस्थ ब्राह्मण-दम्पती रहते थे। उनके गोदावरी नामकी एक लड़की और त्र्यम्बक तथा गोविन्द नामक दो पुत्र थे। उनके पुरोहित ज्योतिषी मारुतरावने उनके पुत्रोंकी जन्मपत्रिकाएँ देखकर बताया कि दोनों बालक अल्पायुषी हैं और उन दम्पतीकी जन्मपत्रिकाएँ देखकर बताया कि आपके घर महान् विभूति जन्म लेनेवाली है, इसलिये आप दोनों गाणगापुर जाकर श्रीदत्त (श्रीदत्तात्रेयजी महाराज)-की सेवा करें। श्रीदत्तके कृपाप्रसादसे होनेवाले आपके पुत्रसे आपका और समस्त लोकका मंगल होगा। पुरोहितजीसे प्राप्त मार्गदर्शनसे प्रसन्न हो नारायणराव अपनी पत्नीके साथ गाणगापुर चले गये। वहाँ उनकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक आराधनासे प्रसन्न होकर श्रीदत्तने स्वप्नमें आकर उन्हें आशीर्वाद दिया कि आपकी मनोकामना सफल होगी, इससे प्रसन्न होकर वे दम्पती अपने घर भाग्यनगर लौट आये।

कुछ दिन बाद कमलाबाईकी माँ बयाबाई अपनी गर्भवती पुत्रीको अपने मायके लाड चिंचोली ले गयी। दस महीने बाद कीलक नाम संवत्सरके मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा सोमवार (७ दिसम्बर सन् १९०८ ई०) रोहिणी नक्षत्रमें यानी श्रीदत्तजयन्तीके दिन श्रीदत्तकी पालकी निकलनेके समयमें (सायं ७.२३ बजे) श्रीदत्तात्रेयजी ही श्रीधर नामसे जगत्कल्याणके लिये प्रादुर्भूत हुए। श्रीधरको उनकी माँ प्यारसे राजा कहती थीं। श्रीधरके पिता नारायणराव एक दिन अकस्मात् परलोक सिधार गये। कुछ ही दिन बाद श्रीधरके भाई और बहन भी मृत्युको प्राप्त हुए। कमलादेवीपर तो दुःखका पहाड़ गिर पड़ा। एक दिन वे श्रीधरको बुलाकर बोलीं—राजा! और सब तो चले गये; अब मेरी बारी है, मेरी अन्तिम इच्छा है कि तुम सब स्त्रियोंको मातृवत् मानो। अब मैं लीन हो रही हूँ—यों कहते हुए कमलाबाई चिर शान्त हो गयीं।

आध्यात्मिक जीवनकी स्थापना—श्रीधरकी प्राथमिक शिक्षा हैदराबादमें उर्दूमें, बादका विद्याभ्यास गुलबर्गामें मराठीमें तथा प्रौढशाला-शिक्षा पुणेमें हुई। पुणेमें पढ़ते समय वे शंकराचार्यके '**भिक्षौषधं भुज्यताम्**' इस वचनके अनुसार मधुकरी करते थे। उस समय ज्ञानार्जनका काम अखण्ड चलता था। बचपनसे ही व्यायाममें रुचि होनेसे श्रीधरका शरीर अतीव सुदृढ़ था। कुश्तीमें भी वे कुशल थे।

आखिर अन्तिम सत्य क्या है? इसे जाननेके लिये वे लौकिक विद्याभ्यासको छोड़कर पराविद्याको जाननेके लिये एक आध्यात्मिक गुरुकी तलाशमें व्यस्त हो गये। अन्तमें श्रीपळनीटकरजीके कथनानुसार वे श्रीसमर्थ स्वामी रामदासजीको ही अपना गुरु मानकर विजयादशमीके दिन (सन् १९२७ ई०को) पुणे छोड़कर विश्वकल्याणार्थ परमार्थ-मार्गपर पग रखकर श्रीसमर्थके सज्जनगढ़की ओर चल पड़े।

साधनाके गढ़पर—महाराष्ट्र राज्यके सतारासे दस कि० मी० दूरीपर सज्जनगढ़ है। उसी दिन श्रीधरने सज्जनगढ़ पहुँचकर गणेशजीका दर्शन करके श्रीसमर्थके सम्मुख आकर उन्हें प्रणाम किया। वहाँ वे लगभग तीन वर्षोंतक लगातार काम करते रहे। एक दिन काम-काजके बाद वे ध्यानस्थ बैठे थे, उसी समय चारों ओर प्रकाश दिखायी दिया। सभी दिशाएँ उस प्रकाशसे व्याप्त हो गयीं। कुछ ही समयमें उसी तेजकी एक मूर्ति बनकर सामने प्रकट हुई, जिनको वे मनमें सदा-सर्वदा देखते रहते थे। वे श्रीसमर्थ खड़े थे। श्रीसमर्थजीने उनके मस्तकपर हाथ रखा और '**अहं ब्रह्मास्मि**' इत्यादि महावाक्योंका उपदेश तथा उसका महत्त्व समझाकर वे अदृश्य हो गये। इस तरह श्रीधरजीको सन् १९२९ ई० में दास-नवमीको श्रीसमर्थजीसे अनुग्रह प्राप्त हुआ। एकदिन अकस्मात् श्रीसमर्थजीने प्रत्यक्ष होकर दक्षिणकी ओर जानेकी श्रीधरजीको आज्ञा दी। उनके

आज्ञानुसार श्रीधरजीने सज्जनगढ़के दक्षिणद्वारसे प्रस्थान किया।

सिद्धिके मार्गपर—सज्जनगढ़से श्रीधरजीने केल्हापुर मार्गसे कर्नाटकमें प्रवेश किया। बादमें हुब्बल्ली पार करके गोकर्णका रास्ता अपनाया। गोकर्णसे वे शीगेहल्ली गये। श्रीधरजीको देखकर वहाँके स्वामी शिवानन्दजीको परम सन्तोष हुआ। वहाँ चित्रमूलमें श्रीधरजीने कई दिनोंतक उग्र तप किया। बादमें श्रीधरजीने फिर शीगेहल्ली आकर शिवानन्दजीके दर्शन किये। वे उन्हें अपना गुरु मानते थे।

बादमें श्रीधरजी सज्जनगढ़ पधारे। वहाँ उन्होंने चार वर्ष कठिन तपस्या की। इस बीच श्रीशिवानन्दस्वामीके मुक्त होनेका समाचार श्रीधरजीको मिला। गुरुवियोगसे दु:खित होनेपर भी देह शाश्वत नहीं है, गुरु शाश्वत हैं—ऐसा समझकर उन्होंने संस्कृतमें वेदान्तार्थबोधक श्रीशिवगुरुस्तोत्रम् नामकी स्तुति लिखकर वहाँ भेजी। पाँच साल बाद सन् १९३९ ई०में साधु श्रीधर फिर शीगेहल्ली परमानन्द मठ आये। इन्होंने मठकी सुचारुरूपसे चलनेकी व्यवस्था करवायी और संस्कृत-पाठशालाकी भी व्यवस्था करवायी।

परमहंसपद—चित्रभानु संवत्सरकी विजयादशमी सोमवार प्रात:काल ९ बजे दत्तावतार, परमवैराग्यनिधि, परमदयालु श्रीधरसाधुजी संन्यासाश्रम स्वीकार करके परमहंस परिव्राजकाचार्य सद्गुरु श्रीश्रीधरस्वामीजी बन गये।

श्रीश्रीधरस्वामीजी स्वभावत: शान्त तथा निर्विकार थे। वे सदैव आनन्दमय, दयावान्, सब प्राणियोंको सुखदेनेवाले एवं तेजस्वी थे। **'कामये दु:खतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।'**—यह उनके जीवनका ध्येय था। दु:खियोंके दु:ख दूर करनेमें वे कभी थके हुए न दिखते। अतएव उनके सहवासमें सबको नित्य समाधान, आनन्द, उद्वेगरहित जीवनका अनुभव होता था। सहजताके साथ उनका बोलना, उनका आचार-विचार आदि सभी गुण राजासे रंकतक सबको आनन्द देते थे। वे सर्वजनोंको अमृतपुत्र मानते थे।

वद्दल्लि-वरदहल्लि-वरदपुरमें योगी श्रीधर—कर्नाटकके शिवमोग्ग जिलेके सागरके पास एक छोटा-सा सुन्दर गाँव है वद्दल्लि। जब श्रीश्रीधरस्वामीजी पहली बार यहाँ आये थे, तब यह छोटा-सा गाँव घनघोर जंगल था। निसर्ग-रमणीय वद्दल्लि एक पुरातन तीर्थक्षेत्र है। यहाँ दुर्गाम्बा देवालय है।

यहाँके भक्तोंके अनुरोधसे श्रीश्रीधरस्वामीजीने सन् १९५४ ई० का चातुर्मास इसी स्थानमें किया और इसको ही अपना धर्मोद्धार-कार्यका केन्द्र बनाया; सनातन धर्मके प्रचार-प्रसारके लिए यहीं धर्मध्वजकी स्थापना की। इसी समयमें आर्यसंस्कृति नामक ग्रन्थ लिखा। चातुर्मासोपरान्त उन्होंने कर्नाटक राज्यके विविध भागोंमें प्रवास किया। श्रीधरस्वामीजीसे यह वद्दल्लि वरदहल्लि होकर अब वरदपुर नामसे प्रसिद्ध हुआ है।

श्रीश्रीधरस्वामीजीने सारे भारतमें भ्रमण किया। धर्मोद्धारके लिये जो काम करना था, वह सब काम पूरा किया। ११ जनवरी १९६७ ई० पौष सुदी तृतीयाको सारे विश्वका मंगलचिन्तनकर, भक्तजनोंको आशीर्वाद देकर सर्वथा एकान्तके लिये उन्होंने वरदपुरके शिकर-कुटीमें प्रवेश किया। श्रीप्रमादि संवत्सरके चैत्र-कृष्ण गुरुवार १९ अप्रैल १९७३ ई० को सदा-सर्वदा भक्तजनोंके हृदयमें रहनेके लिये श्रीधरस्वामीजी पंचभूतात्मक पार्थिव शरीरका त्याग करके सच्चिदानन्द परब्रह्म स्वरूपमें प्रविष्ट हो गये।

श्रीश्रीधरस्वामीजीकी ग्रन्थसम्पदा—श्रीश्रीधरस्वामीजी बहुभाषाभिज्ञ थे। उन्होंने हिन्दी, मराठी, कन्नड़, संस्कृत तथा अंग्रेजीमें कई ग्रन्थ लिखे। १. आर्यसंस्कृति, २. आनन्दतत्त्व-मीमांसा, ३. विवेकोदय, ४. दिव्य-सन्देश, ५. सप्ताध्यायी, ६. श्रीदत्तस्तवराज, ७. श्रीदत्तकरुणार्णव आदि उनके अनेक ग्रन्थ हैं।

विनायक-स्तवन

(श्रीजयसिंहजी चौहान 'जौहरी', एम०ए०, बी०एड०, साहित्यरत्न)

विश्व विनायक देव सभी सुख माँगत हैं तुझसे कर जोरे।
तो में भरी महिमा ये बता रहे तुंदिल यज्ञोपवीत के डोरे॥
तुण्ड पै सूँड सुभावनी सोहत मोहक मूसक वाहन तोरे।
कुंकुम केसर पान सुपुष्प प्रसाद में मोदक और मिठौरे॥

साधनोपयोगी पत्र

(१)

विषयकामनाकी आग

सप्रेम हरिस्मरण! आपने अपने दोषोंकी बात लिखी, सो यह आपकी सौजन्यता है। दोष दीखने लगते हैं तो उनका प्रतीकार करनेकी भी इच्छा और चेष्टा होती है। दोष तो मनुष्यमें आ ही गये हैं और तबतक उनका पूरा नाश नहीं होता, जबतक कि भगवत्साक्षात्कार न हो जाय। सत्संग, शुद्ध सात्त्विक वातावरण, भजन आदिसे वे दोष दब जाते हैं, वैसे ही छिप जाते हैं जैसे अच्छे शासकके राज्यमें चोर-डाकू। परंतु वे सहज ही मरते नहीं। यदि बाहरसे कोई सहायक या साथी न मिले और लगातार दबते ही चले जायँ तो क्षीण होते-होते अन्तमें वे मरण-तुल्य हो जाते हैं, सिर उठानेलायक नहीं रहते और फिर भगवत्साक्षात्कार होते ही सर्वथा नष्ट हो जाते हैं, फिर उनकी जड़ ही नहीं रह जाती। परंतु जबतक ऐसा नहीं होता, तबतक उनसे सावधान ही रहना चाहिये। इसका उपाय यही है कि सदा-सर्वदा शुद्ध वातावरणमें रहे, सत्संगका पहरा रखे और भजनके द्वारा उन्हें दबाता चला जाय। दरवाजा बन्द हो, बाहर पहरा हो और अन्दर बराबर मार पड़ती रहे तो स्वाभाविक ही फिर नये दोष आ नहीं सकते और पुराने क्षीण होते रहते हैं। ऐसा न होनेसे, द्वार खुला रखने और पहरा न बैठानेसे अर्थात् विषयमोहपूर्ण वातावरणमें रहने और सत्संग न करनेसे बाहरके दोष आते रहते हैं, जिनसे अन्दरवालोंको बल मिलता रहता है। जैसे नये डाकुओंके आ जानेसे पुरानोंका बल बढ़ता है और पुरानोंके मिल जानेसे नये भी प्रबल हो उठते हैं, ऐसे ही नये दोषोंके आते रहनेसे पुराने उभड़ पड़ते हैं, बलवान् हो जाते हैं और नयोंको भी बलवान् बना देते हैं। इसलिये जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता है, उसे बड़ी सावधानीके साथ नये दोषोंको समीप आने न देना चाहिये और सदा जाग्रत् रहकर पुरानोंको मारनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये। उन्हें दबे देखकर—सामने प्रत्यक्ष न पाकर यह नहीं समझ लेना चाहिये कि मैं निर्दोष हो गया; अब कुछ भी करूँ, कोई भय नहीं है। जरा-सी ढिलाई पाते ही, मौका मिलते ही इर्द-गिर्दमें छिपे हुए नये दोष आकर पुरानोंको प्रबल कर देंगे और जगत्‌में मनुष्यजीवनके लिये इससे बढ़कर और कोई हानि नहीं है। संसारका बड़े-से-बड़ा ऐश्वर्य प्राप्त होनेपर भी यदि ये दोष रह जाते हैं और मनुष्य भगवान्‌की ओर नहीं लग पाता तो उसका जीवन व्यर्थ ही नहीं, भावी दुःखके कारणरूप पाप बटोरनेका साधन हो जाता है। वह यहाँ और वहाँ कहीं भी शान्ति नहीं पा सकता। मोहवश किसी-किसी समय शान्ति मान बैठता है! विषयोंका कहीं अन्त आता ही नहीं, भला इनसे किसको शान्ति मिली है? ये तो ज्यों-ज्यों मिलेंगे, त्यों-ही-त्यों कामनाकी आगको भड़काते ही रहेंगे। ज्वाला और ताप बढ़ेंगे, घटेंगे नहीं। यह ध्रुव सत्य है। मनुष्य मोहसे ही इनमें शान्ति और शीतलता खोजता है। आखिर किसी-न-किसी समय भगवत्कृपासे उसको इनसे निराशा होती है, तब वह उस शाश्वत, नित्य और सत्य सुख-शान्तिकी खोजमें लगता है और तभी उसका जीवन सच्ची साधनाकी ओर अग्रसर होता है। दोष और पापोंका जन्म तो होता है इस विषयासक्तिसे। इससे बचना चाहिये और इसके बदलेमें विषयविरागपूर्वक भगवच्चरणोंमें आसक्ति पैदा करनी चाहिये। वस्तुतः वे ही बड़भागी हैं जो भगवच्चरणानुरागी हैं। विषयोंके पीछे पड़े हुए सदा अतृप्तिकी आगमें जलनेवाले मनुष्य बड़भागी नहीं हैं। भले ही उनके पास औरोंकी अपेक्षा विषयसम्पत्ति कहीं प्रचुर हो। आग जितनी बढ़ी होगी, उतनी ही अधिक भयानक होगी, यह याद रखना चाहिये।

धनमें तो एक विशेष प्रकारका नशा होता है, जो मनुष्यकी विचारशक्तिको प्रायः भ्रमित कर देता है। उसकी बुद्धि चक्कर खा जाती है। इसीसे वह अशुभमें शुभ और अकल्याणमें कल्याण देखता है—

कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात है यह पाये बौराय॥

हाँ, यदि संसारके सब कर्म शुद्ध और निष्कामभावसे केवल भगवत्-पूजाके लिये ही होते हों तो अवश्य ही वे बाधक नहीं होते। वैसी स्थितिमें धन कमाना और विषयसेवन करना भी बुरा नहीं है बल्कि उससे भी लाभ होता है, परंतु यह होना है कठिन। उसका तरीका और

फल भगवान् बतलाते हैं—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

'रागद्वेष न हो, शरीर-मन-इन्द्रियाँ पूर्णरूपसे वशमें हों। किसी विषयपर मन-इन्द्रियाँ न चलें, कर्तव्यवश भगवत्सेवाके लिये ही बिना किसी आसक्तिके और द्वेषके निर्दोष विषयोंका सेवन हो तो उससे प्रसादकी प्राप्ति होती है' और प्रसादसे सारे दुःखोंका नाश हो जाता है। '**प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।**' परंतु संसारमें ऐसे कितने विषय-सेवी हैं, जो इस प्रकार विषयोंको भगवान्की पूजाकी सामग्री बनाकर केवल भगवत्पूजाके लिये ही उनका अनासक्तभावसे सेवन करते हैं।

आपने बहुत सत्संग किया है। आप सब समझते ही हैं। थोड़ी-बहुत जो काई आ गयी है, उसे हटाकर भगवत्-भजनमें लग जाना चाहिये। इससे यह मत समझिये कि मैं काम छोड़नेके लिये कहता हूँ। छोड़नेके लिये कहता हूँ विषयासक्तिको, जिससे दोष जाग्रत् होते हैं और बढ़ते हैं। भगवान्पर विश्वास रखकर साधनमें लगे रहिये, फिर वे आप ही बचा लेंगे। कातरभावसे उनके सामने व्याकुल होकर कभी-कभी रोइये, दीन और करुण पुकारपर उनका मन बहुत शीघ्र खिंचता और द्रवित होता है। शेष प्रभुकृपा!

(२)

वैराग्यमें राग और प्रभुप्रार्थना

सप्रेम हरिस्मरण! आपको यह याद रखना चाहिये कि जीव मनुष्ययोनिमें प्रभुकी इच्छासे, उनकी विशेष कृपासे एक बहुत बड़े महत्त्वके कार्यको पूर्ण करने आया है। वह कार्य है—भगवद्दर्शन या भगवत्प्रेम। जो मनुष्य इस महान् कार्यकी पूर्तिमें लगा रहता है वही यथार्थमें मनुष्य है, नहीं तो सच्ची बात तो यह है कि भगवान्को भूलकर विषयोंमें लगे हुए मनुष्य कहने-सुननेमें कैसे ही क्यों न माने जायँ, मनुष्यत्वसे परे ही हैं। भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये अन्तःकरणकी निर्मलता आवश्यक है और जबतक भोगोंमें सच्चा विराग नहीं होता, तबतक अन्तःकरणकी पूर्ण निर्मलता नहीं मानी जाती। आप विराग चाहती हैं, यह तो अच्छी बात है, परंतु आश्चर्य और खेदकी बात तो यह है कि कभी-कभी मनुष्यके हृदयमें राग ही विराग-सा बन जाता है और विषयासक्ति ही प्रकारान्तरसे विषयविरागकी चाहके रूपमें दीखने लगती है। बड़ी सावधानीसे जो चित्त-वृत्तियोंका निरीक्षण करते रहते हैं, उनके सामने मोहावृत वृत्तियोंका यह स्वाँग प्रत्यक्ष हो जाया करता है। खास करके प्रतिकूल स्थितिमें त्याग-वैराग्यकी जो भावना होती है, उसमें प्रायः अनुकूलताकी कामना ही छिपी रहती है और जहाँतक मेरा विश्वास और अनुभव है, इस प्रकारके धोखोंसे बचनेका उपाय आतुर और विह्वल होकर प्रभुसे प्रार्थना करना है। शक्तिभर चित्तको छलहीन और शुद्ध करके भगवान्से आर्त पुकार करनी चाहिये—'हे प्रभो! मेरा अन्तःकरण बड़ा ही मलिन है, मैं अत्यन्त दीन-हीन हूँ, मैं जब विराग चाहती हूँ तब राग ही विरागका रूप धारण करके सामने आ जाता है, मैं जब तुम्हारे लिये अपने जीवनको न्योछावर करनेकी कल्पना करती हूँ तब चित्तकी वृत्तियाँ धोखेसे यह सिद्ध करना चाहती हैं कि 'तेरा जीवन तो न्योछावर हो चुका' पर दूसरे ही क्षण जब हृदयमें भाँति-भाँतिकी विषय-कामना जाग्रत् होती है, तब मालूम होता है कि यह तो मनका धोखा था। प्रभो! मैं बिना केवटकी नैयाके समान आधारहीन हुई भवसागरमें गोते खा रही हूँ। तुम्हारे सिवा मुझे बचानेवाला और कौन है। मैं तुम्हारे शरण हूँ, मुझे तुम्हीं मार्ग बताओ—तुम्हीं मार्गपर ले चलो और तुम्हीं मार्गके साथी बनकर मुझे अपने शान्तिमय परमधाममें ले चलो प्रभो!

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्यं
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥
न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके
सहस्रशो यन्न मया व्यधायि।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द
क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे॥
निमज्जतोऽनन्त भवार्णवान्त-
श्चिराय मे कूलमिवासि लब्धः।
त्वयापि लब्धं भगवन्निदानी-
मनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः॥

प्रभो! न तो मेरी धर्ममें निष्ठा है, न मुझे आत्मतत्त्वका ज्ञान है और न तुम्हारे चरण-कमलोंमें मेरी भक्ति ही है। मैं अकिंचन हूँ, तुम्हारे सिवा मेरा दूसरा कोई सहारा नहीं है। मैं सब ओरसे निराश होकर शरणागतोंकी रक्षा

करनेवाले तुम्हारे चरणोंकी शरणमें आ पड़ी हूँ। हे मुकुन्द! संसारमें ऐसा कोई निन्दित कर्म नहीं है, जिसे मैंने हजारों बार न किया हो, वही मैं आज उन कर्मोंके फल-भोगके समय तुम्हारे सामने असहाय होकर विलाप कर रही हूँ। भगवन्! मैं इस अपार भवसागरमें न जाने कबसे डूब रही थी, आज बहुत कालके बाद तुम इस भवसागरके तटकी भाँति मुझे मिले हो। साथ ही तुमको भी आज मैं दयाकी सर्वोत्तम पात्र मिल गयी हूँ। (अब अपनी अहैतुकी दयासे ही मुझे पार लगाओ नाथ!)'

इस प्रकार हृदयकी सच्ची और कातर प्रार्थनासे भगवान् ऐसा सुन्दर प्रकाश और बल देंगे, जिससे सहज ही मोहित करनेवाली वृत्तियाँ नष्ट हो जायँगी और भगवच्चरणोंमें दृढ़ अनुराग प्राप्त होगा, तभी मनुष्यजीवनका उद्देश्य सफल हो सकेगा। शेष प्रभुकृपा!

(३)

(क) स्त्रीके साथ कैसा व्यवहार किया जाय?

सप्रेम हरिस्मरण! आपकी शंकाओंका समाधान आपके अपने विवेकसे ही होगा। आपका विशेष आग्रह है, इसलिये इस सम्बन्धमें अपने विचार सेवामें लिखता हूँ। यदि आपको अपने कर्तव्य-निर्णयमें इनसे कुछ सहायता मिलनेकी सम्भावना दीख पड़े तो आप इनका उपयोग कर सकते हैं—

(१) यह सत्य है कि सब विषयोंमें स्त्री-पुरुषका समानाधिकार दोनोंके हितके लिये ही अवांछनीय है और ऐसा समानाधिकार सम्भव भी नहीं है। स्त्री-पुरुषके पारस्परिक सुखके लिये और समाजव्यवस्थाके सुचारुरूपसे संचालित होनेके लिये दोनोंमें कार्योंका और मर्यादाओंका भेद आवश्यक है। यह भी सत्य है कि हिन्दूधर्मशास्त्रके अनुसार स्त्रीका धर्म है कि वह पतिको परमेश्वरका स्वरूप समझकर उसकी सेवा करे। परंतु इसका अर्थ यह नहीं समझ लेना चाहिये कि पुरुषको जबरदस्ती परमेश्वरके पदपर बैठकर स्त्रीसे दासता करानेका हक है। यह स्त्रीधर्म है और इसका उद्देश्य महान् है। परमात्माकी सृष्टिमें स्त्री-पुरुष दोनोंकी ही आवश्यकता है और अपने-अपने क्षेत्रमें दोनोंका ही महत्त्व है, परंतु जीवदृष्टिसे दोनों ही भगवान्के एक-से अंश हैं और मनुष्यके नाते परमात्माकी प्राप्तिका अधिकार दोनोंको ही है। पर समाजकी सुशृंखलाके लिये दोनोंके क्षेत्र और कार्यविभाग अलग-अलग हैं। अपने-अपने क्षेत्रमें रहकर अपने-अपने कर्तव्य-कर्म करते हुए ही दोनों भगवत्प्राप्तिके मार्गमें अग्रसर हों, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये। भगवत्प्राप्तिमें प्रधान साधन है—भगवदाकारवृत्ति। स्त्रीका क्षेत्र घर है, उसका प्रधान कार्य गृहस्थीकी सँभाल है, उसकी भगवदाकारवृत्ति कैसे हो? इसलिये यह विधान किया गया कि स्त्री पतिको परमेश्वर और घरको परमेश्वरका मन्दिर समझे और घर-सन्तानकी सेवा-सँभाल तथा पतिकी परिचर्याके द्वारा ही चित्तको भगवदाकार बनाकर भगवान्को प्राप्त कर ले। इसके अतिरिक्त समाजव्यवस्था और दाम्पत्यसुख आदिके लिये भी पतिभक्ति आवश्यक है, पर यह स्त्रीका धर्म है। पतिको तो यह मानना चाहिये कि स्त्री मेरी सहधर्मिणी है, मित्र है, गुलाम नहीं है। उसके साथ ऐसा प्रेमका बर्ताव करना चाहिये जिससे उसको सुख पहुँचे, उसका अपमान न हो, उसे मन-ही-मन रोना न पड़े और साथ ही उसका हितसाधन भी हो। जो पुरुष स्त्रियोंको गुलाम समझकर उनके साथ बुरा व्यवहार करते हैं, उन्हें सदा संत्रस्त रखते हैं, बीमारी आदिमें उनके इलाजका उचित प्रबन्ध नहीं करते और अपने हाथों उनकी सेवा करते सकुचाते हैं, वे मेरी समझसे कर्तव्यसे च्युत होते हैं और पाप करते हैं। आपको चाहिये, आप प्रेमयुक्त बर्तावसे स्त्रीका स्वभाव बदलनेकी चेष्टा करें।

(ख) बालकको मारना चाहिये या नहीं

नीतिमें छठें वर्षसे पन्द्रहवें वर्षतक बच्चेको ताड़ना देनेकी बात लिखी है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि माता, पिता, गुरु या अभिभावक उसे निर्दयताके साथ पीटा करें। मार खाते-खाते बच्चे ढीठ हो जाते हैं, तब उनके सुधरनेकी आशा ही नहीं रहती। सबसे बुरी बात तो यह है कि उनका विकास रुक जाता है। ताड़नाका अर्थ उन्हें विधि-निषेधकी शृंखलामें रखना है, जिससे वे उच्छृंखल न होने पायें। बच्चोंको मारना नहीं चाहिये।

(ग) वर्तमान स्कूल-कालेज

मैं तो आजकलके स्कूल-कालेजोंसे डरा हुआ हूँ। या तो उनमें आमूल परिवर्तन होना चाहिये, नहीं तो उनमें अपने बच्चोंको भेजनेमें कम-से-कम उनको तो सावधान रहना ही चाहिये, जो हिन्दू-संस्कृतिका नाश अपने कुलमें नहीं होने देना चाहते। शेष प्रभुकृपा!

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६७, शक १९३२, सन् २०११, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, फाल्गुन कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ११। ५८ बजेतक	शनि	पूर्वाफाल्गुनी रात्रिमें २। १५ बजेतक	१९ फरवरी	शतभिषामें सूर्य रात्रिमें १। १६ बजेसे।
द्वितीया " ९। ३८ बजेतक	रवि	उत्तराफाल्गुनी " १२। ३४ बजेतक	२० "	भद्रा रात्रिमें ८। २६ बजेसे, राष्ट्रीय फाल्गुनमासारम्भ, कन्याराशि प्रातः ७। ५० बजेसे।
तृतीया प्रातः ७। १४ बजेतक चतुर्थी रात्रिशेष ४। ५४ बजेतक	सोम	हस्त रात्रिमें १०। ५५ बजेतक	२१ "	भद्रा प्रातः ७। १४ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९। २० बजे।
पंचमी रात्रिमें २। ४१ बजेतक	मंगल	चित्रा " ९। २२ बजेतक	२२ "	तुलाराशि दिनमें १०। ८ बजेसे।
षष्ठी " १२। ४० बजेतक	बुध	स्वाती " ७। ५९ बजेतक	२३ "	भद्रा रात्रिमें १२। ४० बजेसे।
सप्तमी " १०। ५७ बजेतक	गुरु	विशाखा " ६। ५३ बजेतक	२४ "	भद्रा दिनमें ११। ४८ बजेतक, वृश्चिकराशि दिनमें १। १० बजेसे।
अष्टमी " ९। ३३ बजेतक	शुक्र	अनुराधा " ६। ८ बजेतक	२५ "	अष्टकाश्राद्ध, जानकीजयन्ती, मूल रात्रिमें ६। ८ बजेसे।
नवमी " ८। ३३ बजेतक	शनि	ज्येष्ठा सायं ५। ४४ बजेतक	२६ "	धनूराशि सायं ५। ४४ बजेसे, अन्वष्टका श्राद्ध।
दशमी " ८। ४ बजेतक	रवि	मूल रात्रिमें ५। ४८ बजेतक	२७ "	मूल रात्रिमें ५। ४८ बजेतक, भद्रा दिनमें ८। १९ बजेसे रात्रिमें ८। ४ बजेतक।
एकादशी " ८। ३ बजेतक	सोम	पूर्वाषाढ़ा " ६। २२ बजेतक	२८ "	मकरराशि रात्रिमें १२। ३८ बजेसे, विजया एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी " ८। ३५ बजेतक	मंगल	उत्तराषाढ़ा " ७। २५ बजेतक	१ मार्च	× × × ×
त्रयोदशी " ९। ३५ बजेतक	बुध	श्रवण " ८। ५८ बजेतक	२ "	भद्रा रात्रिमें ९। ३५ बजेसे, प्रदोषव्रत, श्रीमहाशिवरात्रिव्रत, चतुर्दशलिंगपूजा, श्रीवैद्यनाथजयन्ती।
चतुर्दशी " ११। ४ बजेतक	गुरु	धनिष्ठा " १०। ५८ बजेतक	३ "	भद्रा दिनमें १०। २० बजेतक, कुम्भराशि दिनमें ९। ५८ बजेसे, पंचकारम्भ दिनमें ९। ५८ बजेसे।
अमावस्या " १२। ५३ बजेतक	शुक्र	शतभिषा " १। १८ बजेतक	४ "	स्नान-दान-श्राद्धादिकी अमावस्या।

सं० २०६७, शक १९३२, सन् २०११, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, वसन्त-ऋतु, फाल्गुन शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें २। ५६ बजेतक	शनि	पूर्वाभाद्रपदा रात्रिमें ३। ५१ बजेतक	५ मार्च	मीनराशि रात्रिमें ९। १३ बजेसे, पू० भा० नक्षत्रमें सूर्य प्रातः ६। ४८ बजेसे।
द्वितीया रात्रिशेष ५। ४ बजेतक	रवि	उत्तराभाद्रपदा अहोरात्र	६ "	चन्द्रदर्शन।
तृतीया अहोरात्र	सोम	उत्तराभाद्रपदा प्रातः ६। २८ बजेतक	७ "	मूल प्रातः ६। २८ बजेसे।
तृतीया प्रातः ७। ६ बजेतक	मंगल	रेवती दिनमें ८। ५९ बजेतक	८ "	भद्रा रात्रिमें ७। ५९ बजेसे, मेषराशि दिनमें ८। ५९ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, पंचक समाप्त दिनमें ८। ५९ बजे।
चतुर्थी दिनमें ८। ५२ बजेतक	बुध	अश्विनी " ११। १४ बजेतक	९ "	भद्रा दिनमें ८। ५२ बजेतक, मूल दिनमें ११। १४ बजेतक।
पंचमी " १०। १६ बजेतक	गुरु	भरणी " १। ८ बजेतक	१० "	वृषराशि रात्रिमें ७। २९ बजेसे।
षष्ठी " ११। १२ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका " २। ३४ बजेतक	११ "	× × × ×
सप्तमी " ११। ३७ बजेतक	शनि	रोहिणी " ३। ३१ बजेतक	१२ "	भद्रा दिनमें ११। ३७ बजेसे रात्रिमें ११। ३४ बजेतक, मिथुनराशि रात्रिमें ३। ४३ बजेसे, कामदासप्तमी, होलाष्टकारम्भ।
अष्टमी " ११। ३० बजेतक	रवि	मृगशिरा " ३। ५५ बजेतक	१३ "	× × × ×
नवमी " १०। ५५ बजेतक	सोम	आर्द्रा " ३। ५३ बजेतक	१४ "	× × × ×
दशमी " ९। ५१ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु " ३। २३ बजेतक	१५ "	भद्रा रात्रिमें ९। ७ बजेसे, वसन्त-ऋतु प्रारम्भ, कर्कराशि दिनमें ९। २९ बजेसे, मीनसंक्रान्ति प्रातः ६। २८ बजेसे, खरमासारम्भ।
एकादशी " ८। २३ बजेतक	बुध	पुष्य " २। ३३ बजेतक	१६ "	मूल दिनमें २। ३३ बजेसे, भद्रा दिनमें ८। २३ बजेतक, आमलकी एकादशीव्रत (सबका), श्रीकाशीविश्वनाथ शृंगारदिवस।
द्वादशी प्रातः ६। ३५ बजेतक त्रयोदशी रात्रिशेष ४। ३२ बजेतक	गुरु	आश्लेषा " १। २१ बजेतक	१७ "	सिंहराशि दिनमें १। २१ बजेसे, प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी रात्रिमें २। १७ बजेतक	शुक्र	मघा " ११। ५७ बजेतक	१८ "	भद्रा रात्रिमें २। १७ बजेसे, चौमासी चौदस (जैन), उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें सूर्य दिनमें २। ४१ बजेसे, मूल दिनमें ११। ५७ बजेतक।
पूर्णिमा " ११। ५४ बजेतक	शनि	पूर्वाफाल्गुनी दिनमें १०। २१ बजेतक	१९ "	भद्रा दिनमें १। ५ बजेतक, कन्याराशि दिनमें ३। ५६ बजेसे, स्नान-दान-व्रतकी पूर्णिमा, होलिकादाह सूर्यास्तके बाद ८। २२ बजेतक, श्रीचैतन्यमहाप्रभु-जयन्ती।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६७, शक १९३२-१९३३, सन् २०११, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ९।२९ बजेतक	रवि	उ० फा० दिनमें ८।४१ बजेतक	२० मार्च	होली, वसन्तोत्सव, रतिकाममहोत्सव।
द्वितीया ,, ७।६ बजेतक	सोम	हस्त प्रात: ७।१ बजेतक चित्रा रात्रिशेष ५।२७ बजेतक	२१ ,,	भद्रा रात्रिशेष ५।५९ बजेसे, तुलाराशि रात्रिमें ६।१४ बजेसे।
तृतीया सायं ४।५२ बजेतक	मंगल	स्वाती रात्रिशेष ४।३ बजेतक	२२ ,,	भद्रा सायं ४।५२ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत चन्द्रोदय रात्रि ९।१३ बजे, वृद्धांगारकपर्व (बुढ़वामंगल) राष्ट्रीयचैत्रमास, शक सं० १९३३ प्रारम्भ।
चतुर्थी दिनमें २।५१ बजेतक	बुध	विशाखा रात्रिमें २।५३ बजेतक	२३ ,,	वृश्चिकराशि रात्रिमें ९।१० बजेसे, गुरुवार्द्धक्यारम्भ दिनमें १०।२४ बजेसे।
पंचमी ,, १।६ बजेतक	गुरु	अनुराधा ,, २।३ बजेतक	२४ ,,	मूल रात्रिमें २।३ बजेसे।
षष्ठी ,, ११।४२ बजेतक	शुक्र	ज्येष्ठा ,, १।३३ बजेतक	२५ ,,	भद्रा दिनमें ११।४२ बजेसे रात्रिमें ११।१२ बजेतक, धनुराशि रात्रिमें १।३३ बजेसे।
सप्तमी ,, १०।४३ बजेतक	शनि	मूल ,, १।३२ बजेतक	२६ ,,	गुर्वस्त पश्चिममें दिनमें १०।२४ बजे, मूल रात्रिमें १।३२ बजतेतक।
अष्टमी ,, १०।१२ बजेतक	रवि	पू० षा० ,, १।५८ बजेतक	२७ ,,	श्रीशीतलाष्टमीव्रत।
नवमी ,, १०।११ बजेतक	सोम	उ० षा० ,, २।५५ बजेतक	२८ ,,	भद्रा रात्रिमें १०।२७ बजेसे, मकरराशि दिनमें ८।११ बजेसे।
दशमी ,, १०।४२ बजेतक	मंगल	श्रवण रात्रिशेष ४।२२ बजेतक	२९ ,,	भद्रा दिनमें १०।४२ बजेतक।
एकादशी ,, ११।४२ बजेतक	बुध	धनिष्ठा अहोरात्र	३० ,,	कुम्भराशि सायं ५।२० बजेसे, पंचकारम्भ सायं ५।२० बजेसे। पापमोचनी एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी ,, १।१० बजेतक	गुरु	धनिष्ठा प्रात: ६।१६ बजेतक	३१ ,,	प्रदोषव्रत, वारुणीपर्वयोग दिनमें १।१० बजेसे, रेवतीमें सूर्य रात्रिमें १।१२ बजे।
त्रयोदशी ,, २।५८ बजेतक	शुक्र	शतभिषा दिनमें ८।३२ बजेतक	१ अप्रैल	भद्रा दिनमें २।५८ बजेसे रात्रिशेष ४ बजेतक, मीनराशि रात्रिशेष ४।२६ बजेसे, मासशिवरात्रिव्रत, वारुणीपर्वयोग दिनमें ८।३२ बजेतक।
चतुर्दशी सायं ५।१ बजेतक	शनि	पू० भा० दिनमें ११।३ बजेतक	२ ,,	× × × ×
अमावस्या रात्रिमें ७।८ बजेतक	रवि	उ० भा० दिनमें १।४१ बजेतक	३ ,,	स्नान-दान-श्राद्धादिकी अमावस्या, मूल दिनमें १।४१ बजेसे।

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ९।६ बजेतक	सोम	रेवती सायं ४।१४ बजेतक	४ अप्रैल	चान्द्रसंवत्सर और वसन्तका नवरात्रारम्भ, क्रोधीनामसंवत्सर प्रारम्भ। अभिजितमुहूर्त्त दिनमें ११।३५ बजेसे १२।२५ बजेतक, पंचक समाप्त सायं ४।१४ बजे। मेषराशि सायं ४।१४ बजेसे।
द्वितीया रात्रिमें १०।४९ बजेतक	मंगल	अश्विनी रात्रिमें ६।३३ बजेतक	५ ,,	मूल रात्रिमें ६।३३ बजेतक।
तृतीया ,, १२।९ बजेतक	बुध	भरणी ,, ८।३२ बजेतक	६ ,,	वृषराशि रात्रिमें २।५५ बजेसे, गणगौर, मत्यजयन्ती।
चतुर्थी ,, १।३ बजेतक	गुरु	कृत्तिका ,, १०।५ बजेतक	७ ,,	भद्रा दिनमें १२।३६ बजेसे रात्रिमें १।३ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी ,, १।२५ बजेतक	शुक्र	रोहिणी ,, ११।८ बजेतक	८ ,,	श्रीरामराज्यमहोत्सव।
षष्ठी ,, १।१५ बजेतक	शनि	मृगशिरा ,, ११।४० बजेतक	९ ,,	मिथुनराशि दिनमें ११।२४ बजेसे, श्रीस्कन्दषष्ठी, श्रीसूर्यषष्ठीव्रत (बिहार)।
सप्तमी ,, १२।३६ बजेतक	रवि	आर्द्रा ,, ११।४३ बजेतक	१० ,,	भद्रा रात्रिमें १२।३६ बजेसे, भानुसप्तमी।
अष्टमी ,, ११।२९ बजेतक	सोम	पुनर्वसु ,, ११।१८ बजेतक	११ ,,	भद्रा दिनमें १२।२ बजेतक, श्रीदुर्गाष्टमी, महानिशापूजा, कर्कराशि सायं ५।२४ बजेसे।
नवमी ,, ९।५९ बजेतक	मंगल	पुष्य ,, १०।३२ बजेतक	१२ ,,	श्रीमहानवमी, श्रीरामनवमीव्रत, मूल रात्रिमें १०।३२ बजेसे।
दशमी ,, ८।१० बजेतक	बुध	आश्लेषा ,, ९।२६ बजेतक	१३ ,,	सिंहराशि रात्रिमें ९।२६ बजेसे, नवरात्रव्रतकी पारणा।
एकादशी सायं ६।३ बजेतक	गुरु	मघा ,, ८।३ बजेतक	१४ ,,	भद्रा दिनमें ७।६ बजेसे सायं ६।३ बजेतक, कामदा एकादशीव्रत (सबका), मेषसंक्रान्ति दिनमें २।३३ बजे एवं पुण्यकाल दिनमें १०।३३ बजेसे, अश्विनीमें सूर्य दिनमें २।३३ बजे, खरमास समाप्त, वैशाखी, मूल रात्रिमें ८।३ बजेतक।
द्वादशी दिनमें ३।४५ बजेतक	शुक्र	पू०फा० रात्रिमें ६।२९ बजेतक	१५ ,,	कन्याराशि रात्रिमें १२।५ बजेसे, प्रदोषव्रत, सौरवैशाखमासारम्भ।
त्रयोदशी ,, १।२१ बजेतक	शनि	उ०फा० सायं ४।५१ बजेतक	१६ ,,	श्रीमहावीरजयन्ती (जैन)।
चतुर्दशी दिनमें १०।५४ बजेतक	रवि	हस्त दिनमें ३।१० बजेतक	१७ ,,	भद्रा दिनमें १०।५४ बजेसे रात्रिमें ९।४२ बजेतक, तुलाराशि रात्रिमें २।२३ बजेसे, व्रतपूर्णिमा।
पूर्णिमा ,, ८।३० बजेतक	सोम	चित्रा दिनमें १।३४ बजेतक	१८ ,,	स्नान-दानादिकी पूर्णिमा, श्रीहनुमज्जयन्ती, वैशाखस्नानारम्भ।

कृपानुभूति

योगक्षेमं वहाम्यहम्

करुणानिधान श्रीरामजीका स्वभाव बहुत सरल है, वे अपने भक्तोंका योगक्षेम वहन करते हैं। सेवक बनकर उनका भार भी ढोते हैं। जिसे संसारमें कोई मान नहीं देता, उसे प्रभु आदर देते हैं—यह उनकी आदत है। बात सन् १९८७ ई० की है। रीवासे बीना पहुँचकर पैसेंजर ट्रेनसे मुझे मुंगावली पहुँचना था। मुंगावली स्टेशनसे ही मल्हारगढ़के लिये बस मिलती है। अपने पतिदेवके साथ मैं मल्हारगढ़की बसमें बैठ गयी।

एक मन्दिरके सामने बस रुकी। मन्दिर विद्युत्की सजावटसे जगमगा रहा था। कण्डक्टरने कहा—मल्हारगढ़, मल्हारगढ़। सम्भवतः उसका आशय था कि जो लोग मल्हारगढ़ जाना चाहते हैं, वे बसमें बैठ जायँ, परंतु हम लोगोंने समझा कि मल्हारगढ़ आ गया है, अतः हमलोग मय समान उतर पड़े। मन्दिरके भीतर पहुँचनेपर ज्ञात हुआ कि यह तरण-तारण जैन मन्दिर है, इसे 'नसई मन्दिर' भी कहते हैं, बहरहाल हमें तो श्रीलक्ष्मीनारायण बड़ा मन्दिर जाना था। लोगोंने बतलाया वह तो पाँच किलोमीटर दूर है (यद्यपि था डेढ़ किलोमीटर)। चारों तरफ सुनसान जंगल, कोई बस्ती भी नहीं थी, स्थिति ऐसी थी कि कोई रास्ता बतलानेवाला भी नहीं। जाड़ेका मौसम होनेसे प्रातः पाँच बजे अँधेरा था। हे भगवान्! अच्छे फँसे, सामान ढोनेवाला भी कोई नहीं। नीमके वृक्षके पास चबूतरेपर सामान रखकर सोचा नहा-धोकर पूजा-पाठ कर लें। दूसरी बस ग्यारह बजेके बाद मिलनी था। बारह बजेसे ही कार्यक्रम प्रारम्भ होना था। लगता था आज प्रभु और सन्तकी सेवा न हो सकेगी? मैं मन-ही-मन प्रार्थना करने लगी—

हे दीनबन्धो करुणासिन्धो पार करो मेरी नैया।
रात अँधेरी डगर नहिं सूझै प्रभु तुम राह बतैया॥

इसी समय दस-बारह वर्षके दो ग्रामीण बालक आये और पूछने लगे—क्या आपको लक्ष्मीनारायण बड़ा मन्दिर जाना है? चलिये, हमको भी वहीं जाना है; आपको पहुँचा देंगे। हम लोग वहींके रहनेवाले हैं। मैंने पूछा—'यहाँ कैसे आये?' उन्होंने कहा—'हम लोग उसी बससे आये हैं, जिससे आप लोग आये हैं।'

मैंने कहा—हम लोग यहाँ पहली बार आये हैं, भूलसे नसई मन्दिर उतर गये; किंतु तुम लोग लक्ष्मीनारायण मन्दिरके पास रहनेवाले हो तो इतने पहले क्यों उतर गये?

बालकोंने हँसते-इठलाते हुए कहा—'ऐसे ही उतर गये।'

बालकोंका उत्तर सन्देह पैदा करनेवाला अजीब लगा, पर विवशता थी, कोई और मार्गदर्शक नहीं था। एक बालकने बैग उठा लिया तथा दूसरेने अटैची और वन-पथसे चल पड़े।

मैंने पूछा—तुम्हारे गाँवमें कोई उत्सव हो रहा है? तुम्हें मालूम है?

बालक—हाँ, वहाँ बहुत बड़ा सन्त-सम्मेलन हो रहा है। प्रवचन भी होंगे। रासलीला भी होगी। हजारों सन्त आये हैं। यह मेला तो हर साल लगता है।

मैंने पूछा—तुम लोग सत्संग सुनने जाते हो?

बालक—हाँ, पाँच दिन हम लोग वहीं रहते हैं।

मैंने उनसे नाम पूछा तो तपाकसे बालकने कहा—'मेरा नाम राम है और इसका नाम लक्ष्मण है और हम लोग सगे भाई हैं।' अब तो मुझे उनपर सन्देह होने लगा। मैंने कहा—मुझे लगता है तुम लोग गाँवके लड़के नहीं, सचमुच राम-लक्ष्मण हो। धर दो हमारा सामान। अब हम स्वयं ढो लेंगे। बहुत अपराध बन गया तुम लोगोंसे सेवा ली। उन्होंने कहा—'आप हमारे मेहमान हैं, भगवान्के काममें आये हैं, सेवा करना हमारा धर्म है।'

बातों-ही-बातोंमें गन्तव्यपर पहुँच गये। मन्दिरकी ड्योढ़ीपर सामान रखकर बालक भाग गये। मैं उन्हें कुछ दे न सकी। सोचा कार्यक्रममें पाँचों दिन बालकों और उनके माता-पितासे भेंट होगी, तब कुछ दे देंगे। सम्मेलन प्रारम्भ हुआ पाँचों दिन मेरी आँखें राम-लक्ष्मणको खोजती रहीं, किंतु वे नहीं दिखे। मन्दिरके व्यवस्थापक एवं महन्तजी तथा अन्य लोगोंसे राम-लक्ष्मण भाइयोंके बारेमें पूछा। सभीका एक ही उत्तर था कि इस पूरे इलाकेमें राम-लक्ष्मण नामके कोई भाई नहीं हैं। उनसे आपको क्या काम है? मैंने नसई मन्दिरसे लक्ष्मीनारायण मन्दिरतक सामान ढोकर पहुँचानेकी घटना सुनायी।

माण्डवके वयोवृद्ध महन्तजी बोले—'बिटिया, तुम बहुत भाग्यशाली हो। वास्तवमें साक्षात् राम-लक्ष्मणने ही बालकका रूप धारणकर तुम्हारा सामान ढोया और मार्गदर्शन किया है।' **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** का निर्वाह उन्होंने किया है।

पश्चात्ताप और रुदन करते हुए मैं कह उठी।

अयोध्या के नाथ ने क्या छल किया मिल के भुला दिया आपने।
माया के चक्कर में डाल दिया, भेष छिपा लिया आपने॥

—डॉ० श्रीमती ज्ञानवती अवस्थी

पढ़ो, समझो और करो

(१)

परोपकारसे इच्छामृत्यु

मैं मथुरासे १० किलोमीटर दूर बाद रेलवे स्टेशनपर रेलवेमें नौकरी करता हूँ। घटना सितम्बर २००३ ई० की है, जिसने मेरे जीवनको पूरी तरह बदल दिया। उत्तर-प्रदेशके इटावा जिलेमें बहेड़ा एक गाँव है, जो महेवा कस्बासे मात्र एक किलोमीटर दूर है, वहाँ हमारे पूज्य पिताजी एवं माताजी रहते थे। पूज्य पिताजीको पूरे गाँव और क्षेत्रके लोग 'दद्दा' कहकर पुकारते थे। मृत्युके छः माह पहले जो भी उनसे मिलने आता तो वे उससे कहते कि अब मैं श्राद्ध (पितृपक्ष—कनागत)-में भगवान्‌के घर चला जाऊँगा। लोग कहते कि दद्दा आपकी उम्र ८४ वर्षकी हो गयी है, इसलिये आप ऐसी बातें करते हैं, तो वे कहते कि श्राद्ध जब आये तो देख लेना कि मैं सच कह रहा हूँ या झूठ। श्राद्ध (कनागत) आते ही उन्होंने कहा कि आजसे ठीक चार दिन बाद मेरी मृत्यु हो जायगी, उनकी बातें सुनकर लोग ठहाका लगाकर हँसते और कहते कि उम्र काफी होनेके कारण इस तरहकी बातें कर रहे हैं।

श्राद्धके पहले दिन मेरे पूज्य चाचाजीका फोन बाद रेलवे स्टेशन आया कि तुम छुट्टी लेकर तुरंत चले आओ; क्योंकि दद्दाकी आजसे ठीक चार दिन बाद मृत्यु हो जायगी, उन्होंने तुम्हें बुलाया है। मैंने कहा कि चाचा! बड़े-बड़े ऋषि-मुनि अपनी मृत्यु नहीं जानते तो दद्दाको कैसे पता? यह उम्रका तकाजा है।

फिर भी मैं दो दिन बाद घर पहुँचा तो दद्दाने कहा कि अब केवल दो दिन बचे हैं, अच्छा हुआ तुम आ गये, अब कल मैं अन्तिम विदा लूँगा। लेकिन मुझे बिलकुल विश्वास नहीं था; क्योंकि वे घूम-फिर रहे थे और यथोचित मात्रामें भोजन भी कर रहे थे तथा सबसे बातचीत भी कर रहे थे।

अब आखिरी चौथा दिन भी आ गया। चूँकि इच्छा-मृत्युकी खबर सब जगह फैली हुई थी, अतः सभी अखबारवाले पत्रकार एवं पूरे गाँवके लोग इकट्ठे हो गये थे कि वास्तवमें इच्छामृत्यु कैसे होती है!

दोपहरमें पिताजीने पण्डितजीको बुलाकर गोदान करवाया एवं कन्याओंको दानमें रुपये बाँटे। शाम पाँच बजे मन्दिरमें आरतीके लिये मुझसे कहा। मैंने आरती की, वह दद्दाने ली एवं कुछ देर वे भजन करने लगे। उसके बाद सबसे माफी माँगी कि यदि मुझसे कोई गलती हो गयी हो तो माफ करना और 'अब मैं जा रहा हूँ' कहकर चारपाईपर लेट गये। दस मिनट बाद पुनः उठ बैठे तो सभी पत्रकार एवं इकट्ठी भीड़ हँस पड़ी, बोली—दद्दा! जाना हो तो जाओ, वरना हम लोग सुबहसे आये हुए हैं, हम भी जायँ। तो दद्दाने कहा कि अभी गोधूलिवेलामें दस मिनट बाकी है, इसलिये मैं रुक गया हूँ। ऊपर भगवान्‌के सभी दरवाजे खुले हैं, पूरा रास्ता साफ है, जो मुझे लेने आये हैं, उनसे मैंने गोधूलिवेलामें चलनेको कहा है। इसके बाद चारपाईके पास गायके गोबरसे लिपवाया एवं कुश रखवाये और कहा कि मुझे मरनेमें मात्र एक मिनट लगेगा, मुझे तुरंत चारपाईसे उतार लेना। उसके बाद रामनाम कहते हुए शामको गोधूलिवेलामें चारपाईपर लेट गये और एक मिनट बाद उन्हें तुरंत नीचे उतारा गया। उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। उन्होंने जो छः माह पहलेसे कहा था, वह अक्षरशः सच कहा था।

ऐसी बोलती हुई मृत्यु वह भी छः माह पहलेसे मालूम हो, पहली बार देखी थी, इस घटनाके बाद मेरे मनमें सदैव एक द्वन्द्व रहने लगा कि ऐसा क्या कार्य पूज्य पिताजीने किये, जिससे ऐसी अच्छी मृत्यु हुई एवं क्या गृहस्थ जीवनमें रहकर भी भगवान्‌को प्राप्त किया जा सकता है? ऐसे सैकड़ों सवाल मेरे मस्तिष्कको झकझोरने लगे। अन्तमें मैंने दद्दाके पूरे जीवनका अध्ययन किया।

दद्दाका जन्म ११ मार्च १९२१ ई० को बहेड़ा गाँवमें ही हुआ था। उसके बाद उनकी नौकरी पटवारी (लेखपाल)-के पदपर लग गयी। वे केवल १२ वर्ष ही नौकरी कर पाये थे कि अंग्रेजोंके विरुद्ध काम करनेके कारण बरखास्त कर दिये गये। बादमें भारत सरकारने स्वतन्त्रता-संग्राम सेनानीकी पेंशन भेजी, परंतु दद्दाने यह कहकर लौटा दी कि मेरी पेंशन देशके गरीबोंमें बाँट दी जाय, मैंने देशके प्रति अपना कर्तव्य निभाया है, मुझे स्वतन्त्रता-सेनानीकी कोई सुविधा नहीं चाहिये। पूरा जीवन उन्होंने गरीबीमें बिता दिया। ईमानदार एवं कर्मठ होनेके कारण गाँवमें ही स्थित इण्टर कालेजके प्रबन्धक (मैनेजर) बनाये गये। बादमें सहकारी संघके डाइरेक्टर पदपर भी रहे, लेकिन पूर्ण ईमानदारीसे कार्य किया, इससे पहले 'लाल सेना' में

कार्य करते रहे, लेकिन बादमें राजनीति दूषित होनेके कारण उससे दूर रहने लगे।

उन्होंने अपने खेतमें चौराहेपर एक कुआँ खुदवाया, उसमें बहुत ठण्डा पानी निकलता था। कम-से-कम पाँच सौ लोग रोज पानी पीते थे, कुएँपर रस्सी-बाल्टीकी व्यवस्था सदैव दद्दा ही करते थे, यदि बाल्टी चोरी चली जाय तो तुरंत दूसरी नयी बाल्टी खरीदकर रख देते थे। लोग कहते थे कि दद्दा बाल्टी क्यों रख दी? तो कहते थे कि उन पाँच सौ लोगोंका क्या होगा, जो प्यासे आयेंगे? उन्होंने मरते दमतक कुएँपर रस्सी एवं बाल्टी रखी।

उन्होंने अपना पूरा जीवन ईमानदारीसे बिताया, कभी किसीको सताया नहीं, कष्ट नहीं दिया।

दद्दाके जीवनसे मुझे लगा कि यदि व्यक्ति ईमानदारीसे जीवन जिये, परोपकारके कार्य करे तो कोई बड़ी तपस्याकी जरूरत नहीं है, इतनेसे ही अच्छी मृत्यु प्राप्त हो सकती है।—**एस०एन० तिवारी**

(२)

ऋणानुबन्ध

जब शहरी लोग वातानुकूलित कक्षों या कूलरमें बैठे अड़तालीस डिग्री हो गये तापक्रम और ग्लोबल वार्मिंगपर बहस कर रहे होते हैं, तब गाँवका किसान चिलचिलाती धूपमें खेतकी जुताईकर बीज बोनेके लिये तैयारी कर रहा होता है।

मालवाके एक छोटेसे गाँवका किसान प्रह्लाद, इस बार कुछ ज्यादा ही उत्साहित था, पिछले वर्ष ठीक बुआईके समय एक बैल मर जानेसे उसका सारा साल खराब हो गया था। इस बार वह साहूकारसे ब्याजपर पैसे लेकर एक बड़ा सुन्दर, पुष्ट और नौजवान बैल लेकर आया था, पर जैसी लोकमें कहावत है—***'बोवाती कई व्हे कटी ने धान घरै आइ जाए जब जानो कि आपनो।'*** (बुआई करनेसे ही नहीं, धान कटकर घर आ जाय तब जानिये कि अपना है)।

प्रह्लादका भी शायद दुर्भाग्य ही था कि सुन्दर और पुष्ट बैल थोड़ी दूर चलकर फिर बैठ जाता, उठाये न उठता। सीधा-साधा प्रह्लाद न चाहकर भी उसे पीटता। आखिर बुआई करना उसके और उसके परिवारके जीवन-मरणका प्रश्न था।

एक दिन कठिन दोपहरमें जब जेठ तप रहा था, प्रह्लाद खेतमें हल चला रहा था; आदतसे मजबूर बैल बैठ गया। खीझके मारे प्रह्लाद उसे बुरी तरह पीटने लगा, संयोगवश उसी समय पासकी सड़कसे शहरके एक विख्यात मठके महन्तजी हाथीपर बैठे गुजर रहे थे, उनकी दृष्टि प्रह्लाद और बैलपर पड़ी तो वे जोरसे चिल्लाकर बोले—'भैया, उस बैलको मत मारो, रुको मैं आता हूँ।'

कुछ भयभीत, कुछ असमंजसमें प्रह्लादने हल खोल दिया। महन्तजी हाथीके हौदेसे उतरकर आये। आश्चर्यचकित रह गया प्रह्लाद। महन्तजीने बैलको सादर प्रणाम किया, फिर उसके कानमें कुछ कहा। बस, फिर क्या था, बैल तो बिजलीकी गतिसे उठ गया और चलनेको भी तत्पर!

सीधे-साधे प्रह्लादने महन्तजीको भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया और कहा—बाबा! यह मन्त्र मुझे भी बता दो। गाँवमें कई गरियाल निठल्ले बैल हैं।

पर प्रह्लादने देखा महन्तजीकी आँखोंमें आँसू हैं और वे बड़े दुःखी भी, बोले—बेटा! यह कोई मन्त्र नहीं है, यह तो 'ऋणानुबन्ध' है।

कुछ न समझा प्रह्लाद, बोला—क्या होता है बाबा! ऋणानुबन्ध? बेटा! ये बड़ा कठिन है, जिसका लिया है, उसका किसी भी रूपमें चुकाना ही पड़ता है। पूर्वजन्मकी बात है, तुम ऐसे ही किसान थे और ये बैल—तुम्हारे गाँवके एक मठके महन्तजी, बड़ा आदर था इनका। पूरा गाँव पूजता था। तुम्हारे एक बेटी थी और थोड़ी खेती, जब कभी तुम्हारे पास कुछ बचता—दो-चार-दस रुपये, तुम महन्तजीके पास रख देते, जब बेटीकी शादी होगी, काम आयेंगे।

धीरे-धीरे करके लड़की भी सयानी हो गयी और रकम भी ज्यादा।

बिटियाका रिश्ताकर तुम निश्चिन्त होकर महन्तजीके पास पहुँचे और बोले, 'बाबा! मेरा पैसा लौटा दो, मैंने बड़े अच्छे घर और वरसे बेटीका रिश्ता तय कर दिया है।'

हाय! कुछ काल-कुछ दैव, रकमने महन्तजीकी नीयत खराब कर दी। वे तैशमें आकर बोले—कौनसे पैसे, काहेके पैसे?

प्रतिष्ठित महन्तजीकी बातसे सारा गाँव सहमत था—इतने पैसे गरीब किसानके पास आये ही कहाँसे? फिर महन्तजी और बेईमानी! ना-ना!

समय कब रुकता है। तुम फिर किसान हो, बेईमानीने महन्तजीको बैल बना दिया है। गद्दीपर बैठकर माल छाननेका संस्कार उन्हें मेहनत करने नहीं देता—बार-बार बैठ जाते हैं, गालियाँ और मार खाते हैं। जिसका लिया

है, उसका देना तो है ही, यह प्रकृतिका कभी न बदलनेवाला नियम है, चाहे राजी-खुशी दो, चाहे मार खाकर—यही ऋणानुबन्ध है। यही कर्म-सिद्धान्त है, मैंने वही उनके कानमें कहा कि महन्तजी! चुकाना तो है ही, फिर अपमान और मार सहकर क्यों? राजी-खुशी चुका दो और ऋणमुक्त होकर फिर भगवान्‌का भजन करो। उन्हें स्मरण भी हो आया है और समझ भी आ गयी। अब वे शायद कभी न बैठें, जबतक चुकता न चुक जाय।

—डॉ० नारायण तिवारी

(३)

हिसारमें गोरक्षा-क्रान्ति

दिव्य संत ब्रह्मलीन परम पूज्य देवरहा बाबाकी यह भविष्यवाणी है कि जिस दिनसे भारतमें गोरक्त गिरना बन्द हो जायगा, उसी दिनसे भारतके विश्वगुरु बननेका मार्ग प्रशस्त होने लगेगा तथा सुख-समृद्धि आयेगी। परम पूज्य देवरहा बाबाद्वारा गोवंशकी रक्षाहेतु की गयी भविष्यवाणियोंके सच होने एवं हिन्दुओंके उत्थानके लक्षण दिखायी देने लगे हैं। ऐसी ही गोरक्षाकी एक महान् क्रान्ति विगत वर्षोंमें हरियाणाके हिसार जिलेमें देखनेमें आयी है, जिसके प्रणेता हिसारके तत्कालीन पुलिस अधीक्षक महोदय रहे हैं। जिन्होंने हिसारके कुछ गोभक्त उत्साही युवकोंको लेकर एक मिशन—'स्ट्रे कण्ट्रोल' बनाया, जिसके अन्तर्गत कूड़ा-करकट खानेवाले आवारा एवं लावारिस गोवंशको सम्मानसहित विभिन्न गोशालाओंमें भिजवानेका प्रबन्ध किया गया। इस सारी कार्ययोजनाका संचालन गोभक्त श्रीगोयनकाजीकी देख-रेखमें हुआ तथा इस पूरी योजनाको माननीय पुलिस अधीक्षक महोदय एवं हिसार पुलिसका पूरा-पूरा सहयोग मिला। इस योजनामें रु० ६००० में एक लावारिस गायको गोद लेकर उसके आजीवन पालन-पोषणकी जिम्मेदारी हिसारकी गोभक्त जनताको सौंपी गयी। ईश्वरीय आशीर्वाद तथा गोमाताकी कृपासे बहुत थोड़ेसे समयमें हिसारमें इस योजनाके अन्तर्गत लाखों रुपया इकट्ठा हो गया, जिससे न केवल लावारिस गोवंशको सम्मान मिला, बल्कि लोगोंका गोवंशकी रक्षापर भी ध्यान केन्द्रित हुआ। इससे घाटेमें चलनेवाली गोशालाओंको भी पुनर्जीवन मिला तथा हर ग्राममें अब गोशालाएँ खुलने लगी हैं। इस कार्ययोजनासे लावारिस घूमनेवाले गोवंशके कारण होनेवाली सड़क-दुर्घटनाएँ नगण्य-सी हो गयी हैं तथा लोगोंमें धार्मिक भावनाका संचरण हुआ है। इस अनूठी तथा अनुकरणीय योजनाके सफल होनेसे पूरे हरियाणामें गोवंशके प्रति सम्मान तथा रक्षणकी क्रान्ति आ गयी है तथा इस योजनाको अब हरियाणाके अन्य जनपदोंने भी अपनाना शुरू कर दिया है।—**दयाप्रकाश सर्राफ**

(४)

तीन महत्त्वपूर्ण शिक्षाएँ

ब्रह्मलीन अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज जब विद्योपार्जनके लिये घरसे रवाना हुए तो उनकी माताजीने उन्हें तीन शिक्षाएँ दीं—पहली बासी खाना, दूसरी पलंगपर सोना तथा तीसरी किलेमें रहना। अखण्डानन्दजी महाराज इनका तात्पर्य समझे नहीं और अपनी माँसे पूछा। माँने समझाया—बेटा! बासी खानेका अर्थ है—इतना अर्थोपार्जन करना कि दूसरे दिनकी चिन्ता न रहे। गृहस्थको हमेशा कलके लिये बचाकर रखना चाहिये, अन्यथा वह लोगोंकी दृष्टिमें हेय हो जाता है, उसे बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। पलंगपर सोनेका अर्थ है—खूब परिश्रम करना। परिश्रम करनेसे शरीर स्वस्थ रहता है। दिनभर अगर परिश्रम होता है तो सोते ही ऐसी नींद आती है—जैसे सुन्दर पलंगपर सोनेसे। यदि परिश्रम न किया जाय तो पलंग भी काटने दौड़ता है। करवट बदलते-बदलते रात बीत जाती है। अतः सर्वदा शारीरिक श्रम भी करते रहना चाहिये। शारीरिक श्रमसे ही नींद अच्छी आती है।

किलेमें रहनेका अर्थ है—सदा सन्तके आश्रयमें रहना। किलेसे भी अधिक सुरक्षा उसे सन्तके सान्निध्यमें रहनेसे प्राप्त हो जाती है। जीवनकी सफलता सत्संगमें ही है, बिना सत्संगके मनुष्य या तो पशुवत् जीवन व्यतीत करता है अथवा राक्षसी वृत्तिका शिकार हो जाता है। केवल सत्संगमें ही यह सामर्थ्य है कि वह मानवको मनुष्य बना सकता है, मनुष्य-जीवनके उद्देश्यके बारेमें ज्ञान प्रदान कर सकता है। सत्संगसे ही जीवनका सच्चा आनन्द मिलता है। माँके श्रीमुखसे व्याख्या सुनकर महाराजजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने माताजीके चरण छूकर कहा—माँ, मैं जीवनपर्यन्त आपकी महत्त्वपूर्ण शिक्षाप्रद बातोंका ध्यान रखूँगा और वे घरसे विदा हो गये—**'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्।'**

—**भालचन्द्रशर्मा 'गीतेश'**

मनन करने योग्य

जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई

अकबर और बीरबलके जमानेकी बात है। अकबर और बीरबल दोनों सायंकाल घूमनेके लिये जाया करते थे। कभी-कभी वे दोनों नगरके बाहर जाते थे और कभी-कभी प्रजाका अवलोकन करने नगरके बाजारोंमें भी घूम आते थे। एक शाम दोनों घूमनेके लिये नगरके बाजारसे गुजर रहे थे। अचानक अकबरकी नजर एक वणिक्‌की दूकानपर गयी। वह वणिक् बहुत ही उदास और चिन्तित नजर आ रहा था। अकबरने बीरबलसे पूछा—'बीरबल! यह वणिक् इतना उदास क्यों है? उसकी उदासीका कारण जानना चाहता हूँ।' बीरबलने उस वणिक्‌को बुलाया और उदासीका कारण पूछा। तब बड़े विनम्र स्वरमें वणिक् बोला—'जहाँपनाह! मैं एक साधारण व्यापारी हूँ और बदलते मौसमके साथ व्यापार बदलता हूँ। इस वर्ष ठण्डके मौसममें मैं अपनी सारी पूँजी लगाकर ५०० कम्बल खरीदकर लाया था। परंतु मेरे दुर्भाग्यसे इस वर्ष ठण्ड कम पड़ी और एक भी कम्बल नहीं बिका।' यह सुनकर अकबरका हृदय दयाभावसे भर गया।

दूसरे दिन राजसभामें जब सारे सभासद् उपस्थित हो गये तब अकबरने एक सूचना दी। कल सुबह जो भी मेरी राजसभामें आयेगा, वह अपने साथ एक नया कम्बल अवश्य लेकर आयेगा। जो नहीं लायेगा, उसे ५०० रुपयेका दण्ड देना होगा। ऐसी अजीब सूचना सुनकर सब हैरान हुए और एक-दूसरेको देखने लगे, परंतु किसीमें भी कुछ पूछनेकी हिम्मत नहीं थी।

घर पहुँचते ही सारे सभासद् बाजारके लिये चल पड़े। कम्बलकी खोजमें उस वणिक्‌की दूकानतक भी लोग पहुँच गये। वणिक् बड़ा हैरान कि पूरे चार मासमें मेरा एक भी कम्बल खोला नहीं गया और आज तो ग्राहक-पर-ग्राहक दूकानमें आते जा रहे हैं। वह बड़ा प्रसन्न हो गया। बड़े उत्साहसे उसने आनेवाले ग्राहकको ढाई रुपयेका कम्बल पाँच रुपयेमें बेचना शुरू कर दिया। परंतु थोड़े समयमें उसने देखा कि दो ग्राहक लेकर जा रहे हैं और चार ग्राहक लेने आ रहे हैं। उसने तुरंत ही पाँच रुपयेकी कीमतको पच्चीसमें बदल दिया। सारे कम्बल उसने ढाई घण्टेमें बेच दिये। अपनी जरूरतके लिये उसने सिर्फ एक ही कम्बल बचाया था। अन्तमें बीरबल भी उसी व्यापारीसे कम्बल लेने पहुँचे। जब बीरबलने देखा कि अब एक भी कम्बल नहीं बचा है, तब उन्होंने जोर देकर कहा—मुझे एक कम्बल जरूर चाहिये। जितनी चाहो कीमत ले लो, पर कम्बल मुझे दे दो। वणिक् ने कुछ क्षण सोचकर अपने लिये रखा हुआ कम्बल निकाल दिया और बोला पूरे ढाई सौ रुपये लूँगा। बीरबलने सोचा कल दरबारमें ५०० रुपयेका दण्ड देनेसे तो यह ढाई सौ ठीक है। बीरबलने कम्बल खरीद लिया और वणिक्‌की मुखमुद्रा प्रफुल्लित हो गयी।

बीरबलके जानेके बाद वणिक् इसी सोचमें डूब गया कि ढाई रुपयेका कम्बल ढाई सौमें बेचकर मैंने लाभ कमाया। कितना अच्छा होता यदि मैं सारे कम्बल ढाई-ढाई सौमें बेचता। आज शामतक मेरे पास सवा लाख रुपये इकट्ठे हो गये होते, परंतु मैंने अवसरको पकड़ा नहीं। इसी ऊहापोहमें वह फिरसे उदास हो गया। जब शामको सदाकी भाँति अकबर और बीरबल घूमने निकले तो अकबरने बीरबलसे कहा—आज वह वणिक् बड़ा ही खुश होगा, मैं उसे देखनेको आतुर हूँ। यह सुनकर बीरबल मुसकराते हुए बोले—'जहाँपनाह! इस मानवकी बड़ी विचित्र गति है।'

अकबर तो वणिक्‌की उदास मुखमुद्रासे बड़ा चकित हुआ, तुरंत ही वणिक्‌को बुलाकर पूछा कि आज तो तेरा सारा माल बिक गया है। फिर क्यों यह उदासी है? वह एकदमसे रो पड़ा और बोला—'जहाँपनाह!' आपकी दयासे मेरे सारे कम्बल बिक गये। अन्तिम कम्बल तो मेरा २५० रुपयेमें गया। अब मुझे पश्चात्ताप हो रहा है कि कितना अच्छा होता कि शुरूसे सारे कम्बल २५० में बेचता। यह बात सोचकर मैं दुःखी हूँ।

अकबर यह सुनकर विस्मित हुए और बीरबलकी ओर देखने लगे। तब बीरबलने कहा—जहाँपनाह! यह प्रत्येक मानव-मनकी कहानी है, जितना लाभ बढ़ता है, उतना लोभ भी बढ़ता जाता है। यह वणिक् कलतक माल नहीं बिकनेसे परेशान था, पर आज यह लोभसे परेशान है।

—साध्वी युगलनिधिकृपाश्रीजी

॥ श्रीहरि: ॥

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

'कल्याण'

-के ८४वें वर्ष (वि०सं० २०६६-६७, सन् २०१० ई०)-के दूसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके

निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

पद्य-सूची

संकलित-सामग्री